श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला काशी

ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८४

मूल्य ३॥)

मुद्रक—

शिवनारायण उपाध्याय

नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी।

वर्णीवाणी चतुर्थ भाग

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी

प्रकाशकीय वक्तव्य

पिछले वर्ष जैनदर्शनका प्रकाशन श्री व० ग्रन्थमालासे हुआ था। उसके बाद इतने जल्दी वर्णीवाणी चतुर्थ भाग (पत्र पारिजातको) ग्रन्थमालासे प्रकाशित होनेका सौभाग्य मिला है इसकी हमें प्रसन्नता है। इसमें पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा त्यागियोंको अलग अलग लिखे गये पत्रोंका संकलन किया गया है। पत्रोकी अपनी मौलिक विशेषता है। जो व्यक्ति जैन समाजकी विविध प्रवृत्तियोंका अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिये तो ये पत्र पठनीय हैं ही। साथ ही जो आध्यात्मिक रहस्यको समझना चाहते हैं उनके लिए भी ये पठनीय हैं।

वर्णीवाणीके सम्पादक श्री वि० नरेन्द्र जीने इनके संकलनमें बड़ा श्रम किया है। उनके दीर्घ अध्यवसायके फलस्वरूप यह कार्य मूर्तरूप ले रहा है इसकी हमें प्रसन्नता है। उन्होंने विद्वानों, सेठों और विद्यार्थियोंको पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा लिखे गये पत्रोंका भी सकलन कर लिया है और उनकी प्रेसकापी भी कार्यालयमें आ गई है। आगे हमारा विचार क्रमसे पाँचवें भाग आदि रूपसे उन्हें ही सर्व प्रथम प्रकाशित करनेका है। यदि अनुकूलता रही तो पाठकोंको उनका स्वाध्याय करनेका शीघ्र ही अवसर प्राप्त होगा। इतना अवश्य है कि ग्रन्थमालाने जैन साहित्यके इतिहासका कार्य भी सम्हाल रखा है, इसलिए आर्थिक दृष्टिसे उस पर पर्याप्त बोझ पड़ रहा है। आशा है समाजके उदार सहयोगसे ग्रन्थमाला अपने निर्दिष्ट कार्योंमें सफलता प्राप्त करेगी। शेष बातोंका स्पष्टीकरण ग्रन्थमाला सम्पादकने अपने वक्तव्यमें किया है।

प्रकृतमें पाठकोंसे हम यही आशा करते हैं कि वे वर्णीवाणीके अन्य भागोंके समान इसे भी समुचित रूपसे अपनावेंगे।

ता० २५-११-५६
बीना

निवेदक
वंशीधर व्याकरणाचार्य
मन्त्री श्री० ग० वर्णी जैन ग्रन्थमाला, काशी

दो शब्द

वर्णीवाणी चतुर्थ भाग का प्रकाशन प्राप्य बनानेमें पर्याप्त समय लगा है। इसमें पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णीके व पत्र संकलित किये गये हैं जो उन्होंने त्यागिगणको समय समय लिखे हैं। यों तो बहुतसे पत्र कलकत्ता, इन्दौर और सहारनपुर आदिसे प्रकाशित हो गये हैं परन्तु उनका व्यवस्थित रूपसे संकलित कर प्रकाशित करनेका यह प्रथम ही अवसर है।

वर्णीवाणीके पिछले तीन भागोंमें पूज्य श्री वर्णी जीके विविध लेखों, प्रवचनों और दैनंदिनियोंका ही संकलन किया गया है, इसलिए वे वर्णीवाणी इस नामसे प्रकाशित की गई हैं। किन्तु इस भागमें केवल पत्रोंका संकलन होनेसे इसका मुख्य नाम वर्णीवाणी रखकर भी प्रवेशके भीतर 'पत्रपारिजात' नाम दिया गया है।

पूर्व भागोंके समान इस भागका संकलन भी बी० ए०, साहित्याचार्य और साहित्यरत्न आदि योग्यता सम्पन्न श्री वि० नरेन्द्रकुमारजी भूतपूर्व सदस्य विधानपरिषद् विन्ध्यप्रदेशने किया है। उन्होंने पूज्य श्री वर्णी जी महाराज द्वारा विद्वानों सेठों और विद्यार्थियोंको लिखे गये पत्रोंका भी संकलन किया है। वह सब संकलन ग्रन्थमालाके कार्यालयमें विद्यमान है। विद्यार्थीजी से ज्ञात हुआ है कि अन्तमें इस कार्यमें उनकी विदुषी पत्नी सौ० रमादेवी न्यायतीर्थ साहित्यरत्नका भी पूरा सहयोग मिला है।

प्रकाशनके पूर्व आपसी बातचीतमें विचार हुआ था कि जिस व्यक्तिके नाम पत्र हो उसका नाम आशीर्वाद या दर्शन-

विशुद्धिके साथ प्रथम पत्रके प्रारम्भमें दे दिया जाय और 'आ० शु० चि० गणेश वर्णी' यह वाक्य अन्तिम पत्रके अन्तमे दे दिया जाय। प्रेस कापी इसी आधारसे तैयार की गई थी। किन्तु अनेक विचारकोंकी सलाह मिली कि सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए। पत्रो के बीचके कुछ अन्य अंश भी प्रेस कापीके समय अलग कर दिए गये होगे। किन्तु सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए इस सिद्धान्तके स्वीकार कर लेनेसे यथासम्भव प्रेस कापीको मूल पत्रो से पुन मिलाया गया। साथ ही यह भी विचार हुआ कि जिन व्यक्तियोंके नाम लिखे गये पत्र दिये जा रहे हैं उनका प्रारम्भमें परिचय भी रहना चाहिए। यह सब कोई जानता है कि परिचय प्राप्त करनेमें कितनी कठिनाई होती है। किसीका परिचय न देने पर अन्यथा कल्पना होने लगती है। किन्तु एक दो बार लिखने पर कोई भेजता भी नहीं है। यह भी एक दिक्कत थी। इससे इस भागके प्रकाशित होनेमे काफी समय लगा है। हमारा अन्य व्यासंग तो इस देरीमें कारण है ही।

इस भागमें तीस त्यागी महानुभाव और बहिनोंके नाम लिखे गये पत्र दिये गये है। जहाँ तक सम्भव हुआ सबका परिचय भी साथमें देते गये हैं। परन्तु २-४ ऐसे भी महानुभाव हैं जिनका पूरा परिचय नहीं दिया जा सका है। उनमेंसे एक श्री ब्र० मूलशंकरजी भी हैं। उन्हें अनेक बार पत्र लिखे गये। यह भी बताया गया कि यह लोक प्रख्यापनकी दृष्टिसे कार्य नहीं हो रहा है। वर्तमान त्यागियों विद्वानो और जनसेवकों आदिका इतिहास सुरक्षित रहे इस अभिप्रायसे ही यह कार्य किया जा रहा है अत' अपना परिचय भेजने में आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि आप स्वयं न लिखना चाहें तो हमारे प्रश्नोंका उत्तर जो आपसे अच्छी तरह परिचित हो उससे दिला दें। परन्तु वे टससे मस न हुए और उन्होंने लौकिक कार्य मान कर इसे करने करानेमें अपनी असमर्थता

प्रगट की। फल स्वरूप हम उनका पूरा परिचय देनेमें असमर्थ रहे।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजकी वाणीमें क्या विशेषता है यह बात वर्णीवाणीके पाठक महानुभावोंसे छिपा हुई बात नहीं है। हम उनके प्रवचनों और विविध लेखों में जो जादू अनुभव करते हैं वही जादू उनके इन पत्रोंमें दृष्टिगोचर होता है। सभी पत्रोंमें अध्यात्म रस भरा हुआ है। अन्य प्रासंगिक बातें नहीं के बराबर हैं। इनमें एक ऐसा भी पत्र है जो स्वयं उन्होंने अपने आपको सम्बोधित कर लिखा है। यह पत्र वर्णीवाणीके सम्पादक चि० नरेन्द्रजीने बड़े प्रयत्नसे खोज निकाला है। हम इसे सब पत्रोंकी जान मानते हैं। अन्य पत्रोंमें आपका कदाचित् शिष्टाचारकी गन्धका अनुभव हो सकता है। पर यह पत्र उनकी आत्माका प्रतिबिम्ब माना जा सकता है। इसमें स्वयं का सम्बोधितकर उन्होंने अपने भीतर वास करनेवाली कमजोरीका भी दिग्दर्शन कराया है। पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अपनी कमजारीको दूसरा के सामने रखनेमें कभी सकोचका अनुभव नहीं करते। उनमें वह कमजोरी है या नहीं है यह बात अलग है। वास्तवमें उनका त्याग सेवा और आत्माराधना उन्हें महान् बनाये हुए है।

सब त्यागियोंके परिचय मैंने स्वयं लिखे हैं। परिचय लिखते समय मैंने अपने अनुभव और मतका रंचमात्र भी उपयोग नहीं किया है। सबके पास कुछ प्रश्न भेजे गये थे—नाम, पिताका नाम माताका नाम, जाति निवास स्थान शिक्षा, त्यागी होनेकी तिथि-सम्वत् सेवा आदि। इन प्रश्नोंके जो जो उत्तर आये थ ही अपनी भाषामें संकलित कर यहाँ रख दिये गये हैं। हमने सबकी जाति भी लिखी है। इस भागके संपादक श्री नरेन्द्रजीने पत्र लिख कर इस बातका विरोध भी किया था। उनका तर्क था कि

यह जातिवादका जमाना नहीं है। आप स्वयं इस जातिवादके चक्करसे बाहर हैं फिर भी आप परिचयके साथ जाति दिखलानेमे संकोच नहीं करते यह आश्चर्यकी बात है। इसमे सन्देह नहीं कि हम इस तर्कके लिये कायल हैं। पर एक तो यह स्थल हमे अपने विचारोंको उपयोगमें लानेका नहीं था। दूसरे जब वर्तमानमे उसका चलन है तब नामके समान उसका उल्लेख करनेमें हमने विशेष हानि नहीं समझी। तथा ऐतिहासिक दृष्टिसे ऐसा करना महत्त्व भी रखता है यही कारण है कि हम प्रत्येक त्यागीके परिचयके साथ उनकी जातिका भी निर्देश करते गये हैं।

प्राय: सब पत्र कालक्रमसे ही दिये गये हैं। बहुतसे पत्रों पर तिथि और सम्वत् न होनेसे कहीं कहीं व्यत्यय हो गया प्रतीत होता है जिसका संशोधन करना सम्पादकके लिए सम्भव भी नहीं था। पूज्य श्री वर्णी जी महाराजके पास बैठते और उन्हें सब पत्र आनुपूर्वीसे दिखलाये जाते तो भी इस दोषका परिमार्जन नहीं हो सकता था। आशा है इस दोषके लिये पाठक गण क्षमा करेंगे। वि० नरेन्द्रजीने इस कार्यमे जो श्रम किया है उसको यहाँ बतलाना सम्भव नहीं है। उनका पुरुषार्थ था कि यह कार्य इतने उत्तम प्रकारसे बन गया है। इससे आमतौरसे एक नई जागृतिके लिए प्रोत्साहन मिलेगा ऐसी हमें आशा है।

जैन जातिभूषण दानवीर श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजी सागरको कौन नहीं जानता। बुन्देलखण्डकी जनजागृतिमे उनका विशेष हाथ है। शिक्षाप्रचार, तीर्थोद्धार और असमर्थ छात्रोकी सहायता करनेमे उन्होंने मुक्तहस्त होकर द्रव्यका सदुपयोग किया है। पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके वे दाहिने हाथ हैं। इस कालमें बुन्देलखण्डमे दानकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन सर्वप्रथम उन्हींके द्वारा मिला है। उनके समान उनकी धर्मपत्नी भी सब धार्मिक कार्योमे

उनके साथ रहती हैं। सागरका महिलाश्रम उन्हींकी उदारवृत्तिका फल है। जैन समाजपर इस युगल दम्पत्तिका बहुत बड़ा ऋण है। इस भागके साथ हमारी इच्छा श्रीमान् सिंघईजीके साङ्गोपाङ्ग जीवनचरित्रको प्रकाशित करनेकी थी। इसके लिए श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यको हमने कई बार लिखा भी था। किन्तु इसकी पूर्ति श्रीयुक्त बि० नरेन्द्रजीन की है। उन्होंने उनकी संक्षिप्त जीवनी लिखकर भेजी है और उसे हम इस भागके साथ छाप रहे हैं।

धर्मात्मा दम्पत्तिका यह भाग उन्हींकी उदार सहायतासे प्रकाशित हो रहा है। इस कार्यके लिए उन्होंने २१०१) रुपया की सहायता प्रदान करनेकी स्वीकृति दी है। इस द्रव्यसे उनके नामसे आगे भी अन्य धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहेंगे। इस प्रकार सहायताके लिए हम ग्रन्थमालाकी ओरसे उनके विशेष आभारी हैं।

इस भागके लिए जियागञ्जकी ओरसे स्व० श्रीमान् प्र० सुमेरचन्द्रजी भगतकी मार्फत १००) और हजारीबागकी एक महिला सौ० श्री हरखीबाई धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालालजी की ओरसे पूज्य माता पतासीबाईकी मार्फत १०) प्राप्त हुए थे। इसके लिए हम उनके भी आभारी हैं। इन रुपयोंकी पुस्तकें उनके पास पहुँचा दी जावेंगी।

फूलचन्द्र सिद्धान्त शा०

अपनी बात

पूज्य श्री वर्णीजी महाराज भारतके आध्यात्मिक सन्तोंमेसे एक हैं। हर समाजमें सन्तोंकी कमी नहीं है परन्तु एक समाजके सीमित दायरेसे बाहरके विशाल असाम्प्रदायिक क्षेत्रमें आकर 'सर्वजनहिताय', 'सर्वजनसुखाय' बात निर्भीकतासे करना वर्णी जी जैसे प्रखर आत्मबलशाली महापुरुषके ही वशकी बात है। विरोधकी अग्निकी धधकती भट्टी की परवाह न कर 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' के समर्थनमें दिया गया उनका शास्त्रीय एवं राष्ट्रीय निर्णय आज भी आश्चर्यकी वात है।

वर्णीजीने ऐसे अनेकों सुधारोंकी चिनगारियाँ प्रज्वलित की हैं जिन्होंने ज्वलन्त ज्वाला बनकर रूढ़ियोंको भस्म कर समाजको सुसंस्कृत बनानेमें सरस्वतीका सहयोग दिया है। बुन्देलखण्ड-में शिक्षाप्रचारकी सफलता इसका जीता जागता उदाहरण है। जहां गये समाजके सामने कहा, न पहुँच सके तो पत्रों द्वारा प्रेरणा की, उपदेश दिया और समस्याको सुलझा दिया। समाजके निर्णयके लिये उन्होंने प्रति परिचितके हृदयको, अन्तस्थलको छुआ, निकट पहुँचे और अपना लिया, अपना बनाकर सन्मार्गमें लगा दिया और जिसका साथ दिया अन्त तक दिया। उसकी सद्गति हो इसके लिये भी उसे अन्तिम समय भी उपदेश पूर्ण पत्र लिखे। इसी पुस्तक में आप उन्हें पढ़ेंगे और देखेंगे कि वे कितने मर्मस्पर्शी हैं। ऐसे ही पत्रोंसे दूसरोंके लाभार्थ उनके पत्रोंके प्रकाशनकी प्रणाली चली। इन्दौरके उदासीन ब्र० मथुरालालजीने ब्र० श्री मौजीलालजीके समाधिलाभार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंको सर्वप्रथम शान्ति-सिन्धु समाचार पत्रमें प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात ब्र० श्री

दीपचन्दजी वर्णी को उनके समाधिशिक्षामार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंका प्रकाशित कराया गया। ये पत्र पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित हुए। फिर सभी तरहके वर्णीजीके पत्रोंके प्रकाशन की एक परम्परा चल पड़ी। और अबतक कुछ छह पुस्तकोंमें वे प्रकाशित हुए। परन्तु खेद है कि पत्र संग्रहकर्ता महानुभाव न तो सम्पादन कलाविद् थे और न इन पत्रोंका पूर्ण मूल्यांकन कर सकनेका समय ही उनके पास था। फलतः जो जैसे पत्र भेजता गया, प्रेसकी माध्य सामग्री बनते गये। अनेक लोगोंने अपनी विशेष ख्याति प्रदर्शनके लिये दूसरोंके नाम लिखे गये पत्रोंके शिरनामें बदलकर अपने नाम करके छपवा लिये पर जब इस कलमके सामने आये मूल प्रतिके 'पक्सरे' के समक्ष नग्न पार्थिव शरीरकी जांच की गई तुरन्त पता लग गया कि 'ख्याति' के पेटमें कहां 'लवा' (फोड़ा) हुआ है ? किस किस तरह की चोरियाँ की गई हैं। पत्रोंकी तोड़ मरोड़ भी कैसी कुशलतास की गई है और अपनी ख्यातिके लिये जो असंभव और अशोभन था वह भी कैसे कर डाला गया है। अस्तु, अभी तीन वर्षके कठोर परिश्रमसे तैयार किये हुए पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखे गये समस्त पत्रोंका संग्रह—जो पत्र प्रकाशित थे पर अनुपलब्ध हो चुके थे उनका तथा अबतक लिखे नवीन प्राचीन अप्रकाशित पत्रोंका जो सन् १९१६ से लेकर अबतक ३२ वर्षमें लिखे गये और जिन्हें हम अपने प्रयत्नसे प्राप्त कर सके—ऐसे सभी पत्रोंका संग्रह छह खण्डोंमें किया गया।

१ साधु वर्ग २ साध्वी वर्ग, ३ श्रीमन्त वर्ग, ४ श्रीमन्त वर्ग, ५ साधारण वर्ग और ६ विद्यार्थी वर्ग।

प्रस्तुत प्रथम पुस्तकमें साधुवर्ग तथा साध्वीवर्गके पत्रोंका संग्रह किया गया है।

पूज्य आचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराजके नाम

लिखे गये पत्रोंसे यह पुस्तक प्रारम्भ होती है। साधु साध्वियोंका प्रतिमा क्रम से पत्रसंग्रहका ध्यान रखा गया है। परन्तु पत्र छपते छपते तक अनेकोंने पदवृद्धि की होगी जो हमें ज्ञात न हो तो क्षमा करें।

पत्रोंकी बहुतसी मूल प्रतियाँ ३८ वर्ष पुरानी, वह भी पेन्सिलसे लिखी आपसमें कागजकी घसीटसे इतनी मिट गई थीं कि पढ़ना कठिन था फिर भी मैं धन्यवाद दूंगा सागरकी अशोक वाच क० के मालिक, वर्णीजीके अत्यन्त भक्त सेठ कुन्दनलालजीको जिनके घड़ीके छोटे पुर्जे देखनेवाले दूरवीन यन्त्रसे हम वे पत्र पढ़ सकनेका सक्रिय हल प्राप्त कर सके। एक अच्छे घड़ीसाजकी तरह आँखपर वह काँचका यन्त्र लगाकर मिटे धुधले पत्र पढ़नेमें जो चित्तकी एकाग्रता प्राप्त होती थी आज स्वप्नसी वन गई है।

श्री मान् पूज्य प० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री वनारस जिनकी प्रेरणासे यह पुस्तक प्रकाशमें आ रही है, और श्री धर्मचन्द्रजी B com, साहित्यरत्न, तथा भाई श्री लक्ष्मणप्रसादजी बी० ए० शास्त्रीका विशेष आभारी हूँ जिन्होंने पत्रोंके प्रकाशनमें यथायोग्य सहयोग दिया।

अपनी विदुषी जीवनसंगिनी श्रीमती सौ० रमादेवी साहित्यरत्न, न्यायतीर्थको धन्यवाद देनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती जिसने संग्रह कार्य समाप्त होने पर सम्पादनमें अब सक्रिय सहयोग देकर हमारी सच्ची सहायता की है।

पूज्य श्री वर्णीजीके पत्र जन जीवनमें प्रेरणा दायक एवं कल्याण कारक होंगे ऐसी शुभाशाके साथ पूज्य श्री वर्णीजीके चिरायु होने की कामना करता हूँ।

छतरपुर
रक्षाबन्धन
वि० स० २०१४

विनीत

—[illegible]न्द्र

श्री जिनाय नमः

जीवन परिचय पू० श्री १०५ वर्णी जी

यः शास्त्रार्णवपारगो विमलधीर्यं सश्रिता सौम्यता ।
येनाजस्मि यशः शशाङ्कधवलं यस्मै व्रतं रोचते ॥
यस्माद् दूरतरं गता प्रमत्तता यस्य प्रभावो महान् ।
यस्मिन् सन्ति दयादयः स जयति श्रीमान् गणेशः सुधीः ॥

जन्म समय और स्थान—

हरेभरे खेत, लहलहाती लताएँ, सस्यश्यामला वीरप्रसविनी बुन्देल वसुधाकी सुन्दर छटा देखते ही बनती थी। सुभिक्षका समय था घर घरमें घी दूधकी नदियाँ बहती थीं, ग्रामोंमें गोरस बेचना पाप समझा जाता था। आदरका प्रचार था अतः दरिद्र और भिखमंगोंकी बढ़ती आज जैसी न थी। हृष्ट पुष्ट बच्चे जारीसे सयान, साहसी बुड्ढे और लाजवती ललनाओंके आदर्श वात्सल्य कलाके सजीव उदाहरण थे। प्राचीन भारतकी यह झलक आँखोंसे ओझल न थी तब विक्रम सं० १९३१ की उस मङ्गलमय प्रभातवेलामें आश्विन कृष्ण चतुर्थीको श्री हीरालाल जी को हीरा मिला उजयारीबहूको दिव्य उजाला मिला (पूज्य वर्णी जी का जन्म हुआ)। हँसेरा ग्राम (झाँसी) अपनेको कृतकृत्य और वहाँकी गरीब कुटिया अपनेको धन्य समझ रही थी। प्रकृतिकी निराली सुषमा प्राकृतिक मङ्गलाचार करती गीत गाती प्रतीत हो रही थी—

'माताने पुत्ररत्न पाया, दुखियोंने पाया दिव्य दान।
वीरोंने पाया महावीर, बज उठा दुन्दुभि मधुर तान ॥'

जगतीको अतीत गौरव मिला, दुखियोंको दिव्यदान मिला, पतितोंको उद्धारक मिला, भूलोंको पथदर्शक मिला, और मिल गया सज्ज्ञान दीप अज्ञान त्रस्त बुन्देलखण्ड वसुन्धरा को। वधाये बजे, आनन्द मनाया गया, नामकरण संस्कार हुआ, लोग इन्हें 'गणेश' कहने लगे। पर यह किसीको ज्ञात न था, ज्योतिषी भी न जान सके—"धूल भरा हीरा, गुदड़ीका लाल बालक 'गणेश' वर्णी होगा। कल्याण पथदर्शक साधु सन्त होगा, वाहिरी शत्रुसे भी अधिक भयानक और किसी भी संगठित क्षेत्रसे अधिक बलवान्, मानवमात्रके भीतरी शत्रु काम, क्रोध, लोभ और मोहको परास्त करेगा। अपने आत्मबलके सहारे बिना किसी भेदभावके सबको आत्म-कल्याणका मार्ग प्रदर्शन करेगा।"

आगन्तुकोंने आशीर्वाद दिया—"जिओ मेरे लाल! बढ़ो मेरे लाल!! भगवान् तुम्हें कुशल रखे!!!"

बाल-जीवन—

माँ बापकी आशाका आधार, प्यारका पुतला और दूसरा प्राण, बड़ी चिन्ताके साथ लालन-पालन पा गलियोंमे खेलने कूदने लगा परन्तु कभी सहसा आतुर हो उठता खेलते-खेलते अपने आपको कुछ समझनेके लिए दूसरोंको कुछ समझाने के लिए।

होनहार विद्यार्थी गणेशीलालका क्षेत्र अब घर नहीं एक छोटा-सा देहाती स्कूल और मडावराका श्री राममन्दिर था। वि० स० १९३८, अवस्था ७ वर्षकी परन्तु विवेक, बुद्धि, प्रतिभा-शालिता और विनयसम्पन्नता ये ऐसे गुण थे जिनके द्वारा विद्यार्थी गणेशीलालने अपने विद्या गुरु श्री मूलचन्दजी शर्मासे

विद्याको अपनी पैतृक सम्पत्ति या धरोहरकी तरह प्राप्त किया। गुरुकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझकर गुरुजीका हुक्म भरनेमें कभी आना-कानी नहीं की। निर्भीकता भी कूट कूटकर भरी थी, आखिर एक बार तम्बाकूके दुर्गंध गुरुजीको धता दिये हुक्का फोड़ डाला, गुरुजी प्रसन्न हुए, हुक्का पीना छोड़ दिया।

बचपनकी लहर थी, विवेक परायणता साथ थी जैन मन्दिरके चबूतरे पर शास्त्रप्रवचनसे प्रभावित होकर विद्यार्थी गणेशीलालने भी रात्रि भोजन त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। यही वह प्रतिज्ञा थी, यही वह त्याग था जिसने १० वर्षकी अवस्थामें (वि० सं० १६४१ में) विद्यार्थी गणेशीलालको सनातनधर्मीसे जैनी बना दिया।

इच्छा तो न थी परन्तु कुलपद्धतिकी विवशता थी अतः (स० १६४१) १२ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हो गया। विद्यार्थीजीने (सं० १६४६) १५ वर्षकी आयुमें उत्तम श्रेणीसे हिन्दी मिडिल वो उत्तीर्ण कर लिया परन्तु दो भाइयोंका असामयिक स्वर्गवास और साधनोंका अभाव आगामी अध्ययनमें बाधक हो गया।

गृहस्थ जीवन—

बाल-जीवनके बाद युवक जीवन प्रारम्भ हुआ विद्यार्थी जीवनके बाद गृहस्थ जीवनमें पदार्पण किया। (सं० १६४९) १८ वर्षकी आयुमें मलहरा ग्रामकी एक सत्कुलीन कन्या इनकी जीवनसंगिनी बनी।

विवाहके बाद ही पिताजीका सदाके लिये साथ छूट गया। लेकिन पिताजीका अन्तिम उपदेश— 'बेटा ! जीवनमें यदि सुख

चाहते हो तो पवित्र जैनधर्मको न भूलना" सदाके लिए साथ रह गया। परिजन दुःखी थे, आत्मा विकल थी, परन्तु गृह भारका प्रश्न सामने था, अत (स० १९४९) मदनपुर, कारीटोरन और जतारा आदि स्कूलोंमें मास्टरी की।

पढ़ना और पढ़ाना इनके जीवनका लक्ष्य हो चुका था, अगाध ज्ञानसागरकी थाह लेना चाहते थे, अत मास्टरीको छोड़ पुनः प्रच्छन्न विद्यार्थीके वेषमे, यत्र-तत्र-सर्वत्र साधनोकी साधना मे, ज्ञान जल कणोंकी खोज में, नीर पिपासु चातककी तरह चल पड़े।

स० १९५० के दिन थे, सौभाग्य साथ था, अतः सिमरामे एक भद्र महिला विदुषीरत्न श्री सि० चिरौंजाबाई जी से भेंट हो गयी। देखते ही उनके स्तनसे दुग्धधारा बह निकली, भवान्तर का मातृ-प्रेम उमड़ पड़ा। बाईजीने स्पष्ट शब्दोमे कहा—"भैया ! चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम हमारे धर्मपुत्र हुए।" पुलकित वदन, हृदय नाच उठा, बचपनमें माँ की गोदीका भूला हुआ स्वर्गीय सुख अनायास प्राप्त हो गया। एक दरिद्रका चिन्तामणि रत्न निरुपायको उपाय और असहायको सहारा मिल गया।

सहनशीलताके प्राङ्गण में—

बाईजी स्वय शिक्षित थीं, मातृधर्म और कर्तव्य-पालन उन्हें याद था, अतः प्रेरणा की—"भैया ! जयपुर जाकर पढ़ो।" मातृ-आज्ञा शिरोधार्य की।

(१) जयपुरके लिये प्रस्थान किया, परन्तु जब जयपुर जाते समय लश्करकी धर्मशालामें सारा सामान चोरी चला गया केवल पाँच आने शेष रह गये तब छ आनेमें छतरी बेच कर एक-एक पैसेके चने चबाते हुए दिन काटते बरुआसागर आये। एक दिन

विद्याको अपनी पैतृक सम्पत्ति या धरोहरकी तरह प्राप्त किया। गुरुकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझकर गुरुजीका हुक्का भरनेमें कमी आना-कानी नहीं की। निर्भीकता भी कूट कूटकर भरी थी, आखिर एक बार तम्बाकूके दुर्गुण गुरुजीका बता दिये हुक्का फोड़ डाला, गुरुजी प्रसन्न हुए, हुक्का पीना छोड़ दिया।

बचपनकी लहर थी, विवेक परायणता साथ थी, जैन मन्दिरके चबूतरे पर शास्त्रप्रवचनसे प्रभावित होकर विद्यार्थी गणेशीलालने भी रात्रि भोजन त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। यही वह प्रतिज्ञा थी, यही वह त्याग था, जिसने १० वर्षकी अवस्थामें (वि० सं० १६४१ में) विद्यार्थी गणेशीलालको सनातनधर्मीसे जैनी बना दिया।

इच्छा तो न थी परन्तु कुलपद्धतिकी विवशता थी अतः (सं० १६४१) १२ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हो गया। विद्यार्थीजीने (सं० १६४६) १५ वर्षकी आयुमें सप्तम श्रेणीसे हिन्दी मिडिल तो उत्तीर्ण कर लिया परन्तु दो भाइयोंका असामयिक स्वर्गवास और साधनोंका अभाव आगामी अध्ययनमें बाधक हो गया।

गृहस्थ जीवन—

बाल-जीवनके बाद युवक जीवन प्रारम्भ हुआ, विद्यार्थी जीवनके बाद गृहस्थ जीवनमें पदार्पण किया। (सं० १६४६) १८ वर्षकी आयुमें मलहरा मामकी एक सत्कुलीन कन्या इनकी जीवनसंगिनी बनी।

विवाहके बाद ही पिताजीका सदाके लिये साथ छूट गया। लेकिन पिताजीका अन्तिम उपदेश— 'बेटा! जीवनमें यदि सुख

(५) सामाजिक क्षेत्रमे भी लोगोंने इन पर अनेक आपत्तियाँ ढाह कर इनकी परीक्षा की, परन्तु वे निश्चल रहे, अडिग रहे, कर्तव्यपथ पर सदा दृढ़ रहे, विद्रोहियोंको परास्त होना पड़ा।

इनका सिद्धान्त है—"मूर्ति अगणित टाँकियोंसे टाँके जाने पर पूज्य होती है, आपत्ति और जीवन-संघर्षोंसे टक्कर लेने पर ही मनुष्य महात्मा बनते हैं।" इसलिये इन सब आपत्तियों और विरोधोंको अपना उन्नति-साधक समझ कर कभी क्षुब्ध नहीं हुए, सदा अपनी सहशनीलताका परिचय दिया।

सफलताके साथी—

कर्त्तव्यशील व्यक्ति कभी अपने जीवनमें असफल नहीं होते, अनेक आपत्तियों और कष्टोंको सहन कर भी वे अपने लक्ष्यको सफल कर ही विश्रान्ति लेते हैं। माताकी आज्ञा और शुभाशीर्वादने इन्हें दूसरे साथीका काम दिया। फलतः विद्योपार्जनके लिए सं० १९५२ से सं० १९८४ तक १—बम्बई, २—जयपुर, ३—मथुरा, ४—खुरजा, ५—हरिपुर, ६—बनारस, ७—चकौती, ८—नवद्वीप, ९—कलकत्ता तथा पुनः बनारस जाकर न्यायाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। विशेषता यह रही कि सदा उत्तम श्रेणीमें प्रथम (First class first) उत्तीर्ण हुए। और जहाँ कहीं भी पारितोषिक वितरण हुआ, सर्व प्रथम पारितोषिकके अधिकारी भी यही हुए।

इस तरह क्रमशः बढ़ते-बढ़ते अब यह साधारण विद्यार्थी या पण्डित नहीं अपितु अपनी शानी के निराले विद्वद् शिरोमणि हुए। कवि कल्पना साकार हो उठी—

> जीवन आनन्द निकेतनमें, सज्ज्ञान दीपका उजयाला।
> मधुकुञ्ज देव वाणीको देख, डाली है सरस्वतीने माला॥

रोटी बनाकर खानेका विचार किया, परन्तु बर्तन एक भी पास न था, अतः पत्थर पर आटा गूँधा और कच्ची रोटीमें मीगी दाल रख कर ऊपरसे पलासके पत्ते लपट कर उसे अध्यम आँचमें ताप कर जब दाल तैयार हुई तब कहीं भोजन पा सके, परन्तु अपने अशुभोदय पर उन्हें दुःख नहीं हुआ। आपत्तियोंको उन्होंने अपनी परख-कसौटी समझा।

(२) सुरई जब पहुँचे तब पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरसे पूछा—"पंडितजी! धर्मका मर्म बताइये। उन्होंने सहसा झिड़क कर कहा—'तुम क्या धम समझोगे, खाने और मौज उड़ानेको जैन हुए हो।' इस वचन-वाणका भी इन्होंने हँसते-हँसते सहा। सुधपकी इसी चाट को इन्होंने भविष्यमें अपने आत्म-साधन (विद्वद्रत्न बनने) में प्रधान कारण बनाया।

(३) गिरनारके मार्ग पर बढ़े आ रहे थे बुखार, तिजारी और खासने खबर ली, पासके पैसे खतम हो चुके थे, विवश होकर बैतूलकी सड़क पर काम करनेवाले मजदूरोंमें सम्मिलित हुए। एक टोकरी मिट्टी खोदी कि हाथोंमें छाले पड़ गये। मिट्टी खोदनी छोड़ कर मिट्टीकी टोकरी ढोना स्वीकार किया लेकिन यह भी न कर सके, इसलिये दिनभरकी मजदूरीके न तीन आने मिल सके, न सौ पैसे ही मसीब हो सके। रुग्ण शरीर २ मील पैदल चलते, दो पैसेका बाजरेका आटा लाते, दाल देखनेको भी न थी, केवल नमककी डली और दो घूँट पानी ही उन मोटी-भाटी रूखी-सूखी रोटियोंके साथ मिलता था फिर भी सन्तापकी दर्वास लेते अपने पथ पर आगे बढ़े।

(४) धर्मपत्नीके वियोगमें दुनिया दुःखी और पागल हो जाती है, परन्तु भरी जवानीमें भी इनकी धर्मपत्नीका (सं०१९९२) में स्वर्गवास हो जानेसे इन्हें जरा भी खेद नहीं हुआ।

कुछ लोगों ने अपने यहां ही महराजको रोक रखने के लिये सम्मति दी कि यदि आप यातायात छोड़ दें तो शान्ति लाभ हो सकता है परन्तु वर्णी जी पर इसका दूसरा ही प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने दूसरे ही उद्देश्य से सदा के लिये रेलगाड़ीकी सवारीका भी त्याग कर दिया।

स० २००१ में दशम प्रतिमा धारण की, और फाल्गुन कृष्ण सप्तमी सं० २००४ मे क्षुल्लक व्रत लिये। इस दृष्टिसे इन्हें, बाबाजी कहना ही उपयुक्त है परन्तु लोगोंकी अभिरुचि और प्रसिद्धिके कारण "वर्णीजी" ही कहलाते हैं और कहलाते रहेंगे।

बिहारके संत—

गिरिराज शिखरजीकी यात्राकी इच्छासे पैदल चले। लोगोंने बहुत कुछ दलीलें उपस्थित कीं—"महाराज! वृद्धावस्था है, शरीर कमजोर है, ऋतु प्रतिकूल है", परन्तु हृदयकी लगन को कोई बदल न सका, अतः सवारीका त्याग होते हुए भी रेशंदीगिरि, द्रोणगिरि, खजुराहा आदि तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए कुछ ही दिन बाद ७०० मीलका लम्बा मार्ग पैदल ही तय कर स० १९९३ के फाल्गुणमे शिखरजी पहुँच गये। शिखरजीकी यात्रा हुई परन्तु मनोकामना शेष थी—"भगवान् पार्श्वनाथके पादपद्मोंमे ही जीवन बिताया जाय" अतः ईशरीमें सन्त जीवन बिताने लगे।

आपके प्रभावसे वहाँ जैन उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई। कल्याणार्थ उदासीन जनोंको धर्मसाधन करनेका सुयोग्य सधान मिला, वर्णीजीके उपदेशामृत पानका शुभावसर मिला।

बुन्देलखण्ड के लाल—

वर्णीजीने बुन्देलखण्ड छोड़ा परन्तु उसके प्रति सच्ची सहानु-

बड़े पण्डितजी—

विद्वत्तामें तो बड़े हैं ही परन्तु संयमकी साधनाने तो इन्हें और भी बड़ा (पूज्य) बना दिया। इसलिये जिस तरह गुजरातके लोगोंने गांधीजीको बापू कहना पसन्द किया, उसी तरह बुन्देलखण्डके जनसाधारणसे लेकर पण्डितगणने इन्हें बड़े पण्डितजीके नामसे पूजना पसन्द किया।

इन्हें जितना प्रेम विद्यासे था उससे कहीं अधिक भगवद्भक्तिसे रहा है। यही कारण था कि बड़े पण्डितजीने अपने विद्यार्थी जीवनमें ही सं० १९५२ में गिरनारजी और सं० १९५६ में श्री सम्मेदशिखरजी जैसे पवित्र तीर्थराजोंके दर्शन कर अपनी साधुभक्तिको दूसरोंके लिये आदर्श और अपने लिये कल्याणका एक सन्मार्ग बनाया।

वर्णीजी—

क्रमसे किया गया अभ्यास सफलताका साधक होता है। यही कारण था कि बड़े पण्डितजी क्रमसे बढ़ते-बढ़ते सं० १९७० में वर्णी हो गये। सांसारिक विषम परिस्थितियोंका गम्भीर अध्ययन करनेके बाद उन्हें सभीसे सम्बन्ध तोड़नेकी प्रबल इच्छा हुई और इसमें वे सफल भी हुए। यदि ममत्व था तो उन धर्ममाता तक ही था, परन्तु सं० १९९३ में बाईजीका स्वर्गवास हो जानेसे वह भी छूट गया।

परतन्त्रता तो सदा इन्हें खटकनेवाली बात थी। एक बार सं० १९९६ में जब सागरसे द्रोणगिरि जा रहे थे तब बण्डामें बाहरमें इन्हें मस्तसीटका टिकट होने पर भी वह सीट दरोगा साहबको बैठने के लिये छोड़ देने को कहा। यह परतन्त्रता इन्हें सह्य नहीं हुई, वहीं पर मोटर की सवारी का त्याग कर दिया।

सहायतार्थ जबलपुरकी भरी आम सभामें भाषण देते हुए अपनी कुल सम्पत्ति मात्र ओढने की दो चादरों में से एक चादर समर्पित की। देशभक्त वर्णी जी की चादर तीन मिनिटमें ही तीन हजार रुपये में नीलाम हुई।

चादर समर्पित करते हुए वर्णीजीने अपने प्रभाविक भाषण में आत्मविश्वासके साथ भविष्यवाणी की—"अन्धेर नहीं, केवल थोडी-सी देर है। वे दिन नजदीक हैं जब स्वतन्त्र भारत के लाल किले पर विश्व विजयी प्यारा तिरंगा फहराया जायगा, अतीतके गौरव और यशके आलोकसे लाल किला जगमगा उठेगा। जिनकी रक्षाके लिए ४० करोड़ मानव प्रयत्नशील हैं उन्हें कोई भी शक्ति फाँसीके तख्ते पर नहीं चढ़ा सकती। विश्वास रखिए, मेरी अन्तरात्म कहती है कि आजाद हिन्द सैनिकों का बाल भी बाका नहीं हो सकता।"

आखिर पवित्र हृदय वर्णी सन्तकी भविष्य वाणी थी, आज़ाद हिन्द सेनाके बन्दी वीर मुक्त हो गये। सचमुच अन्धेर नहीं केवल दो वर्षकी देर हुई, सन् १९४७ के १५ अगस्तको भारत स्वतत्र हो गया। वह लालकिला अतीतके गौरव और यशके आलोकसे जगमगा उठा। लाल किले पर विश्वविजयी प्यारा तिरंगा भी फहरा गया।

दिल्लीमें जाकर देखो तो यही प्रतीत होगा जैसे लाल किले का तिरगा देशद्रोही दुश्मनोंको तर्जना दे रहा हो और यमुना का कल-कल निनाद हमारे नेताओंकी विजय-प्रशस्ति गा रहा हो।

(२) सगठनके लिए वर्णी जी प्राणपनसे प्रयत्नशील रहते हैं। उनका कहना है कि, "आजका समाज अनेक कारणोंसे फूटका शिकार बना हुआ है। यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वर्गगत,

भूमि नहीं छोड़ी क्योंकि बुन्देलखण्ड पर उनका जितना स्नेह और अधिकार है उतना ही बुन्देलखण्ड का भी उन पर गम है। बुन्देलखण्डकी उन्हें पुनः चिन्ता हुई। बुन्देलखण्डको उनकी आवश्यकता हुई, क्योंकि वर्णी सूर्य के सिवा ऐसी और कोई शक्ति नहीं थी जो अज्ञान तिमिराच्छन्न बुन्देलखण्डको अपनी दिव्य ज्योतिसे चमत्कृत कर सकती। बुन्देलखण्डकी भूमिने अपने लाड़ले लालको पुकारा और वह चल पड़ा अपनी मातृभूमिकी ओर, अपने देश की ओर अपने सर्वस्व बुन्देलखण्ड की ओर। बिहार प्रान्तीय अनेक सज्जनोंको दुःख हुआ, वे नहीं चाहते थे कि वर्णीजी उन लोगोंकी आँखोंसे ओझल हों अतः अनेक प्रार्थनाएँ कीं वहीं रुक रहनेके लिये, अनेक प्रयत्न किये परन्तु प्रान्तके प्रति सच्ची शुभचिन्तकता और बुन्देलखण्डका सौभाग्य वर्णीजी का सं० २०१ के वसन्तमें बुन्देलखण्ड ले आया। अभूतपूर्व था वह दृश्य जब पूज्य बुन्देलखण्डने अपने जगमगाते हाथों (लहलहाती वरुशाखाओं) से अपने लाड़ले लाल वर्णीजीका स्पर्श किया।

मौन देशभक्त वर्णीजी—

वर्णीजी जैसे धार्मिक हैं वैसे ही राष्ट्रीय भी हैं इसलिये देश सेवाको वे मानव धर्म कहते हैं। स्वयं देश सेवा तन-मन-धनसे करके ही लोगोंको उस पथ पर चलनेकी प्रेरणा करते हैं। यह इनकी एक बड़ी भारी विशेषता है।

(१) सन् १९४५(सं० २००२) जब महात्माजी के पदानुगामी, आजाद-हिन्द सेनाके सेनानी, स्वतंत्रताके पुजारी देशभक्त सहगल, ढिल्लन, शाहनवाज अपने साथी आजाद-हिन्द सेना के साथ दिल्लीके लाल किलेमें बन्द थे तब इन बन्दी वीरोंकी

है जब तक कि वह स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओसे प्रेम नही करता। घरेलू उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन नहीं देता। यन्त्रों द्वारा लाखो मन कपास और मिलों द्वारा लाखो थान कपड़ा एक दिन में बन जाता है। फल यह होता है कि करोड़ों मनुष्य और हजारों दूकानदार आजिविका के बिना मारे-मारे फिरते हैं। कपड़ेके मिलोमे हजारो मन चर्बी लगती है। ये चर्बी क्या वृक्षों से आती है? नहीं, कसाईखानोसे। चमड़ा कितना लगता है इसका पारावार नहीं। पतलेसे पतला जोड़ा चाहिए, चाहे उसमें अण्डेका पालिस क्यों न हो। अत. यदि देशका कल्याण करनेकी भावना है तो प्रतिज्ञा करो कि हम स्वदेशी वस्त्रादिका ही उपयोग करेगे।" वर्णीजी स्वय खद्दर पहिनते हैं, स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करते हैं।

(५) जब भी धर्म सम्बन्धी समस्याएँ आई, वर्णी जी ने धर्मकी उदारताकी हो बात की है। उनका कहना है कि—"राजा रङ्क, धनी-गरीब, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, ब्राह्मण या भङ्गी कोई भी क्यों न हो पेड़ अपनी छाया में सभीको बैठने देते हैं, फूल अपनी सुगन्धि सभीको देते हैं, सूर्य अपना प्रकाश चन्द्र अपनी चाँदनी सभीको देते हैं तब तुम्हे भी आवश्यक है कि अपने धर्मको सभीको दो। विना किसी वर्गभेदके, विना किसी वर्णभेदके और विना किसी जातिभेदके यदि तुमने यह काम कर लिया तो समझो कि तुमने अपने धर्म का सच्चा स्वरूप समझ लिया है।" केवल उत्तम कुलमे जन्म लेने से ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है ऐसा कहना दुराग्रह है। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे ही है कदाचारसे नहीं।" परमार्थ दृष्टिसे विचार किया जावे तब पाप करनेसे आत्मा पापी और अस्पृश्य नही होता।" हम लोगोंने पशुओं तकसे तो प्रेम किया,

जातिगत दलगत एवं व्यक्तिगत ऐसे अनेक कारण एकत्र हुए हैं जिनके कारण संगठनकी नींव बहुत कच्ची हो चुकी है। आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयकी ग्रंथिको भेद कर क्षमा गुणका धारण करें, परस्परके विद्वेषभावको निर्मूल कर संगठनका बीज वपन करें। इससे समाज सुधारका बहुत काम हो सकता है।" वर्णी जी के इन पवित्र उद्गारोंकी सक्रियताके फलस्वरूप अनेक ग्रामकी जन्मजात फूट और विद्वेष शान्त होकर समाजका संगठन हुआ है।

(३) शरणार्थी समस्या अब भी देशकी बड़ी विकट समस्या है। उसके हल होनेका उपाय उन्होंने समाजके उदार सहयोग में देखा और कुशल गणितज्ञकी दृष्टिसे सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए कहा कि—"इस समय भारतवर्षमें अनेक आपत्तियां आ रही हैं। जिधर देखो उधर सहयोगकी आवश्यकता है। मेरी तो यह सम्मति है कि प्रत्येक कुटुम्ब उसके यहां जो दैनिक व्यय भोजन बनानेमें होता हो उसमें से १) रु० में एक पैसा इस परोपकारमें प्रदान करे तो अनायास ही यह समस्या हल हो सकती है। अन्यकी बात जाने दो यदि हमारे जैनी भाई प्रत्येक मनुष्यके पीछे ¼ पैसा दान निकालें तो अनायास ही ७ ०,००० पैसे एक दिन में आ सकते हैं। याने एक वर्ष में ३६,१७,५००) आसानी से परोपकार में लग सकता है। ता० ११ सितम्बर को जवाहरलाल हाल गया में आयोजित विनोबा सम्बन्धी उत्सवमें भी भाषण देते हुए उन्होंने इसी तथ्य पर जोर दिया था।

(४) औद्योगिक धन्धे और खादीके विषयमें इनके विचार और कार्य एकसे रहे हैं। उनके ही शब्दों में स्पष्ट है कि—"राष्ट्रीयता स्वतन्त्र नागरिकमें तब तक नहीं आ सकती

है जब तक कि वह स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओसे प्रेम नही करता। घरेलू उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन नहीं देता। यन्त्रों द्वारा लाखो मन कपास और मिलो द्वारा लाखो थान कपड़ा एक दिन में बन जाता है। फल यह होता है कि करोड़ों मनुष्य और हजारों दूकानदार आजिविका के बिना मारे-मारे फिरते हैं। कपड़ेके मिलोमे हजारो मन चर्बी लगती है। ये चर्बी क्या वृक्षों से आती है? नहीं, कसाईखानोसे। चमड़ा कितना लगता है इसका पारावार नहीं। पतलेसे पतला जोड़ा चाहिए, चाहे उसमें अण्डेका पालिस क्यों न हो। अत. यदि देशका कल्याण करनेकी भावना है तो प्रतिज्ञा करो कि हम स्वदेशी वस्त्रादिका ही उपयोग करेगे।" वर्णीजी स्वय खद्दर पहिनते हैं, स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करते हैं।

(५) जब भी धर्म सम्बन्धी समस्याएँ आई, वर्णी जी ने धर्मकी उदारताकी हो बात की है। उनका कहना है कि—"राजा रङ्क, धनी-गरीब, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, ब्राह्मण या भङ्गी कोई भी क्यों न हो पेड़ अपनी छाया में सभीको बैठने देते हैं, फूल अपनी सुगन्धि सभीको देते हैं, सूर्य अपना प्रकाश चन्द्र अपनी चाँदनी सभीको देते हैं तब तुम्हें भी आवश्यक है कि अपने धर्मको सभीको दो। बिना किसी वर्गभेदके, बिना किसी वर्णभेदके और बिना किसी जातिभेदके यदि तुमने यह काम कर लिया तो समझो कि तुमने अपने धर्म का सच्चा स्वरूप समझ लिया है।' केवल उत्तम कुलमें जन्म लेने से ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है ऐसा कहना दुराग्रह है। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे ही है कदाचारसे नहीं।' परमार्थ दृष्टिसे विचार किया जावे तब पाप करनेसे आत्मा पापी और अस्पृश्य नही होता।' हम लोगोंने पशुओं तकसे तो प्रेम किया,

कुत्ते अपनाये, बिल्लियां अपनायीं किन्तु इन मनुष्योंसे इतनी घृणा की जिसका वर्णन करना हृदयमें अन्तर्व्यथा उत्पन्न करता है।"

(६) स्त्रियोंकी समस्याओं पर जितना खुल कर विचार वर्णी जी ने किया है आजतक किसी भी जैन सन्तने नहीं किया। स्त्री पर्यायकी दयनीय दशाका एक शब्द-चित्र देखिये—"स्त्री पर्यायके अनुसार यदि कन्या हुई तो कहना ही क्या है? उसके दु:खोंको पूछनेवाला ही कौन है? जन्म समय 'कन्या' सुनते ही माँ-बाप और कुटुम्बीजन अपने ऊपर सजीव भार समझने लगते हैं। युवावस्था होने पर जिसके हाथ माता पिता सौंप दें, गायकी तरह चला जाना पड़ता है। कन्या सुन्दर हो वर कुरूप हो, कन्या सुशील और शिक्षित हो वर दुःशील और अशिक्षित हो, कन्या धन सम्पन्न और वर गरीब हो, कोई भी इस विषमता पर पूर्ण ध्यान नहीं देता। लड़कीको घरका कूड़ा कचरा समझ कर जितना शीघ्र हो सके घरसे बाहर करनेकी सोचता है। कैसा अन्याय है?" सचमुच यह ऐसा अन्याय है जिसकी कोई शानी नहीं है। इस अन्यायको दूर करने के लिये अपने घरको स्वर्ग बनानेके लिये भी वर्णी जी ने अपनी शुभ सम्मति दी है—" हमारा कर्तव्य है कि स्त्रियोंकी हर तरहकी उलझी हुई समस्याओंको सुलझानेमें सहयोग दें जिससे वे अपने सदाचार और स्वाभिमानको सुरक्षित रखतीं हुई आदर्श बन सकें। सीता मैना सुन्दरी कौशिल्या और त्रिशला स्त्रियाँ ही तो थीं उनके आदर्शोंसे आज विश्वमें भारतका मस्तक उन्नत है। अपनी बेटियों बहिनों और माताओंके सामने ऐसे ही आदर्श रखिये तब अपने घरको स्वर्ग देखनेकी कामना कीजिये।"

(७) निर्धन किसान गरीब मजदूर और अध्यापकोंकी

सहायावस्था सभी समस्याएँ इनके सामने रही हैं। किसान मजदूरों की समस्याके हलके लिये विनोबा जी के भूमिदान यज्ञका समर्थन किया है। स्वय विनोबा जी के शब्दोमे—"भूदान यज्ञके सिलसिलेमे मैं ललितपुरमें वर्णी जी से मिला था। भू-दान यज्ञकी सफलताके लिए सहानुभूति प्रगट करते हुए उन्होने कहा था कि ऐसे सन्तको छोटेसे कार्यको घूमना पड़े यह दु खकी बात है।" यही बात गयामे विनोबा जयन्ती उत्सवमे भाषण देते हुए उन्होंने कही थी कि "भूमि किसीके दादाकी नहीं है, उसे जल्दी से जल्दी दे डालो, आवश्यकतासे अधिक जो दबाये बैठे हो दूसरोंको उसका लाभ लेने दो। विनोबा जी को इस भूमिदानसे निःशल्य करो, उनसे मोक्ष का उपदेश लो।" अध्यापकोकी सहायताके लिये सागरमें एक चादर समर्पित की जिसकी नीलामसे आया रुपया असहाय अध्यापकोंको मिला। यही सब वर्णी जी के सक्रिय कार्य हैं जिनसे ललितपुरमें प्रभावित होकर ७९ वीं वर्णी जयन्ती सप्ताह का उद्घाटन भाषण देते हुए ता० ३ सितम्बर को पूज्य विनोबा जी ने काशीमें कहा था कि—"हम एक ऐसे महापुरुष की जयन्ती मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं जिन्होंने समाज सेवा का कार्य किया है। वर्णी जी ने जो कार्य किया है वह बहुत अच्छा है। वे ज्ञान प्रचार चाहते हैं। जनतामें ज्ञान प्रचार हो जाने पर अन्य अच्छी बातें स्वयं आ जाती हैं। मूल सिञ्चन करनेसे शाखाओं तक पानी स्वय ही पहुँच जाता है। वर्णी जी एक निष्काम जनसेवक हैं और उनके विचार सुलझे हुए हैं। सब धर्मोंको वे समान दृष्टिसे देखते हैं और लोगों की सेवामे ही सबका पर्यवसान समझते हैं। ऐसे अनुभवियोंके विचारों का जितना परिशीलन जनताको होगा, कल्याणदायी होगा।" वर्णी जी की मौन देशभक्तिसे प्रभावित हुए विनोबा जी की

वर्णी जी के ललितपुर और गया के दृश्य बरबस आँखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित कर रहे हैं।

शेष आध्यात्मिक राष्ट्रीय एवं सामाजिक विचारों और कार्यों के दिग्दर्शन के लिये वर्णी साहित्य 'मेरी जीवन गाथा' "वर्णी वाणी" भाग १,२,३ पढ़िये।

समाज सुधारक—

वर्णीजी को समाज-सुधारके लिये जो कुछ भी त्याग करना पड़ा सदा तैयार रहे हैं। सामाजिक सुधार क्षेत्रमें अनेक बार असफल हुए, फिर भी अपने कर्तव्य पर सदा दृढ़ रहे हैं। यही कारण है कि बड़गाँव आदिके निरपराध बहिष्कृत अजैन बन्धुओं का उद्धार सफलताके साथ कर सके। वर्णी जी को आत्मीय-पक्षपात तो छू भी नहीं सका है। यही कारण है कि जैन-अजैन पञ्चों के बीच उन्हें सम्मान मिला, पञ्चोंकी दुरंगी नीतियाँ अनेक आक्षेप और समालोचनायें उनका कुछ भी न बिगाड़ सकीं। अनेक जगहकी जमजात फूट और विद्वेषको दूर कर बाल विवाह वृद्ध-विवाह और अनमेल-विवाह एवं मरण-भोज जैसी कुप्रथाओंका बहिष्कार करनेका श्रीगणेश करना वर्णी जी जैसों का ही काम है। कहना होगा कि समाजकी उन्नतिमें बाधक कारणोंको दूर कर वर्णी जी ने बुन्देलखण्डमें जो समाज-सुधार किया, उसीका परिणाम है कि बुन्देलखण्डके जैन-समाजमें जैन संस्कृति जीवित रह सकी है।

संस्था-संस्थापक—

प्रकृतिका यह नियम-सा है कि जब किसी देश या प्रान्त का पतन होना प्रारम्भ होता है तब कोई उद्धारक भी उत्पन्न हो जाता है। बुन्देलखण्डमें जब अज्ञानका साम्राज्य छा गया तब

वर्णी जी जैसे विद्वद्रत्न बुन्देलखण्डको प्राप्त हुए। विद्या-प्रेम तो आपका इतना प्रगाढ़ है कि दूसरोंको ज्ञान देना वे अपने लिये ज्ञानार्जनका प्रधान साधन समझते हैं।

प्रतीत होता है, वर्णी जी ज्ञान-प्रचारके लिये ही इस संसार में आये हैं। उन्होंने १—श्री गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय सागर, २-श्री गुरुदत्त दि० जैन पा० द्रोणगिरि, ३—श्री पार्श्वनाथ विद्यालय बरुआसागर, ४—श्री शान्तिनाथ दि० जैन पा० अहार, ५—श्री पुष्पदन्त विद्यालय शाहपुर, ६ शिक्षा मन्दिर जबलपुर, ७—श्री गणेश गुरुकल पटनागज ८—द्रोणगिरि क्षेत्र गुरुकुल बडा मलहरा (जनता हाई स्कूल बड़ामलहरा), ९—जैन गुरुकुल जबलपुर, १०—ज्ञानधन दि० जैन विद्यालय इटावा आदि पाठशालाओं, विद्यालयों, शिक्षामन्दिरों और गुरुकुलों की स्थापना की। बुन्देलखण्डकी इन शिक्षा-सस्थाओं के अतिरिक्त सकल विद्याओंके केन्द्र काशी में भी जैन समाज की प्रमुख आदर्श संस्था श्री स्याद्वाद दि० जैन सस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की।

बुन्देलखण्ड जैसे प्रान्तमें इन सस्थाओंकी स्थापना देखकर तो यही कहना पड़ता है कि इस प्रान्तमे जो भी शिक्षा प्रचार हुआ वह सब वर्णी जी जैसे कर्मठ व्यक्तिका सफल प्रयास और सच्ची लगनका फल है। वर्णीजी के शिक्षाप्रचारसे बुन्देलखण्डका जो कायापलट हुआ वह इसीसे जाना जा सकता है कि आज से ५० वर्ष पूर्व जिस बुन्देलखण्डमें तत्वार्थसूत्र और सहस्रनाम जैसे संस्कृतके साधारण ग्रन्थ मूलमात्र पढ़ लेनेवाले महाशय पण्डित कहलाते थे उसी बुन्देलखण्डका आज यह आदर्श है कि जैन समाजके लब्धप्रतिष्ट विद्वानोंमे ८० प्रतिशत विद्वान् बुन्देलखण्ड के ही हैं।

कहना होगा कि बुन्देलखण्डकी धार्मिक जाग्रतिके कारण,

साथे हुए बुन्देलखण्डके कानोंमें शिक्षा एवं जागति का मन्त्र फूकनेवाले और बुन्देलखण्ड के मकूटृदस्याधित आचार-विचार के संरक्षक यदि कोई हैं तो ये एकमात्र वर्णी जी ही हैं।

साहित्य उद्धारक—

मेरे मन में निरंतर यह भावना बहुत कालसे रहती है कि प्राचीन जैन साहित्यका संग्रह किया जाय। उसके लिए ४ विद्वानों को रखा जाय; उनको निराकुल कर दिया जाय—कोई चिन्ता उन्हें न रहे। वर्तमान में उन्हें ९५) मासिक कुटुम्ब व्यय को दिया जाय तथा उनके भोजनकी व्यवस्था पृथक् हो। वे दिन में स्वेच्छापूर्वक कार्य करें। रात्रिमें आपसमें जो कार्य दिनमें करें उसपर ऊहापोह करें। यह कार्य १० वर्ष तक निर्बाध चले। इसके बाद प्रत्येक विद्वानों को १० ००) १०,०००) रु दे दिये जावें। अथवा १ वर्ष २ वर्ष बाद तक यदि कार्य करके पृथक् होवें तब उतने ही हजार रुपये दिये जावें।

"इसके बाद जो न चाहें तब फिर व अन्य विद्वानों का यह क्रमा सिलसिला देवें। व्यवस्था जैसी बन जाय समय बतावेगा। इसके खर्च के लिये ४ ०) तो ४ विद्वानों को अन्त में देना तथा १,० ०) मासिक भेंट ५५०) भोजन व्यय व २४) लेखक आदि के लिए इस तरह कुल १९००) एक माह का दश वर्ष का २२ ० ०)। इतने में यह प्राचीन जैन साहित्य का उद्धारका कार्य हो सकता है। यदि सागर प्रान्त यह चाहता तो सहज में हो सकता था कोई कठिन बात न थी। यहाँ ऐसे कई महानुभाव हैं कि एक वर्ष में ही यह योजना सफल हो जाती। परन्तु हम स्वयं इतने कायर रहे कि अपने अभिप्रायको पूर्ण न कर सके। अब पश्चात्ताप से क्या लाभ?

"अब तो वृद्ध हो गये—चलने में असमर्थ, बोलनेमें असमर्थ, लिखनेमे असमर्थ पर यह सब होने पर भी भावना वही है जो पूर्वमे थी। अब तो पार्श्व प्रभुके पाद पद्मोंमे आ गये हैं, क्या होगी वही जानें ? यदि किसीके मनमें आवे तो इस कार्य को बनारस ही मे प्रारम्भ करें। अब जन्मान्तर मे इस योजना को सफल देखूंगा, भाव मेरा था सो व्यक्त कर दिया।"

पूज्य वर्णी जीके हृदयमे लगी जैन साहित्य के उद्धार की प्रशस्त योजना के सक्रिय होने से जैन समाज को वह ज्योति स्तम्भ प्राप्त होगा जिसके दिव्य प्रकाशमें जन आत्म-निरीक्षण कर अपना कल्याण कर सकेंगे।

मानवता की मूर्ति—

वर्णी जी के जीवनमे सरलता और भावुकताने जो स्थान पाया है वह शायद ही औरों मे देखने को मिले। किसीके हृदय को दुःख पहुँचाना उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। यही कारण है कि अनेक व्यक्ति उन्हें आसानीसे ठग लेते हैं। कड़े शब्दों और व्यंगात्मक भाषाका प्रयाग कर दूसरोंको कष्ट पहुँचाना उन्होंने कभी नहीं सीखा। हितकी बात आसानीसे मधुर शब्दमय सरल भाषामें कह कर मानना न मानना उसके ऊपर छोड़कर अपने समयका सच्चा सदुपयोग ही उन्हें प्रिय है।

आपत्तियोंसे टक्कर लेना, विपत्तिमें धर्म न छोड़ना, दूसरोका दुःख दूर करनेके लिए असहायोंको सहायता, अज्ञानियोंको ज्ञान और शिक्षार्थियोंको सब कुछ देना इनके जीवनका व्रत है।

दाव-पेंचकी बातोंमें जहाँ वर्णी जी में बालकों जैसा भोलापन है वहाँ सुधार कार्यमें युवकों जैसी सजीव क्रान्ति और वयोवृद्धों

जैसा अनुभव भी है। संक्षेपमें वर्णीजी मानवताकी मूर्ति हैं, अतः उनीका सन्देश हमें उन्होंने अपना कर्तव्य समझा है।

आज ऐसे महामना सन्त की ८७ वीं जयन्ती मनाने का सौभाग्य बिहार प्रान्त की उदारचेता जैन समाज को प्राप्त हुआ है इसमें मैं उनके सातिशय पुण्य का ही कारण मानता हूँ।

मेरी अन्तरात्माकी पुकार है कि श्री वर्णी जी चिरायु हों मानवताका सन्देश लिये कल्याण पथ प्रदर्शन करते रहें।

पूज्य वर्णी जी की जय।

विनीत—
विद्यार्थी नरेन्द्र

जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजी

[सिंघई कुन्दनलाल जी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति हैं। आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है। जब तक आप सामने आये हुए दुखी मनुष्यको शक्त्यनुसार कुछ दे न लें तब तक आपको सन्तोष नहीं होता। न जाने आपने कितने दुखी परिवारोंको धन देकर, अन्न देकर, वस्त्र देकर, और पूँजी देकर सुखी बनाया है। आप कितने ही अनाथ छोटे-छोटे बालकों को जहाँ कहींसे ले आते हैं और अपने खर्चसे पाठशालामे पढा-कर उन्हें सिलसिलेसे लगा देते हैं। आप प्रति दिन पूजन स्वाध्याय करते हैं, अतिशय भद्रपरिणामी हैं, प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आ रहे हैं और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है]

"पूज्य श्री वर्णी जी"

भारतके महामना आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराजने अपनी जीवनगाथा (पृ० ३४८) में सागरके नररत्न जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजीका जो परिचय दिया है उसकी चार पंक्तियाँ प्रारम्भमें उल्लेखकर सिंघईजीका एक दिव्य और भव्य चित्र हमने पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत किया है। पाठकोंकी जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक है, अतः विस्तृत जानकारी भी आगे दे रहा हूँ।

जन्म समय और सम्मत्

यह बता देना आवश्यक है कि पूज्य श्री वर्णीजी सिंघईजीसे बड़े भैया कहते हैं। इसका कारण केवल यही है कि वर्णीजीसे सिंघई जी २ वर्ष बड़े हैं। वर्णीजीने उस समयका उल्लेख करते हुए लिखा है—"वह समय ही ऐसा था जो आजकी अपेक्षा बहुत ही अल्प द्रव्यमें कुटुम्बका भरण पोषण हो जाता था। उस समय एक रुपयामें एक मनसे अधिक गेहूँ तीन सेर घी और आठ सेर तिलका तैल मिलता था। शेष वस्तुएँ इसी अनुपातसे मिलती थीं। सब लोग कपड़ा प्रायः घरके सूतका पहिनते थे। सबके घर चरखा चलता था। खानके लिए घी दूध भरपूर मिलता था। जैसा कि आज कल देखा जाता है उस समय चाय शागियोंका अभाव था। उस समय मनुष्योंके शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ होते थे। वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे। अनाचार नहीं के बराबर था। घर-घर गाय रहती थीं। दूध और दहीकी नदियाँ बहती थीं। देहातमें दूध और दहीकी बिक्री नहीं होती थी। तीर्थयात्रा सब पैदल करते थे। लोग प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे। वर्षा कालमें लोग प्रायः घर ही रहते थे। व इतने दिनोंका सामान अपने अपने घर ही रख लेते थे। व्यापारी लोग बैलोंका लादना बन्द कर देते थे। यह समय ही ऐसा था जो इस समय सबका आश्चर्यमें डाल देता है।"

हाँ तो इसी सुख-समृद्धि और शान्तिके समय विक्रम सं० १६२८ के क्वार कृष्णा ६ शनिवारको श्री सिंघईजीका जन्म हुआ। आपके पिता श्री सिंघई कारेलालजी और माता श्री सिघैन चपालीबाईजी सागरके जैन गृहस्थ परिवारोंमें साधारण परिस्थिति के होते हुए भी अपनी धार्मिकता सच्चरित्रता एवं परोपकारी प्रवृत्तिके कारण आदर्श गृहस्थ माने जाते थे।
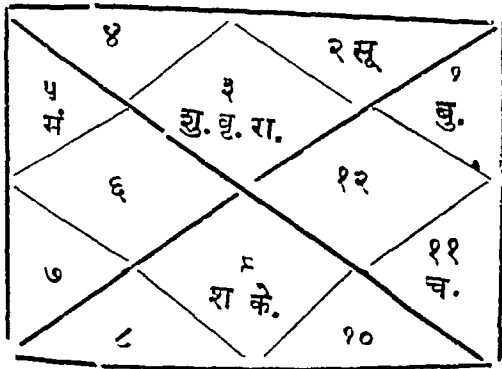
सिंघईजीका यह जन्मकुण्डलीचक्र उनके समस्त जीवनके सुख-दु:खकी मूक कहानीका बोलता हुआ चित्र है। इसका स्पष्ट कथन बहुतोंको खटक सकता है, अतः ज्योतिषिय के लिए ही इसे छोड़ता हूँ। कहनेका तात्पर्य यह कि सिंघईजीके जीवनमें अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे उनके बहुतसे सम्बन्धियोंको उनका स्पष्ट होना रुचिकर न होगा। अत: हम केवल यही कहना चाहते हैं कि उन सब आपत्तियों विपत्तियोंके सागरको पार करता हुआ सागरका यह मनस्वी मानव मानवताके हृदय-सागरके बीच टापूपर जा पहुँचा जहाँसे उसने आपत्तियोंके भ्रममें फँसनेवाले अनेक लोगोंको हस्तावलम्बन देकर सुखके मार्ग पर पहुँचाया।

सिंघईजी अपने ५ छोटे भाइयों और १ बहिनके बीच सबसे बड़े थे।

अपनी रामकहानी

ता० २० जौलाई ५७, आकाश मेघाच्छन्न थे, बादलोंकी गड़गड़ाहट, पानी जोरोंसे आ गया। सिंघईजी अपने विश्रान्तिगृहमें आग तापते बैठे थे। उनकी स्पष्ट मधुर वाणीमें णमोकार मन्त्र सुनाई

पड़ रहा था। सागरमें जोरोंसे पढ़नेवाले इन्फ्लुएन्जा तथा हैजेसे मरनेवालोंकी करुण कथा सुनकर वे प्रार्थना कर रहे थे। पंक्तियोंका लेखक यह न बताकर कि जीवनी प्रकाशित करना है अन्यथा वे कभी न बताते अतः साधारण जिज्ञासा सूचक प्रश्न किए और उनके स्वर्गीय इकलौते पुत्र की अवस्थावाली करुण कहानीवाला प्रसङ्ग छेड़ा कि ऐसे ही महामारी प्रकोपके समय मैयाका स्वर्गवास हुआ था कि सिंघईजी रो पड़े और अश्रुप्रवाहके साथ अपनी राम कहानी कहने लगे। अतः उनकी कहानी उन्हींकी जबानी सुनी प्रस्तुत करता हूँ। सिंघई जीने कहा —

भैया!

"यह बचकी उमरसे हमने पढ़ना प्रारम्भ किया था जितनी उमरमें हमने अपने भैया (पुत्र) को पढ़ाना प्रारम्भ किया था। उस समय काठकी पट्टीपर वर्तनासे लिखा जाता था। हमारे गुरु पं० मदनलालजी पासमें ही रहते थे। वे हमारे प्रारम्भिक विद्या-गुरु थे। बादमें रामरतनजी मा० सा० से ४ कक्षा हिन्दी और १ कक्षा अंग्रेजी पढ़ी। ५-६ वर्ष तक पढ़ा। पढ़ना जारी ही था कि अकस्मात् तीर्थयात्राकी तैयारी हो गई। सोनागिरि, शिखर जी, गिरिनारजी आदि समस्त जैन तीर्थोंकी यात्रामें ९ माह बीत गये। इस बीचमें जो पढ़ाई बन्द हुई सो फिर पढ़ना बन्द ही रहा। उपयोग तो है कर्मानुसार हुआ सो हुआ।

आजीविकाका प्रश्न सामने आ गया अतः कटरमाई किराना की दूकान की। १६ वर्षकी अवस्थामें शादी हो गई। शादीके पश्चात् घी तथा गल्लाकी दूकान की। पिताजीसे २०) की पूँजी ली सो दूसरे ही वर्ष वापिस कर। शिवप्रसाद बलदेवकी हवेली भी उसीमें रहते थे। हवली छोटे भाई मल्लालालको दे दी। एक [illegible] । परन्तु

कुछ कौटुम्बिक कलह हो जानेके कारण गल्ला बाजार चले गये। वहाँ एक खण्डहर लिया और उसे ही वर्तमान मकानका रूप दिया। कौटुम्बिक कलहने किन-किन समर्थ पुरुषोंको भी बरबाद नहीं किया ? हाँ तो रात्रिके १२ बजे जब भैयाको (अपने इकलौते पुत्र नन्हेंलालको) लेकर गल्ला बाजार गए उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था। भैयाको लिए पीछे-पीछे उसकी माँ चल रही थी और आगे-आगे लालटेन लेकर मैं चल रहा था। काली रात्रिके सन्नाटेको भंग करनेवाले चमगीदड़ जब कभी हमारे हाथकी लालटेनका प्रकाश देखकर चीं चीं, चूँ चूँ, करते फिर उसी डालपर उलटे लटक जाते संसारका स्वरूप स्पष्ट होता जाता—"संसार एक बाजार है, मोह काली रात्रि है, हम लोग क्रेता विक्रेता हैं जो अपने सुकर्म दुष्कर्मका लेखा लगाते हुए और जानते हुए भी मोहकी काली रातमें संसारका बाजार करनेसे नहीं चूकते।" सोचते हुए गल्ला बाजार पहुँच गये। कुटुम्बसे अलग होते कितना दु.ख होता है यह उसी दिन अनुभव हुआ। अस्तु।

"यह बड़ा बाजारका मकान भैया (अपने पुत्र) के विवाहके लिए बनवाया था।" कहते कहते सिंघईजीकी आँखोंसे आँसुओं-की झड़ी लग गई। रुद्ध कण्ठसे उन्होंने कुछ देर बाद पुन. कहना प्रारम्भ किया—

'भैया गौरवर्ण थे, धार्मिक प्रकृति थी, निरभिमानी थे, देख-कर सन्तोष होता था—वह स्वस्थ सन्तुष्ट बालक जैनधर्मकी सेवा करता हुआ हमारी कुल परम्पराको अक्षुण्ण रखेगा। परन्तु भैया ! भावना कब किसकी पूर्ण हुई ? कौन शाश्वत रह सका ?

कहाँ गये चक्री जिन जीता भरतखण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम लक्ष्मण जिन रावण मारा॥

तब हम संसारियोंकी क्या गिनती ? सेठ मोहनलाल बजाज की लड़कीके साथ उसका सम्बन्ध तय हुआ था। एक माह ही शेष था। दोनों ओर विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं। सागरमें प्लेगका तूफान आया, सारा शहर छोड़कर भाग गये। विवाहकी तैयारियाँ दोनों ओर बन्द हो गईं। भैया भी अपने आत्म भाईजीके पास मनेहिया गाँव चले गये। परन्तु कुछ दिन पश्चात् भैयाके मामा श्री कुन्दनलालजी बीनावाले बीना बारहाके दर्शन करानेके लिये आये। वहाँसे वैसे ही लौटा तो प्लेगमें फँस गया। और प्लेगमें फँसा तो ऐसा कि हम जीभर देखा भी न कर पाये। प्लेगमें पानी माँगा तो लोगों ने मना कर दिया। प्लेगमें पानी नहीं दिया जाता, दो बूँद पानीके लिए पपीहरेकी तरह——तड़प — तड़प——कर ——प्राण——त्या——ग— —— दि——ये।

मनि —मन——तन ब——हु——रो— है
मरे——स——व——था——पे —कोई।"

छहदवाली भाभीमें इतना कहनेके पश्चात् सिंघईजी फिर फूट-फूटकर रो पड़े और उनकी कहानी उन्हींकी जबानी सुनना बन्द हो गया।

उदारताकी मूर्ति—

सिंघईजी वैसे ही धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति होनेके कारण अत्यन्त दयालु और उदार पहिलेसे ही थे, उनके इकलौते पुत्र वियोगने करुणाके प्रवाहको और भी बलवान् बना दिया। ऐसा कोई दयाका काम नहीं जिसमें भाग लेनेवाले दानियोंमें सिंघईजी आगे न रहते हों। अभाव दान या न जाने कितने बार दिया है। रातको दुकानसे चले एक हाथमें लालटेन और ... हमारे

पेडकी छायामें ठिठुरा पड़ा दिखाई दिया—रजाई, कम्बल, चद्दर जो जैसा दिखा; चुपचाप उढ़ा दिया और घर वापिस आ गये। पानेवाले गरीब जानते थे रात्रिमें भगवान् आगये और कपड़े बाट गये। बेचारोंको क्या पता कि जहां प्रेम, उदारता, दयालुता और निर्लोभता आदि गुण होते हैं वही भगवान् हैं।

शिक्षा प्रेमी—

शिक्षा-प्रेम तो इतना विशाल है कि द्रोणागिरि और सागरमें चलनेवाले दो ज्ञान कल्पतरुओंके संरक्षणका प्रमुख भार आज भी आपके ऊपर निर्भर है।

अनेक छात्रोंको छात्रवृत्ति, कपड़े आदि देते हैं। आपकी ओरसे ५ विद्यार्थी सदा जैन विद्यालय सागरमें प्रविष्ट किये जाते हैं जिनका खर्च आप स्वयं वहन करते हैं।

द्रोणागिरि तथा सागर विद्यालयके संस्थापनमें आपके योगदानका उल्लेख पूज्य श्री वर्णी जीने इस प्रकार किया है—

"मैं जब पपौराके परवारसभाके अधिवेशनमें गया तब द्रोणगिरिनिवासी एक भाईने मुझसे कहा कि—"वर्णी जी! द्रोणगिरिमें पाठशालाकी आवश्यता है।"

मैंने कहा—"अच्छा! जब आऊँगा तब प्रयत्न करूँगा।"

जब द्रोणागिरि आया तब उसका स्मरण हो आया पर इस ग्राममें क्या धरा था? मेला भी अभी दूर था। घुवारामें जल-विहार था वहाँ जानेका अवसर मिला। एकत्रित लोगोंको समझाया। बड़ा परिश्रम करने पर पचास रुपये मासिकका ही चन्दा हो सका। घुवारासे गंज गये वहाँ २५०) रुपयेके लगभग चन्दा हुआ। पश्चात् मेलेका सुअवसर आगया। सिंघई कुन्दनलालजी से भी कहा कि यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है अतः आप कुछ सहायता कीजिये। उन्होंने १००) रुपये वर्ष देना स्वीकृत किया।

तब हम संसारियोंकी क्या गिनती ? सेठ मोहनलाल बजाज की लड़कीके साथ उसका सम्बन्ध तय हुआ था। एक माह ही शेष था। दोनों ओर विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं। सागरमें प्लेगका तूफान आया, लोग शहर छोड़कर भाग गये। विवाहकी तैयारियाँ दोनों ओर बन्द हो गईं। भैया भी अपने माता माताजीके पास मनेसिया गाँव चले गये। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् भैयाके मामा भी कुन्दनलालजी बीनाके बीना बारहाके दर्शन कराने ले आये। वहाँसे वैसे ही लौटा सो प्लेगमें फँस गया। और प्लेगमें फँसा सो ऐसा कि हम जीभर दया भी न कर पाये। प्लेगमें पानी माँगा सो लोगोंने मना कर दिया। प्लेगमें पानी नहीं दिया जाता, वह बूँद पानीके लिए पपीहरेकी तरह——तड़प —— तड़प——कर ——माया——त्या——ग—— —— दि——य।

मधि ——सन्म——तन य——हु——हो—— है

मरते——म——न——भा——वे ——कोई ।"

लड़खड़ाती वाणीमें इतना कहनेके पश्चात् सिंघईजी फिर फूट-फूटकर रो पड़े और उनकी कहानी उन्हींकी जबानी सुनना बन्द हो गया।

उदारताकी मूर्ति—

सिंघईजी वैसे ही धार्मिक प्रकृतिक व्यक्ति होनेके कारण अत्यन्त दयालु और उदार पहिलेसे ही थे, उनके इकलौते पुत्र वियोगने करुणाके प्रवाहको और भी वेगवान् बना दिया। ऐसा कोई दयाका काम नहीं जिसमें भाग लेनेवाले दानियोंमें सिंघईजी आगे न रहते हों। अनाथ प्राण तो न जाने कितने तार दिया है। रातको दुकानसे चले एक हाथमें लालटेन और कंधे पर कपड़ोंका गट्ठा। ठंडमें जा दीन-दुखी सड़क किनारे

किया। स्कूलके लिये एक भवन १ लाख रुपये की लागतका बनाया जा रहा है।

सागर विद्यालयके सम्बन्धमें सिंघई जीके अपूर्व सहयोगका उल्लेख करते हुए वर्णी जीने लिखा है—

"अक्षय तृतीया वि० सं० १९६५ को (सागरमें) पाठशाला खोलनेका मुहूर्त निश्चित किया गया। इसी समय श्री सिंघई कुन्दनलाल जीसे मेरा घनिष्ट परिचय हो गया। आप मुझे अपने भाईके समान मानने लगे, मासमें प्रायः १० दिन आपके घर भोजन करना पड़ता था। एक दिन मैंने आपसे पाठशालाकी आय सम्बन्धी चर्चा की तो आपने बड़ी सान्त्वना देते हुए कहा कि चिन्ता मत करो हम कोशिश करेंगे। आप घी और गल्लेके बड़े भारी व्यापारी हैं। आपके प्रभावसे एक पैसा प्रति गाड़ी धर्मादाय गल्ले बाजारसे हो गया। इसी प्रकार आपने घीके व्यापारियोंसे भी कोशिश की जिससे फी मन आधा पाव घी पाठशालाको मिलने लगा। इस प्रकार हजारों रुपये पाठशालाकी आय हो गई। इस तरह बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थानमें श्री सत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाका पाया कुछ ही समयमें स्थिर हो गया।"

(मेरी जीवन गाथा पृ० २१६)

वर्तमानमें यह संस्था पूज्य श्री वर्णी जीके नाम पर श्री गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालय सागरके नामसे प्रख्यात है। सिंघई जी इसके अध्यक्ष हैं। आचार्य कक्षा तक संस्कृत विभागमें २०० विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। इसीके उपविभाग जैन हाईस्कूलमें लगभग १ हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसकी व्यवस्था आपके दामाद श्री बालचन्द्र जी मलैया बी. एस सी. अध्यक्ष तथा आपही के भतीजे नाथूराम जी गोदरे मंत्री पद पर रहकर करते हैं। श्री बालचन्द्र जी मलैया महोदयने वर्णी जीके पैदल यात्रा करते हुए

फलस्वरूप वैशाख वदि ७ सं १९८५ में पाठशालाकी स्थापना हो गई। एक वर्ष बीतनेके बाद हम लोग फिर आये। पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। पं० श्री गणेशप्रसाद जी शास्त्रीके कार्यसे प्रसन्न होकर इस वर्ष सिंघईजीने बड़े आनन्दसे ५०००) देना स्वीकृत कर लिया। पाठशाला अच्छी तरहसे चलने लगी। इसमें विशेष सहायता श्री सिंघईजी की रहती है। आप प्रतिवर्ष मेलाके अवसर पर आते हैं। आप क्षेत्र कमेटीके सभापति हैं।

इस प्रान्तमें आप बहुत ही धार्मिक व्यक्ति हैं। अनेक संस्थाओंको यथा समय सहायता करते रहते हैं। इस पाठशालाका नाम श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रखा गया।"

(मेरी जीवन गाथा पृष्ठ १५८–१६०)

वर्तमानमें इसके सुयोग्य मंत्री सिंघई जीके दामाद श्री बाबू बालचन्द्रजी मलैया B Sc. हैं। पूज्य श्रीवर्णी जीके आदेशानुसार इस पाठशालाको शाखा श्री गुरुदत्त दि० जैन गुरुकुलके नामसे बड़ा मलहरा (छतरपुरमें) स्थापित हुई। परन्तु एक ही प्रकारकी पढ़ाई होनेसे दोनों संस्थाओंके छात्र द्रोणगिरि पाठशालामें भेज दिये गये और मलहराके गुरुकुल भवनमें एक हाईस्कूल—'जनता हाईस्कूल" के नामसे स्थापित किया गया। विन्ध्यप्रदेशकी सरकारने ८० प्रतिशत सहायता देना प्रारम्भ किया और पहले ही मेट्रिकके बैचने अद्भुत सफलता प्राप्त की। विन्ध्यप्रदेश भरमें चलनेवाले सरकारी हाईस्कूलोंमें यह स्कूल सर्व प्रथम आया। लोग दंग रह गये। इसका श्रेय सिंघई जीके दामाद श्री मलैया जी को है जो स्कूलके अध्यक्ष हैं तथा उनके भतीजे श्री नाथूराम जी गावरे जो स्कूलके मन्त्री थे, या हैं। अल्पाधिक होनेपर भी यहाँके प्रधान अध्यापक श्री कुसुमचन्द्र जी जैन M A को नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने संस्थाको समुन्नत बनानेमें हर सम्भव प्रयत्न

परन्तु आपके मन्दिरमें सरस्वती भवनके लिये एक मकान जुदा होना चाहिए। आपने तीन मासके अन्दर ही सरस्वती भगवनके नामसे एक मकान बनवा दिया जिसमें ४०० आदमी आनन्दसे शास्त्र प्रवचन सुन सकते हैं। महिलाओं और पुरुषोंके बैठनेके लिए पृथक् पृथक् स्थान हैं।

एक दिन सिंघईजी पाठशालामे आये, मैंने कहा यहाँ और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वतीभवन नहीं है। विद्यालयकी शोभा सरस्वतीमन्दिरके बिना नहीं। कहनेकी देर थी कि आपने मोराजीके उत्तरकी श्रेणीमें एक विशाल सरस्वीतभवन बनवा दिया।

सरस्वतीभवनका उद्घाटन समारोहके साथ होना चाहिये और इसके लिए जयधवला तथा धवल ग्रंथराज आना चाहिये .. ....' आपसे मैंने कहा।

यहाँ कहाँ मिल सकेंगे ? . ... आपने कहा।'

'सीताराम शास्त्री सहारनपुरमें हैं। उनसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है। उनके पास दोनों ही ग्रन्थराज हैं परन्तु २०००) लिखाईके माँगते हैं'... .. .. मैंने कहा।

'मँगा लीजिए' . ..... आपने प्रसन्नतासे उत्तर दिया।

"मैंने दोनों ग्रन्थराज मंगा लिये। जब शास्त्रीजी ग्रन्थ लेकर आये तब उन्हें २०००) के अतिरिक्त सुसज्जित वस्त्र और विदाई देकर विदा किया। सरस्वतीभवनके उद्घाटनका मुहूर्त आया। किसीने आपकी धर्मपत्नीसे कह दिया कि आप सरस्वतीभवनमें प्रतिमा जी पधरा दो जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी। सरस्वती भवनसे क्या होगा ? उससे तो केवल पढ़े लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे। सिंघैनजीके मनमें बात जम गयी, फिर क्या था ? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमें सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी विराजमान होंगी।

सागर पधारनेके अवसर पर बृहत् सम्मेलनके समय ४ हजार रुपया हाईस्कूल भवनके निर्माण हेतु प्रदान किये हैं। सागरके सरोवरके किनार यह भवन बनाया जा रहा है।

सिंघई जी इन संस्थाओं को हराभरा देख कर ऐसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे कोई अपने परिवारको फूलता-फलता देखकर प्रसन्न होता है।

अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति—

सिंघईजी जैसे शिक्षाप्रेमी हैं वैसे ही धर्मनिष्ठ भी हैं। ऐसा कोई भी जैनतीर्थ नहीं है जिसकी यात्रा सिंघईजीने सकुटुम्ब न की हो। द्रोणगिरि क्षेत्र, बम्होरी, ईसरवारा और पजनारीके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कार्य भी आपने कराया है। धर्मशाला जिन चैत्यालय, मानस्तम्भका निर्माण, वेदीनिर्माण और कलशारोहण कार्य जिस शानके साथ सिंघईजीने सम्पन्न कराये उसे आज भी लोग भूले नहीं हैं। इस सबका विवरण पूज्य श्री वर्णीजीने स्वयं इस प्रकार दिया है—

"एक दिन सिंघईजी बाईजीके यहाँ बैठे थे। साथमें आपके साले कुन्दनलालजी घीवाले भी थे। मैंने कहा—'देखो सागर इतना बड़ा शहर है परन्तु यहाँपर कोई धर्मशाला नहीं है।' उन्होंने कहा—'हो जावेगी।'

दूसरे ही दिन कुन्दनलालजी घीवाला ने कटराके मुक्क-पर बैरिस्टर बिहारीलाल जी राथके सामने एक मकान ६४०१) में ले लिया और इतना ही रुपया उसके बनानेमें लगा दिया। आज कल यह ९५०००) की लागतकी है और सिंघईजीकी धर्मशालाके नामसे प्रसिद्ध है। हम उसी मकानमें रहने लगे।

एक दिन मैंने सिंघईजीसे कहा कि यह सब तो ठीक हुआ

द्घाटनका अवसर आया। मैंने दो आलमारी पुस्तकें सरस्वती भवनके लिए भेंट कीं। प्राय: उनमें हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत थे।

अन्तमें मैंने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया परन्तु इसकी ाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है।' सिंघईजीने २५०१) ान किये। अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि 'यह द्रव्य ुव स्वरूप है अतः आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिए।' आप ुनकर हँस गईं। मैंने प्रगट कर दिया कि '२५०१) सिंघैनजीका ासो।' इस प्रकार ५००२) भवनकी रक्षाके लिये हो गये।

यह सरस्वतीभवन सुन्दर रूपसे चलता है लगभग १००० पुस्तकें होंगी।" (मेरी जीवनगाथा पृ०३४८-३५८)

स्मरण रहे यह सरस्वतीभवन सिंघईजीने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन दुर्गाबाई जीके नामसे अपने स्वर्गीय पुत्र श्री नन्हेंलालजीकी पुण्यस्मृतिमें बनवाया है। मन्दिरका कलशारोहण उत्सव लोग अब भी स्मरण करते हैं। उत्सवके महीनों बाद भी आनेवाले साधर्मी भाइयोंका कलशारोहणके निमित्तसे भोजन होता रहा। अजैन गाड़ीवाले तक भी सन्तुष्ट हुए। उनके बच्चोंको भी सिंघई जी मिठाई भेजते रहे।

मानस्तम्भका निर्माण

वर्णीजीने लिखा है—' कुछ दिन हुए सागरमें हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। मैंने सिंघई जीसे कहा— आप एक मानस्तम्भ बनवा दो उसमें ऊपर चार मूर्तियाँ स्थापित होंगी, हर कोई अन्दरसे दर्शन कर सकेगा। सिंघई जीके उदार हृदयमें यह बात आ गई। दूसरे ही दिन मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और ३ मासमें बनकर तैयार हो गया। पं०

यह सब देखकर मुझे मनमें बहुत व्यग्रता हुई। मेरा कहना था कि मोराजीमें एक चैत्यालय तो है ही अब दूसरेकी क्या आवश्यकता है? पर सुननेवाला कौन था? मैं मन ही मन खिन्न होता रहा।

एक दिन सिंघईजीने निमन्त्रण किया। मैंने मनमें ठान ली कि चूँकि सिंघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे हैं अतः उनके यहाँ भोजनके लिए नहीं जाऊँगा। जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोलीं—

'भैया! क्या सिंघईजीके यहाँ निमन्त्रण है?'

मैंने कहा—'हाँ है तो परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है।'

बाईजीने कहा—'क्यों नहीं जानेका है?'

मैंने कहा—'वे सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं।'

बाईजीने कहा—'बहुत सही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई? मान लो, यदि तुम भोजनके लिए न गये और इस कारण सिंघईजी तुमसे अप्रसन्न हो गये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या?'

हमारा उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त नादान हो। तुमने कहा हमारा क्या जावगा? अरे मूर्ख तेरा तो सर्वस्व चला जायगा। आज पाठशालामें १०) मासिकसे अधिक व्यय है, यह कहाँसे आता है। इन्हीं लोगोंकी बदौलत तो आता है। अतः भूलकर भी न कहना सिंघईजीके यहाँ भोजनके लिये नहीं जाऊँगा।'

मैंने बाईजीकी आज्ञाका पालन किया।

सरस्वतीभवनके उद्घाटनके पहिले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मुहूर्त हो गया। दूसरे दिन सरस्वती भवनके

उद्घाटनका अवसर आया। मैंने दो आलमारी पुस्तकें सरस्वती भवनके लिए भेंट कीं। प्रायः उनमें हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत थे।

अन्तमें मैंने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया परन्तु इसकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है।' सिंघईजीने २५०१) प्रदान किये। अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि 'यह द्रव्य बहुत स्वल्प है अतः आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिए।' आप सुनकर हँस गईं। मैंने प्रगट कर दिया कि '२५०१) सिंघैनजीका लिखो।' इस प्रकार ५००२) भवनकी रक्षाके लिये हो गये।

यह सरस्वतीभवन सुन्दर रूपसे चलता है लगभग ५००० पुस्तकें होंगी।" (मेरी जीवनगाथा पृ०३४८-३५८)

स्मरण रहे यह सरस्वतीभवन सिंघईजीने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन दुर्गाबाई जीके नामसे अपने स्वर्गीय पुत्र श्री नन्हेंलालजीकी पुण्यस्मृतिमें बनवाया है। मन्दिरका कलशारोहण उत्सव लोग अब भी स्मरण करते हैं। उत्सवके महीनों बाद भी आनेवाले साधर्मी भाइयोंका कलशारोहणके निमित्तसे भोजन होता रहा। अजैन गाड़ीवाले बन्धु भी सत्कृत हुए। उनके बच्चोंको भी सिंघई जी मिठाई भेजते रहे।

मानस्तम्भका निर्माण

वर्णीजीने लिखा है—"कुछ दिन हुए सागरमें हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। मैंने सिंघई जीसे कहा— आप एक मानस्तम्भ बनवा दो उसमें ऊपर चार मूर्तियाँ स्थापित होंगी, हर कोई अन्दरसे दर्शन कर सकेगा। सिंघई जीके उदार हृदयमें यह बात आगई। दूसरे ही दिनसे मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और ३ मासमें बनकर तैयार हो गया। पं०

मोतीलालजी वर्णी द्वारा समारोहसे प्रतिष्ठा हुई। अद्भुत मान-स्तम्भको देखकर समवसरणके दृश्यकी याद आ जाती है। सागरमें प्रतिवर्ष महावीर जयन्तीके दिन विधिपूर्वक मानस्तम्भ और वनस्थ प्रतिमाओंका अभिषेक होता है जिसमें समस्त जैन नर-नारियोंका जमाव होता है।'

(मेरी जीवनगाथा पृ० ३५२)

वेदी-निर्माण—

पूज्य वर्णी जीके अनन्य भक्त होनेके कारण उनकी कोई भी आज्ञा सिंघईजी टालते नहीं हैं। जैसे उनसे बड़े हों सिंघईजी ऐसा ही मानते हैं। सागरमें सरस्वतीभवन और मानस्तम्भकी तरह द्रोणगिरिके मन्दिर जिसमें वेदी पाषाणकी सुन्दर बनीका निर्माण भी पूज्य वर्णीजीके उपदेशसे हुआ है। ५-६ हजारकी रकम सिंघई जीके नामसे उनसे बिना पूछे ही वर्णी जी लिखा देते हैं। सिंघई जी कमी न नहीं करते। भाईजीके अन्य समय कहे गये अपने वचनका अब भी पालन करते हैं। उसका कारण यह है कि सिंघईजी और वर्णीजीका सम्बन्ध ही ऐसा हो गया है। दोनों भाई भाईकी तरह हैं। अन्तर केवल इतना है दोनों के मार्ग पृथक-पृथक हैं। एक वीतराग मार्ग पर दूसरा गृहस्थ मार्ग पर। गृहस्थ मार्ग होने पर भी सिंघईजी त्याग मार्गमें ही श्रद्धा और सदा उस मार्गकी ओर उन्मुख होनेका प्रयत्न करते हैं। वर्णी जी सदा अपने आध्यात्मिक पत्रों द्वारा सिंघई जीको उपदेश देते रहते हैं। सिंघईजीकी धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन दुर्गाबाईजी भी उनके धार्मिक कार्योंमें सतत सहयोग देती हैं। स्वयं धर्ममें दृढ़ श्रद्धावान् हैं। सदा उदारता पूर्वक दान देती रहती हैं।

सागरके स्वाध्याय मण्डलमें सिंघई जी प्रति दिन सम्मिलित होते हैं। श्रीमान् पं० ताराचन्द्र जी सर्राफ बीचके मन्दिरमें

प्रवचन करते हैं। सिंघईजी आपकी प्रवचनशैलीसे बहुत प्रभावित होकर वहाँ शास्त्र सुनने जाते हैं। कभी बिना दर्शन किये भोजन नहीं करते। अस्वस्थ अवस्थामें भी जब तक पार्श्व-नाथ स्वामीके रजत चित्रके दर्शन न कर लें, स्वाध्याय न सुन लें और सामायिक न कर लें तब तक दवा भी नहीं लेते।

पारिवारिक जीवन—

आपके दो भाई और हैं। एक श्री रज्जीलाल जी जिन्हों ने सदासे देशकी मौन सेवा की है। अपना सेवाओं का प्रचार वे नहीं चाहते। सागरमें ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इस प्रचारकी दुनियाँसे परे रहनेवाले इस राजनैतिक व्यक्तिको नहीं जानते। सागरका सन् १९४२ का आन्दोलन लेखकने देखा है, सिंघई श्री रज्जीलाल जीके कार्योंको भी देखा है। जब आश्चर्य किया तब लोगो ने कहा यह उनका पुराना व्रत है। तुम नये हो इस लिये आश्चर्य करते हो। बात सही थी तब मैं नया ही था।

आपके दो पुत्र हैं एक श्री डा० बाबूलाल जी। सुलझे विचार, जनसेवी और योजना मस्तिष्कके व्यक्ति। दूसरे श्री लक्ष्मीचन्द्र जी—अच्छे व्यापारी और अच्छे ही किसानकलाकोविद।

सिंघई जीके दूसरे भाई हैं श्री नाथूराम जी। अच्छे कुशल व्यापारी और धर्मात्मा। आपका बनवाया हुआ १० हजार रुपये का चाँदीका विमान सागरमें बेजोड़ है। आपका धर्मपत्नी श्रीमती सिंघैन चम्पाबाई जी विदुषी एवं धार्मिक प्रकृतिकी उत्साही महिला हैं। सागरके महिला समाजकी शिरोमणि मानो जाती हैं। आपका भजन संगीत सुनकर मन्दिरमें सन्नाटा छा जाता है। आपके एक सुपुत्र हैं श्री जैनेन्द्रकुमार जी बहुत ही सज्जन और कुशल व्यापारी।

सिंघई जी की दो पुत्रियाँ हैं। एक श्रीमती सौ० गुलाबबाईजी

जो सागरके प्रतिष्ठित धार्मिक एवं कुशल व्यापारी श्रीमान् बाबू बालचन्द्र जी मलैयाके घरकी शोभा हैं। धन जनका सौभाग्य जैसा श्रीगुलाबबाई जी को मिला है वैसा और बहुत ही कम लोगोंका देखनेमें आता है। परन्तु श्री बहिन गुलाबबाईजी अपनी धार्मिकताको ही सच्चा धन मानती हैं। इन्हें अपने लौकिक धनका जरा भी अभिमान नहीं है। सचमुचमें गुलाबबाई जी मलैया कुलकी कुललक्ष्मी हैं। आपके ५ पुत्र और २ पुत्रियाँ हैं। सभी सरस्वती मन्दिरमें सरस्वतीकी साधनामें संलग्न हैं। विनयी, सदाचारी और नीतिकुशल हैं। इनके वयस्क होने पर सागर समाजकी शोभा बढ़ेगी।

श्रीमान् बाबू बालचन्द्र जी मलैया—सिंघई जीके बड़े दामादके सम्बन्धमें क्या कहा जाय, संस्थाओं के संचालनमें जो सहायता आप करते हैं उसका उल्लेख हम कर चुके हैं। जैन-हाईस्कूल सागर और जनता हाईस्कूल बंडा मलहराके अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहते हुए आप समाजकी शिक्षासंबन्धी कमीको पूर्ण कर रहे हैं। द्रोणगिरि क्षेत्रकी समाजका पूर्ण उत्तरदायित्व आप ही सम्हाल रहे हैं। आपने सागर, सतना और दमोहके तीनों आइलमिल्सके मालिक हैं। इतनी बड़ी विभूति पाकर भी अत्यन्त नम्र और आश्चर्य यह कि कुलमें विचारोंके नितान्त धार्मिक पुरुष है। लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी कृपा एक साथ देखनी हो तो मलैयाजीके घरमेंमें देखलें। अनेक छात्रोंको छात्रवृत्ति देते हैं, बे रोजगारोंको रोजगार देते हैं और भूले भटकोंको सच्ची सलाह भी देते हैं।

सिंघईजीकी दूसरी सुपुत्री हैं—श्रीमती सौ० बहिन ताराबाईजी। आप एक कुशल महिला हैं स्वाध्यायिनी हैं और जैसी ही धार्मिक हैं वैसी ही दयालु हैं। सिंघईजीके पास जब कभी कोई सहायता हेतु आता है उसकी सिफारिश बहिन ताराबाई उसकी

करण कथा विस्तृत करके कर देती हैं। उसकी सफलताका श्रेय भी वे नहीं चाहतीं धन्यवाद भी नहीं। यदा कदा स्वयं भी सहायता कर देती हैं। आप श्री चौधरी बाबूलालजी बोरियावालोंको व्याही हैं। सिंघईजीके यही दूसरे दामाद हैं। अत्यन्त धार्मिक एवं कुशल व्यापारी हैं। सिंघईजीको पिता तुल्य मानते हैं। आज-कल उन्हींके पास ही रहते हैं। आपके ४ पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। बड़ा सुपुत्र और सुपुत्री उच्च शिक्षा पा रहे हैं।

इस तरह सिंघईजीकी दोनों पुत्रियाँ सुखी हैं, सम्पन्न हैं। सिंघईजीका पारिवारिक जीवन सुखद एवं शान्त है।

शुभकामनाएँ

सिंघईजी अपने जीवनके ८५ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं और जनता के समक्ष एक आदर्श गृहस्थका आदर्श उपस्थित कर चुके हैं।

दुर्भाग्यवश कुछ दिनोंसे अस्वस्थ्य हैं। आखिर बुढ़ापा जो ठहरा वैसे ही इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। परन्तु सिंघईजीकी धार्मिकतामें कोई शिथिलता देखनेमें नहीं आती। आज तक सिंघईजीने अपने जीवनमें लगभग ढाई लाख रुपयोंका दान किया है। अतः वर्णीजीके शब्दोंमें ही मैं उनके प्रति शुभकामना करता हूँ।

"इस प्रकार सिंघई कुन्दनलालजीके द्वारा सतत धार्मिक कार्य होते रहते हैं। ऐसा परोपकारी जीव चिरायु हो।"

(मेरी जीवनगाथा पृ० ३५२)

रक्षाबन्धन
वि० सं० २०१४

लेखक—
विद्यार्थी नरेन्द्र

[१–१]

[पूज्य श्री वर्णी जी स्वयं अपनी दृष्टि में]

श्रीमान् वर्णी जी ! योग्य इच्छाकार

बहुत समयसे आपके समाचार नहीं पाये, इससे चित्तवृत्ति संदिग्ध रहती है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। सम्भव है आप उससे कुछ उद्विग्न रहते हों और यह उद्विग्नता आपके अन्तस्तलकी निर्मलताके ह्रास करनेमें भी समर्थ हुई हो। यद्यपि आप सावधान हैं परन्तु जब तक इस शरीरसे ममता है तब सावधानीका भी ह्रास हो सकता है। आपने बालकपनेसे ऐसे पदार्थोंका सेवन किया जो स्वादिष्ट और उत्तम थे। इसका मूल कारण यह था कि आपके पूर्व पुण्योदयसे श्री चिरौंजाबाईजी का संसर्ग हुआ। तथा श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी का संसर्ग हुआ। जो सामग्री आप चाहते थे, इनके द्वारा आपको मिलती थी। आपने निरन्तर देहरादूनसे चावल मंगाकर खाए, उन मेवादिका भक्षण किया जो अन्य हीन पुण्यवालों को दुर्लभ थे तथा उन तैलादि पदार्थोंका उपयोग किया जो धनाढ्यों को ही सुलभ थे। केवल तुमने यह अति अनुचित कार्य किया किन्तु तुम्हारे आत्मामें चिरकालसे एक बात अति उत्तम थी कि तुम्हें धर्मकी दृढ़ श्रद्धा और हृदयमें दया थी, उसका उपयोग तुमने सर्वथा किया। तुम निरन्तर दुखी जीव देखकर उत्तमसे उत्तम वस्त्र तथा भोजनको देनेमें संकोच नहीं करते थे यही तुम्हारे श्रेयोमार्गके लिये एक मार्ग था। न तुमने कभी भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, न स्थिरतासे पुस्तकोंका अवलोकन ही किया, न चारित्रका पालन किया और न तुम्हारी शारीरिकसम्पदा चारित्र पालनकी थी। तुमने केवल आवेगमें आकर व्रत ले लिया। व्रत लेना और बात है और उसका

आगमानुकूल पालन करना अन्य बात है। लोग तो भोले हैं जो वाचाल और बाह्यसे संसार असार है ऐसी कायकी चेष्टासे जनाते हैं उन्हींके चक्रमे आ जाते हैं, उन्हींको साधु पुरुष मानने लगते हैं और उनके तन, मन, धनसे आज्ञकारी सेवक बन जाते हैं। वास्तव में न तो धर्मका लाभ उन्हें होता है और न आत्मामें शान्ति ही का लाभ होता है। केवल दम्भिगणोंकी सेवा कर अन्तमें दम्भ करनेके ही भाव हो जाते हैं। इससे आत्मा अधोगतिका ही पात्र होता है।

इस जीवको मैंने बहुत कुछ समझाया कि तूँ परपदार्थोंके साथ जो एकत्वबुद्धि रखता है उसे छोड़ दे परन्तु यह इतना मूढ़ है कि अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ता, फलतः निरन्तर आकुलित रहता है। क्षणमात्र भी चैन नहीं पाता।

ईसरी
माघ शुक्ल १३ सं० १९९९

आपका शुभचिन्तक—
गणेश वर्णी

आचार्य सूर्यसागर महाराज

[श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका जन्म कार्तिक शुक्ला ९ शुक्रवार वि० सं० १९४० को ग्वालियर रियासतके शिवपुर जिलान्तर्गत पेमसर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम हीरालाल जी और माताका नाम गेंदाबाई था। ये जातिसे पोरवाड थे। बाल्यपनका नाम हजारीलाल था। इनका लालन पालन इनके पिताके सहोदर भाई बलदेव जी ध्यारापटलवालोंके यहाँ हुआ था। बादमें इन्हींके ये दत्तक पुत्र हो गए थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी तक सीमित थी।

विवाह होने पर भी बचपनसे ही इनकी रुचि धर्मकी ओर होनेसे सं० १९८१ में एक स्वप्नके फल स्वरूप वे संसारसे विरक्त हो गये और इसी वर्षकी आसोज शुक्ला १ को इन्होंने इन्दौरमें आचार्य शान्तिसागर (छाणी) के पास ऐलक पदकी दीक्षा ले ली। दीक्षा नाम सूर्यसागर रखा गया। इसके बाद कुछ दिनोंमें इन्होंने उन्हींके पास हाटपीपल्यामें मगसिर कृष्णा ११ को मुनि पदकी भी दीक्षा ले ली और कुछ कालमें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये।

आचार्य सूर्यसागर महाराज स्वभावके निर्भीक और स्वतन्त्र विचारक थे। उत्तर भारतमें इस कालमें इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। आचार विचारमें शुद्ध परम्पराको इन्होंने जीवनके अन्तिम क्षण तक रखा था। स्वाध्याय और अध्ययन द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानको खूब बढ़ाया और कई ग्रंथोंकी रचना की।

अन्तमें जीवनको जर्जर जान इन्होंने डालमियानगरमें समाधि ले ली थी। यहाँ नगरके बाहर इनकी दाहसंस्कारके स्थान पर प्रसिद्ध उद्योगपति साहु शान्तिप्रसादजी द्वारा निर्मित इनकी संगमरमरकी भव्य समाधि बनी हुई है।

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी इनको अपना गुरुके समान मानते रहे। इनका पूज्य वर्णीजीके साथ पत्र व्यवहार होता रहता था। उनमेंसे उपलब्ध हुए तीन पत्र यहाँ दिये जाते हैं।]

[२—१]

महाराजके चरणकमलोंमें श्रद्धाञ्जलि

संसारमें वही महापुरुष वन्दनीय होते हैं जिन्होंने ऐहिक, पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ हो आत्मकल्याणके लिये आत्म-परिणतिको निर्मल बना लिया है। आपकी हम तुच्छ मनुष्य क्या प्रशंसा करें। आपने तो उभय लोकसे परे श्रेयोमार्गको अपनाया है। हम तो आपके चरणाम्बुज रजसे ही कृतकृत्य अपनेको मानते हैं।

सागर } आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[२—२]

हे श्री १०८ महात्मन् ! आपको अनेकशः नमस्कार

आप स्वयं समर्थ हैं। आपको परकृत वैय्यावृत्यकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु जिनको प्रवल पुण्योदय मिला है वे स्वय आपके सानिध्यमें वैयावृत्य तपका लाभ ले रहे हैं। हम अन्तरङ्गसे इस महायागका दृश्य देखनेको लालायित हैं परन्तु आपका आदेश चाहते हैं। आगम इसका बाधक नहीं परन्तु हम तो 'गुरोराज्ञा बलीयसी' का पालन करनेवालोंमें हैं, आज्ञाकी प्रतीक्षामें हैं। आशा है इस ओर नेक दृष्टिपात करेंगे। उद्देश्य हमारा अच्छा है। उत्सर्ग वही है जो अपवादसापेक्ष है। अपवाद वही है जो उत्सर्गनिरपेक्ष न हो। प्रवृत्तिमार्ग निर्दोष ही है सो नहीं, अन्यथा प्रायश्चित्त शास्त्र किस उपयोग का ? हाँ, अपवादमें छल नहीं होना चाहिये। हमारे तो कोई छल नहीं। केवल एक

महात्माकी अन्तिम अवस्थाकी परपारसका स्पर्श कर अपनी निर्मलताका पात्र बनूँ, यही भावना है। यदि आप लोगोंकी शक्तियोंसे संकोच करें तब हम क्या कर सकते हैं? हम तो आपकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करनेवालोंमें हैं।

सागर
माघ वदी ७, ६ १ ९
}
आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[२—३]

श्री १०८ आचार्य्य सूरिसागरजी महाराजके चरण कमलोंमें
सहस्रशः नमस्कार

महाराज! मेरी तो अनन्यभक्ति आपके गुणोंमें निरन्तर रहती है। आपके पादमूलमें रहकर सुमार्गगामी हूँ। परन्तु इतना सौभाग्य नहीं, न हो परन्तु यही अनुराग जो भव्यजनमें आपके होता है मेरेको है। इससे निरन्तर आपके गुणोंका स्मरण कर प्रसन्न रहता हूँ। विशेष बात श्री नरेन्द्र कहेगा। क्या लिखूँ? मनकी बात व्यक्त नहीं कर सकता, वचनोंमें वह सामर्थ्य नहीं।

शान्तिनिकुञ्ज सागर
}
आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

बाबा भागीरथ जी वर्णी

[श्रद्धेय बाबा भागीरथ जी का जन्म मथुरा जिलेके पण्डापुर ग्राममें वि० स० १६२५ को हुआ था। पिताका नाम बलदेवदास और माताका नाम मानकौर था। जब ये तीन वर्ष के थे, तब पिताका और ग्यारह वर्षकी उम्रमें माताका देहावसान हो गया था। बचपनमें इनकी पढ़ाई लिखाई कुछ भी न हो सकी। माताके देहावसानके बाद आजीविका निमित्त ये दिल्ली चले गये। जन्मसे ये वैष्णव थे।

दिल्लीमें ये जैनियोंके मुहल्ले में रहने लगे। और वहीं पर आपने एक जैनबन्धुके सम्पर्कसे ज्ञान सम्पादन किया। एक दिन जैन मन्दिरके पाससे जाते समय इनके कानोंमें पद्मपुराण (जैन रामायण) के कुछ शब्द पड़ गये। इनके वैष्णव धर्मसे जैनधर्ममें दीक्षित होनेमें यही कारण है।

जैन होनेके बाद धीरे-धीरे इनको प्रपञ्चसे निवृत्ति होने लगी और कुछ काल बाद इन्होंने विधिवत् ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली। इनका संयमी जीवन अत्यन्त श्लाघनीय रहा है। ये निर्वाहके लिए दो चादर और दो लगोट मात्र ही परिग्रह रखते थे। तथा नमक और मीठेका आजन्मके लिए त्याग कर दिया था।

स्वाध्याय और आत्मचिन्तन ये दो कार्य इनके मुख्य थे। इनसे चित्तवृत्तिके हटने पर इनका अधिकतर समय परोपकारमें व्यतीत होता था। जनियों की प्रमुख संस्था श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके संस्थापकोंमें ये प्रमुख हैं। अधिष्ठाता पदपर रहकर इन्होंने इस सस्थाकी कई वर्ष तक सेवा भी की है।

पूज्य वर्णीजी और बाबाजी दो शरीर और एक आत्मा कहें तो अत्युक्ति न होगी। पूज्य वर्णी जीके जीवनपर इनकी गहरी छाप है, जैसा कि पूज्य वर्णी जी द्वारा इनको लिखे गये पत्रोंसे ज्ञात होता है। यहाँ उनमेंसे कतिपय पत्र दिये जा रहे हैं।]

[३—१]

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज !

योग्य प्रणाम

संसार वासनाओंका गृह है। इससे बचनेके अनेक उपाय महर्षियोंने प्रदर्शित किये हैं परन्तु उनके अन्तस्तत्त्वपर यदि विचार किया जावे तब ? स्वात्मामें सब उपायोंका का समावेश हो जाता है। हम दुःखी क्यों हैं ? पर पदार्थोंमें निजत्व कल्पनाके जालमें फँसे हैं। उस जालसे मुक्त होनेके लिये ही प्रथम उपाय सम्यग्दर्शन जैनागममें आचार्योंने बताया है। वस्तुतः सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेका प्रयास हमारा कर्तव्य नहीं किन्तु हमारी आत्मा अनादिकालसे इन पर पदार्थोंमें जो निजत्व कल्पना कर रही है उस कल्पनाको न होने देना ही हमारा पुरुषार्थ होना चाहिए। ऐसी चेष्टा निरन्तर प्रत्येक प्राणीकी होनी चाहिये। संसारमें जितने भी चरणानुयोग और अनुयोगोंके निरूपण हैं वे सभी परस्पर हैं। उपासनातत्त्वका भी यही तात्पर्य है कि जो सत्य आत्माकी परिणतिमें हमारा उपयोग लग जावे। सत्यसे तात्पर्य रागद्वेष हीन आत्माकी परिणति ही नित्य और सत्य है। इसके विपरीत जो परपदार्थके सम्बन्धसे हो तथा जिसके अभ्यन्तरमें विपरीत कल्पना हो वह परिणति ही मिथ्या और संसारवर्द्धक है।

ईसरी } आ शु चि
अगहन कृष्ण १ सं १९९४ } गणेश वर्णी

[३-२]

श्रीयुत महाशय जी इच्छाकार

अब पर्यायकी क्षीणता होगी और इससे अनिवार्य निर्बलता होगी, किन्तु इसमें आत्मगुणको क्या बाधा है ? आप तो नहीं, परन्तु अन्य भोले प्राणी कहेंगे कि जब इन्द्रियाँ शिथिल होंगी तब इन्द्रियजन्य ज्ञान भी शिथिल होगा ही। परन्तु उससे आत्मा की क्षति नहीं। जिससे आत्माकी क्षति है उसकी घातक यह इन्द्रियदुर्बलता नहीं।

ईसरी
चैत्रकृष्ण १२ स० १९९५

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-३]

इच्छाकार

आपका पीयूष पूरित पत्र आया, समाचार जाने। मैं आपका विशेष भक्त हूँ। भक्त ही नहीं आपके सिवाय इस समय मेरी तो किसी भी त्यागी में भक्ति नहीं, अत. आप मेरे लिये आशीर्वादको छोड़कर शब्दान्तर न लिखें। आपके सम्पर्कमें मेरी जो निर्मलता थी वह केवलमें नहीं। महाराज! मेरी तो यह श्रद्धा है कि जो भी वेष हैं सब कषायोंके ही कार्य हैं। परन्तु यह सब चर्चा भी कषायोंके उदयमें ही होती है। आप मेरी एक तुच्छ सम्मति मानिये। वह यह कि अब आपकी आयु दीर्घ नहीं अत. सब तरफ से सङ्कोचकर खतौली में ही समाधिमरणकी योग्यता जानकर क्षेत्रन्यास कीजिये। कषायों के उदय जीवसे नाना कार्य कराते हैं। परन्तु पुरुषार्थकी भी वह तीक्ष्ण खड्गधार है कि उन उदय

जन्य रागादिककी सन्ततिका निर्मूल कर देती है। अर्जित रागादिककी उत्पत्तिको हम नहीं रोक सकते। परन्तु उदयमें आये रागादिकों द्वारा हर्ष-विषाद न करें यह हमारे पुरुषार्थका काम है। संज्ञी पंचेन्द्रियकी मुख्यता पुरुषार्थ द्वारा ही कल्याण करनेकी है। कषायोंके उदयपर रोना आपसे निरुद्यमी व्यक्तिको तो सर्वथा अनुचित ही है। द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई, और न होगी। चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव सम्पन्न महापुरुषोंसे भी संसारमें शान्ति नहीं आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई, किन्तु श्रीवीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थङ्करके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव संसारमें व्यापकरूपसे प्रसारित हुआ जिसका आंशिक रूप अब भी संसारमें है। चक्रवर्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नहीं रही क्योंकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गलात्मक हैं और धर्मका असर आत्मामें होता है, इसलिए अब भी बहुत आत्माएँ ऐसी हैं जिनमें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अंश है। यह मानना ही मिथ्या है कि धनिकों का धन धर्ममें नहीं लगता। धनसे धर्म होता ही नहीं, फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका धन धर्ममें नहीं लगा व्यर्थ है। हम भी क्या करें? मोहके द्वारा असंख्य कल्पना करके भी शान्त नहीं होते।

ईसरी आषाढ़ कृष्ण १ सं० १९९९ } आपका शुभानुयायी गणेश वर्णी

[३-४]

श्रीयुत महाशय योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःखका मूल कारण शारीरिक व्याधि नहीं किन्तु शरीरमें ममत्वबुद्धि है। यही दुःखका मूल है। दुःख क्या वस्तु है?

आत्मामें जो परिणमन न सुहावे वही तो दु:ख है। अर्थात् जिस वस्तुके होनेमें आकुलता हो, चैन न पड़े, वही तो दु:ख है। अत. जो यह वैपयिक सुख है वह भी दु ख रूप ही है, क्योकि जब तक वह होते नहीं तब तक तो उनके सद्भावकी आकुलता रहती है और होने पर भोगनेकी आकुलता रहती है। आकुलता ही जीवको नहीं सुहाती। अत वही दु खावस्था है। भोगविषयिणी आकुलता दु खात्मक है। इसमे तो किसीको विवाद ही नहीं। परन्तु शुभोपयोगसे सम्बन्ध रखनेवाली जो आकुलता है वह भी दु खात्मक है। यदि ऐसा न होता तो उसके दूर करनेके अर्थ जो प्रयास है वह निरर्थक हो जावे। कहाँ तक इसकी मीमांसा की जावे। जो शुद्धोपयोगके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है वह भी आकुलताकी जननी है। अत जो भाव आकुलताके उत्पादक हैं वे सर्व ही हेय हैं। परन्तु ससारमें अधिकतर भाव तो ऐसे ही हैं और उन्हींके पोषक प्राय. सब मनुष्य हैं।

ईसरी
श्रावण कृष्ण १ स० १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३--५]

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशधा धर्मका पालन आपने सम्यक् रीतिसे किया होगा। हमने यथाशक्ति धर्म साधन कर पर्वकी पूर्णता की यह एक प्रकारसे पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है। जैसे छोटी-छोटी लडकियोंमें गुड़ियोंका खेल खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है, प्रवृत्तिसे तो उसका आंशिक घात ही है। ऐसा न होता तो महाव्रतको साङ्गोपाङ्ग पालनेवाले श्री मुनि महाराजके

जन्य रागादिककी सन्ततिको निर्मूल कर देती है। अर्जित रागादिककी उत्पत्तिको हम नहीं रोक सकते। परन्तु उदयमें आये रागादिकों द्वारा हर्ष-विषाद न करें यह हमारे पुरुषार्थका कार्य है। सभी पंचेन्द्रियकी मुख्यता पुरुषार्थ द्वारा ही कल्याण करनेकी है। कषायोंके उदयपर राना आपसे निस्पृही व्यक्तिका तो सर्वथा अनुचित ही है। द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई, और न होगी। चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव सम्पन्न महापुरुषोंसे भी संसारमें शान्ति नहीं आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई किन्तु श्रीवीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थङ्करके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव संसारमें व्यापकरूपसे प्रसारित हुआ जिसका आंशिक रूप अब भी संसारमें है। चक्रवर्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नहीं रही क्योंकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गलकृत हैं और धर्मका असर आत्मामें होता है, इसलिए अब भी बहुत आत्माएँ ऐसी हैं जिनमें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अंश है। यह मानना ही मिथ्या है कि धनिकों का मन धर्ममें नहीं लगता। मनसे धर्म होता ही नहीं; फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका मन धर्ममें नहीं लगा व्यर्थ है। हम भी क्या करें? मोहके द्वारा असंख्य कल्पना करके भी शान्त नहीं होते।

ईसरी आषाढ़ कृष्ण १ सं १९९९	आपका शुभानुरागी गणेश वर्णी

[३-४]

श्रीयुत महाशय योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःखका मूल कारण शारीरिक व्याधि नहीं, किन्तु शरीरमें ममत्वबुद्धि है। यही दुःखका मूल है। दुःख क्या वस्तु है?

वाह्य त्यागकी मुख्यताकर वाह्यका भी नाश करता है। बाह्य क्रिया वही सराहनीय है जो आभ्यन्तरकी विशुद्धतामें अनुकूल पड़े। केवल आचरणसे कुछ नही होता जब तक कि उसके गर्भमे सुवासना न हो। सेमरका फूल देखनेमें अति सुन्दर होता है परन्तु सुगन्धि शून्य होनेसे किसीके उपयोगमे नहीं आता।

ईसरी, मार्गशीर्ष शुक्ल ९ सं० १९९६ } आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३--७]

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज,

योग्य प्रणाम

बहुत कालसे आपकी अनुपम अनुभूतिका प्रकाशक पत्र नहीं आया सो यदि नियममें बाधा न हो तो देना। महाराज क्या ऐसा भी कोई उपाय आपके दिव्य अनुभवमें आया है जो हम जैसे मूढो के सुधारका हो। यदि नही है तब तो कथासे लाभ ही नहीं और यदि वह है तो कृपाकर उस उपायकी एक कणिका इधर भी वितरण कर दीजिये। बाह्य उपाय हमने भी बहुतसे किये परन्तु उनसे तो शान्तिकी गन्ध भी नहीं आई। क्या शान्तिका कारण इन उपायो का त्याग तो नहीं हैं? सन्तोषके लिए इसे मान भी लिया जावे तब फिर उपायोंके जालसे बचनेका कौन सा निरपाय उपाय है? कुछ समझमें नहीं आता। क्या इन मन, वचन, कायके व्यापारोंको निरहकार, निर्माण सरल करना ही तो उपाय नहीं है। फिर भी यह शङ्का होती है कि निरहकार निर्माण होनेके लिए क्या उपाय है? यह अन्योन्यश्रृङ्खला कैसे दूर हो। यद्यपि महर्षियोंने बाह्यसे

इस कार्यके करनेमें निष्प्रमादतया प्रयास किया है। फल क्या हुआ यह विश्वज्ञानी ही जानें ऐसा सन्तोष करना अच्छा नहीं। यदि अन्तरङ्ग आत्मासे विचार करोगे तब तुम इसके ज्ञाता दृष्टा स्वयं हो। तुम्हारे ज्ञानमें यदि उसका अस्तित्व न आया तब तुम्हारी प्रवृत्ति जो उत्तरोत्तर आत्माकी उत्कृष्टताके लिये होगी, कैसे होगी? अतः इसका निष्कर्ष यही निकला कि हम स्वयं उसके ज्ञाता हैं। और एक दिन यही प्रयास करते-करते यहाँ तक उसकी सीमावृद्धि होगी कि हम स्वयं अनन्त सुखके पात्र होंगे। अतः दयाधर्म पालनके इस तत्त्वको ज्ञान निरन्तर पर्व मनाना चाहिये क्योंकि विशिष्ट कार्यकी उत्पत्ति विशिष्ट कारणसे ही होती है।

ईसरी आश्विन कृष्ण ९, सं० ११९	आपका शुभानुरागी गणेश वर्णी

[३-६]

श्रीमान बाबा जी महराज, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया। मैंने स्वामिकार्तिकेय ग्रन्थ देखा। उसमें सामान्य कथन है विशेषरूपसे वर्णन नहीं है। उसमें तो कुछ भी नहीं निकलता। हाँ गुरु परम्परासे जो कुछ हो। फिर भी उत्सर्ग और अपवादमें मध्यस्थभाव रहना चाहिये। यदि अपवादमें लीन हो जावे तब असंयम ही के तुल्य हो जाता है। करना और बात है और कहना और बात है। अनादि कालसे हम अज्ञानी जीवने केवल इन बाह्य वस्तुओंके द्वारा ही कल्याणके मार्गको दूषित बना रक्खा है। यह चरणानुयोगके मार्मिक आपको पता न होकर केवल

वाह्य त्यागकी मुख्यताकर वाह्यका भी नाश करता है। वाह्य क्रिया वही सराहनीय है जो आभ्यन्तरकी विशुद्धतामें अनुकूल पड़े। केवल आचरणसे कुछ नहीं होता जब तक कि उसके गर्भमे सुवासना न हो। सेमरका फूल देखनेमें अति सुन्दर होता है परन्तु सुगन्धि शून्य होनेसे किसीके उपयोगमे नही आता।

ईसरी, मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सं० १९९६ } आपका गुणानुरागी गणेश वर्णी

[३--७]

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज,

योग्य प्रणाम

बहुत कालसे आपकी अनुपम अनुभूतिका प्रकाशक पत्र नहीं आया सो यदि नियममे बाधा न हो तो देना। महाराज क्या ऐसा भी कोई उपाय आपके दिव्य अनुभवमें आया है जो हम जैसे मूढो के सुधारका हो। यदि नहीं है तब तो कथासे लाभ ही नहीं और यदि वह है तो कृपाकर उस उपायकी एक कणिका इधर भी वितरण कर दीजिये। बाह्य उपाय हमने भी बहुतसे किये परन्तु उनसे तो शान्तिकी गन्ध भी नहीं आई। क्या शान्तिका कारण इन उपायों का त्याग तो नहीं है? सन्तोपके लिए इसे मान भी लिया जावे तब फिर उपायोंके जालसे बचनेका कौन सा निरपाय उपाय है? कुछ समझमें नहीं आता। क्या इन मन, वचन, कायके व्यापारोंको निरहंकार, निर्माण सरल करना ही तो उपाय नहीं है। फिर भी यह शङ्का होती है कि निरहंकार निर्माण होनेके लिए क्या उपाय है? यह अन्योन्यश्रृङ्खला कैसे दूर हो। यद्यपि महर्षियोने बाह्यसे

उस परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय परिग्रहत्याग बतलाया है, परन्तु तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो धनधान्य जो बाह्य हैं व तो यदि भीतरी विकारोंसे देखें तो त्यागरूप ही हैं, क्योंकि वस्तु वास्तवमें अन्यापोह पूर्वक ही विधिरूप है। केवल आत्मगत जो मूर्च्छा है वही त्यागनेके लिये आचार्योंका इस बाह्य परिग्रह त्यागनेका मूल उद्देश्य है।

आपके निरीह परिवर्त्तनसे मैंने बाह्यसे बहुत सा उपाय बाह्य परिग्रहके त्यागका किया और करनेकी चेष्टा में हूँ। मेरे पास बाल्यकालकी पुस्तकमें ७००) थे उनके रखनेका उद्देश्य यही था कि यदि कभी असातावेदिका उदय आया तो काम आवेंगे। परन्तु आपके व्रत को देखकर निश्चय किया कि भवितव्य अनिवार है, अतः उन्हें स्याद्वाद विद्यालयमें दे दिया और बाईजीके नामपर ४३०) के स्थानमें ५०००) करवा दिये। किन्तु फिर भी जो शांति का लाभ चाहिये वह नहीं हुआ। इससे यही निश्चय किया कि शांति बाह्य त्यागमें नहीं; आभ्यन्तर त्यागमें है। उसका अभी उदय नहीं है, परन्तु श्रद्धा अवश्य है। शांतिका मार्ग अपने ही में है, केवल एक गुत्थीके विदारणका पुरुषार्थ करना है पर वह इस पर्याय में कठिन है। मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि जीव पर्यायके अनुकूल शांति करे तो कृतकार्य हो सकता है। देशव्रती यदि महाव्रतीके तुल्य उपयोग चाहे तो महाव्रती हो जावे। केवल वचनोंकी चतुरतासे शांति लाभ चाहना मिश्रीकी कथासे मीठा स्वाद लेने जैसा प्रयास है। अतः यही निश्चय किया कि जितनी पर्यायकी अनुकूलता है उतना ही साधन करनेसे कल्याण मार्गके अधिकारी बने रहोगे। पर्यायके प्रतिकूल कार्य करनेपर मेंढकीके नालकी दशा होगी। इसीमें सन्ताप है।

आपके समागमसे और नहीं तो एक बात अवश्य अकाट्यरूप

से ध्यानमें आ गई है कि यह परिग्रह का सचय ही पापकी जड़ है। इसे उन्मूलित करना चाहिये। वाह्यरूपसे तो इसे उन्मूलितकर द्रव्यलिङ्गवत् वहुत वार स्वांग किया सो दिव्य ज्ञानका ही विषय है परन्तु जिसे मूर्छा कहते हैं वह कैसे जाती है, यह ग्रन्थी अभी तक नहीं खुली। खुलनेकी कुञ्जी ध्यानमें आती तो है, परन्तु वह इतनी चपल है कि एक सेकेण्ड तो क्या उसके सहस्रांश भी हाथ में नहीं रहती। क्या वेढब गोरखधन्धा है! एक कड़ी निवारण करता हूँ तो अन्य आकर फँस जाती है। अत इस गोरखधन्धाके सुलझानेके अर्थ केवल महती बुद्धिमत्ताकी ही आवश्यकता नहीं, साथ-साथ पुरुषार्थकी भी उतनी ही आवश्यकता है। शास्त्रोंमें अनेक ऋषिप्रणीत उपायोंकी योजना है, परन्तु उन सर्व उपायोंमे वचनशैलीकी विभिन्नता है, न कि अर्थकी विभिन्नता। अतः किसी भी ऋषिके ग्रन्थका मनन कर निर्दिष्ट पथका अनुसरण कर अपनी मनोवृत्तिकी स्थिरताकर स्वार्थ या आत्माकी सिद्धि करना बुद्धिमान् मनुष्योंका मुख्य ध्येय होना चाहिए। व्यर्थके झमटोंमें पड़कर बुद्धिका दुरुपयोग कर लक्ष्यसे च्युत होना अकार्यकर है। जितने अधिक वाह्य कारण संचय किये जायेंगे उतना ही अधिक जालमें फँसते रहेंगे। अत मैंने अब एक ही उपाय अवलम्बन करनेका निश्चय किया है। आजकल शारीरिक व्यवस्था कुछ अनुकूल नहीं। दशमी प्रतिमाके विषयमें श्रीमानोका जो उत्तर 'जैनसन्देश' में है—अपवादरूपसे जल ले सकता है, इसमें ऐसा जानना कि अपवाद तो परमार्थसे कभी-कभी होता है यदि उसमें रत हो जावे तो यह मूलघात ही है।

ईसरी,
मार्गशीर्ष कृ० ४ सं० १९९६ }
२

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-८]

इच्छाकार

जिसे लोकमें स्वास्थ्य कहते हैं उसे जाननेकी आकांक्षा है। वास्तवमें जिसे स्वास्थ्य कहते हैं वह तो निवृत्तिमार्ग है। निवृत्तिमार्गमें जो चल रहे हैं उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन वृद्धिरूप ही होता जाता है। महाराज! मैं आपको व्यवहारमें अपना परम हितैषी मानता हूँ। आपके द्वारा तथा आपकी निरीहतासे मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है। उस ऋणका मैं इस पर्यायमें नहीं चुका सकता। स्वर्गीया श्री बाईजीकी वैय्यावृत्यका तो अन्तमें बहुत अंशोंमें सन्तोष कर चुका परन्तु आपकी अन्त अवस्थाका दृश्य अब इस पर्यायमें देखनेको मिलना असम्भव है, ऐसे कारण उपस्थित हैं, फिर भी आपकी शान्तिका अभिलाषी हूँ। समाधिमरणके लिए कौन-कौनसे अङ्ग हैं यही संक्षेपमें मुझे लिख दीजिये। पुस्तकोंके तो थोड़े बहुत मैं जानता हूँ परन्तु आपके अनुभूत जाननेका अभिलाषी हूँ, क्योंकि अब मेरी श्रद्धा इसी योग्य हो रही है। आशा है आप उपेक्षा न करेंगे।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-९]

इच्छाकार

महाराज! कषायोंके उदय नाना प्रकारके हैं परन्तु आप जैसे निस्पृह व्यक्तियोंके लिये नहीं। हम सदृश बहुतसे व्यक्ति उसके लिये हैं। आप तक उसका प्रभाव नहीं जा सकता। क्या ही सुन्दर पद्य श्री १०८ समन्तभद्र मुनिराजने कहा है—

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैः
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥

और वास्तवमें श्री कुन्दकुन्द मुनिराजने समयसारमें कहा भी है—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहाया जाणगभावो हु अहमिक्को॥

आपकी प्रशममूर्ति रहने पर भी यदि बलभद्र आदिने ज्ञानामृतका पान न किया तब फिर इस स्वातिकी बूँदका मिलना दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव भी है। अस्तु, अब क्या करें? जो होना होता है वह होकर ही रहता है। मैं चाहता हूँ आपकी उपदेशामृतपूरित पत्रिका एक माहमें एक मिलती जावे तो अच्छा है। इस अवस्थामें स्वात्मचर्चाको त्यागकर केवल विषयान्तरकी कथा उपयोगिनी नहीं। धनिक वर्ग धनको निज सम्पत्ति समझ रहे हैं जो कि सर्वथा विपरीत है।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-१०]

इच्छाकार

आपने लिखा सो अक्षरशः सत्य है कि आत्माका स्वभाव ज्ञाता द्रष्टा ही है तथा तत्त्वदृष्टिसे दो भाव नहीं किन्तु एक ही भाव है। परन्तु पदार्थके द्विविधपनसे आत्माके ज्ञातृत्व और द्रष्टृत्व व्यवहार होता है। इसकी विकृतावस्थामें औदयिक रागादिकोंकी

उत्पत्ति होती है। अथवा यों कहिये कि औदयिक रागादिक भावोंकी सहचारिता ही इसकी विकृतावस्था है। दीपकका दृष्टान्त जो दिया गया है वह पदार्थमें, उसमें जो ज्ञेयकी सरलता है और प्रकाशक मात्र है वही वास्तविक दीपक है। अन्य जो विक्रिया है वह पवनादि निमित्तक है। यह बात लिखनेमें अति सरल है परन्तु जब तक प्रवृत्तिमें न आवे तब तक हम सरीखे अनुभवशून्य ज्ञानियोंका यह ज्ञान अन्धेकी लालटेनके सदृश है। आपकी बात नहीं, क्योंकि आप विशेष अन्तरङ्गसे एक विरक्त पुरुष हैं। मुख्य तो अन्तरङ्गमें रागादिक दोषके अभावमें है। उसके जाननेका उपाय यथार्थमें तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिका मूल उपाय आगमाभ्यास और निरीह वृत्ति है।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

[३-११]

इच्छाकार

मैं आपका उत्कृष्ट और महान् समझता हूँ। अतः आपके द्वारा मुझे खेद पहुँचा यह मैं स्वीकार नहीं करता। आपकी महती अनुकम्पा होगी यदि आप कार्तिक बाद दर्शन देंगे।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

क्षु० पूर्णसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजी महाराज जिला सागरके अन्तर्गत रामगढ़ (दमोह) के रहनेवाले हैं। जन्म तिथि आश्विन वदि १४ वि० सं० १९५५ है। पिताका नाम परमलाल जी और माताका नाम जमुनाबाई है और जाति परवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब किताबका इनको अच्छा अनुभव है।

विवाह होने के बाद ये कुछ दिन अपने घर ही कार्य करते रहे। उसके बाद दमोह श्रीमान् सेठ गुलाबचन्द्र जीके यहाँ और सिवनी श्रीमन्त सेठ पूरणसाह जी व उनके उत्तराधिकारी श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी के यहां कार्य करने लगे। प्रारम्भसे धार्मिक रुचि होनेके कारण घरमें ही ये श्रावकधर्मके अनुरूप दया आदि आचारका उत्तमरूपसे पालन करते थे और किसीको विशेषतः एकेन्द्रियादि मूक प्राणियोंको कष्ट न हो इसका पूरा ख्याल रखते थे।

पत्नी वियोगके बाद ये घरमें बहुत ही कम समय तक रह सके और अन्त में श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजके शिष्य होकर गृहत्यागीका जीवन विताने लगे। इस समय आप ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पाल रहे हैं। दीक्षा तिथि आश्विन वदि १ वि० स० २००२ है। अपने कर्तव्यके पालन करनेमें ये पूर्ण निष्ठावान् हैं और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्पराके पूरे समर्थक हैं।

इन्होंने एक केन्द्रीय महासमितिकी दिल्लीमें स्थापना की है और उसके द्वारा अन्य संस्थाओंकी सहायता करते रहते हैं। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजो महाराजके इन्हें जो पत्र प्राप्त हुए उनमेंसे उपलब्ध कुछ पत्र यहां दिये जा रहे हैं।

[४–१]

श्री क्षुल्लक पूर्णसागर जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है यह अवगत कर महती प्रसन्नता हुई। परन्तु थोड़े ही दिनोंके पश्चात् जैनसन्देशमें महाराजका स्वास्थ्य फिरसे गिर रहा है बाँचकर अत्यन्त खेद हो रहा है। तत्त्वदृष्टिसे महाराजका स्वास्थ्य तो उत्तम ही है। हम जिस शरीरसे ममता रखते हैं,महाराजने उसे पर समझा है। यह ही नहीं समझा, अटूट श्रद्धा भी तदनुकूल है। इतनेसे ही सन्तोष नहीं, आचरण भी उसी प्रकार है। यही कारण है जो इस प्रकार असह्य वेदना के निमित्त समुपस्थित होने पर स्वात्मरमण से विचलित नहीं होते। ऐसे महापुरुषोंसे यह भू भूषित है। मैं आपको धन्य मानता हूँ जो ऐसे महापुरुषकी वैयावृत्य कर आत्माको कर्मभारसे मुक्त कर रहे हैं। मैं तो आप लोगोंके चरित्रकी भावनासे ही अपनेको मनुष्योंकी गणनामें मानकर प्रसन्न रहता हूँ। इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ? प्रथम पत्रमें कुछ विनय की थी, परन्तु श्री पूज्य महाराज की आज्ञा बिना असमर्थ हूँ। मुझे तो महाराजकी आज्ञा ही आगम है। मेरी तो यह दृढ़तम श्रद्धा है कि महापुरुषके जो उद्गार हैं वही आगम है क्योंकि जिनके रागादि दोषोंकी निवृत्ति हो चुकी है उनकी जो वचनावली निकलेगी वह स्वपरकल्याणप्रकारिका होगी तथा उनका जो आचरण है वही चरणानुयोग है। उनकी प्रवृत्तिका जो शब्दों में गुम्फित कर लिखा जाता है वही चरणानुयोग शास्त्रोंसे कहा जाता है। जहाँ उनका विहार होता है वही तीर्थ शब्दसे व्यवहार होता है। मेरी लेखनीमें यह शक्ति नहीं कि महाराजके चरित्रका अंश भी लिख सकूं। फिर भी अन्तरङ्गमें

व्यग्र नहीं, यह भी गुरु पदाब्जोंके रजका प्रभाव है। मेरी प्रार्थना श्री पूज्य महाराजसे निवेदन करना जो मेरे योग्य जो आज्ञा हो शिरसा माननेको प्रस्तुत हूँ। ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्दजीसे इच्छाकार कहना। उन्हें क्या लिखूं? वह तो महाराजके अनन्य चरणानुरागी हैं।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर
आषाढ वदी ४, सं० २००८ } आ. शु चि.
गणेश वर्णी

[४–२]

श्रीयुत १०१ क्षु० पूर्णसागरजी महाराज,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराज के वैयावृत्त तपका अवसर आप महापुरुषोंको प्राप्त हुआ। धन्यभाग्य आपका जो अन्तरङ्ग तप अनायास हो रहा है। हम तो अनुमोदना करके ही सन्तोष कर लेते हैं। मेरी तो आचार्य महाराजके चरणोंमें जो श्रद्धा है सो उसीके प्रसादसे अपनेको कृतकृत्य मानता हूँ। महाराजकी आज्ञा नहीं हुई अन्यथा मैं वहीं आ जाता। और वैयावृत्य कर जन्म सार्थक करता। परन्तु 'गुरोराज्ञा गरीयसी' जान सन्तोष किया। यदि आयु शेष है तब एक बार महाराजका दर्शन होगा, अन्यथा परलोकमें तो नियमसे होगा। संसारका कारण मोह है। जिसने इसपर विजय प्राप्त की वह परमात्मपदका अधिकारी है। परमात्माकी उपासना व जपसे परमात्मा नहीं होता। परमात्माप्रतिपाद्य मार्ग पर चलनेसे परमात्मा हो जाता है।

क्षु० मनोहरलालजी वर्णी

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झांसी जिलाके दुमदुमा ग्राममें हुआ है। इनके पिताका नाम गुलावरायजी और माताका नाम तुलसाबाई है जो अब परलोकवासी हो गये हैं। जन्म नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्रायमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागरमें किया है और वहींसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होनेके बाद गृहस्थीमें ये बहुत ही कम समय तक रह सके हैं। अन्तमें पत्नीका वियोग हो जानेसे ये सांसारिक प्रपञ्चोंसे विरक्त हो गये और वर्तमानमें ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन संशोधनमें लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही हैं। वर्तमानमें ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामोंसे भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला इस नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीतकी भी रचना की है। इसका प्रारम्भ 'मैं स्वतन्त्र निर्मल निष्काम' पदसे होता है। आज कल प्रार्थनाके रूपमें इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे वक्ता हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद प्राप्त है। प्रारम्भसे अबतक पूज्य वर्णीजी महाराजने उत्तरस्वरूप इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे कुछ उपलब्ध हुए पत्र यहां दिये जा रहे हैं।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नात्मास्मि हि चित्।
अयमेव हि मे बन्धो या स्याज्जीविते स्पृहा॥

मैं न तो देह हूँ और न मेरी देह है और मैं न जीव हूँ। इस मायाचारी जीव भी नहीं हूँ। बन्धका कारण जीव (इस मायाचारी) पर्यायमें जो श्रद्धा है अर्थात् इस पर्यायमें जो निजत्वकी श्रद्धा है वही बन्ध है, क्योंकि यह माया औपाधिक है, आत्माका स्वरूप नहीं। अनादिकालसे हमारी पर्यायबुद्धि रही। इसीसे सब भ्रमण हो रहा है। अतः पुरुषार्थ इस प्रकार किया जावे कि ये उपद्रव शान्त हो जावें।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर } आ० शु० चि०
आषाढ़ सुदी २ ४ १ ९ } गणेश वर्णी

[४–३]

योग्य इच्छाकार

आपका परम सौभाग्य है जो साक्षात् महाराजकी वैय्यावृत्य कर शेष संसारकी निर्जरा कर रहे हैं। श्री लक्ष्मीचन्द्रजी! तुम्हें क्या लिखें? तुम तो बिना ही तपस्वी बने वैय्यावृत्य कर तपस्वी सदृश लाभ ले रहे हो। हमारी शुभि महाराजको दिखाते रहना।

शान्तिनिकुञ्ज } आ० शु० चि०
सागर } गणेश वर्णी

क्षु० मनोहरलालजी वर्णी

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झांसी जिलाके दुमदुमा ग्राममें हुआ है। इनके पिताका नाम गुलाबरायजी और माताका नाम तुलसाबाई है जो अब परलोकवासी हो गये हैं। जन्म नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्रायमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागरमें किया है और वहींसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होनेके बाद गृहस्थीमें ये बहुत ही कम समय तक रह सके हैं। अन्तमें पत्नीका वियोग हो जानेसे ये सांसारिक प्रपञ्चोंसे विरक्त हो गये और वर्तमानमें ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन संशोधनमें लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही हैं। वर्तमानमें ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामोंसे भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला इस नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीतकी भी रचना की है। इसका प्रारम्भ 'मैं स्वतन्त्र निर्मल निष्काम' पदसे होता है। आज कल प्रार्थनाके रूपमें इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे वक्ता हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद प्राप्त है। प्रारम्भसे अबतक पूज्य वर्णीजी महाराजने उत्तरस्वरूप इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे कुछ उपलब्ध हुए पत्र यहा दिये जा रहे हैं।

[५—१]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके भाव प्रशस्त हैं। आपने जो विचार प्रकट किया वह अति उत्तम है। किन्तु शीघ्रता न करना। काल निकृष्ट है। मेरी तो यह सम्मति है कि आप २ वर्ष सागर-विद्यालयमें रहें और धर्मशास्त्र तथा साहित्यका अध्ययन करें। तत्पश्चात् जो आपकी इच्छा हो वही करें। सबसे उत्तम तो यही है कि उस प्रान्तमें बरुआसागरमें रहकर वहाँकी पाठशालाका उद्धार करें। वह प्रान्त अति दुखी है। अलवासु भी उत्तम है। रुपया जहाँ कहोगे वहाँ जमा कर देवेंगे। परन्तु अभी जायदादको न बेचो। मेरा आपसे अति स्नेह है, क्योंकि आप एक धार्मिक स्वावलम्बीके पुत्र हैं।

ईसरी } आ० शु० चि०
चैत्र शुक्ल ४ सं० १ } गणेश वर्णी

[५—२]

श्रीमान् पं० मनोहरलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। आपके विचार प्रस्तुत्य हैं और मैं आपसे अन्तरङ्गसे प्रसन्न हूँ, क्योंकि आपके पितासे जो कि एक धार्मिक जीव थे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था। मेरी तो यह धारणा है जो आपके द्वारा समाजका बहुत हित हो सकता है। आप ब्रह्मचर्याणुव्रत पालें या ब्रह्मचारी होकर सप्तम प्रतिमाको

अङ्गीकार करें। किन्तु यदि आप दो वर्ष सागर रहकर साहित्य और धर्मशास्त्रका अध्ययन करें तब बहुत ही उत्तम कार्य होगा। जब आपने घर त्याग दिया तब आपके द्वारा उत्तम ही कार्य होगा। सागर आपको अनुकूल होगा। मैं श्री पण्डित दयाचन्दजी और श्री पण्डित पन्नालालजीको लिख दूगा। आपको कोई कष्ट न होगा। बनारसमें भी प्रबन्ध हो सकता है, परन्तु वहाँ शुद्ध भोजनकी व्यवस्था कठिनतासे होगी। रुपया आपका आपके अभिप्रायके अनुकूल ही व्यय होगा। आजीवन आपको व्याज मिल जावेगा। आपके छोटे भाईकी क्या व्यवस्था है? द्रव्यलिङ्गी का उत्तर मोक्षमार्गसे जानो।

ईसरी
वैसाख कृष्ण ४ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३]

श्रीयुत पं० मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने जो विचार किये, बहुत उत्कृष्ट हैं। मेरी तो यही सम्मति है जो आप अपना अमूल्य समय अब एक मिनट भी नहीं खोवें। जितना शीघ्र आप अध्ययन कार्य कर सकें, अच्छा है। हमें विश्वास है जो आपकी आत्मासे आप ही का नहीं अनेकोंका कल्याण होगा। वर्षा ऋतुके योग्य यह क्षेत्र नहीं। यहाँ प्राय: उस ऋतुमें मलेरिया हो जाता है। अत: इस ओर शीतकालमें आना अच्छा है। हम २७ माससे मलेरियाके मित्र बन रहे हैं। कभी १० दिन बाद तो कभी १५ दिन बाद और कभी एक मासमें अपनी प्रभुता दिखा जाता है। अस्तु, आपको जो इष्ट हो सो करना। 'परन्तु हम आपका हित चाहते हैं।

फिर जो भगवानने देखा होगा। सागरमें जिज्ञासु १ भी हाँ, भोजन मिल सकता है। फिर भोजनशाला खोलना अच्छा नहीं। यह उदासीनाश्रम कुछ काल बाद सट्टारकोंकी गद्दी धारण करेंगे।

ईसरी, आश्विन कृष्ण १ सं २ ० } आ० शु० चि गणेश वर्णी

[४–७]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं कोडरमा आगया और यहाँ से अगहन वदि ३ को चलूंगा और अगहन वदि १० या ११ तक गया आऊँगा। सागर समाजकी इच्छा। हम इस अभिप्रायसे नहीं आते जो किसीको कष्ट हो। केवल अन्तरङ्ग भावना देशके बालकोंके उद्धार की हो गयी। याचना तो हम भगवान्से भी नहीं करते। हाँ, उनके चरणोंमें दृढ़ अनुराग है, किन्तु लौकिक कार्य के लिये नहीं। बनारस कब पहुँचेंगे गया जाकर लिखेंगे। हम यहाँ आते हैं तो प्रान्त भरमें भ्रमण करेंगे। सर्व मनुष्योंसे लाभ उठायेंगे। सागर अधिकसे अधिक ८ दिन रहेंगे।

कोडरमा कार्तिक सुदि ११ सं० २० ० } आ शु चि गणेश वर्णी

[४–८]

श्रीयुत ब्र० मनोहरलाल जी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। आपकी इच्छा जहाँ चाहे जाओ। जिसमें आपकी आत्माको शान्ति मिले, करो। करते भी

वही हो। हमने लिखा सो मोहसे लिखा। हमारा विश्वास है—कोई किसीका न मित्र है न शत्रु, न हितकारी न विपरीत। मोहमे सर्व दिखा रहा है। मेरा निजका विश्वास है—वीतराग सर्वज्ञ भी किसीके हितकर्त्ता नहीं। विशेष क्या लिखूँ। सिंघईजी से दर्शन विशुद्धि। हमने जो लिखा था उसका उत्तर तुमने उनसे नहीं पूँछा। श्रुतपञ्चमीका उत्सव कर जाना अच्छा है।

शुभ मिति ज्येष्ठ वदि १३, सं० २००२ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५-६]

श्रीयुत महाशय ब्र० मनोहरलाल जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

मुझसे कल सागरके महाशयोंने जबरन सागर आनेके लिये वचन ले लिया। पहले तो मोटरमें चलो, नहीं तो डोलीमें चलो। युक्तियोंकी कमी नहीं थी। आपको चलना चाहिये—चाहे सुखसे पहुँचो, चाहे दुखसे पहुँचो। अस्तु मैं कल चलूँगा। प्रबन्ध क्या है सो दैव है। मेरा भाव जो है सो आप जानते हैं। आप यदि मेरी सम्मति मानें तब, मानोगे तो नहीं। जो मनमें आवेगी, करोगे। फिर भी गृहस्थोंके चक्रमें न पड़ना तथा निरपेक्ष त्यागी रहना। पत्थर पर सोना पर चटाई न माँगना। लँगोटी न मिले तब द्रव्य मुनि ही बन जाना पर लँगोटी न मागना। सूखी रोटी मिल जाने पर घी की इच्छा मत करना। मैं इन कष्टोंको जानता हूँ। यदि गर्मीके प्रकोपने न सताया तब दश दिन वाद आप त्यागी वर्गके क्षुल्लक महाराजोंके दर्शन करूँगा। तथा विद्वानोंके भाषण सुनूँगा। विद्वद्गणसे मेरी जो उनके योग्य हो, कहना। कहना—

आपका क्षयोपशम अच्छा है और हमें आशा है जो उसका सदुपयोग होगा। अब भी कुछ नहीं गया है। पारसनाथ नहीं लिखना चाहिए।

ईसरी
वैसाख सुदी १ ई० २०

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४]

श्रीयुत भव्यमूर्ति पं० मनोहरलालजी,
योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके विचार प्रशस्त हैं। उस विषयमें हम आपको कुछ नहीं कहना चाहते हैं। व्रतग्रहण के पहिले एक बार आप सागारधर्मामृतको देखें। परिग्रहका प्रसार दुःखमूलक शल्य है यह जो लिखा सो ठीक है। परन्तु इतनी मूर्च्छा भी तो नहीं गई जो उसके बिना जीवन निर्वाह हो सके। सर्वोत्तम पद तो निर्ग्रन्थ ही है। किन्तु उस योग्य परिणाम भी तो होना चाहिये। बालका कह देना जितना सरल है, उतना कार्यमें परिणत होना सरल नहीं। आप ब्रह्मचर्यव्रत पालो, इससे उत्तम और क्या है ? किन्तु उद्वेगसे कोई लाभ नहीं। एकबार आप आवेंगे, सर्व व्यवस्था उस समय ही निश्चित होगी। हमारी तो यह सम्मति है कि अभी आपके जो विचार हैं, स्थिर रक्खें, किन्तु प्रकाशित मत करें। समय पाकर आप ही व्यक्त हो जावेंगे। आप यदि कुछ काल अध्ययन करेंगे तब बहुत कुछ परका उपकार कर सकेंगे। अपना उपकार तो सर्व कोई कर सकता है, परका उपकार विशिष्ट पुण्यशाली ही कर सकता

है। जायदादके विषयमें बाबू रामस्वरूपकी सम्मतिसे कार्य करना। श्री श्रेयांससे भी सम्मति लेना।

ईसरी
वैशाख शुक्ल ११ सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—५]

इच्छाकार

सागरमें जितनी अधिक संस्था होंगी, उतनी ही अधिक प्रबन्धादिकी असुविधा होगी। तथा जो मूल कारण धन है वह वहाँ अत्यन्त न्यून है। लोग उस प्रान्तमें वास्तविक कार्योंमें धन नहीं देना चाहते। हमने कई पत्र वहाँ दिये हैं? यदि उनकी पूर्ति होनेकी चेष्टा हुई तब हम एक बार उस प्रान्तमें आवेंगे और बनारस छोड़ते ही परिग्रहके भारसे मुक्त होंगे। केवल वस्त्र और पुस्तकोंको छोड़ सर्व द्वन्द्वसे छूट जावेंगे। देखें, कौन धर्मात्मा इसमें सहायक होता है। आप मंत्री, सिंघईजी आदिसे मिलकर उत्तर देना।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण १, सं० २०००

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—६]

दर्शनविशुद्धि

जिसमें आपकी आत्मा निरन्तर पवित्रताकी ओर जावे वही यत्न करिये। जहाँ आपको शान्ति मिले वहीं रहो। यदि सागर में हमारी अभिलाषाकी पूर्ति होनेकी चेष्टा होगी तब एक बार उस प्रान्तमें आवेंगे। मेरी सम्मति सागरमें उदासीनाश्रम की नहीं,

फिर जो भगवानने देखा होगा। सागरमें जिज्ञासु १ भी हों, भोजन मिल सकता है। फिर भोजनशाला खोलना अच्छा नहीं। यह उदासीनाश्रम कुछ काल बाद भट्टारकोंकी गद्दी धारण करेंगे।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण १ सं २ ० ... आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[५—७]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी
योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं कोडरमा आगया और यहाँ से अगहन वदि ३ को चलूँगा और अगहन वदि १० या ११ तक गया जाऊँगा। सागर समाजकी इच्छा। हम इस अभिप्रायसे नहीं आते जो किसीको कष्ट हो। केवल अन्तरङ्ग भावना देशके बालकोंके उद्धार की हो गयी। याचना तो हम भगवानसे भी नहीं करते। हाँ, उनके चरणोंमें दृढ़ अनुराग है, किन्तु लौकिक कार्य के लिये नहीं। बनारस कब पहुँचेंगे, गया जाकर लिखेंगे। हम यहाँ आते हैं सो प्रान्त भरमें भ्रमण करेंगे। सर्व मनुष्योंसे लाभ उठायेंगे। सागर अधिकसे अधिक ८ दिन रहेंगे।

कोडरमा,
कार्तिक सुदि ११ सं० २ ० ... आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—८]

श्रीयुत ब्र० मनोहरलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी इच्छा जहाँ चाहे जाओ। जिसमें आपकी आत्माको शान्ति मिले, करो। करते भी

वही हो। हमने लिखा सो मोहसे लिखा। हमारा विश्वास है—कोई किसीका न मित्र है न शत्रु, न हितकारी न विपरीत। मोहमें सर्व दिखा रहा है। मेरा निजका विश्वास है—वीतराग सर्वज्ञ भी किसीके हितकर्त्ता नहीं। विशेष क्या लिखूँ। सिंघईजी से दर्शन विशुद्धि। हमने जो लिखा था उसका उत्तर तुमने उनसे नहीं पूँछा। श्रुतपञ्चमीका उत्सव कर जाना अच्छा है।

शुभ मिति ज्येष्ठ वदि १३, } आ० शु० चि०
सं० २००२ } गणेश वर्णी

[५–६]

श्रीयुत महाशय ब्र० मनोहरलाल जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

मुझसे कल सागरके महाशयोंने जबरन सागर आनेके लिये वचन ले लिया। पहले तो मोटरमें चलो, नहीं तो डोलीमे चलो। युक्तियोंकी कमी नहीं थी। आपको चलना चाहिये—चाहे सुखसे पहुँचो, चाहे दुखसे पहुँचो। अस्तु मैं कल चलूँगा। प्रबन्ध क्या है सो दैव है। मेरा भाव जो है सो आप जानते हैं। आप यदि मेरी सम्मति मानें तब, मानोगे तो नहीं। जो मनमें आवेगी, करोगे। फिर भी गृहस्थोंके चक्रमे न पड़ना तथा निरपेक्ष त्यागी रहना। पत्थर पर सोना पर चटाई न माँगना। लँगोटी न मिले तब द्रव्य मुनि ही वन जाना पर लँगोटी न मागना। सूखी रोटी मिल जावे पर घी की इच्छा मत करना। मैं इन कष्टोंको जानता हूँ। यदि गर्मीके प्रकोपने न सताया तब दश दिन बाद आप त्यागी वर्गके क्षुल्लक महाराजोंके दर्शन करूँगा। तथा विद्वानोंके भाषण सुनूँगा। विद्वद्गणसे मेरी जो उनके योग्य हो, कहना। कहना—

सिद्धताकी प्राप्ति भाग्यसे होती है। जितना उसका उपयोग बने करना। स्थायी वस्तु नहीं परन्तु स्थायी पदका कारण है। प्रात कालसे लू चलती है। फिर सागरवालोंने मेरे ऊपर परम अनुकम्पा की जो परीषह सहनेका अवसर दिया। क्या करूँ, मेरी मोहकी सत्ता इतनी प्रबल है कि जो मैं मर्यादित चक्रमें आ जाता हूँ। मेरी जो भावना है सो वहीं पर करूँगा।

सागर, } आ० शु० चि
ज्येष्ठ सुदि ४, सं २ ४ } गणेश वर्णी

[५-१०]

श्रीयुत महाशय प्र० मनोहर लाल जी,
योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। उपदेश क्या लिखें—निरपेक्षता ही परम धर्म है। हम और आपको यही उपादेय है। मैं पहिले सागरके लिये उन्हीं लोगोंकी सापेक्षताका पक्षपाती था। सिंघई जीसे बहुत कुछ आशा रखता था। परन्तु अब यही निश्चय किया जो हो अपनेको तटस्थ रहना। मैं तो द्रोणगिरिसे बरुआसागर ही जाता था। साधनोंके अभावसे यहीं 'पुनर्मू षको भव' की कथाको चरितार्थ करनेके लिये आ रहा हूँ। परन्तु उपयोग बरुआसागर पर है। आषाढ़ वदि १ तक सागर पहुँचूँगा। २४ घण्टे गर्मी रहती है परन्तु इस गर्मीका तो प्रतिकार प्रतिदिन हो जाता है। जो आताप आत्मस्थ है, उसका प्रतिकार पास होने पर भी अभी दूर है। यह आताप जो बाह्य है उसका तो सरल उपाय है। प्राय सब ही उपकार कर देते हैं। जो आभ्यन्तर आताप है

उसको दूर करनेके लिये किसीकी अपेक्षा को आवश्यकता नहीं। परकी सहायता न चाहना ही इसका मूल उपाय है। परन्तु हम लोग इसके विरुद्ध चलते हैं, यही महती भूल है। आने पर जो मेरा भाव है, व्यक्त करूँगा।

ज्येष्ठ सु० १३, सं० २००४

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-११]

श्रीयुत पं० मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अब उत्तम है। अच्छे सयमका इतना भी फल न होगा क्या? आप मेरी सर्व धर्मानुबन्धुओंसे दर्शन-विशुद्धि कहना। मेरा तो जबलपुरमें रहनेसे आभ्यन्तर लाभ नहीं हुआ। हाँ, इतना अवश्य हुआ, जनता प्रतिदिन ३००० से कम नहीं आती थी। श्रद्धापूर्वक शास्त्रमें बैठती थी। विशेष वक्ता प० कस्तूरचद जी, प० शिखरचन्द्र जी तथा ब्र० चम्पालाल जी व हम भी प्रात सामान्य वक्ता हो जाते थे। शान्तिका उदय जब हममे ही नहीं, तब समाजको हमारे द्वारा शान्ति मिलना दुर्लभ है।

जबलपुर

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१२]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहर वर्णी जी,
योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे मुझे परम आनन्द हुआ। आप मेरे निमित्तका कोई भी विकल्प न करें। आपके प्रबन्धसे गुरुकुल की उन्नति हो

यही हमारी भावना है। मैं प्रायः सरल प्रकृतिके द्वारा प्रत्येक व्यक्तिके पक्षमें आ जाता हूँ। फल उसका विपरीत ही होता है। मेरा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुरूप पकपानसदृश है। परन्तु इससे मेरे चित्तमें अशान्ति नहीं। जब मेरी अन्तिम दशा होगी, आपको बुलाऊँगा। मुझे हृदयसे विश्वास है, जो आप मेरे समाधि-मार्गमें आचार्यका कार्य करेंगे। पवनकुमार निर्मल व्यक्ति हैं। वैयावृत्य तपके अधिकारी हैं। मेरा आशीर्वाद कहना। श्री जीवानन्दसे इच्छाकार तथा अन्य मण्डली महाशयोंसे यथायोग्य इच्छाकारादि कहना।

सागर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१३]

श्रीयुत ब्र० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

शुभस्य शीघ्रम् समागम आपका सफल बनावेगा। श्री चम्पालाल तो चम्पाकी सुगन्ध हैं। चिरकालकी आवश्यकता आज जगती है। यदि आप लोग चल गये इसका हमें अणुमात्र भी रंज नहीं। आप अग्रसरीभूत हैं यह भावना है। इसका अर्थ परिणामोंमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं आना चाहिए। जितना तो त्यागका होना कठिन नहीं उतना कर्तृत्वका अभिमान जाना कठिन है। तो त्याग होने पर लौकिक प्रतिष्ठा मिल सकती है। कर्तृत्वभावनाके जानेसे अलौकिक गुण की प्राप्ति होना सरल है। यद्यपि आप तीनों (ब्र० मनोहर ब्र० सुमेरचन्द्र तथा ब्र० चम्पा-लाल) एकत्र मिलकर, जो चाहें सो कर सकेंगे; किन्तु तीनोंकी

एकता न विघटना चाहिये। प्रतिज्ञाका निर्वाह करना तथा ऐसा करना जो कार्यमें सहायक होते हुए भी धर्मके पात्र हो।

मढियाजी जबलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१४]

श्री महाशय १०५ क्षुल्लक सदानन्द जी,
योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे। आँखके ऊपर फुड़िया शान्त हो गई होगी। जीवानन्द वास्तव नित्यानन्द हैं। सन्तोषी हैं। और सर्व आनन्दोंसे इच्छाकार। विशेष क्या लिखें ? सहजानन्दके सामने अन्य सर्व आनन्द फीके हैं।

कातिक सुदी १५,
सं० २००५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--१५]

श्रीयुत वर्णी जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। निरुद्देश्य बुलाना कोई तत्त्व नहीं रखता। निरुद्देश्य दिल्ली गये उसका कोई फल नहीं। ऐसे ही मुजफ्फरनगर बुलाकर क्या लाभ मिलेगा यह बुद्धिमें नहीं आता। केवल बाह्य धन्यवाद प्रणालीसे कृतकृत्य मान लेना मैं उचित नहीं मानता। अभी आप वहाँ पर हैं और आपकी शान्तिसे वहाँका वातावरण अच्छा है इसको इसमें प्रसन्नता है, किन्तु हमारे आनेसे विशेष क्या होगा यह हमारे ज्ञानमें जब तक न आ जावे हम वहाँ आवें बुद्धि में नहीं आता। अत: आप पञ्च महाशयोंसे स्पष्ट कह दो—यदि कोई विशेष कार्य हो तब हमको

लिखिए जो हम गयावालोंसे इन्कार करनेका प्रयत्न करें, अन्यथा ऐसे उष्णकालमें यात्रा करें यह उचित नहीं।

शास्त्र सुनते आवो, चौथा काल वर्त्त रहा है बोलते आवो, धन्य धन्यकी झंकार करते आवो। मैं तो इन बाह्य आडम्बरोंसे ऊब गया हूँ। मैं तो उस दिनसे अपनेको मनुष्य मानूँगा जब पञ्चपरमेष्ठीका स्मरण मुखसे ही न करें किन्तु उनने जो मार्ग बताया है उस पर अमल करें। तभी इस धर्मके मर्मको समझूँगा, बस हमारे अर्थ प्रयास न करना। हम अब इच्छापूर्वक जहाँ जावें जाने दो। वहाँ भी आ सकते हैं परन्तु आपकी प्रतिबन्धकता नहीं चाहते।

जेठ बदी ९, } आ शु चि
सं २ ९ } गणेश वर्णी

[५-१६]

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया था, एक पैर चलना कठिन था। अब अच्छा है। आज ५० हाथ चले। ज्वर प्रतिदिन आता है। अब आशा है वह भी शमन हो जावेगा। मैं तो आपके प्रति निरन्तर यही भावना भा रहा हूँ जो आपकी वैयावृत्य किसीको न करना पड़े तथा ऐसी वृत्ति शीघ्र ही हो जाय जो मांके स्तन न चूसने पड़े। आप विज्ञ हैं। हमारी हास्य न करिये। बा० जीवरामजीसे इच्छाकार तथा बा मूलचन्द जी से इच्छाकार।

माघ बदी १ } आ शु चि
सं० २ ९ } गणेश वर्णी

[५-१७]

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी साहब,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा तो यह विश्वास है कि संसारमें कोई किसीका नहीं, यह तो सिद्धान्त है। साथ ही यह निश्चय है कि कोई किसीका उपकारी नहीं। इसका यह अर्थ नहीं जो मैंने आपका उपकार किया हो और न यह मानता हूँ जो आप मेरा उपकार करेंगे। हाँ यह व्यवहार अवश्य होगा जो वर्णीजीकी वर्णी मनोहरने सम्यक् सल्लेखना करायी। परन्तु मेरा तो यह कहना है—जो आपने गुरुकुलकी नींव डाली है उसे पूर्ण करिये। हमारी चिन्ता छोड़िये। हमारी सल्लेखना हमारे भवितव्यके अनुकूल हो ही जावेगी। अथवा आप लोगोंके भव्य भावोंसे ही हमारा काम बन जावेगा। वहाँ पर जो ब्रह्मचारी सुन्दरलालजी उनसे इच्छाकार, श्री जीवारामजी से इच्छाकार। वहाँकी समाजसे यथायोग्य। वहाँ जो हकीमजी हैं उनसे आशीर्वाद।

इटावा
प्रथम आषाढ वदी १३, सं० २००७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१८]

श्रीयुत महानुभाव क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी,

योग्य इच्छाकार

आप कैराना गये, अच्छा किया। मेरी सम्मत्ति तो यह है—वहाँ गर्मीके १० दिन या १५ दिन बिताकर आपको मुजफ्फरनगर ही रहना चाहिये। वहाँकी जनता बहुत ही धर्मपिपासु है। तथा

धर्मोपिपासुके साथ साथ उदार भी है। गुरुकुलकी रक्षा होगी तब उससे ही होगी। सहारनपुरका तो है ही, उनकी तो उस पर सदा देखरेख रहेगी ही। गुरुकुलसे उदासीन रहना सर्वथा ही अनुचित है। अतः आप सर्व विकल्प छोड़ मुजफ्फरनगर जाइए। हम तो १५० मील दूर हैं। इस वर्ष तो किसी भी प्रकार नहीं आ सकते। बीचमें ही रहनेसे कुछ लाभ नहीं तथा अब हमारी शक्ति भी नहीं जो १ घंटा बीचमें शास्त्र पढ़ सकें। लोगोंका प्रेम शास्त्र पढ़नेसे है, होना ही चाहिए। अगर शास्त्र न सुनाया जावे तब वह क्यों इतना कष्ट उठावें। मेरी तो यही धारणा है—आज कल आदर्श मनुष्य तो विरला ही होगा। आदर्श और वस्तु यह तो अतिकठिन है। मेरी धारणा है, मिथ्या भी हो सकती है। अस्तु अभी आपकी अवस्था इसके अनुरूप है। अतः एक स्थानको लक्ष्य करके उसका उपयोग कर लो। उत्तरकालमें गुरुकुल आपकी अमर कीर्ति रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं कि आपको इच्छा यशकी है, परन्तु जनता तो यही कहेगी—वर्णी मनोहर हमारे प्रान्तका उपकार कर गए। हमारा तो न अब उपकारमें मन जाता है और न अनुपकारमें ही जाता है। इसका यह अर्थ नहीं जो इससे परे हैं। रागविहीनसे उपकार अनुपकार नहीं बन सकते। अन्तरङ्गसे तो कषाय अनुरूप परिणाम होते ही हैं।

प्रथम आषाढ़ बदी १४, सं २००७	आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[५-१६]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने प्रसन्नता हुई और आपका समागम मुझे इष्ट है। परन्तु आप जानते हैं—मैं अब्जों भी तह नहीं

बनना चाहता। परमार्थसे है भी नहीं। सर्व आत्माएँ स्वतन्त्र हैं। जिसमें आपको शांति मिले सो करें।

कार्तिक सुदी १, सं० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२०]

श्रीयुत महाशय वर्णी जी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारा स्वास्थ्य अच्छा है इसकी कोई चिन्ता न करो। आप सब विकल्प त्यागो। कोई प्रसन्न हो या कोई अप्रसन्न हो, अपनी आत्मा प्रसन्न रक्खो। आत्मीय परिणति ही कल्याणका प्रयोजक है। फिर आप तो जिनागमके मर्मज्ञ हैं। इतनी आकुलता क्यों रखते हो ? यदि गुरुकुल चलानेकी इच्छा है तब उस प्रान्तके जो विज्ञ पुरुष हैं उनके साथ परामर्श कर जो मार्ग निकले उस पर अमल करो। अन्यथा विकल्प छोड़ो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२१]

श्रीयुत वर्णी जी क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्दसे हैं बाँचकर प्रसन्नता हुई। हम चैत्र सुदी १५ तक यहीं रहेंगे और फिर भी ८ दिन और रहेंगे। आप निर्विकल्प रहो और आत्मशुद्धि करो। कोई शक्ति न तो आत्मीय कल्याणमें बाधक है और न साधक है। हम स्वयं साधक बाधक अपने परिणाम द्वारा उसे मान लेते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि निमित्त कोई नहीं—अर्थात् मोक्ष भी जब होगा तब उस समय क्षेत्रादि भी तो होंगे, उन्हें कौन निवारण कर सकता है ? अत

आनन्दसे धर्म साधन करो और किसीसे भय न करो। परिणाम मलीन न हो यही चेष्टा करो। हम क्या लिखें? स्वयं सम्यग्ज्ञानमें पड़े हैं। हमको तो इसकी प्रसन्नता होती है जो कोई सुख मार्गमें रहे।

चैत्र सुदी १०, सं २ ८ } आ० शु० चि गणेश वर्णी

[५–२२]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

अपवाद मार्ग भी है परन्तु उत्सर्ग निरपेक्ष नहीं। उत्सर्ग भी है परन्तु वह भी अपवाद निरपेक्ष नहीं। वह कब और किस प्रकार होता है इसका कोई नियम नहीं, साधकके परिणामोंके ऊपर निर्भर है। आपने लिखा—मैं अगहनमें आऊँगा। मुझे आपका सहवास सदा इष्ट है। इससे विशेष क्या लिखूँ? मेरा वृद्ध शरीर चल नहीं सकता। ४ मील चलना कठिन है। अस्तु जहाँ तक बनेगा निर्वाह करूँगा। मेरा श्रीयुत सीतारामजीसे स्नेह इच्छाकार कहना। वह बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं।

बरूआसागर वैसाख वदी ४ सं २ ८ } आ० शु चि गणेश वर्णी

[५–२३]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

मेरा तो यह विश्वास है जो परके कल्याण मार्गका कथन मात्र भी मोक्षमार्गका साधक नहीं। मोक्षमार्गका साक्षात् उपाय रागादि दोषनिवृत्ति है। रागादिककी अनुत्पत्ति ही संवर है। रागादि निवृत्ति तो आत्मिमात्रके होती है। किन्तु रागादिकी अनुत्पत्ति

सम्यग्ज्ञानी ही के होती है। अभी तो हम बरुवासागर हैं! अब तो पक्वपान हैं, न जाने कब झड़ जावे। श्रीजीवारामजीसे हमारा इच्छाकार कहना।

बरुवासागर
वैसाख वदी ६, सं० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२४]

श्रीयुत महाशय १०५ क्षुल्लक मनोहर वर्णी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुकूल अच्छा है। पक्वपान हैं। हमको तो आपके उत्कर्षमें आनन्द है। हमारा उपदेश न कोई माने, न हम देना चाहते हैं। हम स्वय अपनी आज्ञा नही मानते, अन्य पर क्या आज्ञा करें? आप जहाँ तक बने चेतन परिग्रहसे तटस्थ रहना। जितना परिग्रह जो त्यागेगा सुखी होगा। विशेष क्या लिखें? आप स्वय विज्ञ हैं। विज्ञ ही नहीं विवेकी हैं। जितने त्यागी हों सबको इच्छाकार।

बरुवासागर
वैसाख वदी ६, स० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२५]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारी तो श्रद्धा यह है—न हमारे द्वारा किसीका उपकार हुआ और न अन्यके द्वारा हमारा हुआ। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका हम निषेध नहीं करते। हम क्या कोई नहीं निषेध कर सकता। बोलना और बात है। आपका हमारा अन्तरङ्गसे सम्बन्ध है परन्तु यह भी एक कल्पना है। आपका बोध निर्मल है, अत. जो आपका अन्तरङ्ग साक्षी देवे वही अगीकार करो। न तो

हमारी बात मानो और न मित्रवर्गकी मानो। हम क्या करें, होता यही है, परन्तु मोहकी कल्पनामें जो चाहे कहा। हमारा अब यही अभिप्राय है—एक स्थानमें शांतिसे कालयापन करना। यह भी एक मोहकी कल्पना है। यदि आप हमारा अन्तरङ्गसे हित चाहते हो तब यह पत्रव्यवहार छोड़ो। दूसरी सम्मति यह है—इन मित्रवर्गोंको यही उपदेश था कि आगमाभ्यासमें आवें। केवल गल्पवादसे जल विलोडन सदृश कुछ तत्त्व नहीं। मुनि महाराजका स्वरूप तो आगममें है उसीसे सन्तोष करो। चरणानुयोगमें क्या है सो पण्डितवर्ग जाने। कर्तव्यपथमें मुनिमहाराज जानें। अ० सु० १४ को मास काल ललितपुर पहुँचेंगे।

आषाढ़ सुदी ११, सं० २ ८ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[५-२६]

श्रीयुत महाशय सु० मनोहरलालजी योग्य इच्छाकार

आप स्वयं योग्य हैं। कल्याणका आचरण कर रहे हैं। व्यर्थकी चिन्तामें कुछ लाभ नहीं। हम तो आपके सदा शुभ चिन्तक ही नहीं शुद्धचिन्तक हैं। श्री सीतारामजीसे इच्छाकार।

माह बदी ११ } आ शु चि
सं २ ०८ गणेश वर्णी

[५-२७]

श्रीयुत महाशय सु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। ज्ञान पानेका फल यही है जो स्वपरोपकार करना। मेरे यहाँ आनेकी अपेक्षा आप उसी प्रान्त में रहें। आपके पास सम्यग्ज्ञान है और चारित्र भी है। हम तो

कुछ उपकार नहीं कर सकते, क्योंकि वृद्ध है। आप अभी तरुण हैं। सर्व कुछ कर सकते हो। हम का० सु० ३ को पपोरा जावेंगे।

ललितपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२८]

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक सहजानन्द जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आप सानन्द पहुँच गये। यह सर्व जीवानन्दकी महिमा है। यह प्रसन्नताकी कथा है जो आपका फोड़ा अच्छा हो गया। हमारा अच्छा हो रहा है। उदयकी बलवत्ता मानना व्यर्थ है। यदि श्रद्धानमें विपरीतता आवे तब मैं उसे उदयकी घलवत्ता मानता हूँ। यो तो शारीरिक वेदना प्रतिदिन होती ही रहती है। आपके आनेसे मुझे वहुत प्रसन्नता हुई। मेरा धार्मिक पुरुषोंसे यह कहना है जो यदि कल्याणका लाभ इष्ट है तव इन पर पदार्थोंसे मूर्च्छा त्यागो। कल्याणका सर्वसे प्रचण्ड बाधक परममता है। जिसने इसे त्यागा उसने अनन्त संसारको मिटा दिया। मेरा सर्व आनन्द-मूर्तियोंसे इच्छाकार कहना।

ललितपुर
अगहन वदी १, सं २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२९]

श्रीयुत क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे? हमारा फोड़ा अब अच्छा है। २ मास पूर्ण सतत प्रयत्न करने पर उत्तम हुवा। यद्यपि हमारेमें उसकी योग्यता थी परन्तु कुछ कारणकूट भी थे। जिस समय डाक्टरने

उसे बीच उस समय सबके व्यापार पृथक् २ थे। फिर भी एक दूसरेका निमित्त था। हम अष्टमी तक आहार रहेंगे।

ललितपुर
पौष वदी ४, सं० २००८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३०]

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

जहाँ पर विरुद्ध कारणके सद्भावमें शान्ति रहे प्रशंसा तो तब है और जहाँ हाँ में हाँ मिले वहाँ आत्मोत्कर्षकी वृद्धि नहीं होती। अस्तु; विशेष क्या लिखें ? आप तत्त्वज्ञ हैं। जिसमें आपको शान्ति मिले सो करिये। हमारा तो जीवन यों ही गया। शान्ति का स्वाद न आया, परन्तु रुदन करनेसे क्या लाभ ? श्रद्धा अटल रहनी चाहिये। चरणानुयोगके अनुसार आत्माका पतन कल्याणप्रद नहीं। किन्तु हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो जो उसे देखकर अनुमान करें कि व्रत तो यह है। भोजनादिकके त्यागसे आत्महित नहीं, आत्महित तो अन्तरङ्ग निर्मल अभिप्रायसे है। श्री जीवानन्द जीसे इच्छाकार कहना।

भा० सु० ६, सं० २००९ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३१]

महाशय श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपको मैं ज्ञानी और विरक्त मानता हूँ। मैं अपनेको कुछ नहीं मानता। मैंने जिन बालकोंको पढ़ाया था वे मुझे १० वर्ष पढ़ा सकते हैं। मैं उनको महान् मानता हूँ। मैं तो कुछ जानता

ही नही और न इससे मुझे दुःख है। आपको यही सम्मति दूंगा जो तुम्हें समक्ष कहें उसको मानो, पर की सुनी मत मानो और शान्तभावसे कार्य करो। हमको गुरु मत मानो। अपनी निर्मल परिणतिको ही अपना कल्याणमार्गमे साथी मानो। रेलके याता-यातमें विकल्प मत करो। जहाॅ पर विशेष लाभ समझो जावो, न समझो मत जावो। हमसे आपका हित हुआ यह लिखना तुम्हारी कृतज्ञता है। यह भी भूषण है। किन्तु बात मर्यादित ही हित-कर होती है। आत्मा ही गुरु है। वह जिस कार्य में सम्मति देवे, करो।

आ० सु० १० }
सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३२]

श्री वर्णी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिसमें आपका कल्याण हो वही करो, आप ज्ञानी हैं। किसीके द्वारा कुछ नहीं होता। हमारी दुर्बलता जिस दिन चली जावेगी अनायास कल्याण हो जावेगा। मेरी तो यह श्रद्धा है जो दो द्रव्योंका परिणमन एकरूप नहीं होता। हाॅ सजातीय द्रव्योंमें एक स्कन्ध पर्याय अनेक पुद्गल परमाणुओंकी हो जाती है फिर भी दो परमाणुका अन्य पर-माणुओंके साथ तादात्म्य नहीं होता—"तदात्वे व्यतिरेकाभावात्।" बद्धस्पृष्टत्वादि व्यवहारमे कोई बाधा नहीं। यदि इसको ही लोक तादात्म्य मानें तब कोई आपत्ति नहीं। यही जीव और पुद्गलकी बद्धावस्थामें तादात्म्य मान लें तब लोकोंकी इच्छा। किन्तु दो एक नहीं हो जाते। यदि ऐसा होता तब इसकी क्या आवश्यकता थी—

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवं वहेव यवच्चाणं ॥ ८७ ॥

जीवस्स दु कम्मेण सह परिणामा हि होंति रागादि ॥

इत्यादि, कर्त्ता-कर्म अधिकारकी गाथा देखो।

हमारी तो यह श्रद्धा है—राग दूर करनेकी चेष्टा करना रागादि की निवृत्ति नहीं करता। रागमें जो कार्य हो उसमें हर्ष विषाद न करना ही उसके विनाशका कारण है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

नोट—जितनी उपेक्षा करोगे उतनी शान्ति पाओगे। सुख शान्ति का लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेक्षाकी देन है। परमात्मामें उपेक्षा करो—इसका यह अर्थ नहीं जो उनसे सम्बन्ध छोड़ दो। छोड़ना वशकी बात नहीं। वशकी बात है यदि इस पर दृढ़ रहो। वासना तो और है करना कुछ और है। इसे त्यागो। अब विशेष पत्र देनेका कष्ट न करना। विकल्प त्यागना अच्छा। हमको निज मानना अच्छा नहीं।

[५-३३]

श्रीयुत महाशय क्षु० मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

क्या लिखूं। यही भावना होती है—एकत्व अन्यत्व भावना आ है वही आत्माको कल्याणप्रद है, अतः किसी एक स्थानमें रह कर उसीका ध्यान करूं, क्योंकि आज तक कुछ भी नहीं किया। अब कोईका आश्रय चाहना या किसीको देना दामों ही विरुद्ध विचार हैं। अवस्था अनुकूल नहीं, कोई साथी नहीं, यह आरम्भवाला एकत्व अन्यत्व भावनाका पात्र नहीं। मेरी तो यह श्रद्धा है जो सम्यग्दृष्टि दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओंका नहीं

चाहता, हो जाती हैं। मेरी तो अन्तरङ्गसे यह श्रद्धा है—वह शुभोपयोगको नहीं चाहता, हो जाना अन्य वात है। मुनिव्रत भी नहीं चाहता। वह तो कुछ नहीं चाहता। क्या आपको लिखूं; क्योंकि आप जो हैं सो मैं उसका निर्वचन ही नहीं कर सकता। यह जानता हूँ जो आप हीमें रमण करनेवाले हैं। कुछ मोहके नशेमें लिख मारा—जो मुझे कुछ उपदेश लिखिये। आप जो प्रति-दिन उण्देश करते हो वही अपनी ओर लावो। इससे अधिक क्या लिखूं। तत्त्वसे मुझसे पूछिये तो इन गृहस्थो को उचित यह है जो ये अव स्वोन्मुख होवें। जो ५० वर्षके होगये, लड़का आदिसे पूर्ण हैं, एकदम निवृत्तिमार्गके पथिक वनें। धन्य वन्य वक्ता को दान देने में कुछ न मिलेगा। मिलना तो उस मार्गमें गमन करने से होगा। मेरा जन्म तो यों ही गया। अव कुछ उस मार्गकी सुध आई सो शक्ति विकल हूँ परन्तु कुछ भयकी वात नहीं। आत्मद्रव्य तो वही है जो युवावस्था मे थी। दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता है। आपका जिसमें कल्याण हो सो करो, और क्या लिखें। परमार्थसे परोपकारी कोई नहीं। श्री जीवाराम जी को इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३४]

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप अव विकल्प न करें और न यह चिन्ता करें जो सहारनपुरवाले द्रव्य न देवेंगे। हमारा तो विश्वास है न कोई देनेवाला है और न कोई दिलानेवाला है और न कोई लेने वाला है। व्यर्थ ही सकल्प विकल्पके जालसे यह नृत्य हो रहा है। इन्दौर जाने का विचार किया सो अति उत्तम है।

[५-१८]

श्रीयुत महाशय ला० मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे निर्मल रहना चाहिये। परके लिये उपसर्गोंसे आत्माकी क्षति नहीं। आत्मीय निर्मलताकी त्रुटिसे आत्माकी क्षति होती है। एवं परकी प्रशंसासे आत्माकी कोई उत्कर्षता नहीं है। केवल स्वात्मशुद्धि ही कल्याणका मार्ग है। हम तो आज तक अपनी दुर्बलतासे ही फँसे, कोई फँसानेवाला नहीं। अतः जहाँ तक बने परकृत उपद्रवोंको उपद्रव न मानो, जो मनमें संक्लेशता होती है उसका मूल कारण मिटाओ। परमार्थसे यह भी औदयिक भाव है। सुतरां नाशमान है। कोई भी कुछ नहीं। *निर्विकल्प* रहना ही अच्छा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१९]

श्रीयुत महाशय ला० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिसमें आपको शान्ति मिले वह करो। मेरा तो यह विश्वास है जो भी कार्य किया जाता है शान्ति अर्थ किया जाता है, तथा अपने ही हितके लिये किया जाता है। कार्य चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो। अत्र मानुष नहीं है जो लोकैषणासे परे है। मैं तो रत्न आदिके विकल्पको अनुपादेय समझता हूँ। जब आवश्यकता प्रतीत हुई बैठ गए, नहीं हुई नहीं बैठे। जगत कुछ कहे इसका विकल्प ही व्यर्थ है। मैं तो चरणानुयोग इतना ही मानता हूँ—जिससे संक्लेश

परिणाम हो मत करो। पं० जीसे हमारी इच्छाकार। अति-योग्यतम व्यक्ति हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४०]

श्रीयुत क्षु० मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आपके २ पत्र मिले, मैंने उत्तर दे दिया। आप सानन्द धर्म साधन करते हैं मुझे आनन्द है। संसारमें जिसने आत्मीय कल्याणको कर लिया यही महती महत्ता है। प्रशंसा निन्दा तो कर्मकृत विकार है। जो मोक्षमार्गी है वह दोनोंसे परे है। यहां पर सरदी बहुत पड़ती है। अतः मैंने यही निश्चय किया जो दो मास एक स्थान ही पर बिताऊं ? आप भी मेरठ मुजफ्फरनगर आदि स्थानों पर ही विताइए। यहां आना अच्छा नहीं। फागुन मासमें मै आपको लिखूंगा। साथमें ब्रह्मचारी हों उनसे इच्छाकार। गृहस्थोंसे दर्शनविशुद्धि।

अगहन वदी ८,
स० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४१]

श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आत्माकी निर्मल परिणति ही स्वमार्गमें सहायक होती है। अन्य सर्व व्यवहार है। अब इस प्रान्तमें आवो तब शीतऋतु बाद आना। तथा आपके पास जो त्यागी वर्ग हो उससे हमारा इच्छाकार कहना। स्वावलम्बन

ही तो श्रेयोमार्ग है। आपका स्वास्थ अच्छा रहे इसमें आपका ही नहीं जनताका भी कल्याण है। हमारी तो अब वृद्धावस्था है। एक स्थान पर ही निवासकी इच्छा है, क्योंकि अब विशेष भ्रमण नहीं कर सकते।

अगहन सुदी ४, सं २ ६ } आ शु चि
गणेश वर्णी

नोट—हमारी तो यह भावना है—आप उसी प्रान्तमें एक केन्द्र बनावें जहाँ मुमुक्षु जीवोंको स्थान मिल सके। ज्ञानचरित्र पाने का यही फल है।

[५–४२]

श्रीयुत १०५ मनोहरलाल जी क्षुल्लक, योग्य इच्छाकार

ज्ञानम्रसे धर्मसाधन करो, कोई किसी का नहीं। आत्मा सर्व रूपसे स्वतन्त्र है। आपने जो निर्मलता पायी है वह तुम्हारे संस्कारका साभिव्यक्तिका कार्य है। इसका सदुपयोग कर ही रहे हो। विशेष क्या लिखें? हम तो यही चाहते हैं जो किसीकी परतन्त्रता न हो। अब हमारा विचार एक स्थान पर रहनेका है। अभी यहीं पर ही हैं। यहां से प्रस्थान करेंगे, लिखेंगे।

अगहन सुदी ११ } आ शु चि
सं २ ६ } गणेश वर्णी

[५–४३]

श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल वर्णी योग्य इच्छाकार

यह तो ध्रुव सत्य है जो मोह के सद्भाव में आत्मकल्याण असम्भव है। तथा मोह का अभाव कैसे हो इस चिन्ता से कुछ

कार्य की सिद्धि नहीं। तत्त्वदृष्टिसे यह स्वाभाविक परिणमन तो है नहीं फिर भी तद्वत् ही अनादिसे आ रहा है। अनादि होने पर भी पर्य्यायोंका अन्त देखा जाता है। अतः इसके विषयमें चिन्ता करना मैं उपयुक्त नहीं मानता। अब मेरा विचार एक स्थान पर रहनेका है। क्या होगा कुछ नहीं कह सकता।

पौष बदी ३, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-४४]

महाशय श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल'जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप स्वयं बहुज्ञानी हैं किन्तु जहाँ तक बने उपेक्षास्त्र को न भूलना। रागांश भी राग ही है, अतः प्रत्येक समयका भी बन्ध करनेवाला है। वैसे तो एक समय जो औदायिक राग होगा वह जितना होगा बन्धक और विकारी ही होगा। मेरी भावना अब गिरिराज पर ही रहने की हो गयी। यह प्रान्त छोड़ दिया है। आप को अब कुछ काल जबलपुर और सागरको भी देना चाहिये। मैं आदेश नहीं करता। किन्तु प्रान्तका ध्यान जब तक राग है रखना ही चाहिये। विशेष क्या लिखूं। मैं वैसाखमें जहां हूँगा आपको लिखूंगा। मेरी तो वृद्धावस्था है, पक्वपान हूँ।

कटनी
फा० वदी ३०, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० चम्पालालजी सेठी

श्रीमान् ब्र० चम्पालाल जी सेठी का जन्म वि० सं० १९२८ में मन्दसौर में हुआ था। पिताका नाम गुलाबचन्दजी और जाति बघेरवाल थी। संस्कृत शिक्षाके साथ इन्होंने राजवार्तिक और पञ्चाध्यायी आदि उच्चकोटिके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था।

गृहस्थावस्थामें रहते हुए भी इनका चित्त आत्मकल्याणकी ओर विशेष था, इसलिए धीरे धीरे ये गृहस्थावस्थासे विरक्त होकर मोक्षमार्गमें लग गये। ये ब्रह्मचर्य प्रतिमाका उत्तम रीतिसे पालन करते थे।

पूज्य वर्णीजी की चर्चा और उपदेशोंका इनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वर्णीजीके सहवाससे बहुत समय तक ये और श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत श्री १०५ क्षु० मनोहरलालजी वर्णीके साथ रह कर उत्तरप्रान्तीय जैन गुरुकुल हस्तिनापुरकी सेवा करते रहे। हृदय स्वच्छ होनेसे इनका समाज पर स्थायी प्रभाव दृष्टिगोचर होता था।

सम्भवतः इनका स्वर्गवास चार वर्ष पूर्व कुण्डलपुरमें हुआ था। ऐसे योग्य व्यक्तिके असमयमें चल जानेसे समाजकी महती क्षति हुई है। यहाँ पर पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें और इनके अन्य साथियोंको संयुक्तरूपमें लिखे गये पत्र दिये जाते हैं।

[६-१]

श्रीयुत महाशय पं० मनोहरलालजी व ब्र० श्रीयुत चम्पालालजी

योग्य इच्छाकार

वनारस में सर्वार्थसिद्धि उत्तम संस्करण में छप रही है। अतः आप भी गुरुकुल के वास्ते २५ पुस्तकें ले लो। मूल्य पहले भेजने से जल्दी मुद्रित हो जावेगी। २००) में २५ पुस्तकें आजावेंगी। प० फूलचन्दजी छपा रहे है। पुस्तक अच्छी लिखी है।

६-२]

योग्य इच्छाकार

आप लोग सानन्दसे रहें। कषायकी समानता ही में लक्ष्य की सिद्धि होगी। एकजन्य मैत्रीभाव रखना क्या कठिन है, आप लोग विज्ञ हैं। उसका उपयोग करना ही तो कल्याणपथका साधक है। हम ८ दिन बाद जबलपुर पहुँचेंगे। इसका यह अर्थ न लगाना जो हम आपको उपदेश करते हैं। प्रत्युत यह अर्थ करना जो आपकी सद्भावनाको पुष्ट करते हैं। स्वास्थ्यके लिये द्वितीयेन्द्रिय पर विजय आवश्यक है। इन्द्रियोंमें रसना, व्रतोमें ब्रह्मचर्य, गुप्तिमें मनोगुप्ति, कर्म में मोहनीय प्रबल हैं। हम तो आजन्म असम्बद्ध मन रहे। उसका फल अच्छा नहीं पाया। अतः अनुभवसे कहते हैं कि मनोवृत्ति स्वच्छ रखना शूरका काम है। आप दोनों शूर हैं। अत उसमें वृद्धि करना।

शान्तिकुटी
मढ़ियाजी जबलपुर

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-३]

श्रीयुत महाशय प० मनोहरलालजी व श्रीयुत प० चम्पालाल जी व श्रीयुत स्वागी सुमेरचन्द्रजी योग्य इच्छाकार

मेरी तो यह सम्मति है जो उस प्रान्तमें मेरठकी आब-हवा बहुत उत्तम है, परन्तु हम लोगोंमें इतनी उदारता कहाँ जो अपने द्रव्यका दूसरी जगह प्रदान करें? परकी मूर्च्छा ही परिग्रह है। अपने रागादिकों दूर करनेका उपाय यही है जो इन पर पदार्थोंके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जाय। जिस वस्तुको हम दुःखकर जानते हैं उसका वकर भी अपनाते हैं। इस त्यागका कोई महत्त्व नहीं। सबसे महती त्रुटि तो हम लोगोंमें यह है जो हम दान देकर कर्त्ता बनते हैं। कर्त्ता ही नहीं यहाँतक अभिमानकी मात्रा बढ़ जाती है जो अन्यको तुच्छ देखने लगते हैं। जो देकर मान चाहते हैं उनने लोभका त्याग नहीं किया। यदि लोभ करते मान न मिलता। अस्तु, जो बने सो करो। दुःखी न होना, पर पदार्थोंका परिणमन स्वाधीन नहीं। हमको बड़े वेगसे पुराने मित्रने वही रूप दिखाया जो शरीरमें था। आज रात्रि बड़े आनन्दसे बीती। नींद का नाम न था। संसारमें यही होता है। आप लोक व्यग्रतामें न पड़ना। जितनी विशुद्धि रखोगे उतना ही अच्छी काम बनेगा। और जितनी अहम्बुद्धि करोगे देर से काम होगा।

आ शु चि०
गणेश वर्णी

[६-४]

श्रीमान् महाशय प्र० मनोहरलालजी व श्रीमान् महाशय सेठी चम्पालालजी व महोदय सुमेरचन्द जी, योग्य इच्छाकार

आप लोग आनन्द कालका सदुपयोग कर रहे हैं, यह अपार

हर्षका सुअवसर है। किन्तु इतनी हमारी आशा है जो आगामी चतुर्मास्यमें आप लोगोका शुभ समागम हमको प्राप्त हो। यद्यपि आप लोग विज्ञ हैं तथा साथमें ससारसे भयभीत भी हैं। शायद समागममें उसकी त्रुटि आप लोग देखें। तथापि जहाँ तक होगा हमसे त्रुटि न होगी।

जगत एक जाल है। इसमें हम जैसे अल्प सत्त्ववालोका फॅसना कोई बड़ी बात नहीं। आप सानन्दसे जीवन बिताओ।

मढ़ियाजी पो॰गढ़ा (जबलपुर) }

आ॰ शु॰ चि॰
गणेश वर्णी

[६—५]

योग्य इच्छाकार

आप लोगों का पत्र खूबचन्दजीके पास आया। बांचकर आनन्द हुआ। प्रारम्भ में तो ऐसा ही होता है। अस्तु, यदि नगरवासियों का अन्तरङ्ग न हो, तब तो प्रयास न करना ही श्रेयस्कर होगा। यदि नगरवाले अन्तरङ्गसे इसे अपनावें तब जो विचार है, उपयोग में लाना। यहाँ भी वही प्रश्न है—स्नातक होने बाद क्या करेंगे, क्या भिक्षा मॉगेंगे? जो भिक्षा एक दिन अमृत माना जाता था आज वह विषरूप हो गया। जो वैयावृत्ति, एक दिन आभ्यन्तर तपकी गणनामें थी तथा निर्जराकी साधक थी, आज वही तप ग्लानिमें गणनीय हो गया। यह सब हमारी अज्ञानता का विलास है। जो सिद्धान्तका ज्ञान आत्म-परके कल्याण का साधक था आज उसे लोगोंने आजीविकाका साधन बना रक्खा है। जिस सिद्धान्तके ज्ञानसे हम कर्मकलङ्कका प्रक्षालन करनेके अधिकारी थे, आज उसके द्वारा धनिकवर्गोंका स्तवन किया जाता है। यह सिद्धान्तका दोष नहीं, हमारी मोहकी बल-

बना है। अतः हमको निज परिणयके साधक सिद्धान्तका सदुपयोग कर, कल्याणपथको सरल बनाना चाहिए। आप लोगोंसे मेरा यह कहना है, जहाँ तक बने, धन्दा करना, परन्तु दैन्यभाव न आवे। आत्मा अनन्तज्ञानका पात्र है तथा अनन्तसुखका धनी है। परन्तु हम अपनी अज्ञानताके ही वशीभूत हो दुखराश के पात्र बन गए हैं। आपका समागम हमें इष्ट है, परन्तु आप लोग ही चले गए। हम प्रतिज्ञा करते हैं—आप लोग जो कहेंगे, करेंगे। किन्तु एक वर्ष एक प्रान्त में रहनेका विचार है। अनन्तर जहाँ आप कहेंगे, वहाँ ही चलेंगे। किन्तु आप लोगोंको स्थिर रहना चाहिए। अथवा जहाँ आप लोगोंका उपयोग स्थिर हो, रहिए। कल्याणका लक्ष्य रखिए। मैं यह आग्रह नहीं करता जो यहीं ही आना चाहिए। सदयाधीन कार्य होता है। हम भी उसीके आधीन हैं। फिर विकल्प क्यों करना। जो जो देखी वीतरागने सा सो होसी वीरा रे। अथवा जो भवितव्य होगा सो होगा, क्यों विकल्प करना।

पौष वदी १ सं २ १ } आ० शु चि
गणेश वर्णी

[६-६]

योग्य इच्छाकार

भगवन्! आपका संघ रत्नत्रयका काम करे। मैं तो चम्पाका सम्यग्दर्शन मनोहरको सम्यग्ज्ञान, भगतका सम्यक्चारित्र समझता हूँ। यदि आप लोग संघशक्तिसे काम लेवेंगे तब अवश्य सफलीभूत होंगे; अन्यथा नहीं। हमारे प्राचीन मित्र (मलेरिया) हो परीक्षा आते हैं और यह उपदेश करते हैं—सचेत हो जाओ। तुम्हारी इतनी भी शक्ति नहीं जो हमसे सम्बन्ध छोड़

सको, तब भला संसारसे सम्बन्ध छोडोगे, दूर है। कल्याणके पथमें सबसे बाधक लोकेषणा है, जिसको प्राय: त्यागी गण अपनाने लगे हैं। कहनेको तो हम भी कहते है, आप लोग भी कहते हैं। परन्तु यह गल्पवाद है। न मानो, हृदयसे पूँछ लो। आप लोगोंसे जो हमारा सम्बन्ध है वह ही एक तरहकी बला है। मैं तो इसे भी रोग मान रहा हूँ।

पौष सुदि १३, सं० २००२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[६-७]

योग्य इच्छाकार

आप जानते हैं, ससारकी पद्धति इतनी गम्भीर है जो इसका अनुभव प्रत्येकको नहीं हो सकता। व्यर्थ ही मायावी बनते हैं। सबसे प्रबल यही कषाय है। इसका जलाना अति कठिन है। मेरा तो यह विश्वास है जो मैं अपनी रक्षा अभी तक इन कषायोंसे नहीं कर सका। पत्र लिखनेमें संकोच होता है। केवल सस्कारके बलसे लिख देता हूँ। निर्मलता कुछ और है, कह देना कुछ और है। मेरी वहाँके सर्व बन्धुओंसे दर्शनविशुद्धि। यदि वास्तवमें गुरुकुल खोलना है तब वह छात्र उत्तरकालमें क्या करेंगे, इस विकल्पको त्यागकर निर्ममत्वसे द्रव्यका सदुपयोग करिये और यथोचित करिये। उत्तम विद्वानको अध्यापक रखिए। वह छात्र प्रवेश करिये जो अपना जीवन इसमें लगा देवें। जिनको उत्तरकालमें आजीविकाकी चिन्ता रहेगी वह इस विद्यासे प्रेम न करेंगे। तथा आप ऐसा प्रबन्ध करिये जो स्नातक निकलेंगे, उन्हें आजन्म १००) मासिक यह संस्था देगी इत्यादि। हम तो जबलपुर आकर फँस

जिस समय यह स्वात्मानुभव करता है उन दोनों अवस्थाओंमें चतुर्थगुणस्थान ही तो रहता है। कषायकी तरतमता रही, विशेष कुछ नहीं। तथा एक कालमें दो अनुभव नहीं होवे। पत्र पहिले दिया है सो जानना। मेरा श्री नेमिचन्द्रजी वकील तथा रतनचन्द्रजी साहबसे दर्शनविशुद्धिः।

कार्तिक सुदी १५ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[६-११]

योग्य इच्छाकार

मैंने आपसे आनेको कह दिया था; परन्तु पश्चात् आत्माने निषेध कर दिया। अतः अब नहीं आऊँगा। देखो! संसारमें सबसे बड़ा बन्धन स्नेहका है। यही मूल संसारकी है। संसारमें जिसने स्नेह त्याग दिया वही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका पात्र होता है। मैं बहुत विचार करता हूँ जो इन गृहस्थोंके चक्रमें न आऊँ। परन्तु ऐसी *परिस्थिति* है जो इस चक्रसे *निकलना* कठिन है। यह विचार किया था जा गोपरेके बागमें इस आपत्तिसे बच जाऊँगा सो वहाँ भी वही आपत्ति। प्रथम तो गृहस्थका त्याग एक चक्र, दूसरा भोजन आगमविरुद्ध, तीसरा जो चाहे जब चाहे आता है और उपदेश दे जाता है। जो आता है गुरु बनकर ही आता है, शिष्य कोई नहीं बनना चाहता। यही कहा जाता है कि आपकी सरलता ही आपके गुणोंके विकासमें बाधक है, वास्तविक बात है। मनमें आता है कि निर्जन स्थानमें रहूँ। शक्तिविकलता रोक देती है। स्थान ऐसा नहीं जो गाममें आकर चर्या करूँ, स्वतन्त्र धर्मसाधन करूँ। परन्तु मैं अपने असुभवसे कहता

हूँ जो मैं इनके चक्रमें पड़ गया हूँ, परन्तु आपको सम्मति देता हूँ जो इस चक्रमें न पड़ना।

लाला सुमेरचन्दजी। आप अधिष्ठाता पदके व त्यागीसम्मेलनके चक्रमें न पड़ो। श्री मनोहर तो निकल गये। आप लोगोंको निकलनेका मार्ग बता गए। कल श्री चिदानन्दजीके त्यागके अवसर पर अवश्य आऊँगा। आजके दिन ये भाव हैं। कभी स्थिर भी हो जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

गए। कोई वास्तविक लाभ न हुआ। बड़ लाला वेकर भी यही चिन्ता लोगोंको है कैसा शिक्षण दिया जावे। हमारा स्वास्थ्य अब पकपत्रके सदृश है, परन्तु हमें चिन्ता नहीं।

पौष सुदी ५ } आ शु० चि
सं २ ०९ } गणेश वर्णी

[६-८]

योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। आज हम बाहर आ रहे हैं। संसारकी लीला देख ज्ञाता-दृष्टा रहना। कोई पदार्थका किसी पदार्थसे तात्त्विक सम्बन्ध नहीं। जो है उसे कोई वारण नहीं कर सकता यह हम भी जानते हैं। आप ता बीन हैं फिर भी मोहकी बल-वत्ता प्रबल है या बलात्कार परको आत्मीय मानता है तथा परको मनानेकी चेष्टा करता है। यही बात हममें है। इसीसे दुःखी हैं, वे और रहेंगे। परन्तु यह जो शिक्षा रहे हैं सो अन्तःकरण से। इससे यह निश्चय है जो जिनवाक्यमें श्रद्धा है वही इस आशसे मुक्त होनेका मार्ग है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[६-९]

योग्य इच्छाकार

कषायका परिणमन जिस समय आत्मामें हो रहा है उसका ज्ञान सम्यग्दृष्टिके है तब उस समय भेदज्ञानमें कौन सी बाधा है। जिस समय मुनि अपने उपयोग द्वारा आर्तध्यानरूप हो रहा है उस समय क्या उसके भेदविज्ञान नहीं है ? कषायसे भेदज्ञानमें

बाधा नहीं। वास्तवमें भेदविज्ञानका बाधक मिथ्यात्व है। उसका जिसके अभाव हो गया उसके सर्व अवस्थामें ज्ञान सम्यक् है।

मेरा स्वास्थ्य यथा अवस्था कभी अच्छा और कभी विपरीत हो जाता है। सर्वसे बड़ी अनुकम्पा मलेरियाकी रहती है। वह चिरपरिचित है। अतः उसके सद्भावसे मैं प्रसन्न हूँ। एक प्रकारकी असाताकी उदीरणा अनेक प्रकारकी वेदनासे उत्तम है। जिस कार्यको प्रारम्भ किया उसे पूर्ण करना। हमारे सदृश अव्यवस्थित चित्त न होना। जिनधर्मका विकाश धार्मिक संस्थाओंसे ही होगा। स्वास्थ्यसे यह कार्य कम नहीं। निर्जराका कारण तो अन्तरङ्ग मोहकी कृशता है। सो कार्यके कर्त्ता अभिप्रायसे न बनो। वचनोंमें कर्तृत्वव्यवहार बन्धका साधक नहीं।

आप तीनोंकी एकता ही कार्यकी साधक होगी। विशेष क्या लिखें—चपलता न करना। मेरा वकील सा० व मुख्तार सा० से दर्शनविशुद्धि कहना। यहाँसे क्षुल्लकजी व चिदानन्दजी चले गए। सागरमें श्री चिदानन्दजी हैं। आप किसीके कहनेमें न आना। यह उदासीनाश्रम कुछ नहीं, समाजका पैसा बर्बाद करने का एक यह भी फालतू कार्य है।

माघ बदी १३, सं० २००२ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[६-१०]

योग्य इच्छाकार

भेदविज्ञानका अनुभव हो, चाहे कषायका अनुभव हो, बन्ध का कारण अन्तरङ्ग अभिप्राय है। मेरा भी यही विश्वास है—जिस समय अविरतसम्यग्दृष्टि विषयानुभव करता है उस समय तथा

जिस समय वह स्वात्मानुभव करता है उन दोनों अवस्थाओंमें चतुर्थगुणस्थान ही तो रहता है। कषायकी तरतमता रही, विशेष कुछ नहीं। तथा एक कालमें दो अनुभव नहीं होवे। पत्र पहिले दिया है सो जानना। मेरा श्री नेमिचन्दजी वकील तथा रतनचन्दजी साहबसे दर्शनविशुद्धिः।

कार्तिक सुदी १५ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[६-११]

योग्य इच्छाकार

मैंने आपसे आनेको कह दिया था; परन्तु पश्चात् आत्माने निषेध कर दिया। अत अब नहीं आऊँगा। देखो! संसारमें सबसे बड़ा बन्धन स्नेहका है। यही मूल संसारकी है। संसारमें जिसने स्नेह त्याग दिया वही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका पात्र होता है। मैं बहुत विचार करता हूँ जो इन गृहस्थोंके चक्रमें न आऊँ। परन्तु ऐसी परिस्थिति है जो इस चक्रसे निकलना कठिन है। यह विचार किया था जो गोदरेके बागमें इस आपत्तिसे बच जाऊँगा सो वहाँ भी वही आपत्ति। प्रथम तो गृहस्थका बाग एक चक्र, दूसरा भोजन आगमविरुद्ध, तीसरा जो चाहे सब चाहे आता है और उपदेश दे जाता है। जो आता है गुरु बनकर ही आता है, शिष्य कोई नहीं बनना चाहता। यही कहा जाता है कि आपकी सरलता ही आपके गुणोंके विकाशमें बाधक है, वास्तविक बात है। मनमें आता है कि निर्जन स्थानमें रहूँ। शक्तिविकलता रोक देती है। स्थान ऐसा नहीं जो मासमें आकर चर्या करूँ, पश्चात् स्वतन्त्र धर्मसाधन करूँ। परन्तु मैं अपने अनुभवसे कहता

हूँ जो मैं इनके चक्रमें पड़ गया हूँ; परन्तु आपको सम्मति देता हूँ जो इस चक्रमें न पड़ना।

लाला सुमेरचन्दजी! आप अधिष्ठाता पदके व त्यागीसम्मेलनके चक्रमें न पड़ो। श्री मनोहर तो निकल गये। आप लोगोंको निकलनेका मार्ग बता गए। कल श्री चिदानन्दजीके त्यागके अवसर पर अवश्य आऊँगा। आजके दिन ये भाव हैं। कभी स्थिर भी हो जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० दीपचन्द्रजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० दीपचन्द्रजीका जन्म होशंगाबाद जिलेके नरसिंह पुरमें माघ शुक्ला ५ वि. सं. १९३९ को हुआ था। पिताका नाम बजाज नाथूरामजी और जाति परवार थी। इनकी शिक्षा हिन्दीमें मामूली तक और इंगलिशमें मिडिल तक हुई थी। अभ्यास द्वारा चित्रकला और सिलाई आदिमें तथा ब्रह्मचारी होनेके बाद धर्मशास्त्रमें इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की थी।

इनके क्रमशः दो विवाह हुए थे। किन्तु दोनों पत्नियोंका वियोग हो जाने पर इनका चित्त संसारसे हटकर आत्मसाधनाकी ओर गया। ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके पूर्व कुछ दिन तो वे पिताजीके साथ व्यापार करते रहे और उसके बाद शिक्षकका काम करने लगे।

इनकी दूसरी पत्नीका वियोग वि. सं. १९६० में हुआ था। अनन्तर १९६१ में इन्होंने श्री १०५ ऐलक पन्नालालजीके पास ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली और कुछ काल बाद पूज्य वर्णीजी वा पूज्य बाबा भागीरथजीके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

वे स्वभावके बड़े निर्भीक और कष्टसहिष्णु थे। लेखक और वक्ता भी उच्च कोटिके थे। सागर विद्यालय व दूसरी संस्थाओंकी सार सम्हाल करना और समाजकी सेवा करते रहना यही इनकी दिनचर्या थी। समाजमें ऐसा निःस्वार्थ समाजसेवी त्यागी होना दुर्लभ है। फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा वि. सं. १९९७ को समाधि पूर्वक इन्होंने इह लीला समाप्त की थी।

पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष भक्ति होनेसे इनका अधिकतर समय वर्णीजीके सान्निध्यमें व्यतीत होता था। यदा कदा वियोग होने पर उसकी पूर्ति पत्रव्यवहारसे होती थी। उन्हींके उपलब्ध हुए पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

[७–१]

श्रीमान् वर्णीजी, योग्य इच्छाकार !

पत्र न देनेका कारण उपेक्षा नहीं किन्तु अयोग्यता है। मैं जब अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो उपदेश देनेकी कथा तो दूर रही अभी मैं सुनने और वांचनेका भी पात्र नहीं। वचन चतुरतासे किसीको मोहित कर लेना पाण्डित्यका परिचायक नहीं। श्रीकुंदकुंदाचार्यने कहा है—

> किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो ।
> अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स ॥

अर्थ—समताके बिना वननिवास और कायक्लेश तथा नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नहीं। अत. इन बाह्य साधनोंका मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्यमें अतत्परता ही मोक्षमार्गका घातक है। जहाँ तक हो इस पराधीनताके भावोंका उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझमें नहीं आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखनेकी होती है परन्तु जब स्वकीय वास्तविक दशापर दृष्टि जाती है तो अश्रुधाराका प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन्! तूने यह मानव पर्यायको पाकर भी निजतत्त्वकी ओर लक्ष्य नहीं दिया। केवल इन बाह्य पचेन्द्रिय विषयोंकी निवृत्तिमें ही संतोष मानकर ससारको क्या अपने स्वरूपका अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विषयक अभिलाषाकी अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्गमें सवरतत्त्व ही मुख्य है। निर्जरा तत्त्वकी महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्यागम अथवा जीवनशून्य सरीर अथवा नेत्रहीन मुखकी तरह है। अत जिन जीवोंको मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य

ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओंके उत्पादक परम्परानुमार्गोंकी पद्धति प्रतिपादित साधनोंकी ओर लक्ष्य स्थिर कर निरंतर स्वात्मोत्थ सुधामृतके अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओंकी प्रबल सेनाका विध्वंस करनेमें भागीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जाय किन्तु व्यर्थ न जाय इसमें तत्पर होना चाहिये। कहाँतक प्रयत्न करना उचित है? जहाँतक पूर्ण ज्ञानकी पूर्णता न होय।

> भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
> तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम्॥

अर्थ—तबतक ही यह भेदविज्ञान अखंडधारासे है कि जब तक परद्रव्यसे रहित होकर ज्ञान ज्ञानमें (अपने स्वरूपमें) ठहरता है, क्योंकि सिद्धिका मूलमंत्र भेदविज्ञान ही है। यही श्रीआत्मतत्त्वरसास्वादी अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

> भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
> तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

अर्थ—जो कोई भी सिद्ध हुये हैं वे भेदविज्ञानसे ही सिद्ध हुये हैं और जो कोई बंधे हैं वे भेदविज्ञानके न होनेसे ही बन्धको प्राप्त हुये हैं।

अतः अब इन परनिमित्तक मेयामागकी प्राप्तिके प्रयत्नमें समयका उपयोग न करके स्वायत्तनयनकी ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्थामें महती उपयोगिनी रामबाण तुल्य अचूक औषधि है। तदुक्तम्—

> इतो न किंचित् परतो न किंचित् यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
> विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित्॥

अर्थ—इस तरफ कुछ नहीं है और दूसरी तरफ भी कुछ

नहीं है तथा जहां जहां मैं जाता हूँ वहां वहां भी कुछ नही है। विचार करके देखता हूँ तो यह ससार भी कुछ नहीं है। स्वकीय आत्मज्ञानसे बढ़कर कोई नही है।

इसका भाव विचार स्वावलवनका शरण ही संसारबधनके मोचनका मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो संवर ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका मूल है।

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है और अज्ञानकी अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिककी अनुत्पत्ति यथाख्यातचारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है। अत. संवर ही दर्शन-ज्ञान-चारित्राराधनाके व्यपदेशको प्राप्त करता है तथा इसीका नाम तप है, क्योंकि इच्छानिरोधका नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ़ विश्वास है जो इच्छाका न होना ही तप है। अतः तप आराधना भी यही है। इस प्रकार सवर ही चार आराधना है, अत परसे श्रेयोमार्गकी आकांक्षाका त्याग ही श्रेयोमार्ग है।

सागर }   आ. शु. चि
                                              गणेश वर्णी

[७-२]

श्रीयुत् महानुभाव प० दीपचन्द जी वर्णी, इच्छाकार

कारणकूट अनुकूलके असद्भावमे पत्र नहीं दे सका। क्षमा करना। आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है। अब हमें आवश्यकता इस बातकी है कि प्रभुके उपदेशके अनुकूल प्रभुकी पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु इव प्रभुताके पात्र हो जावें यद्यपि अध्यवसान भाव पर निमित्तक हैं। यथा—

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः ।
तस्मिन् निमित्तं पर सङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

आत्मा आत्मा संबंधी रागादिककी उत्पत्तिमें स्वयं कदाचित् निमित्तताको प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिकके उत्पन्न होनेमें अपने आप निमित्त कारण नहीं है किन्तु उनके होनेमें परवस्तु ही निमित्त है। जैसे अर्ककान्त मणि स्वयं अग्निरूप नहीं परणमता है किन्तु सूर्यकिरण उस परिणमनमें कारण है। तथापि सत्ता परमार्थकी गवेषणामें वह निमित्त क्या बलात्कार अध्यवसान भावके उत्पादक हो जाते हैं ? नहीं, किन्तु हम स्वयं अध्यवसानमें उन्हें विषय करते हैं। जब ऐसी वस्तु मर्यादा है। तब पुरुषार्थ कर उस संसारजनक भावोंके नाशका उद्यम करना ही हम लोगोंका इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोगकी पद्धतिमें निमित्तकी मुख्यतासे व्याख्यान होता है और अध्यात्मशास्त्रमें पुरुषार्थकी और उपादानकी मुख्यतासे व्याख्यान पद्धति है और प्राय हमें इसी परिपाटीका अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा। शरीरकी क्षीणता यदि तत्त्वज्ञानमें बाह्यदृष्टिसे कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियोंकी प्रवृत्तिमें उतना बाधक नहीं हो सकती यदि वेदनाकी अनुभूतिमें विपरीतताकी कणिका न हो तब मेरी समझमें हमारी ज्ञानचेतनाकी कोई क्षति नहीं है।

विशेष नहीं लिख सका। आजकल यहां मलेरियाका प्रकोप है। प्रायः बहुतसे इसके ग्रस्त हो चुके हैं। आप लोगोंकी अनुकम्पासे मैं अभी तक तो कोई आपत्तिका पात्र नहीं हुआ। कलकी चिन्ता ज्ञान जाने। अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखनेकी चेष्टा करूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७-३]

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया। आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है यह केवल मोहज परिणामकी वासना है। आपके साहसने आपमें अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको ससार यातनाओंसे मुक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक्चातुर्य्यमें मोक्षमार्ग नहीं। मोक्षमार्गका अकुर तो अतःकरणसे निज पदार्थमें ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन, काय क्या जानें। यह तो पुद्गल द्रव्यके विलास हैं। जहा पर इन पुद्गलकी पर्यायोंने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टाको इस ससारचक्रका पात्र बना रक्खा है। अत अब तमोराशिको भेदकर और चन्द्रसे परपदार्थ जन्य आतापको शमन कर सुधासमुद्रमें अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यताके पात्र बनिये। वह पात्रता आपमें है। केवल साहस करनेका विलम्ब है। अब इस अनादि ससार जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही कार्य सिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ, लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धिसे है। विशुद्धिका प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्मग्रन्थोंकी चिन्तना है। अत इस दशामें परमात्मप्रकाशग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीतिसे इस ग्रन्थमे संलग्न हो जाता है। उपक्षीण कायमें विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्यका बाधक होता है, अत. आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्मध्यानमे अपना समय यापन कीजिये। शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्राय. सबकी है, परन्तु कोई भीतरसे दु खी है तो कोई बाह्यसे

दुःखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमें अघातिकर्म असाताकर्मजन्य है। वह आत्मगुणघातक नहीं। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है। जो कि आत्मगुणघातक है। अतः आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दुःखके पात्र नहीं। अतः आपको अब बड़ी प्रसन्नता इस बातकी होनी चाहिये जो मैं आभ्यन्तर रोगसे मुक्त हूँ।

मढ़ियाजी जबलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

पं० छोटेलालसे दर्शनविशुद्धि। भाई साहब एक धर्मात्मा और साहसी वीर हैं उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है जो निर्जराका हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नहीं जो इतने धीरवीर भरवीर दुससीप बन्धुकी सेवा कर सकें।

[७-४]

श्रीयुत वर्णीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मिला। मैं बराबर आपकी स्मृति रखता हूँ किन्तु ठीक पता न होनेसे पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा आप धर्मात्माओंके प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभुके चरणप्रसादसे बहुत ही उत्तम भावोंसे हुई। मार्गमें अपूर्व शांति रही। कंटक भी नहीं लगा। तथा आभ्यन्तरकी भी अशान्ति नहीं हुई। किसी दिन तो १९ मीलतक चला। खेद इस बातका रहा कि आप और बाबाजी साथमें न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहाँ ? अस्तु। आप श्रीमोक्षमार्गप्रकाश और समाधिशतक समयसारका ही स्वाध्याय करिये। और विशेष त्यागके विकल्प में न पड़िये। केवल समताके परिणामोंके

द्वारा ही वास्तविक आत्माका हित होता है। काय कोई वस्तु नहीं तथा आप ही स्वयं कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प? भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक है आप बुद्धिपूर्वक स्वयं त्याग रहे हैं। मेरी तो यही भावना है—प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्माको इस वचनके तोड़नेमें अपूर्व सामर्थ्य दें। आपके पत्रसे आपके भावोंकी निर्मलताका अनुमान होता है। स्वतंत्र भाव ही आत्मकल्याणका मूल मत्र है। क्योंकि आत्मा वास्तविक दृष्टिसे तो सदा शुद्ध ज्ञानानद स्वभाववाला है। कर्म कलंकसे ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करनेकी जो विधि है उस पर आप आरूढ़ हैं। बाह्य क्रियाकी त्रुटि आत्म-परिणामकी बाधक नहीं और न मानना ही चाहिये। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता, वह अशुद्धोपयोगकी है न कि मन, वचन, कायके व्यापारकी। इस पर्यायमें हमारा आपका तभी सम्बन्ध हो। परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तरमें अवश्य मिलेंगे। अपने स्वास्थ्यसम्बन्धी समाचार अवश्य एक मासमे १ बार दिया करें।

बरुवासागर
चैत्र सुदी १, सं० १९९२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७–५]

श्रीयुत प० दीपचन्द जी धर्मरत्न, इच्छामि

पत्र पढ़कर सन्तोष हुआ। तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रावणप्रत्यक्ष करा दिया। सब लोग आपके आशिक रत्नत्रयकी भूरिश: प्रसंशा करते है।

प० भूधरदास जी की कविता आपके ऊपर नहीं घटती।

आप सूर हैं। वेदकी दशा जैसी कविने प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमे हमारा क्या घात हुआ? यह हमारी बुद्धि-गोचर नहीं हुआ। घटके घातसे दीपकका घात नहीं होता। पदार्थका परिचायक ज्ञान है। अतः ज्ञानमे ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या तद्रूप हो गया।

> पूर्णैकमच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयम्।
> यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादपि॥
> तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो।
> रागद्वेषमयी भवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम्॥

पूर्ण अद्वितीय नहीं च्युत है शुद्ध बोधकी महिमा जाकी ऐसा जो आत्मा है वह कभी भी बोध्य पदार्थके निमित्तसे प्रकाश्य (घटादि) पदार्थसे प्रदीपकी तरह कोई भी विक्रियाको प्राप्त नहीं होता है। इस मर्यादाविषयक बोधसे जिसकी बुद्धि वन्ध्या है व अज्ञानी हैं। वे ही रागद्वेषादिकके पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते हैं। आप विज्ञ हैं कभी भी इस असत्य भाव को अवलम्बन न देवेंगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते हैं और मरेंगे। इससे क्या आया। एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमें कौनसी आश्चर्यकी घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषोंको विचार कोटिसे पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाताके उदय आदि कारणकूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञानमे आयी, क्या वस्तु है? परमार्थसे विचारा जाय तो यह एक तरह से सुख गुणमें विकृति हुई वह हमारे ध्यानमें आयी। उसे हम नहीं चाहते। इसमे कौनसी विपरीतता हुई? विपरीतता तो तब होती है जब हम उसे निज मान लेवे। विकारज परिणतिको पृथक् करना अप्रशस्त नहीं, अप्रशस्तता तो

यदि हम उसीका निरन्तर चिन्तवन करते रहें और निजत्वको विस्मरण हो जावें तब है।

अतः जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदरभावसे व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुषकी तरह आनन्दसे साधुकी तरह प्रस्थान करना चाहिये। निदानको छोड़ कर आर्त-भय षष्ठ गुणस्थान तक होते हैं। दूसरे क्या वह गुण-स्थान पलायमान हो गया। थोड़े समय तक अर्जित कर्म आया, फल देकर चला गया। अच्छा हुआ आकर हलकापन कर गया। रोगका निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मतिमें निकलना, रहने की अपेक्षा प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीरकी जीर्ण शीर्ण अवस्था कर निकल रही है तब आपको बहुत आनद मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी न निकलती तब क्या स्वर्गमें निकलती ? मेरी दृष्टिमें केवल असाता ही नहीं निकल रही साथ ही मोहकी अरति आदि प्रकृतियां भी निकल रही हैं, क्योंकि आप इस असाताको सुखपूर्वक भोग रहे हैं। शांतिपूर्वक कर्मोंके रसको भोगना आगामी दुखकर नहीं।

बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ परन्तु ज्ञानकी न्यूनतासे लेखनी रुक जाती है। बन्धुवर! मैं एक बातकी आपसे जिज्ञासा करता हूँ जितने लिखनेवाले और कथन करनेवाले तथा कथन कर बाह्य चरणानुयोगके अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्षवाक्यों पर श्रद्धालु यावत् व्यक्ति हुये हैं, अथवा हैं और होंगे। क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं ? मेरी तो श्रद्धा नहीं। अन्यथा कुन्दकुन्द-स्वामीने लिखा है। 'हे प्रभो! हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिंग न हो' इस वाक्यकी चरितार्थता न होती तो काहेको लिखते। अत पर की प्रवृत्ति देख रञ्चमात्र भी विकल्पको आश्रय न होना ही हमारे लिये हितकर है। आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नहीं, जो आत्म-

हित करनेवाले हैं वह शिर पर आग लगाने पर तथा सर्वाङ्ग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यंत्रादिद्वारा उपद्रित होनेपर मोक्षलक्ष्मीके पात्र होते हैं। मुझे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देखकर इतनी प्रसन्नता होती है, प्रभो! यह अवसर सबको दे। आपकी केवल श्रद्धा ही नहीं किन्तु आचरण भी अन्यथा नहीं। क्या मुनिको जब तीव्र व्याधिका उदय होता है तब वाह्य चरणानुयोग आचरणके असद्भावमें क्या उनके यष्ठ गुणस्थान चला जाता? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरणके समय हे मुने! इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार संगत होता? पीड़ा आदिमें चित्त चञ्चल रहता है इसका क्या यह आशय है पीड़ाका वारंवार स्मरण हो जाता है। हां जाओ, स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथमें यह मान तो रहता है—यह चञ्चलता सम्यक् नहीं। परन्तु मेरी समझमें इसपर भी गंभीर दृष्टि दीजिये। चञ्चलता तो कुछ बाधक नहीं। साथमें उसके अरतिका उदय और असाताकी उदीरणासे दुःखानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करनेकी भावना रहती है। इसीसे इसको महर्षियोंने आर्तध्यानकी कोटिमें गणना की है। क्या इस भावके होनेसे पञ्चम गुणस्थान मिट जाता है। यदि इस ध्यानके होने पर देशव्रतके विरुद्ध भावका उदय श्रद्धामें न हो तब मुझे तो दृढ़तम विश्वास है गुणस्थानकी क्षति भी क्षति नहीं। तरतमता ही होती है वह भी उसी गुणस्थानमें। वे विचारे जिन्होंने कुछ नहीं जाना कहां जावेंगे—कहीं जाओ। हमें इसकी मीमांसासे क्या लाभ। हम विचारे इस भावसे हम कहां जावेंगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानंद जैसा आपकी निर्मल दृष्टिने निर्णीत किया

है द्रव्यदृष्टिसे वैसा ही । परन्तु द्रव्य तो भोग्य नहीं, भोग्य तो पर्याय है, अत उसके तात्त्विक स्वरूपके जो साधक हैं इन्हें पृथक् करनेकी चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोरकी सजा देखकर साधुको भय होना मेरे ज्ञानमें नहीं आता। अत मिथ्यात्वादि क्रियासयुक्त प्राणियोंका पतन देख हमें भय होनेकी कोई भी बात नहीं। हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रयकी तलवार हाथमें आ गई है और वह यद्यपि वर्तमानमें मौथरी धार-वाली है परन्तु है तो असि, कर्मेन्धनको धीरे धीरे छेदेगी। परन्तु छेदेगी ही बड़े आनन्द से। जीवनोत्सर्ग करना, अंस मात्र भी आकुलता श्रद्धामे न लाना। प्रभुने अच्छा ही देखा है। अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते। समाधिमरणके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या परनिमित्त ही हैं ? नहीं।

जहां अपने परिणामोंमें शान्ति आई वहीं सर्व सामग्री है। अत हे भाई! आप सर्व उपद्रवोंके हरणमें समर्थ और कल्याणपथके कारणोंमें प्रमुख जो आपकी दृढ़तम श्रद्धा है वह उपयोगिनी कर्मशत्रुवाहिनीको जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है। मैं तो आपके पत्र पढकर निश्चय कर चुका हूँ कि समाधिमरणकी महिमा अपने ही द्वारा होती है। क्या आप इससे लाभ न उठावेंगे ? अवश्य ही उठावेंगे। बाबाजीका इच्छाकर।

आषाढ़वदी १,
स० १९९४

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

नोट—मैं विवश हो गया। अन्यथा अवश्य आपके समाधि-मरणमें सहकारी हो पुण्यलाभ करता। आप अच्छे स्थान पर ही जावेंगे। परन्तु पचम काल है। अत. हमारे सम्बोधनके लिये आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा अथवा जावेगा ही। तब

कालकृत असमर्थता बाधक होकर आपको शांति न देगा। इससे कुछ उत्तरकालकी याचना नहीं करता।

[७-६]

श्रीयुत महाशय पं० दीपचन्द जी वर्णी, योग्य इच्छाकार

बन्धुवर! आपका पत्र पढ़कर मेरी आत्मामें अपार हर्ष होता है कि आप इस वयोवस्थामें स्वरूपमग्न हो गये हैं। यही संसार से उद्धारका प्रथम प्रयत्न है। कायकी क्षीणता कुछ आत्मतत्त्वकी क्षीणतामें निमित्त नहीं। इसको आप समीचीनतया जानते हैं। वास्तवमें आत्माके शत्रु तो राग द्वेष और मोह हैं। जो उसे निरंतर इस दुःखमय संसारमें भ्रमण करा रहे हैं। अब आवश्यकता इसकी है कि रागद्वेषके आधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानंदकी ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि होवें इसका कुछ भी रञ्ज नहीं करना चाहिये। रागादिकोंका होना अभिकर नहीं होना चाहिये। बड़े बड़े ज्ञानी जनोंके राग होता है। परन्तु उस रागमें रञ्जके अभाव से आगे उसकी परिपाटीरूपका आत्माको अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकोंकी सन्तानका अपचय होते होते एक दिन समूलतलसे उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इन संसारकी वासनाओंका पात्र नहीं होता। मैं आपको क्या लिखूं। यही मेरी सम्मति है कि अब विशेष विकल्पोंको त्यागकर जिस उपायसे रागद्वेषका आशयमें अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है; क्योंकि पर्यायका अवसान है। यद्यपि पर्यायका अवसान तो होगा ही किन्तु फिर भी सम्बोधनके लिये कहा जाता है तथा

मूढ़ोंको वास्तविक पदार्थका परिचय न होनेसे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है।

विचारसे देखिये तब आश्चर्यको स्थान नहीं। भौतिक पदार्थोंकी परिणति देखकर बहुतसे जन क्षुब्ध हो जाते हैं। भला जब पदार्थमात्र अनन्त शक्तियोंका पुञ्ज है तब क्या पुद्गलमें वह बात न हो, यह कहांका न्याय है। आजकल विज्ञानके प्रभाव को देख लोगोंकी श्रद्धा पुद्गलद्रव्यमें ही जाग्रत हो गई है। भला यह तो विचारिये उसका उपयोग किसने किया। जिसने किया उसको न मानना यही तो जड़भाव है।

बिना रागादिकके कार्मण वर्गणा क्या कर्मादि रूप परिणमन को समर्थ हो सकती है? तब यों कहिये—अपनी अनन्तशक्ति के विकाशका बाधक आप ही मोहकर्म द्वारा करा रहा है फिर भी हम ऐसे अन्धे हैं जो मोहकी महिमा आलाप रहे हैं। मोहमें बलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तुकी ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाववाले पदार्थको कि जिसकी वक्र दृष्टिसे यह जगत अनादिसे बन रहा है और जहा उसने वक्रदृष्टि को सकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टिका अवलम्बन किया कि इस ससारका अस्तित्व ही नही रहता। सो ही समयसारमें कहा है—

> कपायकलिरेकत॰ शान्तिरस्त्येकतो ।
> भवोपहतिरेकत स्पृशति मुक्तिरप्येकत ॥
> जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चित्प्रकास्त्येकतः ।
> स्वभावमहितात्मनो विजयतेऽद्‌भुतादद्‌भुतः ॥

अर्थ—एक तरफसे कषायकालिमा स्पर्श करती है और एक तरफसे शान्ति स्पर्श करती है। एक तरफ संसारका आघात

है और एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनों लोक प्रकाशमान हैं और एक तरफ चेतन आत्माका प्रकाश कर रहा है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आत्माकी स्वभावमहिमा विजयको प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावोंसे यही अन्तिम करन मतिमाका विषय होता है जो आत्मद्रव्य ही की विचित्र महिमा है। चाहे नाना दुःखाकीर्ण जगतमें नाना वप धारण कर नटरूप बहुरूपिया बने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीलाको सम्वरण करके गगनवत् परमार्थिक निर्मल स्वभावका धारण कर निश्चल तिष्ठे। यही कारण है। "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म" अर्थ—यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है। इसमे कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोड़ देवें तब जो कुछ कथन है अक्षरशः सत्य भासमान होने लगे। एकान्तदृष्टि ही अन्धदृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रम से कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पंच स्थावर और त्रसका समुदाय जगत दृश्य हो रहा, क्या है? क्या ब्रह्मका विकार नहीं? अथवा स्वमतकी ओर कुछ दृष्टिका प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारणकी मुख्यतासे ये जो रागादिक परिणाम हो रहे हैं उन्हें पौद्गलिक नहीं कहा है। अथवा इन्हें छाड़िये। जहां अवधिज्ञान का विषय निरूपण किया है वहां क्षयोपशम भावका भी अवधिज्ञानका विषय कहा है। अर्थात् रूपी पुद्गल द्रव्य सम्बन्धेन जायमानत्वात् क्षायोपशमिक भाव भी कथंचित्‌रूपी है। केवलभाव अवधिज्ञानका विषय नहीं, क्योंकि उसमें रूपी द्रव्यका सम्बन्ध नहीं। अतएव यह सिद्ध हुआ—औदयिक भाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथंचित् पुद्गलसम्बन्धेन जायमान होनेसे मूर्तिमत् है न कि रूप रसादिमत्ता इनमें है। तद्वत् अशुद्धताके सम्बन्ध से जायमान होनेसे यह भौतिक जगत भी कथंचित् ब्रह्मका विकार है। कथंचित् का यह अर्थ है—

जीव के रागादिक भावोके ही निमित्त को पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादिरूप परिणमन को प्राप्त है। अत. यह जो मनुष्यादि पर्याय हैं असमान जातीय द्रव्यके संवधसे निष्पन्न हैं न केवल जीवकी हैं और न केवल पुद्गलकी हैं। किन्तु जीव और पुद्गलके सवधसे जायमान हैं। तथा यह जो रागादि परिणाम हैं सो न तो केवल जीवके ही हैं और न केवल पुद्गल के हैं किन्तु उपादानकी अपेक्षा तो जीवके हैं और निमित्त कारणकी अपेक्षा पुद्गलके हैं और द्रव्यदृष्टि कर देखें तो न पुद्गलके हैं और न जीवके हैं। शुद्ध द्रव्यके कथनमें पर्याय की मुख्यता नहीं रहती। अत. यह गौण हो जाते हैं। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनोंके द्वारा सम्पन्न होती है। अस्तु इससे यह निष्कर्ष निकला कि यह जो पर्याय है वह केवल जीवकी नही किन्तु पौद्गल मोहके उदयसे आत्माके चारित्रगुणमें विकार होता है। अतः हमें यह न समझना चाहिये कि हमारी इसमें क्या क्षति है? क्षति तो यह हुई कि जो आत्माकी वास्तविक परिणति थी वह विकलताको प्राप्त हो गई। वही तो क्षति है। परमार्थसे क्षतिका यह आशय है कि आत्मा में रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवें। तव जो उन दोषोके निमित्तसे यह जीव किसी पदार्थमें अनुकूलता और किसीमें प्रतिकूलताकी कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभावमें आकुलित रहता था शान्तिके आस्वादकी कणिकाको भी नहीं पाता था। अव उन रागादिक दोषोंके असद्भावमें आत्मगुण चारित्रकी स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्तको अवलम्बन कर आत्माका चेतना नामक गुण है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थोंका तद्रूप हो द्रष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी

अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकंप रहता है। इसीका नाम भावमुक्ति है। अब आत्मामें मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई किन्तु अभी आ योग निमित्तक परिस्पन्दन है यह प्रदेश प्रकम्पनको करता ही रहता है। तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी सातावेदनीयका हुआ करता है। यद्यपि इसमें आत्माके स्वाभाविक भावकी क्षति नहीं। फिर भी निरपवर्त्य आयुके सद्भावमें यावत् आयुके निषेक हैं तावत् भवस्थितिका मेंटनेका कोई भी क्रम नहीं। तब अन्तर्मुहूर्त आयुका अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्मकी स्थिति अधिक रहती है, उस कालमें तृतीय शुक्लध्यान के प्रसादसे दंड कपाटादि द्वारा शेष कर्मोंकी स्थितिको आयु समकर चतुर्दश गुणस्थानका आरोहण कर अयोग नामको प्राप्त करता हुआ लघु पंचाक्षरके उच्चारणके काल सम गुणस्थानका काल पूर्णकर चतुर्थध्यानके प्रसादसे शेष प्रकृतियोंको नाश कर परम यथाख्यातचारित्रका लाभ करता हुआ एक समय में द्रव्य मुक्ति व्यपदेशताको लाभकर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मीका भोक्ता होता हुआ लोक शिखरमें विराजमान होकर तीर्थङ्कर प्रभुके समवशरणका विषय होकर हमारे कल्याणमें सहायक हो। यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज आगये। उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बातका विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। जो हमें भी आपका वैयावृत्ति करनेका अवसर मिल जाता परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ? जो सद्देशनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पंचमगुणस्थानवर्ती जीवकी प्राप्ति हो सके। आपके स्वास्थ्यमें आभ्यंतर तो क्षति है नहीं, जो है सो बाह्य है। उसे आप माय· वयम नहीं करते,

यही सराहनीय है। धन्य है आपको जो इस रुग्णावस्थामें भी
सावधान हैं। होना ही श्रेयस्कर है। शरीरकी अवस्था अपस्मार
वेगवत् वर्धमान हीयमान होनेसे अध्रुव और शीतदाह ज्वरावेश
द्वारा अनित्य है। ज्ञानी जनको ऐसा जानना ही मोक्षमार्गक
साधक है। कब ऐसा समय आवेगा जो इसमें वेदनाका अवस
ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा जब आप निश्चल वृत्तिवे
पात्र होवेंगे। अब अन्य कार्योंसे गौण भाव धारण कर सल्लेखन
के ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखनेकी चुलबुल
उठे तब उसी पर लिखनेकी मनोवृत्तिकी चेष्टा कीजिये।
आपकी प्रशसा नहीं करता। किन्तु इस समय ऐसा भाव, जैसा वि
आपका है, प्रशस्त है। ज्येष्ठ वदी १ से फा० सु० ५ तक मौ
का नियम कर लिया है। एक दिन में १ घण्टा शास्त्रमें वालू गा
पत्र मिल गया। पत्र न देनेका अपराध क्षमा करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[७-७]

श्रीयुत महाशय दीपचंद जी वर्णी साहव, योग्य इच्छाकार

पत्रसे आपके शारीरिक समाचार जाने। अब यह जो शरी
पर है शायद इससे अल्प ही कालमें आपकी पवित्र भावनापू
आत्माका सम्बन्ध छूटकर वैक्रियकशरीरसे सम्बन्ध हो जावे
मुझे यह दृढ़ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीरमें होग
न कि आत्मचिंतवनमें। असातोदयमें यद्यपि मोह के सद्भाव
से विकलता की सम्भावना है तथापि आंशिक भी प्रबल मोह
अभाव में वह आत्मचिंतन का बाधक नहीं हो सकती। मेरी
दृढ़ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे और अन्त त

द्रव्यम परिणामों द्वारा इन क्षुद्र बाधाओं की ओर ध्यान भी न देंगे। यही अवसर संसारलतिकाके घातका है।

देखिये जिस असातादि कर्मोंकी उदीरणाके अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्र तप धारण करते-करते शरीरको इतना कृश बना देते हैं जो लावण्यका अनुमान भी नहीं होता। परन्तु आत्मदिव्यशक्तिसे पूर्ण भूषित ही रहते हैं। आपका धन्य भाग्य है जो बिना ही निर्ग्रन्थ पद धारणके कर्मोंका ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदयमें आकर पृथक् हो रहे हैं। इसका जितना हर्ष मुझे है, मैं नहीं कह सकता, वचनातीत है।

आपके ऊपरसे भार उठ रहा है फिर आपके सुखकी अनुभूति तो आप ही जानें। शांतिका मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है जो कि इस समय आपके हो रहा है। अब केवल भेदज्ञानुभव ही रसायन परमौषधि है। कोई कोई तो क्रम क्रमसे अन्नादिका त्याग कर समाधिमरणका यत्न करते हैं। आपके पुण्योदयसे स्वयमेव वह छूट गया। यही न छूटा साथ ही साथ असातोदय द्वारा दुःखजनक सामग्रीका भी अभाव हो रहा है।

अतः हे भाई! आप रंचमात्र क्लेश न करना। जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्माको लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्दका क्या अवसर होगा। मुझे अंतरंगसे इस बातका पश्चात्ताप हो जाता है जो अपने अंतरंग बन्धुकी ऐसी अवस्थामें वैयावृत्य न कर सका।

माघ व १४ सं १४ }

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० शीतलप्रसादजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजी का जन्म सन् १८७९ ई० को लखनऊमें हुआ था। पिताका नाम लाला मक्खनलालजी और माताका नाम नारायणी देवी तथा जाति अग्रवाल थी। प्रारम्भमें ये रुड़की इञ्जीनियरिंग कालेजसे एकाउन्टेंटशिपकी परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी करने लगे थे।

इनका विवाह कलकत्ताके वैष्णव अग्रवाल छेदीलालजी की सुपुत्रीके साथ हुआ था। किन्तु सन् १९०४ की महामारीमें इनकी पत्नीका देहावसान हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और १६ अगस्त सन् १९०५ में सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र देकर स्वाध्याय और समाज सेवामें लग गये। इन्होंने ३२ वर्षकी आयुमें सन् १९११ ई० के मार्गशीर्षमें श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी के समक्ष सोलापुरमें ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की थी।

ब्रह्मचारीजी की साधना बड़ी थी। इन्होंने अपने जीवन कालमें समाज और धर्मकी अपूर्व सेवा की है। वैदिक परम्परामें स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जो स्थान था जैन समाजमें ब्र० शीतलप्रसादजी का वही स्थान रहा है। दि० जैन परिषद्के संस्थापकोंमें ये प्रमुख थे। बहुत काल तक ये श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके अधिष्ठाता रहे हैं और अनेक संस्थाएं स्थापना की हैं। धर्म और समाजके हितमें इनकी कलम दिन-रात चलती रहती थी। ये जैन समाजके नेता और समाज सुधारके अग्रणी थे।

इनका देहावसान १० फरवरी सन् १९४२ को लखनऊमें समाधि पूर्वक हुआ था। पूज्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णीसे इनका चिरकाल तक सम्पर्क रहा है। फल स्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[८–१]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी प० शीतलप्रसाद जी !

आप सानन्द तथा निःशल्य होकर ही आइये। आपके धर्म ध्यान के लिये हम यथाशक्ति त्रुटि न करेंगे। यह क्षेत्र निर्वाण की प्राप्ति के लिये प्रसिद्ध है। आजन्म समयसार का मनन कर ऐसा अध्ययन अध्यापन करके भी यदि हमारा और आपका मत भेद बना रहा तब हम दोनोंमें से अन्यतर मिथ्यात्व का पात्र है ऐसी मेरी दृढ़ प्रतीति है। यद्यपि हम और आप दोनों ही अपने अपने सम्यग्दृष्टि होनेका दावा करते हैं किन्तु उसमें अन्यतर ही उस गुणका पात्र हो सकता है। यह निर्णय तो दिव्य ज्ञानमें ही है या अमुक इसका पात्र है। लौकिक जन आपके अनुयायी आपको और मेरे अनुयायी मुझे कहेंगे। जो हो इस चर्चाका अवसर नहीं। कल्पना कीजिये दो मनुष्य ४० सेरका ही मन मानते हैं परन्तु उनमें एक कहता है ८० रुपये भरका सेर होता है और एक कहता है कि नहीं ७९॥≡)॥। भरका सेर होता है,)। भरका भेद कोई भेद नहीं। परन्तु विज्ञजन इसको कभी भी तथ्य नहीं मान सकते। श्वेताम्बर कवलाहार केवलीके मानते हैं, दिगम्बर नहीं मानते। तब क्या अन्य सिद्धान्तमें समानता होने पर कदापि दोनोंका मत एक हो सकता है ? कर्तृत्व, अकर्तृत्व द्वैत अद्वैत, शुद्ध, अशुद्ध, इत्यादि एक बातके भेद होने पर ही नाना मतके निर्माण संसारमें होगए। महासभा और परिषद्में क्या बात है ? क्या सर्व नियमोंमें भेद है ? एक ही नियमकी कृपासे समाजका ऐसा उत्थान हो रहा है, किसीसे अव्यक्त नहीं। यदि दोनों पक्षमें कोई पक्ष अपनी हठको छोड़ दे, तब क्या समाजका उत्थान न हो ? अस्तु, इस अरण्यरोदनसे कुछ

भी लाभ नहीं। आपका जो अभिप्राय है सुरक्षित रखिये। इससे न मेरी क्षति है और न अक्षति। उस सिद्धान्तसे क्षति व अक्षति आपकी होगी। अन्यतरमें क्या होगा सो वीरप्रभु जानें। विपक्षी क्षति और अविपक्षी अक्षति कह ही रहे हैं। अन्तिम आपसे यही नम्र निवेदन है जो मेरा आपसे बहुत प्राचीन व धार्मिक प्रेम है इसे आप भी स्वीकार करेंगे। मैं यह भी मानता हूँ जो आप विशिष्ट ज्ञानी हैं और कर्मठ हैं, अतः आपमें विशेष धर्मानुराग होने से फिर भी लिखना पड़ता है।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम्
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ॥
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥

यह कुछ वाद करनेकी नियतसे नहीं लिखा है। केवल स्वकीय अभिप्रायको सक्षिप्ततया व्यक्त करनेका प्रयास है। इसको बांचकर आप स्वकीय शुभागमनके अभिप्रायको परिवर्तन करनेकी बात स्वप्नमें भी मनमे न लाइये। आपके आनेका मुझे हर्ष है। विशेष क्या लिखें? कोई किसीको परिणमन करनेमे समर्थ नहीं।

२०-८-३६ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[८-२]

श्रीयुत ब्रह्मचारीजी, योग्य इच्छाकार

आपका यहाँ दिवाली बाद आनेका विचार है, सो आइये। हमसे जो कुछ बनेगा आपकी वैयावृत्त करनेमें त्रुटि न करेंगे। आपको कुछ स देह मालूम होता है, उसकी कुछ आवश्यकता

नहीं। अब तो अन्तिम पथकी ओर आरहे हो तो अभ्रान्त रहना चाहिये। स्पष्ट उत्तर आपकी मस्तक ऊपर है। आपने जो लिखा है कि कम्पवात हो गया है सो असाताके तीव्रोदय या उदीरणामें ऐसी अनेक अवस्था होती है, किन्तु यदि उसके साथ मोहोदयकी प्रबलता नहीं तब यह कुछ दुःखानुभवमें आत्मगुणका घातक नहीं; क्योंकि 'घादी व वेयणीयं मोहस्स बलेण घादये जीवं' अतः आप विज्ञ हैं, उसे अकिंचन ही समझते होंगे। जरा रोगमें भी यही परिपाटी है। 'जैनमित्र' की सम्पादकी छोड़ दी या छूट गई यह आपके अनुभवगम्य है। किन्तु 'सनातन जैन'' के अभिप्रायका छोड़ दिया होगा। उसे भी इस समय छोड़नेका अवसर है। 'जैनमित्र' की सम्पादकी छोड़ दी यह तो उचित ही किया क्योंकि अब अवस्था भी तो अन्यथा हो गई। साथमें "सनातन जैन" की भी सम्पादकी छोड़ दीजिये। अब आपका अन्तिम काल है। क्या ही अच्छा सुवर्ण अवसर आपके हाथ है। सर्वप्रकारकी शल्यको छोड़कर परम पथके पथिक बनिये। किसीके कहनेमें न आकर 'विधवा विवाहादि शास्त्र असम्मत है' यदि इसको आप लिख देवें तब अतिउत्तम हो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० नेमिसागरजी वर्णी

श्रीमान् ब्र० नेमिसागरजी वर्णीका जन्म वि० सं० १९३९ को दक्षिण प्रान्तमें हुआ है। पिताका नाम श्री दुग्गण अधिकारी और माताका नाम जाकम्म था। जन्मसे ये क्षत्रिय हैं। शिक्षा ग्रहण करनेके बाद सात वर्ष तक ये कन्नड स्कूलमें शिक्षक रहे और उसके बाद चार वर्ष तक कारकल जैन मठके व्यवस्थापक रहे।

बचपनसे ही इनकी वृत्ति त्यागमय थी इसलिए विवाह न कराकर वि० सं० १९५८ में इन्होंने ललितकीर्ति महाराजके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। गृहत्यागी होनेके बाद विशेष-रूपसे इनका ध्यान संस्कृत शिक्षा की ओर गया और इस निमित्त इन्होने आरा, बनारस, मोरेना व मैसूरमें रहकर संस्कृत व्याकरण, साहित्य व धर्मशास्त्रकी विशेष शिक्षा ग्रहण की।

इनके आचार और व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर श्रवणबेल्गोल के व्यवस्थापकोंने इन्हें वि० सं० १९८९ में भट्टारकके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसका इन्होंने बड़ी योग्यता और निस्पृहताके साथ निर्वाह किया।

अपनी उदासीन परिणतिके कारण अन्तमें इन्होंने इसका त्याग कर दिया है और वर्तमानमें जैन गुरुकुल उज्रे (दक्षिण कन्नड़) में स्वाध्याय और आत्मचिन्तनमें रत रहते हुए जीवन यापन कर रहे हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी के प्रति इनकी विशेष आस्था है। उसीके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी के इन्हें जो सारगर्भित पत्र प्राप्त होते रहे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुआ एक पत्र यहाँ दिया जाता है।

[६-१]

श्रीयुत महाशय नेमिसागरजी ब्रह्मचारी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द पञ्चकल्याणक देखकर आनेका प्रयत्न करना। हमारा प्रबलतम पुण्योदय नहीं अन्यथा ऐसी प्रतिज्ञा न होती। हमारा तो दृढ़ निश्चय है कि प्रभुके ज्ञानमें देखा गया होगा, वही होगा। किसीकी शुश्रूषा करनेमें कोई लाभ नहीं। जिसको आत्म-कल्याण करना हो वह आत्मसम्बन्धी रागादिक त्यागे। लोग अन्यकी समालोचना करनेमें समय लगाते हैं। कल्याणका इच्छुक आत्म-सम्बन्धी पापोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है और वही संसार दुःखोंसे दूर हो जाता है। आप लोगोंकी जो कुछ मेरा हो आप जानें, परन्तु ऐसा उत्तम क्षेत्र धर्म साधनके अर्थ अन्यत्र नहीं। सामने श्री पार्श्व प्रभुकी निर्वाणभूमिके दर्शन, प्रान्तमें तपोभूमि अथ च यहाँके मनुष्य सरल और दम्भसे रहित हैं। यदि इनमें मद्य-पीनेका दोष न होता तब सहजमें ये धर्म धारणके पात्र हो जाते। परन्तु पञ्चमकालमें ऐसा होना असम्भव है। हम तो अपनी बात कहते हैं—इतने दिन बाह्य क्रिया करते हो गये, मृत्युके सन्निहित आ पहुँचे, परन्तु हृदयकी कुटिलता नहीं गई। यह मेरा लिखना अपने वास्ते है, क्योंकि मुझे अपने हृदयका भाव ज्ञात है। आप महाशयोंकी वृत्ति आप जानें। धर्मका परमार्थ रूप बाह्य व्यापारसे परे है। वचनकी सुन्दरतासे अन्तरङ्गकी वृत्ति भी सुन्दर हो यह नियम नहीं। यहाँ पर अच्छे अच्छे श्रीमान् पण्डित और श्रीमान् सेठ आवेंगे। आप उनसे यह कहना—केवल व्याख्यानकी रोचकतासे समाजको खुश करके धन्यवाद लेकर न चले जाना, किन्तु इस क्षेत्र और विद्यालयका उद्धार करके जाना ही आपकी विद्वत्ताकी सफलता है। उनके हृदयमें निरन्तर स्मरण

रहे ऐसा जाना ही अच्छा है। धनिकवर्गसे भी यही मेरा कहना है—केवल उत्सवकी शोभा सम्पादन करके न चले जाना, किन्तु क्षेत्र और पाठशालाका उद्धार करके जाना। आपके बुलानेका प्रायः यही उद्देश्य प्रमुख कार्यकर्त्ताओंका था। या न हो तो वे जानें। परन्तु आप श्रीमानोंका कर्त्तव्य है कि योग्य क्षेत्रमें दान करके स्वकीय विवेकका समाजको अनुकरण करनेका पाठ पढ़ा करके शुभ प्रस्थान करके जाना।

ऊपरे सरसि शाल्मलिवने दावपावकचितेऽपि चन्दने।
तुल्यमर्पयसि वारि वारिद कीर्तिरस्तु गुणविज्ञता गता।

अन्यथा—

"वितर वारिद वारि तृषातुरे चिरपिपासितचातकपोतके।
प्रचलति मरुति क्षणमन्यथा क्व च भवान् क्व च पयः क्व च चातकः।"

विशेष क्या लिखूं? वहाँपर जो उत्तम वक्ता आवें, उनसे यह मेरा सन्देश अवश्य उचित समयपर समाजको सुनानेके लिए कह देना। मुझे लिखनेका अभ्यास कम है। अत जो मेरा भाव है उसे अपने शब्दोंमें लाकर समाजके हृदयमें अंकित करनेकी अवश्य चेष्टा करें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० प्यारेलालजी भगत

श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगतका जन्म मगसिर सु० ६ वि० सं० १९६१ को तिसी (राजाखेड़ा) में हुआ है। पिताका नाम लाला बाबूरामजी और माताका नाम सुमित्रादेवी तथा जाति जैसवाल है। प्रारम्भिक शिक्षा अपर प्राइमरी तक सीमित होते हुए भी इनका धर्मशास्त्रका ज्ञान उच्चकोटिका है।

आरम्भसे ही आत्मकल्याणकी ओर विशेष लक्ष्य होनेसे इन्होंने पहले व्रत प्रतिमाके और उसके बाद वि० सं० १९९१ में इन्दौरमें श्री १०८ कुन्थुसागर महाराजकी उपस्थितिमें सातवीं प्रतिमाके व्रत धारण किये।

त्यागधर्मके साथ इनकी सामाजिक सेवा भी सराहनीय है। अधिष्ठाता पद पर रहते हुए ईसरी और इन्दौर उदासीनाश्रमकी ये बहुत कालसे संभाल करते आ रहे हैं। राजाखेड़ा और कोडरमा की शिक्षा संस्थायें भी इन्होंने स्थापित की हैं।

कलकत्तामें हिन्दू मुस्लिम दङ्गाके समय इन्होंने हजारों स्त्री पुरुषोंको बेलगछियाके जैन-मन्दिरमें आश्रय देकर उनकी रक्षा की थी। अहिंसाके प्रचारकी ओर भी इनका निरन्तर ध्यान रहता है। फलस्वरूप इन्होंने देश विदेशके अनेक मांससेवी स्त्री पुरुषोंको मांसका परित्याग कराकर धर्ममार्ग पर लगाया है। इतना सब होते हुए भी स्वाध्याय और आत्मचिन्तन इनका मुख्य व्रत है। समाजमें ये चुने हुए कुछ प्रतिष्ठित त्यागियोंमेंसे एक हैं।

ये पूज्य श्री १०५ वर्णीजी द्वारा निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१०—१]

महानुभाव भगतजी साहब, इच्छाकार

मैं दीपमालकोत्सव पर श्री वीरनिर्वाणके पूजन होने अनन्तर प्रस्थान कर दूँगा। सर्वकी सम्मति है राजगृही होकर चलो। २५ मीलका अन्तर है। तीन क्षेत्रोंकी वन्दना अनायास हो जायगी। मार्ग भी अच्छा है। अन्तमे पार्श्वचरणमे तो रहना ही है। आपकी निर्मल परिणति ही कल्याणमार्गकी जननी है, अतः मेरी भावना भी यही है जो जगतकी चिन्ता उसकी ही मिटती है जो अपनेको जाने।

जो निज आत्माका कल्याण करनेमें प्रमादी वह जगतका कल्याण क्या कर सकता है, अत. ऐसे अकर्मण्य मनुष्योंके ससर्गसे अपनेको बचावें।

का० व० ३, सं० २०१० }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—२]

श्रीयुत महाशय सर्वहितैपी भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपका समय समयानुकूल ही वीत रहा है, क्योंकि सामग्री अनुकूल है। कल्याणका मार्ग स्वतत्र है परन्तु वह भी द्रव्यादि चतुष्टयाधीन ही है। वह चतुष्टय भी उपादान निमित्तके भेदसे द्वेधा है। अस्तु, विशेष तो यह है जो स्वीय रागादिकी हानि ही स्वात्मकल्याणकी जननी है। केवलज्ञान भी इसीके सद्भावमें होता है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो ज्ञानकी महिमा वही जानता है

जो रागादि दोषोंसे कलंकित न हो। ज्ञानका फल अज्ञाननिवृत्ति है। स्वामी समन्तभद्रका कहना है—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानिधीः।
पूर्व वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे॥

अत कल्याणके इच्छुकोंको ज्ञानार्जनके साथ-साथ रागादि निरसन भी करना परमोपकारी है। यही बात सर्वत्र लागू है। क्रियाकाण्डवालोंको यह भूलना न चाहिये। बिना रागादि निरसन के उस क्रियाकाण्डका कोई मूल्य नहीं। आप तो ऐसे समागममें हैं जहाँ निरन्तर इसका परामर्श होता रहता है। मेरा सेठजी सा का यथायोग्य कहना। उनको क्या पत्र लिखें? वे तो स्वयं कल्याणमार्गके पथिक हैं। केवल आप ही नहीं, आपको अच्छा यात्रियोंका साथमें लिये आ रहा है और उनके हृदयसे उसको ले आनेवाले निपुण हैं जो हर विघ्नसे उसकी रक्षा करने-वाले हैं। आज सेठजीका अनुकरण प्रत्येक धनाढ्य करे तब अनायास जैनधर्मका विकाश हो जावे। जैनधर्मका विकाश वही कर सकता है जो अष्ट कर्मरूप शरीरके मुख्यांग मोहका भंग कर देता है। उसके भंग होते ही शेष दलका अनायास पतन हो जाता है। हम तो श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें रहनेके इच्छुक हैं।

आ सु ११, सं २१ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[१०—३]

श्रीयुत महाशय भगतजी योग्य इच्छाकार

आपके पत्र आये। परम आह्लादके कारण थे। वही मनुष्य कल्याणका पात्र हो सकता है जो आत्मीय लक्ष्यसे च्युत न हो।

यही फल साधु समागमादि कारणोंसे हो सकता है। न भी हो परन्तु होनेका निमित्त है तो यही है। आज कल यहाँ ३ मुनि, ३ क्षुल्लक, २ आर्या हैं। हम भी आश्रममें हैं। न जाने कैसा समय है जो ३६ के अककी दशाका प्रत्यक्ष होता रहता है। यद्यपि ससारके साथ ३६ का होना अच्छा है परन्तु यहाँ तो कुछ और ही वात है जो लिखनेमें सकोच होता है। ६३ होनेकी वात करते हैं, परन्तु उसका अश नहीं। हमको प्रसन्नता इसकी है कि आपके समयका सदुपयोग हो रहा है। जहाँ पर तत्त्व-चर्चा हो तथा विरागताकी वृद्धि हो वही स्थान तो तीर्थ है। सेठजी महोदय इसीमे सलग्न हैं। यह उनके भावी सुकल्याणका चिह्न है। वर्तमानमें तो शान्ति है ही इसमें शका नहीं। तदुक्तं—

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा।
एभ्यः संसारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मन ॥

यही कारण है जो सेठजी चतुर्थ पुरुषार्थमे लग गये। हमारा दिवस भी आप लोकोंकी निर्मल भावनासे सानन्दसे जाता है। श्री पतासीबाई जी वहाँ पर पहुँच गई होंगी। शारीरिक व्याधि जव शान्त हो इसका तो हमें परिचय नहीं, परन्तु यह वात तो हम भी कह सकते हैं जो अन्तरग व्याधि अवश्य कृश हुई होगी।

वाह्य औषधि तो प्रायः सर्वत्र ही मिल जाती है, परन्तु आभ्यन्तर व्याधिको शमन करनेकी औषधि सर्वत्र सुलभ नहीं। इसका सेठजी को धन्यवाद है जो इस आभ्यन्तर रोगको दूर करने के अर्थ औषधालय खोल रखा है और उसमें अनुकूल परिचारक और वैद्य हैं। अत मेरी तो पतासीबाईको यही सम्मति कह देना। अब सानन्दसे आभ्यन्तर रोगका निराकरण करके ही इन्दौर छोड़ना। सेठ सा० से मेरी यही भावना है जो आपने ससार व्याधि अपहरण करनेका औषधालय खोला है वह

चिरकाल रहे जिसमें संसार सत्पुरुषोंको कल्याणमार्ग सुलभ रहे। ऐसा औषधालय केवल धनसे नहीं खुलता, किन्तु स्वयं उसपर चले तभी यह चलता है। सेठजी सा० का क्या लिखूँ। उनका पत्र पढ़कर यही भावना होती है जो ऐसे पुरुषरत्न ही धर्मके पात्र चिरञ्जीवी रहें। चिरञ्जीवीका अर्थ सब जानते हैं। विकल्प-भावका अभाव जिनके है व ही चिरञ्जीवी हैं।

ईसरी बजार, } आ० शु० चि०
वैशाख सुदी १२, सं० २ ११ } गणेश वर्णी

[१०—४]

श्रीमान् पण्डित प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द इन्दौर पहुँच गये, परन्तु ऐसा श्रवणगत हुआ जो आपको कुछ अस्वस्थता हो गई। संभव है मार्गमें कुछ अननुकूल स्थानादिप्रयुक्त बाधा हो गई हो। अब आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा क्योंकि वहाँ पर बाह्य और आभ्यन्तर कारण अनुकूल हैं। मेरी तो यह सम्मति है—अब आपको अवस्थाके अनुकूल एक ही क्षेत्र पर रहना चाहिये। कहाँ रहें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। कहीं रहिये आपको सर्वत्र अनुकूलता है। सबसे उत्तम स्थान तो वह है जहाँ पर तत्त्वज्ञानके विशेष साधन हों। आप तो स्वयं विज्ञ हैं, क्या आपको लिखें। श्रीयुत सेठजी सा० को मेरा यथायोग्य कहना। सेठजी सा० तो स्वकार्यमें संलग्न हैं। उसका फल भविष्यमें अच्छा होगा, यह तो निर्विवाद है। वर्तमानमें कितनी शान्ति करें है इसका स्वसंवेदन स्वयं व कर रहे हैं। विशेष क्या लिखें।

वैशाख सुदि १३, सं० २ १२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—५]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा०, योग्य इच्छामि

मैं सागरसे इतनी दूर आया सो सिद्धक्षेत्र आदि विचार कर ही तो आया हूं। इसमें जितना आपका समागम इष्ट है वह मैं ही जानता हू। परन्तु आप पर मेरा उतना ही तो अधिकार है जितना हो सकता है। मैं तो निरन्तर भावना भाता हूँ जो आपसे साधर्मियोंका एक क्षणमात्र वियोग न हो। परन्तु मेरे वशकी बात नहीं। यह तो आपके उदार हृदयकी बात है। जो एक वृद्धकी समाधिमें समय देना चाहिये। विशेष क्या लिखू। श्रीपतासीबाई को क्या लिखें वह दो वर्ष पहिले क्या कहती थीं उन्हींसे पूछना। परन्तु किसीको बलात्कार करना—तुम आओ ही यह उनकी दया पर निर्भर है। हम तो पार्श्वनाथके चरण रजमें पड़े हैं। सम्भव है उनके ज्ञानमें हमारे अन्तिम कालमें सर्व अनुकूल समागम मिल जावे। श्री सेठ सा० तो अत्यन्त दयालु हैं। उन्हें क्या लिखूं। उनकी दृष्टि तो समयानुकूल होती है।

जेष्ठ वदि १० सं० २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१०—६]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा०, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। संसारमें स्वास्थ्य काहेका। परन्तु आप उस स्वास्थ्यका लाभ ले चुके हैं जो इस स्वास्थ्यका कारण ही कुछ कालमें निमूल हो जावेगा। मैं तो निरन्तर आपके अभ्रान्त विचारोंको स्मरण करता हूँ। मुझे इस बातकी महती प्रसन्नता है जो आप यथार्थ बातको व्यवहारमें लाते हैं। हाँमें हाँ

सिखानेवाले प्रायः अनेक हैं, उनके कथनमें रुचि तक नहीं रखते। अस्तु चमेलाबाई जी और उनकी माँसे मेरा धर्मस्नेह कहना। श्री मन्नूलाल बाबू बहुत ही भद्र हैं।

म० भाद्र वदि १, सं २ १९ }

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१०–७]

श्रीयुत महाशय भगतजी सा० योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है। मेरा तो विश्वास है—जिनका यथार्थ ज्ञान हो गया वे यथार्थ पथप्रदर्शक हैं और जिसे भेदज्ञान नहीं हुआ वह जो बोले परमार्थपथका साधक नहीं। आपके निवाससे वहाँ भी अच्छा रहता है और वहाँ जो आपके सहवासमें रहता होगा, धुमार्गरुचिया ही होगा। श्रीनन्नूलाल जीसे हमारा धर्मस्नेह। महान् भद्र मानुष हैं। श्री चमेलाबाई व उनकी माँसे इच्छाकार कहना। धन्य है उन आत्माओंको जिन्होंने परका पर और अपनेको अपना जाना।

भाद्रवदि १ सं २ १२ }

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१०–८]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। फोड़ा आदि शान्त होंगे। मेरा निजका विश्वास है जो आपका मोहरूपी फोड़ा फूट चुका है। अब औदयिक फोड़ा कीस निकलनेके बाद कुछ आपत्तिजनक नहीं।

आपका विशद बोध जगतके उपद्रवोंको शान्त कर देता है। दीपक प्रकाशवत् क्या वह निज आपत्तिको शमन करनेमें समर्थ न होगा। यहाँ पर हम लोक सानन्दसे है। सानन्दका कारण तो परको न अपनानेमें है। जहाँ पर अपनाया अशान्ति आई। कोई कुछ करे उसमें तटस्थ रहे। अन्तमें तटस्थता ही रखनी पड़ेगी। श्री चमेलाबाई व उनकी माँसे इच्छाकार। भगतजीका समागम तत्त्वज्ञानमें मूल कारण है। श्री नन्दलालजीसे कल्याणभाजन हो, श्रीयुत छोटेलालजीसे दर्शनविशुद्धिः। स्याद्वाद विद्यालयमें जो महापद है उसकी सार्थकता आपके निमित्तसे होगी। फिर जो हो।

द्वि० भाद्रवदि २, सं० २०१२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत

श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगतका जन्म कार्तिक सुदि १ वि० सं० १९५१ को जगाधरी (पंजाब) में हुआ है। पिताका नाम श्री लाला मूकरामजी और माताका नाम सोनादेवी तथा जाति अग्रवाल है। स्कूलमें हिन्दी मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद ये कपड़े व्यवसायमें लग गये।

प्रारम्भसे ही इनकी धार्मिक रुचि विशेष थी। पूजा, पाठ और व्रतोंका पालन करना आदि क्रिया मुख्य होनेसे बाल-बच्चेवाले होकर भी ये जनता द्वारा 'भगत' पद द्वारा सम्बोधित किये जाने लगे। इन्होंने अपनेको कभी नहीं भुलाया। यही कारण है कि अवसर मिलते ही ये कौटुम्बिक जीवनसे उदासीन हो मोक्षमार्गकी ओर झुके। इस समय ये सातवीं प्रतिमाके व्रत पालते हैं। इनके शिक्षागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराज स्वयं हैं। इन्होंने यह प्रतिमा वि० सं० २० १ में स्वीकार की थी।

इतना सब होते हुए भी इन्होंने समाज और राष्ट्रहितके कार्योंसे कभी भी उपेक्षा धारण नहीं की। स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए देशमें जो आन्दोलन हुआ है उसमें भी इन्होंने सक्रिय भाग लेकर देशहितके कार्यको आगे बढ़ाया है।

यदि हम इनके विषयमें शरीर और उसकी छायाका जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इनका पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराजके साथ कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। जब कभी कारण विशेषकी पूर्तिके लिए उनकी आज्ञासे इन्हें अलग रहना पड़ा है तब भी पत्र व्यवहार द्वारा इन्होंने इसे बनाये रखनेका प्रयत्न किया है। यों तो इनका पत्र व्यवहार बहुत बड़ा है पर उनमेंसे प्राप्त हुए कुछ उपयोगी पत्र यहां दिये जाते हैं।

[११–१]

शान्तिप्रकृति प्रिय श्रीलाला सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

आपके द्वारा भेजी हुई वस्तु जो आतप निवारणके लिए जल-संयोग चाहती है आयी। अस्तु, अब आपको और हमको वही कार्य करना हितकर होगा जो इस आतपादिसे आत्मा सुरक्षित रहे। अब तो ऐसी परिणति बनाओ कि यह हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला वह बुरा यह वासना मिट जावे, क्योंकि यही वासना बन्धकी जननी है। आजतक इन्हीं पदार्थोंमें ऐसी कल्पना करते-करते ससार ही के पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओंको छोड़ दिया किन्तु इनसे कोई तत्त्व न निकला। निकले कहाँ से? वस्तु तो वस्तुमें है, परमें कहाँसे आवे? परके त्यागसे क्या, क्योंकि वह तो स्वय पृथक् है। उसका चतुष्टय भी स्वय पृथक् है। किन्तु विभाव दशामें जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्यायका त्याग ही शुद्ध चतुष्टयका उत्पादक है, अतः उसकी ओर दृष्टिपात करो। लौकिक चर्चाको तिलाञ्जलि दो। आजन्मसे वही आलाप तो रहा। अब एक बार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन हो जाओ। अनायास सब दुखोंकी सत्ताका अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखें? जिसके हाथ इलायची भेजी वह जीव अत्यन्त भद्र है। ऐसे मनुष्यका समाज सुखकर है। इनके साथ स्वाध्याय बहुत ही लाभप्रद होगा तथा यह जीव आपका तो अतिप्रेमी है। आप अपने साथीको समझा देना। यदि अब द्वन्द्वमे न पड़े तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्वके फलकी रक्षाके लिए फिर द्वन्द्व में पड़ना कहाँतक अच्छा होगा सो समझमे नहीं आता। इससे शान्ति न मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी। परन्तु अभी ज्ञानमें नहीं आती।

धतूरेके नशेमें धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है। आपका अनुरागी है, समझ लेना।

ईसरी फाल्गुन सु० १४, सं १९९४ — आ शु चि० गणेश वर्णी

[११–२]

श्रीयुत लाला शान्तिमकृति प्रिय सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी बुद्धिमें तो प्रायः हम ही लोक स्वकीय शान्तिके बाधक हैं। जितने भी पदार्थ संसारमें हैं वह एक भी शान्त स्वभावके बाधक नहीं। बर्तनमें रक्खी हुई मदिरा अथवा डिब्बीमें रक्खा हुआ पान पुरुषमें विकृतिका कारण नहीं, एवं परपदार्थ हमें बाध्य करके विकारी नहीं करता। हम स्वयं अपने मिथ्याविकल्पोंसे मनमें इष्टानिष्ट कल्पना कर सुखी और दुखी होते हैं। कोई भी पदार्थ न तो सुख देता और न दुःख देता है। जहाँ तक बने आभ्यंतर परिणामोंकी विशुद्धिवृद्धि पर सदैव सावधान रहना चाहिए। गृहस्थोंका सर्वथा अहित ही होता हो यह नियम नहीं। हित और अहितका सम्बन्ध सम्यक्त्व और मिथ्याभावसे है। जहाँ पर सम्यक्त्वभाव है वहाँ हित और जहाँ मिथ्याभाव है वहाँ पर अहित है। मिथ्याभाव तथा सम्यक्त्वभाव गृहस्थ व मुनि दोनों अवस्थाओंमें होता है। हाँ साक्षान्मोक्षमार्गका साधक दिगम्बरत्व जो है सो गृहस्थके उस पदका लाभ परिग्रहके अभावमें ही होता है। अतः जहाँ तक हमारा पुरुषार्थ है, श्रद्धानको निर्मल बनाना चाहिए तथा विशेष विकल्पोंको त्याग स्वागममें रत रहना चाहिए। पदके अनुसार शान्ति आती है। इस अवस्थामें वीतरागावस्थाकी शान्तिकी श्रद्धा तो हो सकती है परन्तु उसका स्वाद नहीं आ सकता। मोदक बनानेसे उसका स्वाद

आजावे यह सम्भव नहीं। रसास्वाद तो चखनेसे आवेगा। आप जानते हैं जो इस समय घरको त्याग कर मनुष्य कितना दम्भ करता है और वह अपनेको प्राय. जघन्य मार्गमें ही ले जाता है, अतः जब तक आभ्यन्तर कषाय न जावे घर छोड़नेसे कोई लाभ नहीं। कल्याणकी प्राप्ति आतुरतासे नहीं, निराकुलतासे होती है। वैद्यराजजीसे कह देना ऐसी औषधि सेवन रोगियाको बताओ जो इस जन्मज्वरसे छूटे। शरीर तो पर ही है। जब आप आवें तो एक माह पहले सूचना दीजियेगा।

ईसरी,
अगहन सु० ५, सं० १९९५

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–३]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। पत्रादिकके पढ़नेसे क्या होता है। होनेकी प्रकृति तो आभ्यन्तरमें है। जलमें जो लहर उठती है वह ठंडी है, वालूमें वह बात नहीं। शान्तिका मार्ग मूर्छाके अभावमे है। जहाँ पर शान्ति है वहाँ पर मूर्छा नहीं और जहाँ मूर्छा है वहाँ शान्ति नहीं। बाह्य पदार्थ मूर्छामें निमित्त होते हैं। यह मूर्छा दो तरह की है—एक शुभोपयोगिनी दूसरी अशुभोपयोगिनी। उनमे पदार्थ भी दो तरहके निमित्त हैं। अर्हद्भक्ति आदि जो धर्मके अग हैं उनमें अर्हदादि निमित्त हैं और जो विषय कषायादिक हैं वे पापके अंग हैं। उनमें स्त्री, पुत्र, कलत्रादि निमित्त कारण हैं। अतः इन बाह्य पदार्थों पर ही यदि अवलम्बित रहे तब कहाँ तक ठीक है,समझमें नहीं आता। ऐसा भी देखा गया है जो बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं। यह जीव स्वयमेव कल्पना कर शुभाशुभ परिणामोंका पात्र हो जाता है। इससे श्रीस्वामी कुन्दकुन्द महाराजका मत है

कि अध्यवसान भाव ही बन्धका जनक है। अध्यवसानमें बाह्य द्रव्य निमित्त पड़ते हैं, अतः उनके त्यागका उपदेश है फिर भी बुद्धिमें नहीं आता। जैसे अशुभोपयोगके कारण बाह्य पुत्रादिक हैं, उनका त्याग कैसे करें ? उन्हें छोड़ देवें, फिर क्या छोड़नेसे त्याग होगया ? तब यही कहना पड़ेगा कि उनके द्वारा जो रागादिक परिणति। होती भी वही त्यागना चाहिए। अब च स्त्री आदि तो हश्य पदार्थ हैं उन्हें छोड़ भी देगा, परन्तु अर्हदादिक तो अतीन्द्रिय हैं उन्हें कैसे छोड़े ? क्या उन्हें ज्ञानमें न आने देवे, क्या करे ? कुछ समझमें नहीं आता। अन्ततो गत्वा यही निष्कर्ष निकलता है जो ज्ञानमें भले ही आवो, रुचिरूप ज्ञेय न होना चाहिए। तो अरुचि रूप इष्ट है, अरुचि भी तो द्वेषका अनुमापक है, तब क्या करे, जड़ बन जावे ? यह भी नहीं हो सकता। ज्ञानका स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है। ज्ञेय उसमें आता ही रहेगा। तब यही बात आई जो स्वपरप्रकाशक ही रहे, इससे अगाड़ी न आवे अर्थात् राग-द्वेषरूप न हो। यह भी समझमें नहीं आता जो ज्ञान रागादिक रूप होता है, क्योंकि ज्ञान ज्ञेयका ज्ञाता है, ज्ञेयसे तादात्म्य नहीं रखता, तब क्या करे ? यही करो कि अपनी परिणति रागादिक रूप न होने दो। क्या यह हमारे वसकी बात है ? हम लाचार हैं, दुखी हैं इस आपसे नहीं बच सकते। यह सब तुम्हारी कायरता और अज्ञानताका ही कटुक फल है जो रागादिकोंको दुःखमय दुःखके कारण जानकर भी उनसे पृथक् होनेका प्रयत्न नहीं करते। अच्छा अब आपसे हम पूछते हैं कि क्या रागादिक होनेका आपको विषाद है उन्हें आप पर समझ रहे हो ? यदि हाँ तब तो आपको उनके दूर करनेका प्रयास करना चाहिए। और यदि केवल यही भीतरी भाव हैं कि हम तुच्छ न समझे जावें, इसीसे ऊपरी बातें बना देते हैं कि

रागादिक अनिष्ट हैं, दुःखदाई हैं, पर हैं, तो व्यर्थ है। परन्तु जिस दिन सम्यग्ज्ञानके द्वारा इनके स्वरूपके ज्ञाता हो जावोगे फिर इनके निर्मूल होनेमे अधिक विलम्ब न लगेगा। रागादिकके होनेमें तो अनेक वाह्य निमित्तोकी प्रचुरता है और स्वाभाविक परिणतिके उदयमे यह वाह्य सामग्री अकिंचित्कर है। अतः स्वाधीन पथको छोड़कर पराधीन पथमें आनन्द मानना केवल तुम्हारी मूर्खता है। यावत् यह मूर्खता न त्यागोगे, कहीं भी चले जाना तुम्हारा कल्याण असभव है। क्या लिखें ? इन विकल्प-जालोंने सन्निपातकी तरह मूर्छाका उदय आत्मामें स्थापित कर दिया है जिससे चेत ही नहीं होता। यह सव वातें मोहके विभव की हैं। यदि भीतरसे हम जान जावें तव सन्निपात ज्वर क्या काल-ज्वर तक चला जा सकता है। अत वाह्य प्रक्रिया छोड़ कर आभ्यन्तर प्रक्रियाका अभ्यास करो। अनायास एक दिन नि.सग हो जाओगे। नि.सग तो पदार्थ है ही, परन्तु तुम्हारी जो वन्धमे एकत्वकी कल्पना है उसका अभाव हो जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप स्वय विज्ञ हैं। मेरी तो यह सम्मति है कि कल्याणका मार्ग अपनी आत्माको त्यागकर अन्यत्र नहीं। जवतक अन्यत्र देखनेकी हमारी प्रकृति रहेगी तवतक कल्याणका मार्ग मिलना दुर्लभ है। हम लोगोंकी अन्तरङ्ग भावना अतिदुर्वल होगई है। अपने आत्मवलको तो एक तरहसे भूल ही गये हैं। पञ्च परमेष्ठी

का स्मरण इसलिये नहीं था कि हम माला फेरकर कृतकृत्य हो जावें। उसका यह प्रयोजन था जो आत्मा ही के यह पाँच प्रकार के परिणमन हैं, उनमें एक सिद्धपर्याय जो अन्तिम अवस्था है। यह वह अवस्था है जिसका फिर अन्त नहीं होता। ४ अवस्थायें औदारिक शरीरके सम्बन्धसे मनुष्य पर्यायमें ही होती हैं। उनमें अरहन्त भगवान् तो परम गुरु हैं जिनकी दिव्यध्वनिसे संसारके आताप शान्त होनेका उपदेश जीवोंको मिलता है और ३ पद हैं सो साधक हैं। यह सब आत्माकी ही पर्यायें हैं। उनके स्मरणसे हमारी आत्मामें यह ज्ञान होता है जो यह योग्यता हमारी आत्मा में है। हमें भी वही उपाय कर परम अवस्थाका पात्र होना चाहिये। लौकिक राज्य जब पुरुषार्थसे मिलता है तब मुक्तिसाम्राज्य का लाभ अनायास हो जावे यह नहीं। लोक कहावत है—

मांगे मिले न भीख बिन मांगे मोती मिले।

अतः अरहन्तादि परमेष्ठीके भिक्षा माँगनेसे हम संसारबंधन से नहीं छूट सकते। जिन उपायोंको श्रीगुरुने दर्शाया है उनके साधनसे अवश्यमेव वह पद अनायास प्राप्त हो जावेगा। ज्ञान ही मोक्षका हेतु है। यदि वह नहीं है तब बाह्यमें व्रत, नियम, शील तपके होने पर भी अज्ञानी जीवोंको मोक्षका लाभ नहीं। अज्ञान ही बंधका कारण है। उसके अभाव होनेपर बाह्यमें व्रत, नियम, शील, तप आदिका अभाव भी है तब भी ज्ञानी जीवोंको मोक्षका लाभ होता है। अतः निमित्त कारणोंको उतना ही आदर देना योग्य है जितनेसे अन्तरङ्गमें बाधा न पहुँचे। सर्वोत्तम तो यह उपाय सबसे उत्कृष्ट और सरल है जो निरन्तर अपनी दिनचर्या की प्रवृत्ति देखता रहे। जो आत्माको अनुचित भान पड़े उसे त्यागे और जो उचित भान पड़े किन्तु परमार्थसे बाधक हो उसे

भी त्यागे। सीढ़ीका उपयोग वहीं तक उपादेय है जबतक महलमें नहीं पहुँचा है। भोजनका उपयोग क्षुधा निवृत्तिके लिये है। एवं ज्ञानका उपयोग रागादि निवृत्तिके लिये है। केवल अज्ञान निवृत्ति ही नहीं, अज्ञान निवृत्तिरूप तो वह स्वयं है। इसी तरह बाह्य व्रतका उपयोग चारित्रके लिये है। यदि वह न हुआ तब जैसा व्रती वैसा अव्रती। मन्द कषाय व्रतका फल नहीं। वह तो मिथ्यात्व गुणस्थानसे भी हो जाता है। अतः व्रतका फल वास्तवमें चारित्र है। इसीसे आत्मामें पूर्ण शान्तिका लाभ होता है।

ईसरी बजार
अगहन सुदी १२, सं० १९९५ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–५]

श्री सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

परोपकारकी अपेक्षा स्वोपकारमें विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है। अपि तु यह कहिए कि परोपकार मिथ्यादृष्टिसे ही होता है। सम्यग्दृष्टिसे परोपकार हो जावे यह बात अन्य है। परन्तु उसके आशयमें उपादेयता नहीं, क्योंकि यावत् औदयिक भाव है उनका सम्यग्दृष्टि अभिप्रायसे कर्ता नहीं, क्योंकि वे भाव अनात्मज हैं। इसका यह तात्पर्य है जो यह भाव अनात्म जो मोहादि कर्म उनके निमित्तसे होते हैं अतएव अस्थायी हैं। उन्हें क्या सम्यग्ज्ञानी उपादेय समझता है? नहीं समझता है। इसके लिखनेका यह तात्पर्य है जैसे सम्यग्दृष्टिके यह श्रद्धा है जो मैं परका उपकारी नहीं इसी तरह उसकी यह भी दृढ़ श्रद्धा है जो पर मेरा भी उपकारी नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे उपकार हो जाना कुछ अन्तरंग श्रद्धानका बाधक नहीं। इसी

प्रकार अनुपकारोंको भी जानना। सत्य पथके अनुकूल श्रद्धा ही आत्ममार्गकी आदि जननी है।

ईसरी
पौष कृष्ण ४, सं० १९९५ } — आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया; समाचार जाना। आपके भाई सा० अच्छे हैं यह भी आपके पुण्योदयकी प्रभुता है। शान्तिका कारण स्वच्छ आत्मामें है स्थानोंमें नहीं। बाहर आकर भी शान्ति यदि अन्तरङ्ग में मूर्छा है, नहीं मिलती। केवल उपयोग दूसरी जगह अन्य मनुष्योंके सम्पर्कसे परिवर्तित हो जाता है और वह उपयोग उस समय अन्यके सम्बन्धकी चर्चासे आकुलित ही रहता है। निराकुलताका अनुभव न घरमें है और न बाहर। यदि शान्तिकी इच्छा है तब निरन्तर यह चेष्टा होना श्रेयस्करी है जो यह हमारे रागादिक हैं यही संसारके कारण हैं, अन्य नहीं। निमित्त कारणमें दोषारोपण स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिए। यहाँ का व वहाँ का वातावरण एकसा है, चाहे नागनाथ कहो चाहे सर्पनाथ कहो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११—७]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

बन्धुवर! कल्याणपथ निर्मल अभिप्रायसे होता है। इस आत्माने अनादिकालसे अपनी सेवा नहीं की। केवल पर पदार्थोंके

संग्रहमें ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान् अर्हन्तका यह आदेश है जो अपना कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थोंमें जो आत्मीयता है वह छोड़ो। यद्यपि परपदार्थ मिलकर अभेद-रूप नहीं होते, किन्तु हमारी कल्पनामे वह अभेदरूप ही हो जाते हैं। अन्यथा उनके वियोगमें हमें क्लेश नहीं होना चाहिये। धन्य उन जीवोंको है जो इस आत्मीयताको अपने स्वरूपमें ही अवगत कर अनात्मीय पदार्थोंसे उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याणके भागी होते हैं। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य-पदार्थ कुछ भी बाधक नहीं और न साधक हैं। साधक-बाधक तो अपनी ही परिणति है। संसारका मूल हेतु हम स्वय हैं। इसी प्रकार मोक्षके भी आदि कारण हम ही हैं और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहज भावोंकी महिमा है। और जबतक उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मीका साम्राज्य मिलना असम्भव है। उसकी-कथा तो अजेय है। सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म सग्रहरूप हो गये हैं उनके अभाव बिना भी शुद्ध स्वरूपात्मक मोक्षप्राप्ति दुर्लभ है, अतः जहाँ तक उद्यमकी पराकाष्ठा इस पर्यायसे हो सके केवल एक मोहके कृश करनेमें ही उसका उपयोग करिये। और जहाँ तक बने परपदार्थके समागमसे बहिर्भूत रहनेकी चेष्टा करिये। यही अभ्यास एक दिन दृढ़तम होकर ससारके नाशका कारण होगा। विशेष क्या लिखूँ? विशेषता तो विशेष ही में है। आज कलका वातावरण अति दूषित है। इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

ईसरी
पूस सुदी ६, सं० १९९५ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-८]

श्री लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं क्या उपदेश लिखूं ? उपदेश और उपदेष्टा आपकी आत्मा स्वयं है। जिसने अपनी आत्मपरिणतिके मलिन भावोंसे उदासता धारण कर ली वही संसार समुद्रके पार हो गया। यह बुद्धि छोड़ो। परसे न कुछ आता है न जाता है। आपहीसे मोक्ष और आपहीसे संसार है। दोनों पर्यायोंका उदय होता है। आवश्यकता इस बातकी है जो हममें संसारमें भ्रमण करानेवाली कायरता है उसे दूर करें। जो मनुष्य पराधीन होते हैं वह निरन्तर कायर और भयातुर रहते हैं। पराधीनतासे बढ़कर कोई पाप नहीं। जो आत्मा पराधीन होकर कल्याण चाहेगा, मेरी समझमें वह कल्याणसे वञ्चित रहेगा। अतः अपने स्वरूपको देखो। ज्ञाता-दृष्टा होकर प्रवृत्ति करो। चाहे भगवत् पूजा करो चाहे विषयोपभोगमें उपयोग हो। किन्तु उभयत्र अनात्मधर्म जान रत और अरत न हो। अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्मा ही पर लक्ष्य रक्खो। पास होते हुए भी कस्तूरीके अर्थ कस्तूर मृगकी तरह स्थानान्तरमें भ्रमण कर आत्मशुद्धिकी चेष्टा न करो।

ईसरी
आषाढ़ सु० ७ सं० १९९९ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-९]

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपने जो आत्मज्ञान और आत्मबलके विषयमें प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है—

आत्मा और पुद्गलको छोड़कर शेष ४ द्रव्य शुद्ध हैं। जीव और पुद्गल ही दो द्रव्य हैं जिनमें विभावशक्ति है। और इन दोनोंमें ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्वारा विकार्य्य और विकारकभाव हुआ करते हैं। जिस कालमें मोहादि कर्मके उदयमें रागादिरूप परिणमता है उस कालमें स्वयं विकार्य हो जाता है और इसके रागादिक परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है, अत उसका विकारक भी है। इसका यह आशय है—जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते हैं और पुद्गलकर्मका निमित्त पाकर जीव स्वय रागादिरूप परिणम जाता है। अतः आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रवका करनेवाला भी है। इसी तरह जब आत्मामे रागादि नहीं होते उस कालमें आत्मा स्वय सम्वार्य्य और सवरका करनेवाला भी है। अर्थात् आत्माके रागादि निमित्तको पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादि रूप होते थे, अब रागादिकके बिना स्वय तद्रूप नहीं होते, अत. सवारक भी है।

अतः मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तकोका अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञानकी आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही न हो किन्तु उसके अन्दर मोहादिभाव न हो। ज्ञानमात्र कल्याणमार्गका साधक नहीं किन्तु रागद्वेषकी कल्मपतासे शून्य ज्ञान मोक्षमार्गका साधक क्या स्वय मोक्ष-मार्ग है। जो विष मारक है वही विष शुद्ध होनेसे आयुका पोषक है। अत. चलते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको कलंकित नहीं करता वही जीव कल्याणमार्गका पात्र है।

बाह्य परिग्रहका होना अन्य बात है और उसमे मूर्छा होना

अन्य बात है। अतः बाह्य परिग्रहके छोड़नेकी चेष्टा न करो। उसमें जो मूर्छा है, संसारकी जननी वही है उसको निर्मूल करनेका भगीरथ प्रयत्न करो। उसका निर्मूल होना असाध्य नहीं। अन्तरंगकी कायरताका अभाव करो। अनादि कालका जो मोहभावजन्य अज्ञानभाव हो रहा है उसे पृथक् करनेका प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्तामें लौकिक मनुष्य संलग्न रहते हैं कि हे प्रभो! हमारे कर्मकलंक मिटा दो। आप बिना मेरा कोई नहीं, कहाँ जाऊ, किससे कहूँ इत्यादि करुणात्मक वचनों द्वारा प्रभुको रिझानेका प्रयत्न करते हैं। प्रभुका आदेश है—यदि दुःखसे मुक्त होनेकी चाह है तब यह कायरता छोड़ो और अपने स्वरूपकी चिन्तना करो। ज्ञाता द्रष्टासे बाह्य मत जाओ। यही मोक्षका पथ है। तदुक्तम्—

> यः परमात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
> अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥

जो परमात्मा है वही मैं हूँ और मैं हूँ सो परमात्मा है। अतः मैं अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नहीं, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है।

यह अत्युक्ति नहीं। जो आत्मा रागद्वेष शून्य हो गया वह निरन्तर स्वस्वरूपमें लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है। उपकार अपकारके भाव रागी जीवोंमें ही होते हैं। अतः परमात्माकी भक्तिका यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होनेकी चेष्टा करो। भक्तिका अर्थ गुणानुराग, सो यह भी अनुराग यद्यपि गुणोंके विकासका बाधक है फिर भी उसका स्मारक होनेसे नीचली दशामें होता है, किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनुपादेय ही जानता है। अतः आत्माके बाधक कारणोंमें अरुचि होना ही आत्मतत्त्वकी

साधक चेष्टा है। अतः परमात्माको ज्ञानमें लाकर यह भावना भावो—यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा और मैं इनका आराधक इस भेदभावनाका अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्माके अन्तरको स्पष्टतया जान अन्तरके कारण मेट दो अर्थात् अन्तरका कारण रागादिक ही तो हैं। इन्हें नैमित्तक जान इनमें तन्मय न हो। यही इनके दूर होनेका उपाय है। जहांतक अपनी शक्ति हो इन्हीं रागादिक परिणामोंके उपचीण होनेका प्रयास करना। जब हमे यह निश्चय होगया जो आत्मा परसे भिन्न है तब परमे आत्मीयताकी कल्पना क्या हमारी मूढ़ताका परिचायक नही है? तथा जहा आत्मीयता है वहां राग होना अनिवार्य है। अत. यदि हम अपनेको सम्यग्ज्ञानी मानते हैं तब हमारा भाव कदापि परमे आत्मीयताका नहीं होना चाहिए। रागादिकोंका होना चारित्रमोहके उदयसे होता है, होओ, किन्तु अहबुद्धिके अभाव होनेसे अल्पकालमे निराश्रित होनेसे स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तीर्थङ्कर प्रभु केवल सिद्धभक्ति करते हैं। अत. उनके द्वारा अतिथिसविभागरूप दान होनेकी सभावना नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१०]

श्री सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आत्मकल्याण करनेकी प्रवल आकाक्षा हो उसे सबसे पहले अपने आत्म-पदार्थका दृढ निश्चय करना चाहिये कि जो मैं ससारदु.खसे भयभीत हो रहा हूँ वह क्या है?

जिसमें ये भाव उत्पन्न होते हैं वही आत्मा है, क्योंकि उसीमें यह ज्ञान द्वारा प्रतीतिमें आ रहा है कि मैं दुखी हूँ। दुःख क्या वस्तु है? जो अपने अन्तरङ्गमें रुचता नहीं वही दुःख है और जो अन्तरङ्गसे रुचता है वही सुख है। यद्यपि यह सभी जीवोंके ज्ञानमें आ रहा है परन्तु मोहके विषयमें इसमें कुछ अज्ञानता मिलती है। इससे यह जीव इन दोनों तत्त्वोंकी विपरीततासे अनुभूति कर रहा है। दुःख तो अपने अन्तरंगमें असाताके उदयसे व अरति कषायके द्वारा अरुचि परणति-रूप होता है। उसे हमें पृथक् करनेका उपाय करना चाहिये। परन्तु हम, जिन पदार्थोंके सम्बन्धसे हमारी यह दशा हुई उन्हें दूर करनेका प्रयास नहीं करते। वास्तवमें बाह्य पदार्थ न तो सुखद हैं न दुःखद। हम अपने रागादि भावोंके द्वारा उन्हें सुखदायी और दुःखदायी कल्पना कर लेते हैं। कोई कहे कि निमित्तकारण तो है पर यह भी कहना संगत नहीं। वे तो तटस्थ ही हैं। वे कुछ व्यापार (क्रिया) करके हमें दुःख नहीं देते। किन्तु हमारे ज्ञानमें जो वे भासमान हो रहे हैं, वे क्या भासमान हो रहे हैं? उनके निमित्तसे जो ज्ञानमें परिणमन हो रहा है वह परिणमन ही हमारा अन्तर ज्ञेय है और वही ज्ञेय हमें कल्पनाके अनुसार सुख-दुःखका कारण हो रहा है। परमार्थसे वह अन्तर ज्ञेय भी सुख-दुःखकी उत्पत्तिमें कारण नहीं। केवल अन्तःकलुषता परिणति ही आकुलताकी जनक है। हम उस कलुषताके पृथक् करनेका तो प्रयास ही नहीं करते जिससे सुख और दुःख होता है, किन्तु उस ज्ञेयके सद्भाव और असद्भावका प्रयास करते हैं। अथवा ऐसे उपाय करते हैं कि वह वस्तु हमारे उपयोगमें न आवे। इसके लिए कोई तो मन्दकषायी हैं जो शुभ भावोंके कारण होनेके ज्ञानमें आनेका प्रयास करते हैं। तीव्रकषायी

जीव इसके लिए मादकादि द्रव्यका सेवन कर उन्मत्त हो दुःख मेटना चाहते हैं। कोई नाटक-थियेटर या वेश्यानृत्यमें अपने उपयोगको लगाकर उस दुःखके नाशका उपाय करते हैं। ये सर्व प्रयत्न विपरीत हैं, क्योंकि दुःखकी जननी अन्तरंगमें रागादि-परिणतिकी सत्ता जब तक रहेगी, दुःख नहीं जा सकता अतः जिन्हें इन दुःखोंसे छूटनेकी आकांक्षा हो वे रागादिकोंके नाशका उपाय करें। आप सानन्द जीवन बिताइये। जो सामग्री मिली है, उसे साम्यभावसे जानने-देखनेका अभ्यास करिये। इस कालमें आपको जो समागम है, उत्तम है। इससे उत्तम मिलना कठिन है। हमारा विचार प्रायः बाहर जानेका नहीं होता, क्योंकि कारणकूट सर्वत्र अनकूल नहीं मिलते।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११-११]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चारित्रमोहका गलना इस पर्यायसे होना कठिन है। परिग्रहका जो त्याग आभ्यन्तरसे होता है वही तो कल्याणका मार्ग है। जो त्याग ऊपरी दृष्टिसे होता है वही क्लेशाकर है। वर्तमानमें वह सुखजनक नहीं और न आगामी सुखका जनक है। कौन आत्मा दुःखको चाहता है ? परन्तु इतने ही भावसे दुःखकी निवृत्ति नहीं होती। तत्त्वज्ञानपूर्वक राग-द्वेषकी निवृत्ति ही इसका (दुःख-निवृत्तिका) मूल कारण है। मेरी सम्मति तो यह है कि आप जो परस्पर दो मनुष्योंको मिलानेकी चेष्टा करते हैं और उसमें विफल प्रयत्न रहते हैं और फिर विफल होने पर

सी गुरुताका अनुभव करते हैं यह सब छोड़िये और एकदम सबसे कह दीजिये—जिसमें आपको सुविधा हो करो। हम कोई करनेवाले नहीं। जितना आप उन्हें मनाओगे उतना ही वे आसमान पर चढ़ेंगे। "कौन किसका" यही सिद्धान्त रखिये। मेरा यह तात्पर्य नहीं कि गृहवास छोड़ दीजिये; परन्तु भीतरसे अवश्य छोड़ दीजिये। संसारमें मानव पर्यायकी दुर्लभतापर ध्यान दीजिये। अपने परिणामों पर दृष्टि रखनेसे ही सबका भला होगा। आप रंचमात्र भी व्यग्र न हों। परपदार्थ व्यग्रताका कारण नहीं। हमारी मोहदृष्टि व्यग्रताका कारण है। उसे हटाओ। उसके हटनेसे जगतकी ही निश्चरता है। आत्मामें मोक्ष है, स्थानमें मोक्ष नहीं।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-१२]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मोही जीवका कल्याण तो इसीमें है कि बाह्यमें जो मोहके प्रबलतम निमित्त हैं उन्हें छोड़े। अनन्तर जो उनकी अपेक्षा कम न्यून निमित्त हैं उन्हें छोड़े। पश्चात् राग-द्वेषकी निवृत्तिके हेतु चारित्र गुणके साधक बाह्य व्रतादिक अंगीकार करे। यह तो आगमकी आज्ञा है। आत्माका सबसे प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, जिसके द्वारा ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्ररूप रहता है। और मिथ्यात्व क्या वस्तु है? सम्यक्त्वकी तरह अनिर्वचनीय है। केवल उसके कार्यको देखकर ही हम मत्यादि द्वारा सम्यक्त्वके सद्भावकी तरह उसका अनुमान कर सकते हैं। उसके कार्य स्थूल-

रूपसे तो नाना प्रकार हैं। जैसे—शरीरादिक परद्रव्योंमे स्वात्मतत्त्वकी कल्पना करना तथा आत्माकी सत्ता ही न स्वीकार करना। अथवा पृथ्वी आदिके मिलनेसे मदिरावत् आत्मतत्त्वकी सत्ता मानना। अथवा सच्चिदानन्द व्यापक आत्माकी सत्ता स्वीकार करना। अथवा सर्वथा शुद्ध तथा ज्ञानादि गुणोंसे सर्वथा भिन्न आत्माकी सत्ता मानना आदि नाना प्रकार हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१३]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजी चले गये हैं। उनके स्थान पर कुञ्जीलालजी अधिष्ठाता हैं। आप सानन्द स्वाध्याय करते होंगे। कुछ करने कहीं जावो, परन्तु कल्याण तो भीतरी मूर्च्छाकी ग्रन्थिके भेदन करनेसे ही होगा और वह स्वय भेदन करनी पड़ेगी, चाहे समवसरणमें चले जावो।

ईसरी,
आषाढ़ शु० ६, सं० १९९६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१४]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। मेरा विचार अब यहां से बनारस जाने का है और उस समय आपको पत्र दूंगा। यद्यपि शरीर धर्म का साधक है, परन्तु साधकतम नहीं। अन्तरङ्ग निर्मल परिणामोंके बिना कल्याण होना असम्भव है।

आत्मा निर्मल होनेसे मोक्षमार्गका साधकतम है और आत्मा ही मलिन होनेसे संसारका साधकतम है। अतः सर्वथा एकान्त नहीं। अतः जहाँ तक बने आत्माकी मलिनताको दूर करनेका प्रयास करना हमारा कर्तव्य है। आप अपने परिणामोंको निर्मल करनेका प्रयास करें। अन्यकी चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। पर की चिन्ता करना व्यर्थ है। हमारे उदयमें आ आया उसे स्वयं भोगनेका भाव है। कायरता करनेसे कोई लाभ नहीं। अतएव मेरी भावना सदैव यह रहती है जो अर्जित कर्म हैं उन्हें समताभावसे भोग लेना ही कल्याणके पथमें सहायक है। विशेष क्या लिखूं—हम लोग अति कायर हैं और पराधीनताके जालमें अपनेको अर्पित कर चुके हैं। इसीसे संसारी यातनाओंके पात्र हो रहे हैं। जब तक अपनी स्वाधीनताकी उपासनामें तल्लीन न होंगे, कदापि इस जालसे मुक्त न होंगे। मेरा मलेरिया, विकृत परिणामों का फल है। जब तक उन परिणामोंका अभाव न होगा, मलेरियाका जाना असम्भव है। औषध हमारे पास है, परन्तु हम उसे उपयोगमें नहीं लाते तो दूर कैसे हो। आशा है कुछ कालमें प्रयोग करूंगा, अभी योग्यता नहीं। आप सानन्द अपनी निर्मलताका पत्र दिया करिये। यही आपका शुभागमन है। ———— । संयुक्तावस्था यदि अनुकूल है, सुखद है। प्रतिकूलता दुःखकी जननी है।

गया
भाद्रपद शु० ८, ६ १९९९

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-१५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द जी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपने लिखा शांति नहीं मिलती

सो ठीक ही है, संसारमे शान्ति नहीं और अविरत अवस्थामे शान्तिका मिलना असम्भव है। वाह्य परिग्रह ही को हम अशान्तिका कारण समझ रहे हैं। वास्तवमे अशान्तिका कारण अन्तरङ्गकी मूर्छा है। जब तक उसका अभाव न होगा तब तक वाह्य वस्तुओंके समागममें भी हमारी सुख दु:खकी कल्पना होती रहेगी। जिस दिन वह शान्ति हो जावेगी विना प्रयासके शान्तिका उदय स्वयमेव हो जावेगा। अतः हठात् कोई शान्ति चाहे तब होना असम्भव है। एक तो मूर्छाकी अशान्ति, एक उसके दूर करने की अशान्ति। अत. जो उदयके अनुकूल सामग्री मिली है उसीमें समतापूर्वक कालको विताना श्रेयस्कर है।

ईसरी
कार्तिक शुक्ल १२, सं० १९९६ }

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–१६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। क्या लिखें? कुछ अनुभवमे नहीं आता। वास्तव जो वस्तु है वह मोहके अभावमे होती है जो कि वीतरागोंके ज्ञानका विषय है और जो लेखनी द्वारा लिखनेमें आता है उसे उस तत्त्वका अनुभव नही। जैसे रसनेन्द्रिय द्वारा रसका ज्ञान आत्मामें होता है उसको रसना निरूपण करे यह मेरी बुद्धिमें नहीं आता। अत क्या लिखू? जितनी इच्छा है आकुलताकी जननी है। जो जानने और लिखनेकी इच्छा है यह भी आकुलताकी माता है। यह क्या परमानन्दका प्रदर्शन करा सकती है? परन्तु जैसे महान् ग्रन्थोंमें लिखा है कि जीवका मूल उद्देश्य सुख प्राप्ति है तथा उसका मूल कारण मोह परिणामोंकी

सन्ततिका अभाव है। अतः जहाँ तक बने इन रागादिक परिणामोंके जालसे अपनी आत्माको सुरक्षित रक्खो। इन पराधीनताके कार्योंसे मुख मोड़ो। अपना तत्त्व अपनेमें ही है। केवल उस ओर आ जाओ और इस परकी ओर पीठ दो। ३६ पना जो आपसे है उसे छोड़ो और जगसे जो ६३ पना है उसे छोड़ो जगतकी तरफ जो दृष्टि है वह आत्माकी ओर कर दो इसीमें श्रेय-मार्ग है। दोहा—

"जगतें रहो छत्तीस ३६ हो राम चरण छै तीन ६३।
तुलसीदास पुकार कहें है यही मतो प्रवीन।"

जहाँ तक आत्मकैवल्यकी भावना ही उपादेय रूपसे भावना-द्वैत भावना ही जगतकी जननी है। शारीरिक क्रिया न तो साधक है और न बाधक है। इसी तरह मानसिक तथा वाचनिक जो व्यापार है उनकी भी यही गति। इनके साथ जो कषायकी वृत्ति है यही जो दुःख है सो अनर्थकी जड़ है। इनके पृथक् करनेका उपाय एकत्व भावना है। मैं पोस्टेज नहीं रखता, अतः जब पत्र डालो तब टिकट रख दीजियेगा। क्या करें रात्रि दिन मोहके सद्भावसे आत्मामें चैन नहीं, अतः बाह्य परिग्रहके त्यागसे शान्तिकी गन्ध भी नहीं।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-१७]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

चि० मुन्नालालजी से आशीर्वाद। हमारी अनादि कालसे जो यह धारणा बनी हुई है कि परपदार्थ ही हमारा उपकार और

अनुपकार करता है यह धारणा ही भवपद्धतिका कारण है। आज संसारमें जितने मत प्रचलित हैं अथवा प्राक् थे या भविष्यमें होंगे, सर्व ही का यह अभिमत है जो हमारी ससार यातनाका अन्त हो और उसके हेतु नाना युक्तियों और आगम-गुरुपरम्परा, स्वानुभव द्वारा उपाय दिखानेका प्रयत्न करते हैं। जो हो; हम और आपकी आत्मा, चैतन्यस्वरूप आत्मा है। कुछ विचारसे काम लेवें तब यही अन्तमें अनुभवसाक्षी निर्णय होगा जो बन्धसे छूटने का मार्ग हमारे मे ही है, केवल पर-पदार्थोंसे निजत्व हटाना है। आपको उचित है—अपने दुःखमें अपनी कषायपरणतिको ही कारण समझें। कल राजगृही जावेंगे। १५ दिन बाद पहुँचेंगे।

ईसरी } आ० शु० चि०
अगहन सुदि ४, सं० १९९७ } गणेश वर्णी

[११–१८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने, रागद्वेष के कारणों से सुरक्षित रहना। कल्याणका पथ आपमें है। पर से न हुआ, न होगा। शुभाशुभ उदयमें समभाव रखना यही जीवनका लक्ष्य है। स्वाध्यायमें लक्ष्य रखियेगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–१९]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। अबकी बार मलेरियाने बहुत ही सताया। अब तक निर्बलता है। किन्तु स्वाध्यायादि अब सानन्दसे होता है।

१—मनुष्य वही है जो अपनी आत्मा की प्रवृत्ति को निर्मल करता है।

२—सत्समागमका अर्थ यही है जो निजात्मा को बाह्य पदार्थों से भिन्न भावनाके अभ्याससे कैवल्यपद पानेका पात्र हो।

३—जिस समागमसे मोह उत्पन्न हो वह समागम अनर्थ की जड़ है।

४—आज कल वीतरागकथाका प्रचुररूपसे प्रचार है, वीतरागताकी गन्ध नहीं।

परिग्रहमें यही अनर्थ होता है। यह बात किसीसे गुप्त नहीं, अनुभूत है। अतः उदाहरणकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता उससे विरक्त होनेकी है।

आवश्यकता तो इतनी है कि यदि संसारके सब पदार्थ भी मिल जावें तो भी उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। अतः 'आवश्यकता न हो' यही आवश्यकता है। यदि यह हो जावे तब न आपको यहाँ आनेकी आवश्यकता है और न हमें पत्र देनेकी आवश्यकता है। परन्तु यही कठिन है यही अन्धेर है। सो आप व हम सर्व इसीके जालमें हैं। केवल सन्तोष कर लेनेके सिवाय कुछ हाथ नहीं आता। पानी बिलोनेसे घी की आशा तो असम्भव है ही, छाछ भी नहीं मिल सकती। जल व्यर्थ जाता है। बिलोनेसे पीनेके काम भी नहीं रहता है। प्रयत्नसे कार्य सिद्ध होता है। यदि कोई मोक्षमार्गका प्रयत्न करे तब कुछ असाध्य नहीं। परन्तु उस ओर उपयोग नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२०]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे, पत्र आया समाचार जाने। ८ दिन से फिर मलेरिया आ गया। अस्तु, ऋण लिया, देने में दु.ख मानना वेईमानी है। अत. देने में ही भला है।

आजकल सर्वत्र परिणामो की मलिनता है। इसी से दु:ख मय ससार हो रहा है। वाईयो को ज्वर आता है। मधुवन की महिमा है। मधुवन तो निमित्त है। अपने ही कर्मों का विपाक है। सुखपूर्वक सहन करनेमें ही आत्मस्वाद का आनन्द है, अन्यथा 'हाय' सिवाय कुछ नहीं। कल्याणका मार्ग सन्मतिमें है, अन्यथा जैनधर्मका दुरुपयोग है। कोई भी वस्तु हो, सदुपयोगसे ही लाभदायक होती है। मानुस पर्यायका भी सदुपयोग किया जावे तब देवोंको भी सुख नहीं। जो एक तिर्यञ्च सदुपयोग कर तृप्ति पाता है वह मनुष्यपदवी धारण कर भी नही पा सकता। अत इसीमें आत्मगौरव है जो श्रीमुन्ना व सुमति विषयोंकी तृष्णासे बचें तथा परस्परमें पाण्डव बनें। एक कौरव और पाण्डव न बनें। बात थोड़ी है, परन्तु न करने से वड़ी है।

पौष कृष्णा १४, सं० १९९८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२१]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समचार जाने। हमारा उदय अच्छा है जो मलेरियाके प्रकोपमें निरन्तर जागृत अवस्था रहती है। इतना ही

नहीं, परमेष्ठीका स्मरण भी निरन्तर रहता है। कर्मविपाक द्वारा धर्मध्यानकी पूर्ति होती रहती है। हमेशा संसारकी अनित्यताका ध्यान रहता है। एकत्वभावनाकी तो यह मलेरिया जननी है। आगामी असमयसेवनसे यह बचाता है। यही तो संवर है। कर्मोदयमें आकर खिर जाता है। इससे निर्जरा का भी सहायक है। निरन्तर धर्मका स्मरण कराता है। बोधिदुर्लभका तो मूल उपदेष्टा है। तथा कायक्लेश इसके कारण अनायास हो जाता है। अब समाधिमरणमें सहायक है। धर्मी लोग निरन्तर समाधिपाठ सुनाते हैं। सर्व लोग चाहते हैं। अतः मलेरियाके प्रकोपसे मुझे लाभ ही है। इतना सुअवसर पाकर यदि हम मार्गच्युत हो गये तब हमसा मूर्ख फिर कौन होगा? विशेष बाबाजीको भी उस मलेरियाका कोपभाजन बनना पड़ा है। श्रीमुन्नालाल, सुमति प्रसादसे सुभाशीस। अब पत्र लिखनेमें उत्साह नहीं होता, क्योंकि नवीन बातें आती नहीं। १०-५ दिनमें वायुपरिवर्तन करेंगे।

माघ वदि ५, सं० १९९८ }
आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–२२]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। अब मलेरिया शान्त है। पैरका दर्द भी अब शान्त है तथा सिरका भी। परन्तु वह वस्तु शान्त नहीं जिसके सद्भावमें यह सर्व उपद्रव आकुलताके कारण हैं और जिसके अभावमें घानी पेलना अग्निमें पटकना शिरपर सिगड़ी जलाना, स्यालिनी द्वारा भक्षण करना आदि भी आकुलताके कारण नहीं। प्रत्युत आत्मकैवल्यमें सहायक हुये। अतः

जिस महानुभावने उन रागादिका को जीत लिया है वही तो मनुष्य है। यों तो अनेक जनमते हैं और मरते हैं। उनकी गणना मनुष्योंमें करना व्यर्थ है। आँख वही है जिसमें देखनेकी शक्ति हो, अन्यथा नहीं के तुल्य है। एवं ज्ञान वही है जो स्वपर विवेक उत्पन्न करा देवे। अन्यथा उस ज्ञानका कोई मूल्य नहीं जिसने स्वपर भेद न कराया। अथवा उस त्यागका कोई महत्त्व नहीं जिससे आकुलता न जावे। एव उस दान की कोई प्रशंसा नहीं जिसके करने पर लोभ न जावे। विशेष क्या लिखें—सर्व कार्यों की यही प्रणाली हैं। अत. जो कार्य करो उसमें आकुलताके अभाव-को देखो। यदि वह न हो तब समझो उस कार्यमें आत्मीय लाभ कुछ नहीं। अभी यहीं रहनेका विचार है। जहाँ जावेंगे, आपको सूचना देवेंगे। एक लिफाफा इसके पहिले भेजा था, पहुँचा होगा। शेष कुशल है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-२३]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द जी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। यहाँ गर्मी बहुत पड़ती है। अतः गर्मी शान्त होने के बाद पावापुरी जाऊँगा। वहीं चातुर्मास करने का विचार है। आत्मा चिदानन्द है; किन्तु उसमें बाधक मोहादि भाव हैं। उनकी कृशता के होने पर ही आनन्द गुण का विकाश होता है। उसके होने में हम स्वयं उपादान हैं। निमित्त तो निमित्त ही है। जिस काल में हमारी आत्मा रागादि रूप न परिणमे वही काल आत्माके उत्कर्षका है। उचित मार्ग तो यही है जो हम पुरुषार्थ कर रागादि न होने देवें, परन्तु

उन पदार्थों को हटावे हैं जिन्हें रागादि होने में निमित्त मान रक्खा है। विशेष क्या लिखें। आषाढ़ वदीमें यहांसे चला आऊँगा।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-२४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। प्रथम आपने लिखा कि रत्नत्रय की कुशलता का पत्र देना सो साधर्मियों को यही उचित है। किन्तु यदि रत्नत्रय की कुशलता हो जावे तब यह सर्व व्यवहार अनायास छूट जावे। निरन्तर कषायोंकी मधुरतासे रत्नत्रय परिणति आत्मीय स्वरूपका लाभ करनेमें असमर्थ रहती है। जिस दिन वह अपने स्वरूप पर उन्मुख होगी, अनायास कषायों की मधुरताका पता न लगेगा। जिस सिंहके समक्ष गजेन्द्र भी नतमस्तक हो जाता है वहाँ पर स्याल-गीदड़ाकी क्या कथा। एवं जहाँ आत्मीयभाव (अभिप्राय) सम्यग्भावको प्राप्त हो जाता है वहाँ मिथ्यात्वको अवकाश नहीं मिलता। कषायोंकी तो कथा ही व्यर्थ है। इसी निमल भावके असद्भावमें आजतक यह आत्मा नाना संकटोंकी पात्र बनी रही है, तथा बनेगी।

अब आवश्यकता इस बातकी है जो आत्मीय भाव निर्मल बनाया जावे और उसकी बाधक कषायपरिणतिको मिटानेका प्रयास किया जावे। अन्य बाह्य कारणोंके साथ जो आक्रमण है वह आकाश ताडनके सदृश है। हमारा तो यही अभिप्राय है। शरीरकी व्यवस्था अब अच्छी है। गर्मीका प्रकोप ऋतुके अनुकूल हो रहा है। पराधीन व्यवस्था हो जाती है। व्यवस्था

तो उत्तम यह है जो इन परपदार्थों द्वारा सुख-दुःखकी मान्यताको त्याग दिया जावे। सुख-दुःख की व्यवस्था तो अपनेमें बनानी चाहिये, बाह्य पदार्थोंमें नहीं। देखो! जैसे एक मनुष्य उत्तम मन्दिरके अन्दर, जहाँ सूर्यकी किरणोंको अवकाश नहीं मिलता तथा उसके दरवाजे शीतल जलसे प्लावित और खशके पर्दोंसे आच्छादित हो रहे हैं, तथा बाहर से कुली पखा द्वारा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु पहुँचा रहा है, आराम कुर्सी पर लेटा हुआ है; अगल-बगलमें चाटुकारोंसे प्रशसित हो रहा है तथा सुन्दर रूपसे पुष्ट नवोढा स्त्री द्वारा प्रसन्नताका अनुभव कर रहा है, परन्तु अन्तरङ्गमें व्यापारादिकी शल्यसे कटुक पदार्थ मिश्रित मिश्रीके सदृश मधुर स्वादुके सुखसे वञ्चित है और जो उससे विपरीत सामग्री-वाला कुली है वह तीन आना पाकर चैनकी वशी बजाता है। अतः सुख-दुःखकी प्राप्ति परपदार्थों द्वारा मानना, महती भूल है। विशेष क्या लिखें। आपने लिखा—कोई वस्तुकी आवश्यकता हो मगा लेना सो ठीक है किन्तु जब यह श्लोक याद आ जाता है, चित्त अधीर हो जाता है।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतद् प्रार्थनं नाम॥

श्रीयुत मुन्नालालजीसे धर्मोपदेश कहना तथा यह कहना सानन्दसे स्वाध्याय करो तथा किसीसे भी स्नेह न करो। यही बन्धन की जड़ है। . . .. . । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा तथा पिताजी का भी स्वास्थ्य अच्छा होगा। छोटे भाईको धर्मप्रेम।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२५]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका पत्र आया, चित्त प्रसन्न हुआ। अब हमारा मलेरिया अच्छा है। २१ माह मलेरिया आया। मनुष्य वही है जो अपनी निरोगतामें अपने आत्मकल्याणके सन्मुख रहे। सरोग अवस्थामें असाता का उदय रहता है और उसमें प्रायः दुःखकी वेदना होती है। दुःखकी वेदनामें अशुद्धताकी प्रतिपक्षिणी, संक्लेशताकी प्रचुरता रहती है और संक्लेशतामें प्रायः पापप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है अतः जिन्हें आत्मकल्याण करना हो, उन्हें पर की चिन्ता छोड़ अपनी चिन्ता करनी चाहिए। शरीरकी परिचर्यामें ही अपनी शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। इसकी परिचर्यासे जो दुर्दशा आजतक हुई वह इसीका महाप्रसाद है यह कहना सर्वथा अनुचित है। हमारी मोहान्धता है जो हमने इस शरीरको अपनाया और उसके साथ भेदबुद्धि का त्यागकर निजत्वकी कल्पना की। व्यर्थ ही निजत्व की कल्पना कर शरीरको दुःखका कारण मान रहे हैं। हम स्वयं अपने आप पत्थरसे शिरको फोड़कर, पत्थरसे शत्रुता कर उसके नाशका प्रयास करते हैं। वास्तवमें पत्थर जड़ है। उसे किसीको न मारने की इच्छा है और न रक्षा करनेकी। एवं शरीर को न आत्माको दुःख देनेकी इच्छा है, न सुख देनेकी ही।

अतः इससे ममत्व त्यागकर आत्माका प्रथम तो वह भाव, जिसके द्वारा शरीरमें निजत्वबुद्धि होती थी त्याग देना चाहिए। उसके होते ही संसारमें यावान् पदार्थ हैं उनसे आपसे आप ममत्व परिणाम छूट जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-२६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सब्जी आ गई। इतनी दूरसे सब्जी नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि प्रायः चलित रस हो जाती है। आपके भावोंके अनुकूल प्रतिमा जी मिल गई, यह अच्छा हुआ। अब जहाँ तक बने, उसके अनुकूल होने की चेष्टा करना। ससारम हम लोग जो आज तक भ्रमण कर रहे हैं इसका मूल कारण 'हमने अपनी रक्षा नहीं की' है। निरन्तर पर पदार्थोंके ममत्वमें आपको विस्मृत हो गये। अब अवसर उत्तम आया है। इसका सदुपयोग करना चाहिए। व्यर्थ परकी चिन्ता न करना चाहिए। परकी रक्षा करो, परन्तु उसे आत्मीय तो न समझो।

श्री मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि। सानन्दसे जीवन बिताओ और गृहिणीकी सम्यक् परिचर्या करो, परन्तु अन्तरङ्ग से उस वस्तुमें आत्मीय सकल्प त्याग दो। यही सुखका मूल है। मेरा तो यही कहना है जो शरीरमें भी निजत्वको छोड़ो। छोटे भाईको आशीर्वाद। हमारा इतना स्वास्थ्य खराब नहीं। यदि होगा, आपके पिताको बुला लेवेंगे। पिता जी अभी वहीं रहे। विशेष क्या लिखें, आपके पिताजी भव्य जीव हैं। शान्त प्रवृत्ति के हैं। उनसे कहना—स्वाध्याय परम तप है। इस ओर विशेष लक्ष्य देवें। इस कालमें कल्याणका वही जीव पात्र होगा जो बहुजनोंके समागममें न रहेगा। हमारा उनसे हार्दिक स्नेह है। अभी तो हम यहाँ ही हैं। गर्मीके बाद जहाँ जावेंगे उन्हे लिखेंगे।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२७]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। वियोगजन्य शोक होता है यह हमारी भूल है। जहाँ वियोगसे कैवल्य होता है वही आत्मा की निजावस्था है। हमने जो कुछ परिग्रह था, छोड़ दिया। बरुवासागरमें १०) थे वह वहाँ की पाठशालाको दे दिये। ११) बनारसको जो यहाँ शेष थे वे दिये। अब तो वस्त्र मात्र केवल, जिससे निर्वाह हो सके तथा ३ बर्तन रक्खे हैं। पुस्तकें भी सागर आदि का दे दी हैं। अब मेरे नाम कुछ वस्तु न भेजना। यह विचार मेरा पहिले भी था। अब फागुन बदी ४ को सागर की ओर जाऊँगा। आप सानन्द स्वाध्याय करिये और अबकी बार चातुर्मास उसी प्रान्तमें होगा। पत्र गया देना।

गया
माघ सु १२, स १९९८

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२८]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं सानन्द आ गया। यहाँ बड़े वेगसे मलेरिया आया। अब शान्त है। फाल्गुन भर यहीं रहूँगा। चैत्र बदि १ को चलूँगा। बनारस जाऊँगा। एक बार तो द्रोणगिरि आनेका विचार है। शरीर वृद्ध है फिर भी बलात्कार आ रहा हूँ। सम्भव है, भावनाके अनुकूल पहुँच जाऊँ। आप निश्चिन्त, तत्त्वभावनामें काल लगाना। वर्तमानमें लोग आडम्बर प्रिय हैं। बाबा भागीरथ वास्तविक त्यागी थे। बहुत ही शान्ति पूर्वक समाधिमरण हुआ।

मैं जितना उनसे परिचित हूं, आप नहीं। वियोगमे आत्मदृष्टि नहीं हुई, तब संयोगमें क्या होगी ? आत्मलाभ तो वियोगमे ही है। ससारकी प्रवृत्तिको लक्ष्य न कर अपनी मलिनताको हटाने का प्रयत्न करना। गृहवास उतना बाधक नहीं जितना बाधक कायरोंका समागम है। जिसे देखो, अपनी विभुताके गीत अलापता है। इससे यही ध्वनित होता है—आत्मा तुच्छावस्थाको नहीं चाहता। आप एक विशिष्ट आत्मा हैं। अतः जगाधारीको तीर्थस्थली बनाकर ही रहना। इसका यह तात्पर्य नही जो कोई स्थान निर्माण करना, किन्तु निर्मल भाव करना। यही भाव स्थानको तीर्थ बनाता है। श्री मुन्नालाल, सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहना।

गया
फाल्गुन सु० ७, सं० १६६८ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–२६]

मोह की क्या कहेंगे, कोई क्या कहेगा। इसने सर्व ही निर्मल भावोंपर अपना प्रभाव जमा लिया है। विचार यहाँसे जल्दी ही उस तरफ आनेका है। देखें क्या परिणाम निकलता है। एक आपसे हमारा कहना है जो शास्त्रसभामें व्यक्त कर देना—जिन जीवोंको कल्याणकी अभिलाषा है वे स्नेहपाशसे न बँधे। यही बन्धन बन्धन है और कोई नहीं। कल्पना करो, हम सागर आ ही गए तब सागरवालोंको क्या लाभ होगा ? क्योंकि मैं ४ माह मौनसे रहूँगा। एक बलाय मोल लेनेके तुल्य यह कार्य होगा। श्रीयुत भैया पूर्णचन्द्रजी से दर्शनविशुद्धि। उनके पत्रसे उनका भाव जान बड़ी प्रसन्नता हुई। वह योग्य

व्यक्ति हैं। बहुत ही अच्छा उन्होंने किया। मैं प्रायः सस्ती ही यहाँ से प्रयाण करूँगा। उनका यहाँपर कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–३०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

रोग तो मलेरिया था। उसकी दवा, शान्तिपूर्वक सहना यही वातराग की अचूक रामबाण थी। हमारी यही श्रद्धा थी, परन्तु आप लोगों की कटुकी चिरायता गुलबनस्पा आदि थी। परन्तु हमने श्रद्धा के अनुकूल ही दवा-साधन की। प्रायः अब इस दवा से बारह आने आराम कर दिया। शेष आराम हो जावगा। यों कुछ दिन में यह भी चला जावगा।

वैशाख वदि १, सं० १९९८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–३१]

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। हमारा ज्वर शान्त हुआ तब पगमें दर्द हो गया। वह अच्छा हुआ तब बाजूमें पीड़ा हो गई और कभी-कभी मस्तकमें भी वेदना हो जाती है। परन्तु इतना अच्छा है जो अन्तरङ्गमें उतनी आकुलता नहीं होती जैसी वेदना होनी चाहिये। यद्यपि बाह्य-प्रवृत्तिमें न्यूनता आ जाती है तथापि भीतर न्यूनता नहीं आने देता। आत्मा की यह दशा हम ही ने बना रक्खी है। इन सब वेदनाओंका मूल कारण हमारा ही मोह

परिणाम है और जब तक यह रहेगा इनसे भी भीषण दुःखों का सामना करना पड़ेगा। हम चाहते तो हैं जो आत्मा संकटों से बचे, परन्तु उसका जो अभ्रान्त मार्ग है उससे दूर भागते हैं। कोई मनुष्य पूर्वतीर्थके दर्शनोंकी अभिलाषा करे और मार्ग पश्चिमका पकड़ लेवे तब क्या वह इच्छित स्थान पर पहुँच सकता है? कदापि नहीं। यही दशा हमारी है। केवल सन्तोष कर लेना जो हम मिथ्यामार्ग पर हैं, इससे कार्यसिद्धि नहीं। तथा केवल श्रद्धा और ज्ञानसे काम न चलेगा। किन्तु ज्ञानसे जाने हुये रागादि परिणामोंकी निवृत्तिसे ही अभीष्ट पदकी प्राप्ति होगी। उपाय करनेसे होता है। अतः पुरुषार्थ कर स्वीय तत्त्वलाभ लेना चाहिये। श्री मुन्नालाल सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहें।

गया } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३२]

हमारी दृष्टि इतनी उपेक्षणीय हो गई है जो हम निमित्त-कारणो ही के ऊपर अपना कल्याण और अकल्याणका मार्ग निर्माण कर लेते हैं। आप जहा तक बने, अपने भीतरकी परिणतिको देखो। बाह्य परिणतिको देखनेसे कुछ न होगा। मूर्तिनिर्माता सगमरमरकी खानमे ही शिलाका अस्तित्व मानता है, न कि मारवाडके बालुपुञ्जमें। आत्माकी शक्ति अचिन्त्य है। उसको विकाशमें लानेवाला यही आत्मा है। आज जो ससारमें विज्ञानकी अद्भुत 'संहारशक्ति' प्रत्यक्ष हो रही है यह आविष्कार आत्माका ही तो विकाश है, तथा जो शान्तका मार्ग जिनागममें पाया जाता है यह

भी तो मोक्षमार्गके आविष्कार-कर्त्ताकी दिव्यध्वनि द्वारा परम्परागत आया हुआ है।

अतः सर्व विकल्पोंको, मायापिण्डको और अपनी परिणतिको उपयोगमें लाओ। उसके बाधक तुम्हा, दुर्मति नहीं हैं। यदि उन्हें समझते हो तब उस भावका हटाओ।

आप मेरे रोगकी चिन्ता न करना। यदि आप अपने रोग का मिटा सके तो संसारका मिट गया, क्योंकि हमें उसका विकल्प ही न रहा।.......शरीरकी अवस्थाका सुधार औषध से न हुआ और न होगा। उसकी मूल औषधि तो हमारे ही पास है। परन्तु हम औषधि भी सेवन करते हैं और परकी आलोचना कर अपथ्य सेवन भी करते हैं। इससे न निरोग ही हो सकते हैं और न रोगी ही रह सकते हैं। दुर्वासना के प्रकोपसे बीचमें लटक रहे हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३३]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आम अच्छी तरह आ गये। १० आम हम अपने उपयोग में लाए शाय ईसरी आश्रमवासियोंके अर्थ भेज दिए। आत्माका गुरु आत्मा ही है और आत्मा ही आत्माका शत्रु है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्तिमें मूल कारण आत्मा ही है। चार लब्धि तो निरन्तर होती हैं। करणलब्धि होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है। किसी का उपदेश आदि तो समय पर मिलता है। सर्वथा आत्मा एकाकी ही रहता है। अतः परकी पराधीनतासे न कुछ आता है न

जाता है। आत्माका हित अपने ही परिणामोंसे होता है। स्वाध्याय आदि भी उपयोगकी स्थिरताके अर्थ है। अन्तमें निर्विकल्पदशामें वीतराग भावका उदय हो जाता है।

पराधीनतामें मोहकी परिणति रहती है। वह आत्माके गुणविकाशमें बाधक है। मुखसे जितनी प्रशंसा मोही जीव करें, वे कहते अन्तमें यह हैं कि मोहभाव उसका बाधक है। भक्ति करनेवाला क्या कहता है? हे भगवन्! जब तक कैवल्यावस्था न हो तब तक मेरा हृदय आपके चरणाम्बुजका मधुकर रहे। अथवा आपका चरणाम्बुज मेरे हृदयमें रहे। इसका अर्थ यही है—जब तक मेरे यह शुभोपयोग है तब तक वह अवस्था नहीं हो सकती। इसमें विशेष ऊहापोहकी आवश्यकता नहीं। तात्त्विक विचारकी यही महिमा है जो यथार्थ मार्ग पर चलो। शुभोपयोगको ज्ञानी कब चाहता है? यदि उसके शुभोपयोग इष्ट होता तब उसमें उपादेय बुद्धि होती। निरन्तर यही चाहता है कि हे प्रभो। कब ऐसा दिन आवे जो आपके सदृश दिव्यज्ञानको पाकर स्वच्छन्द मोक्षमार्गमें विचरूँ। इसका अर्थ केवल व्यवहारपक्षको जो इच्छा हो सो कहें, परन्तु कषाय चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो, मोक्षमार्गकी बाधक है और यह अनुभवगम्य बात है। हमारी तो यह दृढ़ श्रद्धा है कि आचार्यों ने कहीं भी शुभोपयोगको उपादेय नहीं बताया। तथा पूज्यपाद स्वामीके समाधिशतकमें ऐसा वाक्य भी है जो सर्वोत्तम उत्तर है—

> यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये।
> उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥

हम इससे अधिक कुछ नहीं जानते। अतः इससे विशेष ज्ञान, इससे अधिक होना कठिन है। यदि विशेष तत्त्व जाननेकी

इच्छा है तब आगम अध्यात्मज्ञ पण्डितोंसे पत्रव्यवहार करे। श्री पतासीबाई सानन्द हैं। ४-६ दिन बाद पावापुर चले जावेंगी।

द्वितीय ज्येष्ठ सुदि ९ ,सं०१९९९ } 			आ शु चि०
						गणेश वर्णी

[११-३४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा जितना प्रयास है, केवल अन्तरङ्ग कषायकी वेदना दूर करनेके अर्थ ही होता है । यह निर्विवाद है। फिर हमें उचित तो यह है कि जिसकी वेदनासे पीड़ित होकर हम अनेक उपायों से उसको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं उसका आगर विशेषरूप से विचार करिये—हम सबसे निद्राभङ्ग होनेपर जागृतावस्थामें आते हैं, एकदम भी अर्हन्तदेवका स्मरण करते हैं। उसका आशय यही रहता है कि हे प्रभो ! संसारदुःखका अन्त हो! अनन्तर सामायिक करते हैं। उसका भी यही तात्पर्य रहता है जो जितना सामायिकका काल मेरे नियमके अनुसार है तब तक मैं साम्यभावसे रहूँगा । इसका भी यही अर्थ है जो सामायिकके समयमें कषायोंकी पीड़ासे बचूँ । अनन्तर शौचादि क्रिया करनेके अर्थ जो काल है उसमें भी मलादिजन्य बाधा दूर करनेका ही तात्पर्य है। अनन्तर जो देवपूजा, स्वाध्यायादि क्रिया हैं उनका भी यही तात्पर्य है जो अपनी परिणतिको अशुभोपयोगकी कलुषतासे रक्षित रखना। अनन्तर भोजनादि क्रियाकी जो विधि है उसका भी तात्पर्य क्षुधाजन्य बाधानिवृत्ति ही है। फिर जो

व्यापारादि क्रिया है उसका भी प्रयोजन लोभकषायजन्य वेदना को दूर करना ही है। उपार्जित धनमे जो दानादिविभाग श्री गुरुओंने दिखाया है उसमे भी परोपकारविषयक कषायजन्य वेदनानिवृत्ति ही फल है। तथा जो क्रोधादिक जितनी भी चेष्टाएँ हैं उनका तात्पर्य तज्जन्य वेदनानिवृत्ति ही है। निन्दा-गर्हा का भी यही मर्म है। महाव्रतादिकमें भी जो जीवोंकी रक्षा आदि महर्षियां द्वारा होती है उसका भी यही तात्पर्य है जो सचालन-कषायजन्य पीड़ा दूर हो। तब हम लोगोंको भी यही उचित है जो कुछ भी कार्य करें उसमें अहवुद्धि-ममवुद्धि कर कर्त्ता वननेकी चेष्टा न करें, अन्यथा ससारवन्धन छूटना कठिन है। अभी गर्मी अधिक पड़ती है। २० दिन वाद जहाँ जाऊँगा, तार दे दूँगा। श्री मुन्नालालजीको दर्शनविशुद्धि कहें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-३५]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

हमारा विचार राजगृही जानेका था और ईसरीसे १७ मील सरिया आये। परन्तु यहाँ पर मनोवृत्ति एकदम ही वदल गई। अव ईसरी वापस जा रहे हैं। अन्तरङ्गकी भावना पर विचार करते हैं तव तो उन्मत्तदशा है, क्योंकि पर्यायमे यदि लक्ष्यको स्थिर नहीं किया तव सञ्ज्ञीपर्यायका कोई महत्त्व ही नहीं जाना। सञ्ज्ञीपर्यायकी महत्ता तो इसमें है जो हिताहितको पहिचान कर स्वात्ममार्गकी वृद्धि करते। सो तो दूर रहा, यहाँ तो विषवीजका वपन कर रहे हैं। फल इसका इसके नामसे ही प्रख्यात है।

अब पश्चात्ताप करना विवेकका अर्थ नहीं। अब तो नेत्रन्यास करनेमें ही जन्मकी सार्थकता है। अधिकतर घातका कारण अन्तरङ्गसे लोकैषणा है। इसे त्यागो। आत्मरलाभमें प्रसन्न होना संसारी जीवोंकी चेष्टा है। जो मुमुक्षु हैं वह इन विजातीय भावोंसे अपने आत्माकी रक्षा करते हैं। एक वस्तुका अन्य वस्तुसे तादात्म्य नहीं। पदार्थकी कथा छोड़ो। एक गुणका अन्य गुण और एक पर्यायका अन्य पर्यायके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं। फिर परके द्वारा विभावों द्वारा की गई स्तुति-निन्दा पर हर्ष-विषाद करना, अपने सिद्धान्तपर अविश्वास करनेके तुल्य है। जो सिद्धान्तके वक्ता हैं वह आपपर नहीं जाते हैं। सिद्धान्तवेत्ता ही वे कहलाते हैं जिन्हें स्वपरज्ञान है तथा वे ही सच्चे वीर और आत्मसेवी हैं।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११-३६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, जहाँ तक बने स्वाध्यायमें विशेष योग देना। व्यापार करनेसे आत्मा पवित्र नहीं होता, पवित्र होनेका कारण परिग्रहमें अति ममता है। षट्खण्डका स्वामित्व भी ममताकी कृशतामें बाधक नहीं और ममताकी प्रबलतामें अपरिग्रही होकर भी इस जन्म तथा जन्मान्तरमें भी दुःख के पात्र होते हैं। हमारा यह कहना नहीं जो आप परिग्रहका न छोड़े। परन्तु छोड़नेके पहिले इतना दृढ़ अभ्यास करलो जो सुमालाभ और सुमविसम्वादमें भी आत्मीयभाव न हो। छोड़ना

तो कोई वस्तु नहीं तथा जिसे हम छोड़नेका प्रयत्न करते हैं वह तो हमारा है ही नहीं। अतः प्रथम तो उसे अपना न समझो। इसका दृढ़ अभ्यास करो। यह होते ही सब कुछ हो गया। जो कहता है, हमने परिग्रह छोडा वह अभी सुमार्गपर नहीं। रागभाव छोडनेसे ही परपदार्थ स्वयमेव छूट जाता है। लोभकषायके छूटते ही अन्य धनादिक स्वयमेव छूट जाते हैं। अनुभवमें यही आता है जो धनके द्वारा परोपकारके भाव होना संसारके वर्धक हैं। इसमें लोभका त्याग नहीं। इस दानमें स्वपरके उपकारकी वांछा है और वही आस्रवादिका कारण है। इसीसे दानको आस्रवप्रकरणमें पठित किया है। सम्यग्दृष्टिके भी दान होता है, परन्तु उसका भाव लोभनिवृत्तिके अर्थ है, न कि पुण्यके अर्थ। यही भाव पुण्य पाप सबमें लगा लेना। चि० मुन्नालालजी सुमतिप्रसादसे योग्य शुभाशीस। आपकी भाभीका स्वर्गवास हो गया। यदि उस समय कुछ दान निकाला हो तब स्या० वि० का भी ध्यान रखना। जो परिणाम परिग्रहमें फँसावे वह त्यागना तथा कुछ काल स्वाध्याय में लगाना।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[११–३७]

श्रीयुत लाला महाशय सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। कुछ दिन बाद गुणावा जानेका विचार है। जब जाऊँगा आपको लिखूँगा। आप गर्मी बाद आइए। इस तरफ गर्मी वेशी पड़ती है। अभी स्वाध्यायमें भी

विशेष उपयोग नहीं। कल्याणमार्ग तो आभ्यन्तरसे ही सम्बन्ध रखता है और अन्तरङ्ग निर्मलताका मूल हेतु आत्मा स्वयं है। यदि ऐसा न हो तब किसी भी आत्माका उद्धार न होता। निमित्त कार्यमें सहायक है, किन्तु उसीपर अवलम्बित रहनेसे कोई भी इच्छित वस्तुका लाभ नहीं कर सकता। खेतको जोतने मात्रसे अन्नका लाभ बीज बोये बिना असम्भव है एवं मन-वचन-कायके व्यापार आभ्यन्तर कषायके सद्भावमें संसारके ही कारण हैं और कषायाभावमें संसारके कारण नहीं। अतः निरन्तर कषायके घटानेकी चेष्टा करना ही अपना कर्तव्य होना चाहिए। कोई भी काम करो बस वस्तुका देखना चाहिए। केवल बाह्य निर्मलताको देखकर सन्तोष नहीं करना चाहिए। बाह्य निर्मलताका इतना प्रभाव नहीं जो आभ्यन्तरकी कलुषताको हटा सके और आभ्यन्तर निर्मलतामें इतनी प्रबल शक्ति है जो उसके होते ही बहिर्द्रव्यकी मलिनता स्वयमेव चली जाती है। आभ्यन्तर प्रवाहकी कीली निकलनेसे अनायास पाप मिट जाता है। चि० सुमालालकी सुमतिमिलापसे दर्शनविशुद्धि। स्वाध्याय नियम पूर्वक करते रहना।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-३८]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, दर्शनविशुद्धि

हम राजगृही नहीं गए। शक्ति अब विशेष परिश्रमकी नहीं। अब तो एक स्थानपर रहकर आत्मकल्याण करनेमें है। आप भी सुपुत्रोंको सानन्द रहनेका उपदेश दीजिए। आनन्द-गुण आत्मामें

है। कलह भी वहीं है। एक बात कोई करले—या तो आनन्द ले ले या कलह ही कर लेवे, इत्यादि। चि० मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि। परपदार्थके निमित्तसे जो भी बात हो उसे पर जानो और जब तक इसे विकार न समझोगे आनन्द न पावोगे। अब तो सुमेरचन्द्रजी सानन्द जीवन बितादो यही आपसे प्रेरणा है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११--३६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी जगाधरी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। हम लोगोंकी आत्मा अति दुर्बल है तथा दुर्बलताके सम्मुख जा रही है, क्योंकि उसका जो भोजन है वह उसे नहीं मिलता। भोजन उसका पासमें ही है किसीसे याचना करनेकी आवश्यकता नहीं तथा वहाँ पर कोई चरणानुयोगका नियम भी लागू नहीं जो दिन ही को खाओ, रात्रिको मत खाओ, स्नान करके ही खाओ। फिर भी प्रमाद इतना बाधक है जो उस भोजनको करनेमें ही हम अनादर करते हैं। अथवा उसमें विष मिला देते हैं। आत्माका भोजन ज्ञान-दर्शन है। हम उसमें कषाय-रूपी विष मिलाकर इतना दूषित कर देते हैं जो आत्मा मूर्च्छित होकर चतुर्गतिगर्त्तोका पात्र बनता है। अत प्रमादका परिहार कर सावधान हो देखने जाननेमें कषायविष मिलनेका अवसर न आने दो। जो प्रमादी हैं वे कुशल कार्य करनेमें सर्वदा अव-हेलना करते हैं। इससे मुक्त होनेका उपाय यह है जो प्रमादको त्याग आत्मस्वरूपका मनन करो। आत्मस्वरूपका यथार्थ अव-

योध होनेपर स्वयमेव सूर्योदयवत् आत्मा विषम त्याग सुपथ पर आनेमें विलम्ब न करेगा। अनादिसे इस प्रमादके वशीभूत होकर हमने उस उपायको न जाना और आत्मस्वरूपके जाननेके अभावमें ही इन भौतिक पदार्थोंके व्यामोहमें फँसे रहे। परपदार्थको निज जाना। अब सुअवसर आया है। सब सामग्री कल्याणकी हमें सुलभ है। इस सुलभतासे यदि हमने लाभ न उठाया और वही राग अलापा तब जिस दशाका अनुभव हमें इष्ट नहीं, बलात्कार भोगना पड़ेगा।

आषाढ़ बदि १४, सं १९९९ } आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४०]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

दशलक्षण धर्म सानन्द बीता। यथाशक्ति दशधा धर्मका पालन किया। उपचारसे तो सर्व हुआ पर परमार्थसे जितना क्रोधादिकों का अंश कृश हुआ वही स्वात्मीय भाव है और वही भाव आत्मा में शान्तिकर है। जो कषायके मन्दोदयमें प्रवृत्तिरूप धर्म होता है यह आत्माको दुर्गतिसे बचाता है तथा शुभ गतिमें ले जानेमें निमित्त है। तथा उसके सद्भावमें आत्मा स्वीय स्वरूपका लाभ यथार्थ प्रयत्न करनेसे ले सकता है। परन्तु जो उसे ही आत्महित मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं वे दीर्घसंसारी हैं। अतः जिन्हें दीर्घ संसारसे भय है उन्हें श्रद्धागुणका कलङ्कित नहीं करना चाहिए। श्रद्धामें शुभ प्रवृत्तिका अनादरणीय जान उसमें उपादेय बुद्धि करना योग्य नहीं। शुभ प्रवृत्ति ही होने दो। उसम कर्तृत्व भाव न रक्खो। यदि शुभ प्रवृत्ति उपादेय होती तब श्रीगुरु चतुर्थ धर्म-

ध्यानसे शुक्लध्यानमें न जाते तथा प्रथम शुक्लध्यानसे द्वितीय न होता। कहाँ तक कहे—इसे भी त्याग तृतीय शुक्लध्यानमे जाना पड़ता है, क्योंकि यहाँ भी वाहर काययोग है, तथा तृतीय ध्यानमे सूक्ष्म क्रिया होनेसे यह भी परम यथाख्यातचारित्रका वाधक है। अत. इसका भी त्याग होकर चतुर्थ शुक्लध्यान होता है। इसका भी त्याग होकर सर्व कर्मोंसे विनिर्मुक्त हाकर आत्मा सिद्धदशाको प्राप्त होता है। इसी अवस्थाका नाम कैवल्य अवस्था है। अत सब पदार्थोंसे छूटनेकी भावना ही इस पदप्राप्तिमे वलवान् कारण है। श्री मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि कहें। समयके अनुसार प्रवृत्तिको शुभोपयोगमे लगाना। छोटे भाईको शुभाशीर्वाद कहे।

क्वार वदि २, सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११--४१]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे तथा सर्व प्रकार आत्महितके यत्न पर होंगे। मनुष्यको हितकारिणी शिक्षा सदागमसे प्राप्त हो सकती है या इसके ज्ञाता आत्माका सम्पर्क भी उसमे सहायक होता है तथा मुख्यतया हमारी दृढ़ श्रद्धा ही उसमे शिक्षकका कार्य करती है। आप जानते हैं, जिनमें श्रद्धाकी न्यूनता है वह देवादि समागम पाकर भी आत्मसुखसे वञ्चित रहते हैं। अत प्रथम हमारा मुख्य लक्ष्य श्रद्धाकी ओर होना चाहिए। श्रद्धा ही कल्याणमार्गकी जननी है। श्रद्धाके साथ ही सम्यग्ज्ञानका उदय होता है और सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो त्याग है वही चारित्र व्यपदेशको पाता है।

यही मोक्षमार्ग है। हम अनादि कालसे इसके अभावमें संसारके पात्र बन रहे हैं। शेष कुशल है। हम अमावस्याको वे, दो दिनमें पावापुर पहुँच जावेंगे और कार्तिक सुदि ७ को राजगृही पहुँच जावेंगे। पत्र नहीं देना।

जैन धर्मशाला
राजगिर

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४२]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा सो ठीक है, परन्तु मैं अब इतना मार्ग पचास वर्षका तय नहीं कर सकता और मेरी तो यह सम्मति है—इस समय आप भी जगाधरी छोड़कर अन्यत्र नहीं जाइये। अशान्तिके कारण उत्तम नहीं। जहाँ देखो वहाँ अशान्ति है, क्योंकि रागचण्डिका अभी शान्ति नहीं चाहती। कल्याणका कारण चाहे घरमें रहो, चाहे बनमें जाओ, आप ही है। परके जाननेसे कुछ अकल्याण नहीं होता। अकल्याणका मूल कारण मूर्च्छा है। उसके त्यागनेसे ही सर्व उपद्रव शान्त हो जावेंगे। यह जब तक अपना स्थान आत्मामें बनाये है आत्मा दुःखित हो रहा है। दुःख कोई बाह्य पदार्थसे नहीं होता। यह स्वयं अपने अनात्मीय भावोंसे दुःखी हो जाता है।

मेरी तो यह सम्मति है जो अपनी श्रद्धा जब हो गई तब संसारका अन्त हो गया। आपको क्या यह विश्वास नहीं कि हम हैं? जब यह विश्वास है तब फिर व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या लाभ? सम्पूर्ण आगमके जाननेसे ज्ञान ही तो होता है और वह ज्ञान आत्मासे तादात्म्य रखता है। तब जिसने आत्माका ज्ञान

लिया वह भी तो तत्सदृश हुआ। अत. ज्ञानकी वृद्धिमात्रके अर्थ व्यग्र होना अच्छा नहीं। रागादिभाव भी समय पर चले जावेंगे। श्रद्धाको अचल रखना चाहिये। हॉं, निरुद्यमी नहीं होना चाहिए। बुद्धिपूर्वक परपदार्थोंमें जो रागादिपरिणामों द्वारा इष्टानिष्ट कल्पना करनी होती है उसे कृश करना चाहिए। जो मोक्षमार्गके प्रतिकूल हैं उनसे सम्बन्ध छोड़ना और जो अनुकूल हैं उनको कार्यमें सहकारी जान ग्रहण करना। किन्तु मुख्य लक्ष्य उपादान पर रखना। उसके बिना सर्व व्यापार निष्फल है। विशेष क्या लिखें। यहाँ कोई त्यागी नहीं। पतासीबाई थी वह अभी गया गई हैं। एक कलकत्तेवाले मूलचन्दजी जैन जो कलकत्तेमे २५०) पाते थे, उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी। शेष जीवन धर्ममे ही बितावेंगे। अभी इसी तरफ रहेंगे। चि० मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि।

जहॉं तक बने स्वाध्यायमें उपयोग लगाना और गृहस्थावस्थामे अपने अनुकूल व्यय करना। तथा जो अपनी रक्षामें व्यय किया जावे उसमें परोपकारका भी ध्यान रहे, क्योंकि परपदार्थमें सबका भाग है और तत्त्वदृष्टिसे किसीका भी नहीं। हम परोपकार करते हैं यह भाव न होना चाहिए। इस समय हमारे द्वारा ऐसा ही होना था यही ध्यानमे रखना चाहिए। कर्तृत्व बुद्धिका त्याग ही ससारका नाशक है। अहकारबुद्धि ही ससारकी जननी है। पिताजीको यह सन्देश कह देना जो इस भयावह समयमें देशान्तर जाना अच्छा नहीं। अनेक आपत्तियॉं रहती हैं।

पौष सुदि ३, सं० १९९९ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

यही मोक्षमार्ग है। हम अनादि कालसे इसके अभावमें संसारके पात्र बन रहे हैं। शेष कुशल है। हम अजानावाद वे, वो दिनमें पावापुर पहुँच आवेंगे और कार्तिक सुदि २ को राजगृही पहुँच आवेंगे। पत्र नहीं देना।

जैन धर्मशाला राजगिर } आपका शुभचिन्तक गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४२]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा सो ठीक है, परन्तु मैं अब इतना मार्ग पयाव तकका तय नहीं कर सकता और मेरी तो यह सम्मति है—इस समय आप भी जगाधरी छोड़कर अन्यत्र नहीं जाइये। शान्तिके कारण उत्तम नहीं। जहाँ देखा वहाँ अशान्ति है, क्योंकि राग-पिण्डका अभी शान्ति नहीं चाहती। कल्याणका कारण चाहे घरम रहो, चाहे वनमें जाओ आप ही है। परके जाननेसे कुछ अकल्याण नहीं होता। अकल्याणका मूल कारण मूर्छा है। उसके त्यागनेसे ही सर्व उपद्रव शान्त हो जावेंगे। यह जब तक अपना स्थान आत्मामें बनाये है आत्मा दुःखित हो रहा है। दुःख कोई बाह्य पदार्थसे नहीं होता। यह स्वयं अपने अनात्मीय भावोंसे दुःखी हो जाता है।

मेरी तो यह सम्मति है जो अपनी श्रद्धा जब हो गई तब संसारका अन्त हो गया। आपको क्या यह विश्वास नहीं कि हम हैं? जब यह विश्वास है तब फिर व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या लाभ? सम्पूर्ण आगमके जाननेसे ज्ञान ही तो होता है और वह ज्ञान आत्मासे तादात्म्य रखता है। तब जिसमें आत्माका ज्ञान

भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। चि० मुन्नालालजीसे मेरा धर्मस्नेह कहना तथा सुमतिप्रसादजीसे भी। पर्यायकी सफलता सयमसे है। मनुष्यभवमें यही मुख्यता है। देवपर्यायसे भी उत्तमता इसमे इसी सयमकी मुख्यतासे है। गृहस्थ भी सयमका पात्र है। दश-सयम भी तो सयम ही है। हम व्यर्थ ही सयमका भय करते हैं। अणुव्रतका पालना गृहस्थके ही तो होता है। परन्तु हम इतने भीरु और कायर हो गए हैं जो आत्महितसे भी डरते हैं। मैं अगहन वदि ५ को सागरसे रहली चल दिया और ८ दिन वाद शाहपुर पहुँचूँगा। आपके दोनों बालकोंने ब्रह्मचर्यका नियम लिया यह बहुत अच्छा किया। जीवनकी सार्थकता इसीमें है। तथा दोनों बालकोको स्वाध्यायमें लगाना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। दुलीचन्दसे दर्शनविशुद्धि। अच्छी तरहसे रहना।

शाहपुर मगरौत (सागर)
अगहन वदि ६, सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। मैं सागरसे अगहन वदि ५ को चलकर शाहपुर आ गया। यहा पर शाहपुर पाठशालाका वार्षिकोत्सव

[११-४३]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आज कल यहाँ पर चन्द्राबाई भी हैं। मौसम अच्छा है। आपका विचार यदि आनेका हो तब अच्छा है। थोड़े दिन बाद गर्मी आ जावेगी। अन्तरङ्गसे जो कर्मजन्य आताप जीवोंको अपनी प्रभुता अहर्निश दिखा ही रहा है। उसके सामने यह बाह्य आताप कोई वस्तु नहीं। परन्तु हम उस अन्तरङ्ग आतापको आताप ही नहीं समझते। आज तक यहाँ कृष्णाबाई तथा दो त्यागी भी हैं तथा माघ सुदि ११ को वेदीप्रतिष्ठा भी है। मेरा भी शुभाशास्त, शुभतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि।

माघ सुदि २ } आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४४]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि।

हम सागरसे हाना आए। यहाँ पर सानन्दसे आगमन हुए। जैनियोंमें रुचि तो सबत्र है, परन्तु उसके विकाश करनेवाले नहीं। यदि त्यागी लोग ग्राम-ग्राम फिरें तब बहुत लाभ हो सकता है। आजकलके समयमें जिसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया वह बहुत ही पवित्र आत्मा है। छोटे बालकको भी प्रेरणा करना। लोग आत्मगुणको भूल गए हैं और इन परपदार्थोंमें इतने मोहित हो गए हैं जो न्यायमार्गसे चलना नहीं चाहते। अन्याय का धन और विषय इनको सुमार्गमें नहीं आने देता। जबतक हम आत्मतत्त्वको नहीं जानेंगे संसारसे विरक्त नहीं हो सकते। शास्त्रका ज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है। त्याग

भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है। उसके विना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। चि० मुन्नालालजीसे मेरा धर्मस्नेह कहना तथा सुमतिप्रसादजीसे भी। पर्यायकी सफलता संयमसे है। मनुष्यभवमें यही मुख्यता है। देवपर्यायसे भी उत्तमता इसमें इसी संयमकी मुख्यतासे है। गृहस्थ भी संयमका पात्र है। दश-संयम भी तो संयम ही है। हम व्यर्थ ही संयमका भय करते हैं। अणुव्रतका पालना गृहस्थके ही तो होता है। परन्तु हम इतने भीरु और कायर हो गए हैं जो आत्महितसे भी डरते हैं। मैं अगहन वदि ५ को सागरसे रहली चल दिया और ८ दिन वाद शाहपुर पहुँचूँगा। आपके दोनों बालकोंने ब्रह्मचर्यका नियम लिया यह बहुत अच्छा किया। जीवनकी सार्थकता इसीमें है। तथा दोनों बालकोंको स्वाध्यायमें लगाना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। दुलीचन्दसे दर्शनविशुद्धि। अच्छी तरहसे रहना।

शाहपुर मगरौन (सागर)
अगहन वदि ६, सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। मैं सागरसे अगहन वदि ५ को चलकर शाहपुर आ गया। यहा पर शाहपुर पाठशालाका वार्षिकोत्सव

[११-४३]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आज कल यहाँ पर चन्दाबाई भी हैं। मौसम अच्छा है। आपका विचार यदि आनेका हो तब अच्छा है। थोड़े दिन बाद गर्मी आ जावेगी। अन्तरङ्गसे तो कर्मजन्य आताप जीवोंको अपनी प्रभुता अहर्निश दिखा ही रहा है। उसके सामने यह बाह्य आताप कोई वस्तु नहीं। परन्तु हम उस अन्तरङ्ग आतापको आताप ही नहीं समझते। आज तक यहाँ कृष्णाबाई तथा दो त्यागी भी हैं तथा माघ सुदि ११ को वेदीप्रतिष्ठा भी है। मेरा श्री सुमालाल, सुमतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि।

माघ सुदि २ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४४]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सागरसे द्रोना आए। यहाँ पर सानन्दसे आगमन हुआ। जैनियोंमें रुचि तो सर्वत्र है, परन्तु उसके विकाश करनेवाले नहीं। यदि त्यागी लोग ग्राम-ग्राम फिरें तब बहुत लाभ हो सकता है। आजकलके समयमें जिसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया वह बहुत ही पवित्र आत्मा है। भाईसे आपकलको भी प्रेरणा करना। लोग आत्मगुणको भूल गए हैं और इन परपदार्थोंमें इतने मोहित हो गए हैं जो न्यायमार्गसे चलना नहीं चाहते। अन्याय का धन और विषय इनको सुमार्गमें नहीं आने देता। जबतक हम आत्मतत्त्वको नहीं जानेंगे, संसारसे विरक्त नहीं हो सकते। शास्त्रका ज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है। त्याग

भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है। उसके विना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४५]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। चि० मुन्नालालजीसे मेरा धर्मस्नेह कहना तथा सुमतिप्रसादजीसे भी। पर्यायकी सफलता संयमसे है। मनुष्यभवमें यही मुख्यता है। देवपर्यायसे भी उत्तमता इसमें इसी संयमकी मुख्यतासे है। गृहस्थ भी संयमका पात्र है। देश-संयम भी तो संयम ही है। हम व्यर्थ ही संयमका भय करते हैं। अणुव्रतका पालना गृहस्थके ही तो होता है। परन्तु हम इतने भीरु और कायर हो गए हैं जो आत्महितसे भी डरते हैं। मैं अगहन वदि ५ को सागरसे रहली चल दिया और ८ दिन बाद शाहपुर पहुँचूँगा। आपके दोनों बालकोंने ब्रह्मचर्यका नियम लिया यह बहुत अच्छा किया। जीवनकी सार्थकता इसीमें है। तथा दोनों बालकोंको स्वाध्यायमें लगाना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। ढुलीचन्दसे दर्शनविशुद्धि। अच्छी तरहसे रहना।

शाहपुर मगरौन (सागर)
अगहन वदि ६, सं० २००१

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४६]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। मैं सागरसे अगहन वदि ५ को चलकर शाहपुर आ गया। यहां पर शाहपुर पाठशालाका वार्षिकोत्सव

हुआ । उसमें ६५००) पाठशालाको हो गया । ५०) पहिले था । यह सब होता है, परन्तु कल्याणका पथ निरीह-वृत्ति है । कषायके वशीभूत होकर सर्व उपद्रव होते हैं । अब यहाँसे नैनागिरि जाऊँगा और वहाँसे जहाँ जाऊँगा आपको लिखूँगा । जहाँ-जहाँ गया, जनताको आनन्द रहा । पटना और गयाकाटामें की पाठशालाओंकी स्थिति स्थायी चन्दासे हो गयी । अवकाश नहीं मिलता । विशेष समाचार नैनागिरसे लिखूँगा ।

नोट—मोह की महिमा है जो इस प्रकार नाट्य करा रहा है । हमारी बच्चोंसे दर्शनविशुद्धि कहें ।

अगहन सुदि ७, सं० २० १ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४७]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजीके पत्रसे मालूम हुआ है कि आप पर प्राचीन रोगने फिरसे आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है । सहज ही मोहजन्य खेद हुआ । बन्धुवर । आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है और प्रचुरतासे प्राय: संसारी जीवोंकी यही धारणा है और होता भी तथ्य है, क्योंकि बिना किसी विकारी दो पदार्थोंके मिलापके संसारकी रचना ही नहीं हो सकती । परन्तु क्या इसका सम्बन्ध कहीं विच्छेद नहीं हो सकता । ऐसा प्राय: बहुतोंके होता है और उसका सहज उत्तर भी हो जाता है । जैसे बीजके जलनेसे अंकुर नहीं होता उसी प्रकार कर्मबीजके दग्ध होने पर भवांकुर नहीं होता । यह बात कहने और सुननेमें अति सरल और सुस्वाद है, परन्तु करनेमें अति कठोर और भयानक है । है नहीं

परन्तु धारणा ऐसी ही बना रक्खी है। क्या वस्तुतः कर्म ही की प्रबलता है जो हमें संसारनाटकका पात्र बना रक्खा है। अधिकांश मोही जीवोंकी तो यही धारणा है, परन्तु मेरी तो यह धारणा है कि असंज्ञी जीवों तक तो संसार वैसा ही है जैसा कि सामान्य लोगो का मत है, परन्तु जब यह जीव संज्ञी अवस्थाका पात्र हो जाता है उस समय उसके उस विलक्षण प्रतिभाका उदय होता है जो अखिल वस्तुओंके मर्मको जाननेका अवसर उसे अनायास मिल जाता है और तब वह समझने लगता है—यह संसार एक मेरे ही विकार भावपर अवलम्बित है। यह मेरे हाथकी बात है जो आज ही इस संसारका अन्त कर दूँ। 'आज' यह तो बहुत काल है। यदि स्वकीय पौरुषको कार्यरूपमें परिणित करूँ तो घड़ी भरमें इसका अन्त कर दूँ। कुछ यह अत्युक्ति नहीं, परन्तु मान रक्खी है।

अतः आप सब औपधियोंके विकल्पजालोंको छोड़ ऐसी भावना भाइये जो यह पर्याय विजातीय दो द्रव्योंके सम्बन्धसे निष्पन्न हुई है। फिर भी परिणमन दो द्रव्योंका पृथक्-पृथक् ही है। सुधा-हरिद्रावत् एक रङ्ग नहीं हो गया। अतः जो कोई पदार्थ इन्द्रियोंके गोचर हैं वह तो पौद्गलिक ही हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि हम मोही जीव शरीरकी व्याधिका आत्मामें अवबोध होनेसे उसे अपना मान लेते हैं। यही अहङ्कार संसारका विधाता है। अतः ज्ञानी जीवोंका भाव यह कदापि नहीं होता कि मैं रोगी हूँ और जो कुछ चारित्रमोहसे अनुचित क्रिया होती है उसका कर्त्ता नहीं और जो कुछ होता है उसकी निन्दा गर्हा करता है। यह भी मोहकी महिमा है। अतः इसे भी मिटाना चाहिए। जन्म भर स्वाध्याय किया फिर भी अपनेको रोगी मानना और संसार की तरह विलापादिक करनेकी आदतका होना क्या श्रेयस्कर

हुआ। इसमें ६५ ०) पाठशालाको हो गया। ५००) पतिल था। यह सर्व होता है, परन्तु कल्याणका पथ निरीह-वृत्ति है। कषायके वशीभूत होकर सर्व उपद्रव होते हैं। अब यहाँसे नैनागिरि जाऊँगा और वहाँसे जहाँ जाऊँगा आपको लिखूँगा। जहाँ-जहाँ गया, जनताको आनन्द रहा। पटना और गयाकायमें दो पाठशालाओंकी स्थिति स्थायी चन्दासे हो गयी। अवकाश नहीं मिलता। विशेष समाचार नैनागिरसे लिखूँगा।

नोट—मोह की महिमा है जो इस प्रकार नाट्य करा रहा है। हमारी चच्चोंसे दर्शनविशुद्धि कहें।

अगहन सुदि ७, सं० २० १ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४७]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजीके पत्रसे मालूम हुआ है कि आप पर प्राचीन रोगने फिरसे आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है। सहज ही मोहजन्य खेद हुआ। बन्धुवर! आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है और प्रचुरतासे प्राय: संसारी जीवोंकी यही धारणा है और होता भी तथ्य है, क्योंकि बिना किसी विकारी दो पदार्थोंके मिलापके संसारकी रचना ही नहीं हो सकती। परन्तु क्या इसका सम्बन्ध कहीं विच्छेद नहीं हो सकता। ऐसा प्राय: बहुतोंके द्वारा है और उसका सहज उत्तर भी दा जाता है। जैसे बीजके जलनेसे अंकुर नहीं होता उसी प्रकार कर्मबीजके दग्ध होने पर भवांकुर नहीं होता। यह बात कहने और सुननेमें अति सरल और सुस्पष्ट है, परन्तु करनेमें अति कठोर और भयावह है। है नहीं;

एक मास तो एकान्त वास मौन लिया है। समयसारको अपनी मुक्तिके लिये वकील बनाया है। गवाह कोई नहीं। जो अपराध लगाये हैं वे मैंने स्वीकार कर लिये हैं। इससे सफाईकी गवाह देने की आवश्यकता नहीं समझी। विशेष क्या ? ज्येष्ठ मास पत्र देने का त्याग, बोलनेका त्याग। आप सानन्द स्वाध्याय करते होंगे। हमारी प्रवृत्ति देखकर आप लोगोंको विशेष विचार हुआ यह कोई आपत्तिजनक नहीं। आप जानते हैं—मोहमें यही तो होता है। और क्या होगा ? पत्रोत्तर देना या न देना आपकी इच्छा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-४६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपका बाह्य स्वास्थ्य तथा आभ्यन्तर कुशलमय है, परमानन्द का विषय है। संसारमे जिसे शान्तिका लाभ हो जावे, आशातीत लाभ है। अतिरिक्त इस लाभके जितने लाभ हैं सर्व नाशशील हैं तथा अशान्तिके उत्पादक हैं। इसका अनुभव जिनके परिग्रह है उन्हें प्रत्यक्ष है। हम तो अनुमानसे लिख रहे हैं। परन्तु यह अनुमानाभास नहीं, क्योंकि उसका सम्बन्ध आप लोगोंकी प्रेम दृष्टिसे हमें भी प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। वस्तुके लाभमें प्राय. जीवोंके मूर्छा ही तो होती है और वही तो अशान्तिकी मूल जननी है। परपदार्थके सग्रह करनेमें क्लेश रक्षणमें महती आकुलता, जानेमें शोक, न जाने कौनसी गुरुता उसमें देखी गयी जिसके अर्थ इतने व्यग्र हम लोग रहते हैं। मेरी बुद्धिमें [illegible]पायी की तरह यह प्रवृत्ति है।

है? आप स्वयं विज्ञ हो। अपनेको सनत्कुमार चक्रीकी तरह दृढ़ बनाओ। व्याधिका मन्दिर शरीर है न कि आत्मा। ऐसी दृढ़तम धारणा करोगे तो मुझे विश्वास है सो बहुत ही शीघ्र इस रोगसे मुक्त हो जावोगे। यही अनुपम रामबाण औषधि है जो रागद्वेषके त्यागरूप महामन्त्रका निरन्तर स्मरण करो। इसीके प्रतापसे ही सर्वत्र प्राणियोंमें महत्त्व है।

निर्दोषभिलाषी
गणेश वर्णी

[११-४८]

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द जगाधारी पहुँच गये होंगे। गर्मीभर यहीं रहने का विचार है। शरीरकी अवस्था प्रतिदिन शीर्ण हो रही है और आयु भी अब परभवकी आयुके साथ सम्बन्ध कर रही है। किन्तु खेद इस बातका है जो आनन्द परकीय पदार्थोंसे ममताका त्याग करनेमें चेष्टाहीन है। यही पुरुषार्थकी निर्बलता है। इसमें बहुत से मनुष्य इतने मोही हैं जो तत्त्वज्ञानियोंसे अग्रसर होकर भी शारीरिक ममता नहीं छोड़ते। बहुतसे मनुष्य मन्दकषायी होकर भी आत्मीय गुणोंके सन्मुख नहीं आते। अस्तु, परकी समालोचना करना महती अज्ञानता है। हम स्वयं इस महान् मोहके द्वारा त्रस्त हो रहे हैं। उत्तमसे उत्तम स्थान छोड़कर इस स्थानमें आ गये जहाँ कि वृद्ध कारागार है। अभी तक उसने अन्दर जानेकी अनुमति नहीं दी है। कभी हवालातमें रखते हैं। चार माह बाद मुकदमा होगा। उस समय या तो आजन्म कारावास या विहार। हम भी पूर्णरूपसे चेष्टा मुक्त होनेकी कर रहे हैं।

एक मास तो एकान्त वास मौन लिया है। समयसारको अपनी मुक्तिके लिये वकील बनाया है। गवाह कोई नहीं। जो अपराध लगाये हैं वे मैंने स्वीकार कर लिये हैं। इससे सफाईकी गवाह देने की आवश्यकता नहीं समझी। विशेष क्या ? ज्येष्ठ मास पत्र देने का त्याग, बोलनेका त्याग। आप सानन्द स्वाध्याय करते होंगे। हमारी प्रवृत्ति देखकर आप लोगोंको विशेष विचार हुआ यह कोई आपत्तिजनक नहीं। आप जानते हैं—मोहमें यही तो होता है। और क्या होगा ? पत्रोत्तर देना या न देना आपकी इच्छा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–४६]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपका बाह्य स्वास्थ्य तथा आभ्यन्तर कुशलमय है, परमानन्द का विषय है। संसारमें जिसे शान्तिका लाभ हो जावे, आशातीत लाभ है। अतिरिक्त इस लाभके जितने लाभ हैं सर्व नाशशील हैं तथा अशान्तिके उत्पादक हैं। इसका अनुभव जिनके परिग्रह है उन्हे प्रत्यक्ष है। हम तो अनुमानसे लिख रहे हैं। परन्तु यह अनुमानाभास नहीं, क्योंकि उसका सम्बन्ध आप लोगोंकी प्रेम दृष्टिसे हमें भी प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। वस्तुके लाभमें प्राय जीवोंके मूर्छा ही तो होती है और वही तो अशान्तिकी मूल जननी है। परपदार्थके संग्रह करनेमें क्लेश रक्षणमें महती आकुलता, जानेमें शोक; न जाने कौनसी गुरुता उसमें देखी गयी जिसके अर्थ इतने व्यग्र हम लोग रहते हैं। मेरी बुद्धिमें मद्यपायी की तरह यह प्रवृत्ति है।

ध्येयोंमें अथवा संसारातीत सिद्ध परमात्मामें ममत्व बुद्धि उत्पन्न कर अपनेको महात्मा मानना श्रेयोमार्ग नहीं। मार्ग तो परपदार्थ मात्रमें आत्मीय कल्पनाको मिटानेमें है। यही सुगम मार्ग और श्रेयोमार्ग है। विशेषतत्त्व विशेषज्ञ जानें।

आप बहुत दिनसे इसका अनुभव कर रहे हो। अब जहाँ तक बने पर वस्तुमें निजत्व भावको दूर करिये। अनायास उत्पन्न बाधायें बिना किसी तप आदि संयमके स्वयमेव पलायमान हो जावेंगी। घरवास बुरा नहीं, परन्तु मूर्च्छा अति कटुक भाव है। इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए जो कमलकी तरह हम निर्लेप रहें। श्रीमुन्ना सुमति तो कोई विशेष परिग्रह नहीं। मुन्ना सुमति मेरे हैं, मैं इनका हूँ यह अभिप्राय त्यागने की चेष्टा करो। चेष्टा क्या करो, इस अभिप्रायका जन्म ही न होने दो। स्थान छोड़नेसे तथा शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेसे वे छूट जावें सो नहीं। जब उनमें परत्व ज्ञान हो जावेगा, स्वयमेव यह बुद्धि छूट जावेगी। इसका यह अभिप्राय नहीं जो उन्हें तो बाहरसे छोड़ दो और जगत्वर्ती अन्यको अपना लो।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५०]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्दजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। आप जानते हैं—कोई भी पदार्थ इष्टानिष्ट नहीं। यह हमारी कल्पना है जैसे अमुक व्यक्ति द्वारा हमें शान्तिलाभ होता है। शान्ति तो अपनी परिणतिविशेष है। केवल उसके बाधक कारण जो हमने मान रक्खे हैं न नहीं हैं।

किन्तु हम स्वयं ही अपनी विरुद्ध भावना द्वारा बाधक कारण बन रहे हैं। उस विरुद्ध भावको यदि मिटा देवें तो स्वयमेव शान्तिका उदय हो जावेगा। आपने अच्छा किया जो सहारनपुर चले आए। अब कुछ दिन जगाधारी ही रहिए। स्वयमेव शान्ति मिलेगी। मेरा विचार चैत सुदी १ से छह माह पर्यन्त मौनव्रत लेनेका है। जैसे आप निमित्त कारणसे पृथक् हो गए यही मेरा अभिप्राय है जो इन सब उपद्रवोंसे पृथक् रहूँ। यद्यपि उपद्रव अन्य नहीं। हम स्वयं ही अपने कल्याणमे उपद्रव हैं। स्वय ही उसको पृथक् करेंगे। परन्तु जो मोही जीवोकी आदत है वह कहाँ जावे? अत वही गति हमारी है। हमारे सहवासमे शान्ति कैसे मिल सकती है? स्वय अन्धा परको मार्ग नहीं दिखा सकता। किन्तु यदि उसके हाथमें लालटेन हो तब दूसरा स्वय उसके द्वारा मार्ग देख लेता है और अन्धेको फोकटका श्रेय मिल जाता है। यही दशा हमारी है। मेरा श्री मुन्नालाल और सुमति-प्रसादजीसे आशीर्वाद। १६ आनेका सुवर्ण होता है वैसे ही आत्माको ध्यानाग्नि द्वारा शुद्ध करना चाहिए।

जबलपुर } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—५१]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्दजी भगत, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपने अच्छा किया। आत्मीय-परिणति निर्मल बनाओ। उसपर अधिकार है। परकी वृत्ति स्वाधीन नहीं। उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। मेरा दृढ विश्वास है जो जीव आत्मकल्याणको चाहते हैं वह अवश्य उसके पात्र

श्रेयोंमें अथवा संसारातीत सिद्ध परमात्मामें ममत्व बुद्धि उत्पन्न कर अपनेको महात्मा मानना श्रेयामार्ग नहीं। मार्ग तो परपदार्थ मात्रमें आत्मीय कल्पनाको मिटानेमें है। यही सुगम मार्ग और श्रेयामार्ग है। विशेषतत्त्व विशेषज्ञ जानें।

आप बहुत दिनसे इसका अनुभव कर रहे हो। अब जहाँ तक बने पर वस्तुमें निजत्व भावका दूर करिये। अनायास उत्पन्न यापायें बिना किसी तप आदि संयमके स्वयमेव पलायमान हो जावेंगी। परवास बुरा नहीं, परन्तु मूर्च्छा अति कटुक मान है। इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए जो कमलकी तरह हम निर्लेप रहें। श्रीमुन्ना सुमति तो कोई विशेष परिग्रह नहीं। मुन्ना सुमति मेरे हैं मैं इनका हूँ यह अभिप्राय छोड़ने की चेष्टा करो। चेष्टा क्या करो, इस अभिप्रायका जन्म ही न होने दो। स्थान छोड़नेसे तथा शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेसे न छूट जावें सो नहीं। अब उनमें परत्व भाव हो जावगा, स्वयमेव वह बुद्धि छूट जावेगी। इसका यह अभिप्राय नहीं जो उन्हें तो वापसे भाव दो और जगन्मूर्त्ती अन्यको अपना लो।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५०]

श्रीयुत महाशय सुमरचन्दजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। आप जानते हैं—कोई भी पदार्थ इष्टानिष्ट नहीं। यह हमारी कल्पना है जैसे अमुक व्यक्ति द्वारा हमें शान्तिलाभ होता है। शान्ति तो अपनी परिणतिविशेष है। केवल उसके बाधक कारण जो हमने मान रक्खे हैं व नहीं हैं।

स्थानोंपर मिल जावेगा, परन्तु चारित्रका साधन प्राय. दुर्लभ है। उसका सम्बन्ध आत्मीय रागादिनिवृत्तिसे है। वह जबतक न हो यह बाह्य आचरण दम्भ है। हम लोग आत्मीय कषायके वेगमें परोपकारका बहाना करते हैं। परोपकार न कोई करता है और न हो ही सकता है। मोही जीवोंकी कल्पनाके जाल ही यह परोपकारादि कार्य हैं। मन्दिरवाले मानें या न मानें, हमने तो अपनी मोहकी कल्पना आपको लिख ही दी। आपकी इच्छा, सागर रहें, परन्तु अभी जेठमें कहीं न जावें। ज्ञानका साधन स्वाध्याय है। उसे गर्मीभर जगाघरोंमें ही करिये। श्री मुन्नालालजी आदिको उसीमें लगाइये। सुमतिको भी उसी मार्गका पालन कराइये। हमारा विचार वर्षा बाद अन्यत्र जानेका है। अभिप्राय यह है जो आपके प्रान्तकी मण्डलीका सम्बन्ध रहे। परन्तु उस प्रान्तमें स्थानकी त्रुटि मालूम होती है। यदि कोई स्थान हो तब लिखना। हमारा विचार तो सिंहपुरीका है, परन्तु एकाकी नहीं रह सकते, क्योंकि हमारा साधन पराधीन है। यदि वहाँ योग्यता न हो सकी तब गया चले जावेंगे, परन्तु यह प्रान्त छोड़ देवेंगे।

काश्मीर स्टोर्स जबलपुर
वैसाख सुदि १३, सं० २००३

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-५३]

योग्य इच्छाकार

पत्र आया। कल्याणका मार्ग आत्मामें है। अन्यत्र देखना ही बाधक है। स्वाध्यायका मर्म जानकर आकुल नहीं होना चाहिये। आकुलता तो मोक्षमार्गमें कुछ साधक नहीं। साधक तो निराकुलता है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

होते हैं। अनादिमोहके वशीभूत होकर हमने निजको जाना ही नहीं, फिर कल्याण किसका ? अस्तु इस पर्यायमें इतनी योग्यता है जो हम अपने आत्माको जान सकते हैं। बाह्य आडम्बरोंमें मत फसना। पं० पन्नालाल यहाँ नहीं हैं, जयपुरमें हैं। वहाँसे मथुरा जावेंगे। मन्दिर बन गया ? हमारी सम्मति मानो तब ꠰ ०० ०) तो मन्दिरमें लगाओ। शिखर निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं। ५०००) का शास्त्रभण्डार और ५०००) के स्थायी व्याजसे ११५) मासिकका विद्वान् रखा जो वहाँ बालकोंको शास्त्रप्रवचन करे। केवल ईंट चूनासे आत्महित नहीं। हितका कारण ज्ञान है। इस प्रकार लक्ष्य दो। केवल रूढ़िसे लाभ नहीं। हम लोग केवल ऊपरी बातें देखते हैं। ऊपरी देखनेसे आभ्यन्तर का पता नहीं लगता। आभ्यन्तरके ज्ञान बिना भौंदू ही रहे। हमारी बात आप पब्लिकमें सुना देना। हमको जो मनमें आयी सो बाहर प्रकट कर दी। आप आश्विन महिनेमें आवें। मैं भाद्रपद तक मौनसे रहूँगा। डोलकी आवश्यकता नहीं। अब यह विचार होता है या क्षुल्लककी दीक्षा ले लूँ और देहातमें काल बिताऊँ।

हमारा अभिप्राय तो यह है—आप कुछ अपनी शान्तिकुटीरमें काल बितावें। कहीं कुछ नहीं धरा है। केवल मनकी हवस है जो परसे कल्याण चाहती है। यह महती भूल है।

वैशाख वदि ११, सं २ १ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-५२]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी भगत इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। ज्ञानका साधन प्राय बहुत

अपनी अन्तिम अवस्था आपके साथमे विताना चाहते हैं। गृहस्थोका सम्पर्क सुखद नहीं और यह भी पूर्ण निश्चय कर लिया जो वर्षा वाद जवलपुर छोड़ देना। श्री ब्रह्मचारी मनोहरलाल सानन्द हैं। वह भव्य जीव हैं। कुवार वदि २ तक इरादा कोरी पाटनका है। साथ अपने सुमति और मुन्नासे आशीर्वाद कहना और इनकी स्वाध्यायमे रुचि कराना। और यदि मार्गमे अडचन न हो तव आपका आना यही वडा कार्य है। अव तो यही चित्त चाहता है कि एकाकी रहे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–५६]

श्रीमान लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं जवलपुरसे दमोह आ गया। एक दिन वाद सागर पहुँचूंगा। आप सानन्द होंगे। स्वाध्याय आदि की व्यवस्था ठीक होगी। पुत्रोंसे आशीर्वाद। जहाँ तक वने, उन्हे स्वाध्यायमे लगाना और आयसे व्यय कम करें। आकाक्षाऐं अल्प रखें। सन्तोष ही परम धन है। धन सुखका कारण नही। सन्तोषामृतसे जो तृप्ति होती है, वह वाह्य धनादि से नहीं। परन्तु हमारी दृष्टि इतनी मलिन हो गई जो इस ओर नहीं देखते।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–५७]

श्रीयुत महाशय ला० सुमेरचन्द्रजी सा०, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द पहुँच गये। ससारमे सर्वत्र अशान्ति का

[११—५४]

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कषायके आवेगमें बड़-बड़ काम होते हैं। जो नहीं हो सो थोड़ा। श्री चम्पालालजी भी तो आखिर संसारी जीव हैं। श्री मनोहर भी तो वही हैं और आप भी वही हैं। हम भी वही हैं। जो कुछ हम लोगोंसे हो जाव थोड़ा है। गुरुकुल क्या वस्तु है? हम लोग आत्महितकी अवहेलना कर देते हैं। यदि गुरुकुलकी अवहेलना कर देवें तब कौन आश्चर्यकी बात है। भद्रताकी निर्मलतामें धक्का न लगना चाहिए। मैं अन्यकी कथा क्या कहूँ, स्वयं जबलपुरके चक्रमें फँस गया। इसमें जबलपुरका दोष नहीं। हमारी दुर्बलता है जो सागरसे निकल और जबलपुरकी नर्मदामें डूब गए। अतः जहाँ तक बने अपनी दुर्बलताको देखो। घर इसी वास्ते छोड़ा है। सुमा-सुमतिका छोड़ा। अब अन्यसे क्या प्रयोजन? मेरी तो सम्मति है—परमेश्वर से भी प्रेम छोड़ो। श्री परमेश्वर तो अचिन्त्य हैं। केवल-श्रुतज्ञान के विषय हैं। स्वीय आत्मा, जिसके कल्याणके अर्थ ये सम्पूर्ण उपाय हैं, उससे भी स्नेह छोड़ दो। वहाँ पर जो त्यागीवर्ग हों, मेरा धर्मस्नेह कहना और जगाधारीको लिख देना जो काम आदि न भेजें। श्री त्यागी मनोहरलालजी भी वहीं रहेंगे।

अगहन वदि १ सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११—५५]

श्रीयुत महाशय ला० सुमेरचन्दजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आपका आना हमें इष्ट है। आप आवें। हम

विचार हो गया है, इसमे कोई सदेहकी आवश्यकता नहीं। श्री चम्पालालजी सेठीसे हमारी दर्शनविशुद्धि कहना तथा श्रीयुत गौरीलालजीसे दर्शनविशुद्धि। अब हमारा विचार पूर्ण रीतिसे आनेका है। माघ वदि २ को चलनेका विचार किया है। शरीरकी शक्ति अवस्थाके अनुकूल अच्छी है। फिर श्री पार्श्वप्रभु चरणरजके प्रसादसे आ रहा हू। श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजीसे इच्छाकार।

सागर
पौष सु० ३, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५६]

योग्य इच्छाकार

ससार अशरणशील है। इसमे जबतक जीव विकारभावोंको करता रहता है तबतक ही सुख और दुखका पात्र है। अत जिन जीवोंको ससारयातनाओंसे मुक्त होना है उन्हें विकारभावोंको त्यागना चाहिए।

चैत्र वदि ८, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–६०]

श्रीमान् महानुभाव ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आपकी योग्यताके अनुकूल था। मैं तो इस योग्य नहीं। आप लोगोकी प्रतिष्ठा, जहाँ जाते हो, आपकी योग्यतासे होती है। मेरा तो यह विश्वास है जो हमारा ससार बन्धन [illegible] सो हमारी आत्मशुद्धिसे ही टूटता है [illegible] रो। विशेष क्या लिखें—जिसमे आपको

साम्राज्य है। कोई भाग्यशाली जीव ही इस अशान्तिसे रक्षित रहता है। परपदार्थकी मूर्च्छा ही तो अशान्तिकी कारण है। आपने महती पटुता की जो इस मूर्च्छाके जालसे अपनको पृथक् कर लिया। चि० मुन्नालाल, सुमतिप्रसादको यही शिक्षा देना जो जलमें कमलकी तरह जितने निर्लेप रहेंगे उतने ही सुखके पात्र होंगे। संसारके बन्धनछेदका यह मुख्योपाय है। आपने बहुत मनुष्योंको देखा परन्तु शुभ भावनावाले जीव बहुत कम पाये जाते हैं। जो हैं वही स्तुत्य हैं। हमारी इच्छा है, आपका सहवास रहे, अच्छा है। मैं कटनीसे आ गया। सर्वत्र यही बात है। श्री मुन्नालालजी, सुमतिप्रसादसे यह कहना—कल्याणके विकल्पसे, कोई लाभ नहीं। जितने अंशमें शान्ति हो राग छोड़नेकी कोशिश करो और अपने कुटुम्बको भी तद्रूप परिणति कराओ। यदि उनकी परिणति न हो तब न करो। उपदेश कुछ नहीं, केवल रागकी कृशता ही सर्वाङ्गमय आगमकी सार है। यही श्री प्रभुका उपदेश है। परको पर जानो आपको आप जानो यही तत्त्वज्ञान है।

पौष शुदि ११, सं २ १ } 	आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–५८]

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी योग्य इच्छाकार

मुझे आनन्द इस बातका है कि आप लोगोंके समागममें आ रहा हूँ। अन्तमें यही भावना है जो अन्तिम श्वास श्रीपार्श्व निर्वाण भूमिमें श्री पार्श्व नाम लेते ही पूर्ण हो। यह मेरा पूर्ण

विचार हो गया है, इसमें कोई संदेहकी आवश्यकता नहीं। श्री चम्पालालजी सेठीसे हमारी दर्शनविशुद्धि कहना तथा श्रीयुत गौरीलालजीसे दर्शनविशुद्धि। अब हमारा विचार पूर्ण रीतिसे आनेका है। माघ वदि २ को चलनेका विचार किया है। शरीरकी शक्ति अवस्थाके अनुकूल अच्छी है। फिर श्री पार्श्वप्रभु चरणरजके प्रसादसे आ रहा हूं। श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजीसे इच्छाकार।

सागर
पौष सु० ३, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[११-५६]

योग्य इच्छाकार

संसार अशरणशील है। इसमें जबतक जीव विकारभावोंको करता रहता है तबतक ही सुख और दुखका पात्र है। अत. जिन जीवोंको संसारयातनाओंसे मुक्त होना है उन्हे विकारभावोंको त्यागना चाहिए।

चैत्र वदि ८, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-६०]

श्रीमान् महानुभाव ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आपकी योग्यताके अनुकूल था। मैं तो इस योग्य नहीं। आप लोगोंकी प्रतिष्ठा, जहॉ जाते हो, आपकी योग्यतासे होती है। मेरा तो यह विश्वास है जो हमारा संसार बन्धन टूटता है सो हमारी आत्मशुद्धिसे ही टूटता है व्यवहार कुछ करो। विशेष क्या लिखें—जिसमें आपको

शान्ति मिले सो करो। हाँ, जहाँ तक बने पराबलम्बन त्यागो। यदि हमारी बात मानो तब एकवार वर्णीजीको भी सागर देखना चाहिए। तत्त्वतः सर्वत्र स्वयं ही को देखना होगा। विकल्प कुछ करो। उन्ना कपासमलको ही होगा। वहाँसे तीन लिफाफे आए। यह विशेष व्यय विवकसे ही होना चाहिए।

चैत्र सुदि ६, सं० २० ६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११–६१]

श्रीयुत महाशय भगतजी योग्य इच्छाकार

कल्याणका मार्ग जो है सो आप लोग स्वयं कर रहे हो। हम क्या उपदेश देवें। हमसे सत्य पूँछते हो तब हम अभी किसीको श्रेयोमार्गका उपदेश नहीं दे सकते हैं; क्योंकि हम स्वयं अपनेको सुमार्गपर नहीं ला सके। श्रीयुत परशुरामजीसे योग्य इच्छाकार। यदि हमारी सम्मति मानो तब परमात्मासे भी इसकी याचना त्याग दो। अपने अन्दर ही परमात्मा है। कषाय दूर करनेकी आवश्यकता है।

आषाढ़ वदि ७ सं० २० ६ }

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[११–६२]

महानुभाव, इच्छाकार

हम न तो अब विशेष कार्य कर सकते हैं और न करनेके योग्य हैं। आप लोग भव्य हैं तथा आप लोगोंने सत्संगति भी बहुत की है तथा करनेका उत्साह है। अतः जो आगमानुकूल

नियम हैं उनका प्रचार करिए। इसीमे हमको आनन्द है। हमारी तो यह श्रद्धा है जो जगतका कल्याण जगतके अधीन है। हमारे द्वारा हमारा कल्याण हो सकता है। निमित्त चाहे कोई हो। आजकल जितनी चर्चा होती है उसमे शब्दाडम्बरकी मुख्यता रहती है। कर्त्तव्यपथ न्यून रहता है। हमारा श्री परशुरामजीसे इच्छाकार कहना तथा जितने ब्रह्मचारी हों उनसे इच्छाकार। पतासीबाई आदि जितनी बाईयां हों उनसे यथायोग्य इच्छाकार कहना। हमारा उदय उतना बलवान् नहीं जो निर्वाणभूमिसे स्वर्गारोहण हो। मेरा तात्पर्य समाधिमरणसे है। आप लोग हमे उपदेश देते हैं, परन्तु उसपर अमल करनेमें सकोच करते हैं। आप लोग स्वय रहके वीतरागमार्ग दिखादो। हम तो अव्यवस्थित हैं। आप लोग व्यवस्थित बनो।

आषाढ़ बदि १०, स० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-६३]

श्रीयुत भगतजी सा०, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे पूर्ण प्रसन्नता हुई। मैं आप लोगोंको परम धार्मिक मानता हूँ जो आप लोगोंका समय श्री पार्श्वप्रभुके चरणरजमें रहकर धर्मध्यानमें जा रहा है। मेरा उत्साह अब आप लोगोंकी भावनासे वृद्धिरूप हो रहा है। क्या लिखूँ—पँख नहीं, अन्यथा उड़कर आ जाता। कल्याणका मार्ग आत्मामे ही है, परन्तु उपादानका विकाश सामग्रीसे ही होता है। अन्तरङ्गकी विशुद्धता ही ससार-सागरसे पार उतरनेमें नौकारूप है। आपने जो सिद्धान्त समयसारसे किया हो सो आप जानें। परन्तु मेरा

दृढ़तम विश्वास है, 'सामग्री कार्यस्य जनिका नैकं कारणम्'। कार्यका विकास उपादानमें ही होता है इस सिद्धान्तका इसमें कोई विरोध नहीं।

मन्युवर ! मुझे अब अन्तिम समय नहीं रहना है तथा जो कुछ अपराध आज तक किये हैं, आप सब महानुभावोंके समक्ष समालोचना कर निःशल्य अन्तिम समाधि लेनेका निश्चय किया है। मेरा सबसे इच्छाकार।

पौष वदि ६ सं २० ६ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-६४]

श्रीमान् ब्र छोटेलालजी सा०, श्रीमान् भगतजी
योग्य इच्छाकार

आपकी कृपालुता है जो इतनी शिष्टता प्रदान करते हो। आप लोगोंकी निर्मलता है जो प्रत्येक स्थानमें आदर होता है। न हमारी कृपा है, न किसीकी। जो कुछ उत्तम मध्यम कार्य होते हैं, स्वयं आत्मा ही उनका कर्ता है तथा भोक्ता है। हमको प्रसन्नता है जो आप लोगोंका प्रभाव इस प्रकार व्यापक हो रहा है और आगे विशेषरूपसे होगा। हमारी तो यह सम्मति है जो इस समय कोई ऐसा अभूतपूर्व कार्य करो जो कुछ काल जैन धर्मकी विशेष प्रभावना चली जाय। गुरुकुलको ही स्थायी बनाओ। कमसे कम उस प्रान्तमें ३ लाख रुपये तो हो जावें। इस समय जनता अनुकूल है। मुन्नालालजीसे हमारी इच्छाकार तथा सब संघसे इच्छाकार।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[११-६५]

श्रीभगतजी सा०, इच्छाकार

पत्र आया। प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है। यदि कुछ न्यूनता हो तब १ या २ मास और भी हो जावे तब रहना अच्छा है। कल्याणका पथ आत्मामें है। क्षेत्रादिक भी निमित्त हैं। समागम भी निमित्त है। 'स्वाध्यायं परमं तपः'। इसे आप करते ही हैं। बालकोंसे आशीर्वाद। श्री सुमतिप्रसाद भी होनहार जीव है। उसे स्वाध्यायमें लगाना। श्री मुन्नालालजीसे योग्य दर्शनविशुद्धि। मनमें विकल्प न रखना। जैनधर्म वह है जो अनन्त संसारके कारणोंसे भी द्वेष नहीं करता। विशेष क्या लिखें। वृद्धावस्थाके कारण लिखनेमें उत्साह नहीं होता।

ईसरी
अषाढ़ सुदि १०, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[११-६६]

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपके प्राय. अनेक आए परन्तु हमारे पास आपका निज पत्र नहीं आया। अस्तु, आपका स्वास्थ्य निर्मल होगा। बाह्य स्वास्थ्यके साथ मेरा तात्पर्य्य अन्तरङ्ग स्वास्थ्यसे है। आप स्वय विवेकशील हैं। परिणामकी निर्मलता ही कल्याणकी जननी है। अत जहाँ तक बने उसीके ऊपर दृष्टिदान करना उचित है। आप

वो समयज्ञ हैं। विशेष क्या लिखें? बालकोंको आशीर्वाद कहना। भव्य हैं। गृहस्थ होकर भी भीतरसे निर्मलता होना यही प्रशस्त भावका कारण है।

ईसरी बाजार,
फा० सु० ३, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० छोटेलालजी

श्रीमान् ब्र० छोटेलालजीका जन्म पौष शुक्ला १४ वि० स० १६५१ को सागर जिलाके अन्तर्गत नरयावली ग्राममें हुआ है। पिताका नाम श्री पूर्णचन्द्रजी और माताका नाम नोंनीबहू था। जाति परवार है। शिक्षा विशारद तक होने पर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानमें विशेष उन्नति की है।

नरयावली छोड़कर व्यापार निमित्त ये सागर आये। किन्तु व्यापारमें अपनी उदार प्रवृत्तिके कारण सफल न होने पर बहुत काल तक ये सागर विद्यालयमें सुपरिटेंडेंट रहे। इसी बीच लगभग दो माहके शिशुको छोड़कर इनकी पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृहारम्भसे उदासीन रहने लगे और श्रीयुक्त सि० मौजीलालजी का सम्पर्क मिल जानेसे कुछ कालमें इन्होंने गृहवासका त्याग कर वि० स० १६६६ में श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगतसे ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली।

ये रोचक वक्ता और समाजसेवी हैं। फलस्वरूप इन्होंने जियागंज, लालगोला, धूलियान और अडंगाबादमें जैन पाठशालाएँ स्थापित कीं। श्री स्याद्वाद विद्यालय बनारसको उल्लेख योग्य आर्थिक सहायता पहुँचवाई। कई वर्ष तक उदासीनाश्रम इन्दौर और ईसरीके अधिष्ठाता रहे तथा व्रतीसंघके मंत्रीपदका कार्य भी इन्होंने किया है।

प्रारम्भमें ये पूज्य श्री वर्णीजीके सम्पर्कमें आये और तबसे आज तक उसे बराबर बनाए हुए हैं। इतना ही नहीं, पूज्य वर्णीजी महाराजमें इनकी विशेष भक्ति है। उसीके परिणामस्वरूप ये उन्हें बराबर पत्र लिखा करते हैं। उत्तरस्वरूप उनके जो पत्र इन्हें प्राप्त हुए उनमेंसे उपलब्ध कतिपय पत्र यहां दिये जाते हैं।

[१२—१]

श्रीयुत महाशय पं० छोटेलाल जी, योग्य इच्छाकार

आप आये, मेरा मौन दिवस था अतः मैं आपसे अपना कुछ भी अभिप्राय व्यक्त न कर सका। बन्धुवर! आपकी श्रद्धा प्रशस्त है और यही श्रद्धा मनोवधिपारको कालान्तरमें नौकारूप को धारण करेगी। अब यह तो अन्तरङ्गसे गभीर दृष्टिसे विचारो सो हम लोग अपने पवित्र अवसरको व्यर्थ अन्य पदार्थोंकी आलोचनामें बिता देते हैं। मेरी सम्मतिमें इसमें कुछ लाभ नहीं, क्योंकि जिस समय हम इन पदार्थोंके परिणमनको देखकर आलोचना करते हैं उस समय हमारी आत्मामें एक तरहकी संक्लेशता होती है जो वर्तमानमें दुःखभूमि है तथा उत्तरकालमें अशुभ कर्मकी खानि है। ऐसे समय अन्य अभापसन करनेवाली समालोचनासे क्या लाभ ? अथवा जो परिणमन हो रहा है वह क्या नहीं होता था सो या है ही नहीं, हो ही रहा है, फिर इतनी हाय क्यों ? सम्यग्दृष्टि अपनी निन्दा गर्हा करता है न कि पर की। अब न परकी आलोचनासे हमें क्या तत्त्व निकला ? प्रत्युत यदि यह भाव परनिन्दा और आत्म प्रशंसामें परिणम जावे तो नीचगोत्रके बन्धका कारण हो जावे। अहाँपर जिसकी समालोचना करते थे उसके पात्र भी न होंगे, क्योंकि नीचगोत्रका बन्ध पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। कल्पना करो यदि जिन बाह्य वस्तुओंसे आप उन्हें निर्ग्रन्थ पदके योग्य नहीं समझते, क्या वह इनका त्याग कर देवें तब मुनि मानोगे। यदि नहीं तब फिर इतनी विषमतासे क्या लाभ ? उचित तो यह है कि इन पदार्थान्तरोंकी परिणतिमें हमारी इष्टानिष्ट कल्पना होती है। निरन्तर उसके पृथक् करनेमें यत्नपर रहना ही भविष्यमें कल्याण

पथके समीप जानेका अपूर्व पथ है। परको उसका आस्वादन करानेकी चेष्टा कभी भी उससे पृथक् होनेकी पद्धति नहीं, प्रत्युत अधःपतनका ही कारण है।

आप जानते हैं परको सुनानेमें परको प्रसन्न करनेका भाव रहता है। भाव इसका यह है कि पर हमें प्रशस्त दृष्टिसे देखें। यह मान नहीं तो क्या है? अनादि कालसे इन्हीं परपदार्थोंमें निजत्व, इष्टत्व और अनिष्टत्वकी कल्पना करते करते अनादि काल बीत गया, सुखका लेश भी नहीं पाया और इस तरहकी हठवासनासे आत्मामें सत्ता जमा रक्खी है जो अनेक प्रयत्न करनेपर भी हम उस कल्पनाके मिटानेमें असफल प्रयत्न रहते हैं, क्योंकि विरोधीका बल प्रबल रहनेपर हम कहाँ तक कृतकार्य होंगे? ऐसा जन्म मिलना सामान्य पुण्यका कार्य नहीं जहाँपर हेयोपादेय तत्त्वकी मीमांसा करनेमें जीवकी शक्तिका विकाश हो जाता है। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर अपने निजत्वमें जितनी त्रुटियां हों उन्हें ही दूर करनेकी चेष्टा करनेमें संलग्न रहना चाहिए। अपनी निर्मलता ही आत्मकल्याणकी भूमि है। परकी निर्मलतासे अपने कल्याण और मलिनतासे अपने अकल्याणका कोई सम्बन्ध नहीं? क्योंकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमें आता है और ज्ञेय कभी भी ज्ञानरूप नहीं होता और न उससे आत्मामें कुछ उत्कर्ष और अपकर्ष ही होता है। आत्माके उत्कर्ष और अपकर्षका कारण रागादिककी न्यूनता और वृद्धिता ही है। अतः जितना भी हो सके उतना प्रयास संसारमें इसकी ओर लक्ष्यकर होना ही सम्यग्दर्शन है।

शरीरकी कृशता समाधिमें उपयोगी नहीं। यह तो जघन्य दशा-वाले पुरुष हैं उन्हींके अर्थ उपदेश है जो काय कषाय सल्ले-

भावना समाधिमरणकी उपयोगिनी है। काय परपदार्थ है। इसकी पुष्टि अथवा कृशता आत्मकल्याणकी न साधिका है न बाधिका। यह माना कि विना वज्रवृषभनाराचसंहननके मोक्ष व सप्तम नरक नहीं होता। तब इसका क्या यह अर्थ है कि वह संहनन उसका उत्पादक है? नहीं, किन्तु उस शरीरमें आत्मा सम्यग्दर्शनादिककी पूर्णता और सप्तम नरकके जानेकी योग्यता उत्पन्न करता है। इस लिये ही कार्यकारणभाव है, अविनाभाव नहीं। अतः आत्म-कल्याणके अर्थ हमें काय कृश नहीं करनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि स्वच्छाचारसे अनियमसे हम निज प्रवृत्ति कर लेवें। स्वच्छाचारिताकी व्याप्ति तीव्र कषायसे है। सामान्य रीतिसे देहकी रक्षा करना और क्या है। देहके पुद्गलपरमाणुओंकी एक विशेष अवस्था है। इसके द्वारा जो हम राग-द्वेषमय होते हैं वह इसमें नोकर्म है। नोकर्म प्रायः निमित्त कारण होते हैं और वह प्रायः निरन्तर संसारमें अपने अस्तित्वको लिये ही रहते हैं। कारण पाकर पर्यायान्तररूप हो जाते हैं। ऐसा भी नहीं कि जो नोकर्म हैं वह सबको समानरूपसे फलदाता हैं। जो नोकर्म मन्द-कषायसे एकको अल्प बन्धका कारण होता है वही नोकर्म तीव्र कषायसे अन्यको तीव्र बन्धका कारण नहीं होता।

ईसरीबाजार
ज्येष्ठ कृ० १२, सं० १९९९
आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१२-२]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी दर्शनविशुद्धि

मैं तो आपको यही सम्मति देता हूँ जो इन परपदार्थोंके सम्बन्धसे अपनेको पृथक् करिए। यही श्रेयोमार्ग है। पर पदार्थके

सम्बन्धसे ही मूर्छाकी उत्पत्ति होती है। यद्यपि मूर्छाका परिणमन आत्मामें ही होता है। किन्तु उसमे निमित्त यह परपदार्थ ही है। इसीसे आचार्योंने उसका त्याग कराया है। परमार्थसे बन्धका कारण आप ही हैं, अत. इस विभाव परिणामसे अपनी रक्षा करिए। यही पुरुपार्थ है। उपवासादि करना कठिन नहीं, धनादिका दानमें लगा देना कठिन नहीं, परन्तु अन्तरंगसे कषायका त्याग कर देना सरल नहीं। दान देनेसे यदि अन्तरंगमे मानादिकी वांछा नहीं हुई तब तो समझो लोभ कपायकी मन्दता इस जीवके है। यदि मानकी अभिलाषासे दान दिया तब मेरी बुद्धिमें लोभकी मन्दता नहीं। विशेप क्या लिखू, क्योंकि अभी तक इन शत्रुओंके चक्रमें हूँ।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-३]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द धर्म साधन करिए, क्योंकि आपको पुण्योदयसे साधन अच्छे हैं। किन्तु शासन करनेकी इच्छा हो तब अपनेहीको अपराधी समझिए और उसको शासन कर मुसिफ बननेकी चेष्टा करिए। परके ऊपर शासन करना कुछ आत्मकल्याणका साधक नहीं।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-४]

श्रीमान् ब्रह्मचारी छोटेलालजी साहब, इच्छाकार

हम सानन्द हैं, आप सानन्द होंगे। भगतजीको इच्छाकार। आप स्वास्थ्य अच्छा होनेपर ही कहीं जाना। आपका वियोग होनेपर भी ईसरी आनेकी शीघ्रता करना अच्छा नहीं। अथवा आपकी इच्छा जो हो सो करना। पदार्थोंका परिणमन स्वाधीन है। किसीकी बलवत्ता वहाँ कार्यमें साधक नहीं हो सकती। हाँ, यह अवश्य है जो कार्य उपादान और निमित्त दोनों ही के सम्बन्धसे होता है। परन्तु उपादान कारण ही कार्यरूप परिणमता है। उपादानकी पूर्व पर्याय निवृत्तिपूर्वक उत्तर पर्याय होती है। गुणोंकी संख्यामें न्यूनाधिकता नहीं होती। इसीसे गुणोंको सदा सहवर्ती कहा है। पर्यायें क्रमवर्ती हैं। यही सिद्धान्त श्री कुन्दकुन्द महाराजका है। यथाहि—

> जीवपरिणामहेदुं कम्मत्त पोग्गला परिणमंति।
> पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥
> ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
> अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हं पि॥
> एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
> पोग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥

जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूप परिणम जाते हैं और पुद्गलकर्मको निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणम जाता है। इसका अर्थ यह है कि पुद्गलका परिणमन पुद्गलमें होता है और जीवका परिणमन जीवमें होता है। पुद्गल-कर्म जीवमें गुणोत्पादक नहीं होता और न जीव पुद्गलमें

कोई गुणोत्पादक होता है। फिर भी जिस जीवके साथ पुद्गल-कर्मका सम्बन्ध है वही जीव रागादिकरूप हो जाता है तथा जीवके निमित्तको पाकर वे ही वर्गणाएँ ज्ञानावरणादि रूप हो जाती हैं जिनका जीवसे सम्बन्ध है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-५]

श्रीयुत ब्रह्मचारी छोटेलालाजी, योग्य इच्छाकार

अनधिकार चेष्टा, प्रथम तो मेरे पत्र देनेका त्याग है। फिर आपका पत्र मेरे नाम आना तब उत्तर देना, क्योंकि मेरे नियममें अच्छे पुरुषको पत्र देना निषेध नहीं। यह चिदानन्दका दोष नहीं। उनकी पुस्तक मैंने बदल ली। उसमें एक पोस्टकार्ड आपका मिल गया। मेरी दृष्टि उसपर पड़ गई। उसके समाचार अवगत कर हर्ष विषाद दोनों हुए। हर्ष तो इस बातका हुआ जो आप सागर-बनारस रहेंगे। आपके समागमसे दोनो ही स्थानोंको लाभ पहुँच सकता है। विषाद इस बातका हुआ जो ईसरी न रहेंगे। क्या ईसरी आश्रम किसीका है जो आपको वह पृथक् कर सके? ईसरी आश्रम एक ट्रस्टके अधीन है अतः इस भावको छोड़िए जो वहाँ रहना कठिन है। रहो, चाहे न रहो, यह आपकी इच्छा है। कोई व्यक्ति आपको नहीं हटा सकता। तथा आप तो ज्ञानी हैं। ससारमें गृहस्थी छोड़ देनेसे कषाय चली जावे, कोई नियम नहीं। अत मनुष्योंकी प्रवृत्ति देख उपेक्षा करना। न तो राग करना न द्वेष करना। मुनिलिङ्ग और गृहिलिङ्ग दोनों ही कुछ मोक्षमार्ग नहीं। फिर यदि किसीकी

भी प्रवृत्ति अन्यथा हो तब आपको दुःखी होनेकी कौनसी बात है ? तिसप्रकार आवो । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' यही मार्ग है। अनादि-कालसे हमारी प्रवृत्ति इन पर पदार्थोंके ही विवेचनमें गई। अपने विवेचनसे तटस्थ रहे। फल उसका क्या हुआ सो शिरपर ही बीत रही है। अनुभवगम्य है। परसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। परमार्थसे विचारो तो परकी क्या समालोचना करोगे। जब परपदार्थोंका अंश भी ज्ञानमें नहीं आता तब क्या समालोचना करोगे। आत्मीय परिणामोंको, जो ज्ञानमें मग्नक रहे हैं, जो इच्छा हो सो करो। यह हमारी अनादिकालकी प्रवृत्ति हो रही है जिसका फल अनन्त संसार है। अब आगमके अधिकारियोंका विकल्प छोड़ो। यदि यह साक्षात् कुछ कहें भी तब ऐसा निर्मल उत्तर हो जो उनको आपके सुन्दर भावोंका परिचय हो जावे तथा उन्हें आपके सन्तापजनक उत्तरसे स्वयं अपने परिणामोंका परिचय मिल जाय जो हम स्वयं गल्तीपर हैं। जिसका हम स्वामित्व मान रहे हैं वह न हमारा है और न जिसने दान किया उसका है। तब किसका है ? किसीका नहीं, किन्तु जैसे अनन्त पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे विद्यमान हैं वह भी उनमें एक है।

इस विषयमें बहुत लिखना था, परन्तु गर्मीके प्रकोपसे न लिख सका। श्री चिदानन्दजीको जो आपने लिखा—मेरा जो अभिप्राय है सो आपका आत्मीय जान लिखा। आप अन्य को न कहना जो प्रथम तो वह अभिप्राय उनका लिखा। वह भी आपका आत्मीय न था अन्य था, पत्रमें कैसे लिखा जाता और जो चिदानन्द व्यक्ति आपके आत्मीय होते तब यहाँ कैसे ? अतः शान्तिसे स्वाध्याय करिये और जब जो होवे उस कालमें ऐसा

ही तो होना था, जानकर सन्तोष करिए। आप हमको लिखोगे—यदि ऐसी व्यवस्था है तब तुम ही क्यो इस पर नहीं चलते हो ?' तब उसका उत्तर यह है जो हमारी मोहकी दुर्बलता दुर्बल बना रही है। तब हमे क्यों कहते हो, हमारी भी वही व्यवस्था जानो ? तुम हमसे कम उमर के हो। अतः इस पर्यायमे जो आपका मोह है, अल्पस्थिति का है तथा हमारी अपेक्षा आप नव्य हैं। उसका घात कर सकते हो।

सुगर छावनी ग्वालियर }
ज्येष्ठ वदि ४, स० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-६]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपने लिखा सो ठीक। आपकी इच्छाके अनुरूप ही तो आपका पुरुषार्थ होगा। होगा क्या ? सो न आप कह सकते है और न मैं कह सकता हू। बनारसके लिये आपका प्रयत्न प्रशसनीय है। हमसे न तो कुछ होता है और न होने की सम्भावना है, क्योंकि पुरुषार्थ शक्तिके अनुरूप होता है। हमारी शक्ति अब उतनी नहीं जो स्वोपकार कर सकें। हॉ, श्रद्धाके अनुरूप विश्वास है जो अन्तिम श्वास तक कल्याणका मार्ग स्वाश्रित है। इससे विचलित नहीं होगे। बाह्यमें कार्य कैसा ही हो, परन्तु यह अवश्य धारणा रहनी चाहिए जो इस अनादिसे आए हुए ससारमें, जिसमें हमारे जीवद्रव्यके अनन्त भव हो गये जो केवलगम्य हैं। वर्तमान भव हमारे ज्ञानगम्य भी है। इस भव तक न तो कोई हमारा मित्र हुआ और न शत्रु हुआ। इसका ज्ञान हम आपको कैसे हुआ सो इस पर्यायकी घटनाओं

से प्रत्यक्ष है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है और यह भी दृढ़ धारणा है जो मैंने न तो किसीका उपकार किया, न कर रहा हूँ और न करूंगा। यह मैं अपने अभिप्राय की कथा कह रहा हूँ। यह सब कोई जानता है—कार्यकी उत्पत्ति निमित्त-उपादानसे होती है। फिर भी मैं अपन अज्ञानकी बात लिख रहा हूँ। इसको देखना चाहिए—मैं जो कार्य कर रहा हूँ उसका मूल उद्देश्य क्या है? विशेष क्या लिखूं। यहाँ पर गर्मीका प्रकोप पूर्णरूपसे है। दिन-भर एक स्थानमें बैठा रहता हूँ। इसी तरहके अभाव-शनाव पत्रोंके लिखनेमें काल गमाया करता हूँ।

नोट—१ अबके यह निश्चय हो गया जो तृषा परीषह कैसी होती है और मुनि लोग इसपर कैसे विजयी होते होंगे इसका भी आभास मिल गया।

२ यह भी पता चल गया जो बाह्य समागम कितना भयंकर होता है। इसके सत्त्वमें परिणामोंको शान्त रखना विरले महापुरुषों का ही कार्य है।

३ यह भी पता चल गया जो गृहस्थके समागमोंसे क्या-क्या कार्य होते हैं?

४ यह भी पता चल गया जो व्रत लेकर निर्वाह करना कितना कठिन है?

५. यह बात सबसे कह देना—दूरके ढोल सुहावने होते हैं।

६ सागर स्थान जलवायुके कारण उत्तम है और मैं यह भी कहता हूँ जो कोई त्यागी सागरमें स्थिर नहीं रहता। अन्यथा एक आदमी उसे स्थिर कर सकता है। नाम हमसे पूछा था—

१—श्री सेठ भगवानदासजी बीड़ीवाले।

२—श्री सिंघई श्री कुन्दनलालजी।

३—श्री वैशाखिया जी।

इसको आप पूछो, आपने कैसे जाना ? तब आप उनसे स्वयं पूछ लो पर यह कह देना—वर्णीका विश्वास है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१२-७]

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका भगतजीके पास आया, बाचा। यद्यपि उस पर प्राइवेट लिखा था। उसको हमने सुनने की आकांक्षा की यह नीतिमार्गके प्रतिकूल हुआ। अस्तु इसकी क्षमा देना। किन्तु आपकी उद्वेगता का परामर्श करनेसे हमको तो यह अनुमान होता है जो आप लोगोंकी दृष्टि अभी तक श्री भगवान परमगुरुके सिद्धान्तके अनुकूल नहीं। यदि होती तब क्या आपको इतनी दौड़-धूप करनी पडती ? नीतिकारने कहा है—

अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि॥

इस गाथामें सामान्य आत्माकी अपेक्षाका वर्णन है। विशेष की अपेक्षा आस्रवादि सप्त तत्त्वोंका वर्णन स्वयं स्वामीने कहा है-

जीवाजीवाधिकारमें जो निरूपण है उसमे जीवका वर्णन लक्षणकी अपेक्षा कहा है, पर्याय की अपेक्षा नहीं है।

अतएव श्रीअमृतचन्द्र सूरिने लिखा है—

वर्णाद्या वा रागाद्यो वा भिन्ना एवास्य पुंसः।

अर्थात् जैसे वर्णादिसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है ऐसे इन

रागादिकोंसे भी भिन्नप्रदेशी आत्मा है। अतएव फिर भी स्वामीने बतलाया है—

> अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटं।
> जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥

इस अधिकारमें भी कुन्दकुन्द भगवानने जीवका निराबाध-स्वरूप बतलाया है। इसीका अज्ञानी मनुष्य अन्यथा अभिप्राय कल्पना कर विपरीत मतोंके पात्र हो जाते हैं। उनका कहना है कि जैसे वर्णादिकसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है वैसे ही रागादिकसे भी आत्मा भिन्नप्रदेशी है। रागादिक तो स्फटिकमणिकी लालिमाकी तरह परके ही हैं। ऐसा माननेसे शतशः जैनी बाह्या-चरणका दम्भ बतलाने लगे और आप स्वयं इससे गिरी श्रेणीमें भक्ष्याभक्ष्य निन्द्य भाष्यके विवेकसे रहित पशुवत् विषयोंमें प्रवृत्ति करने लग गए। धार्मिक मर्म जाने बिना यही पतित दशा है। आत्माकी परिणति ज्ञानचेतना, कर्मफलचेतना तथा कर्मचेतना के भेदसे ३ प्रकारकी है। पहली तो उपयोगमें न आई। शुभपरिणाम को दम्भस्वरूप दिया तब अन्य शरण न होकर अशुभोपयोग परिणामोंके ही कल्प सगम बन गए।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० मूलशंकरजी

श्रीमान् ब्र० मूलशङ्करजी राजकोट (सौराष्ट्र) के रहनेवाले हैं। इनके पिताका नाम कालीदास जी और माताका नाम उजमबाई था। दिगम्बर मार्गको मोक्षका साधक जान श्वेताम्बर परम्पराका त्याग कर इन्होंने दिगम्बर परम्परा अङ्गीकार की है। ब्रह्मचर्य दीक्षा इन्होंने पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर जी महराजसे ली थी। उसका ये यथावत् पालन करते हैं।

ब्रह्मचर्य दीक्षाके बाद इन्होंने स्वाध्याय आदि द्वारा अपने ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति की है। ये वक्ता भी अच्छे हैं। देशमें यत्र-तत्र चातुर्मास आदि करके जनतामें धर्मका प्रचार करना इनका एक मात्र यही कार्य है।

अध्यात्मरुचिवाले होनेसे श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा है। बहुत काल तक ये उनके सानिध्यमें भी रहे हैं। जब बाहर रहते हैं तब पत्र व्यवहार द्वारा अपनी जिज्ञासाकी पूर्ति करते हैं और उसके माध्यमसे सम्पर्क बनाये रखते हैं। उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए कुछ पत्र यहां दिये जाते हैं।

[१३–१]

श्रीयुत बाबू मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये। कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है। इस मूर्च्छाने ही जिनधर्ममें नानाभेद कर दिये। इसका मूल कारण मूर्च्छा है। इसके सद्भावमें अहिंसाधर्मका विकाश नहीं होता। अतः जहाँ मूर्च्छा है वहाँ परिग्रह है और जहाँ परिग्रह है वहाँ महाव्रतका अभाव है।

मनकी चञ्चलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है और कुछ कारण नहीं। मनके जानेका दुःख नहीं, दुःख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओंका है। वास्तवमें उपाय तो यों बन सके तो उदय आने पर हर्ष विषाद न हो। यदि हो भी जाय तो उत्तर कालमें वासना नहीं रहने दे, जहाँ तक रहने दे।

जैसा मनुष्य लौकिक कार्योंमें मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नहीं लगाता। यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओंसे हम अन्तरङ्ग से चित्तवृत्ति हटाकर आभ्यन्तर दृष्टिको आत्माकी ओर लगा दें तो कल्याणका पथ आप ही आप मिल जाय। गरम जलका ठण्डा करनेका उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है। आप आकुलित मत हों। पर रहकर भी अन्तःकरण निर्मल हो सकता है। अपनी आत्मा पर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है। परके द्वारा न किसीका कल्याण हुआ, न होता है और न होगा। निमित्तका अर्थ तो यही है—मुखसे उपदेश देना परन्तु उसका मर्म तो स्वयं जानना होगा तथा उसे स्वयं करना होगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

तत्त्वकी मानवताका मुख्य प्रयोजन कलुषताका अभाव है। आप जहा तक बने पञ्चास्तिकाय तथा अष्टपाहुड, प्रवचनसार का अवकाश पाकर स्वाध्याय करना। अवश्य ही स्वीय श्रेयोमार्ग में सफलीभूत होंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-३]

श्रीयुत महाशय मूलशङ्करजी. योग्य दर्शनविशुद्धि

शास्त्रके द्वारा पदार्थके स्वरूपका ज्ञान होता है। सामायिकादि क्रिया बाह्य हैं। अन्तरङ्गकी निर्मलताका कारण आत्मा स्वयं है, अन्य निमित्त कारण हैं। किसीके परिणाम किसीके द्वारा निर्मल हो ही जावें यह नियम नहीं। हाँ वह जीव पुरुषार्थ करे और काल-लब्धि आदि कारण सामग्रीका सद्भाव हो तब निर्मल परिणाम होनेमें बाधा भी नहीं। परन्तु इसीका निरन्तर ऊहापोह करे और उद्यम न करे तो कार्य सिद्ध होना दुर्लभ है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-४]

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

निर्दोष वक्ता तो वीतराग सर्वज्ञ हैं, अत सहसा कोई कार्य

करना अच्छा नहीं। दिगम्बर मंदिरमें आना परम हितकर है परन्तु प्रवचनमें भी आना अच्छा है। मोहके उदयमें बड़ी बड़ी भूलें होती हैं। यह तो कुछ भूल नहीं। जबतक अपनी परिणति विशुद्ध-रूपा न होगी कल्याणका पथ अति दूर है। अतः जहां तक बने अपनी भूल देखो, परकी भूलसे हमें क्या लाभ। आप एक दृष्टिसे न देखिये, क्योंकि पदार्थ अनन्तधर्मात्मक है। गृहस्थ ही तो है अणुव्रती तो नहीं ऐसी भूलें देखोगे तब मेरी समझमें इस समय वक्ता मिलना दुर्लभ है। सामान्य बात न समझना। अच्छे अच्छे जो वक्ता हैं वे भी ऐसी ऐसी भूलोंसे लिप्त हैं। क्रोध लोभ मान तो प्रत्यक्ष हैं माया भी है। केवल इस समय कल्याणका मार्ग, जो मनुष्य सरल भावसे अपनी प्रवृत्ति करेगा, उसीका होगा। संसारकी समालोचना किस कामकी। अपनी समालोचना करो। यही बहुत है। उसीमें काल और शक्ति पूर्ण हो जायगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-५]

श्रीयुत मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप जानते हैं संसारमें सब प्राणियोंकी सुखमें इच्छा रहती है। रहो, इससे हमें क्या लाभ? हमें देखना है कि हमारी इच्छा किस ओर जाती है? जिस ओर जावे उसको लेकर विचार करनेकी आवश्यकता है। उसीके निर्णयसे हमारे सम्पूर्ण निर्णय अनायास हो जावेंगे। जब हमारी आत्मामें किसी विषयकी इच्छा अनायास हो जाती है उस समय हम अत्यन्त क्षुब्ध और दुःखी हो जाते हैं। यह क्यों? ऐसा इसलिये कि इच्छा एक वैकारिक या विकृत भाव है और वह उसके होते ही आत्मामें जो चारित्र नामकी शक्ति है

वह विकृत परिणमनको प्राप्त होती है। उस कालमें उसका जो वास्तविक स्वरूप है, तिरोहित रहता है। तब जैसे कामला रोग-वालेको शंख पीला प्रतीत होता है उसी प्रकार मिथ्यात्व सहकृत चारित्रोदयमें यह जीव शरीरादि पर द्रव्योंको स्वात्महितका कारण मानकर दुखी होता है।

वैशाख कृ० ६, सं० १६६६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१३-६]

योग्य दर्शनाविशुद्धि

मनुष्यजातिवाले ही एकसे ७ गुणस्थान तकका स्पर्शन कर सकते हैं। वस्त्रधर्मी व सवस्त्रधारी यह बात विद्वानोंसे पूछो। करणानुयोगके साथ विना द्रव्यानुयोगके साथमें कोई बाधा नहीं। सब अनुयोगोंके साथ हो यह अतिउत्तम है।

वैशाख सुदि १२, सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१३-७]

योग्य दर्शनाविशुद्धि

आप अपनेको यथार्थ तत्त्ववेत्ता समझते हैं तथा आपका यह भी अभिप्राय है कि जो मैं करता हूँ वह तथ्य है। अन्य कोई जो कुछ करता है, यथार्थ नहीं। संसारमें सर्वत्र मनुष्योंमें त्रुटि पाई जाती है। जो कोई व्रतादि धारण किये हैं वे कुछ न कुछ अंशमें सदोष हैं और जो मानादि कषाय कर व्रतका पालन करते हैं उनका

व्रत पालना चरणानुयोगके अनुसार शुद्ध होनेपर भी अन्तरंग मलीनताके कारण मोक्षमार्गमें साधक नहीं। मोक्षमार्गमें अन्तरंग सम्यग्दर्शन होना चाहिये। जिनके सम्यग्दर्शन है उनके बाह्यमें व्रत भी हो तब भी वह जीव देवगतिको छोड़कर अन्य गतिका बन्ध नहीं करता।

(सागर) आषाढ़ कृ० ५, सं० २ १ } आ शु चि गणेशप्रसाद वर्णी

[१३-८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप आनन्द स्वाध्याय कीजिये। यही परम तप है। किसकी मान्यता है इसको छोड़िये। आत्मीय मान्यताका ही आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। आजतक हमारा जो संसारवास रहा उसका मूल कारण यही परसम्बन्ध है। जहाँ तक परामर्श किया यही सिद्धान्त पाया कि परको त्यागने की चेष्टा संसारी जीवोंका कार्य है। आत्मीय परिणामोंको जो कलुषित प्रतीत होते हों न हों यह भावना करे। त्यागका अर्थ लोकमें विद्यमानका होता है। परन्तु जो वस्तु ही नहीं उसका त्याग कैसा? जो है उसका भी त्याग कैसा? अर्थात् धनादि बाह्य वस्तुका त्याग तो हो सकता है किन्तु जो रागादि भाव आत्मामें हो रहे हैं उनका त्याग कैसा। अभी हम जिस उत्तम कार्यको करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं उसमें अनुत्तीर्ण होते हैं इसका यही कारण है कि या तो हम इस योग्य नहीं या अभी हमने उस अर्थको नहीं समझा।

सागर वैशाख कृ० ११४ २ १ } आ शु चि गणेश वर्णी

ब्र० मौजीलालजी

श्रीमान् ब्र० मौजीलालजी सागर जिलान्तर्गत विनैका ग्रामके रहनेवाले थे। पिताका नाम कुल्लेलालजी था। वयःप्राप्त होनेपर ये सागर आकर रहने लगे। वहीं पूज्य श्री वर्णीजी और सि० बालचन्द्रजी अर्जीनवीसके सम्पर्कसे स्वाध्याय और चारित्रकी ओर रुचि उत्पन्न होनेपर इन्होंने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली थी। इन्होंने जीवनके अन्त तक अपने चारित्र और परिणामोंकी सम्हाल की है। अन्यदा और खासकर समाधिमरणके समय पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये जो पत्र उपलब्ध हुए हैं वे यहां दिये जाते हैं।

[१४–१]

श्री ब्र० मौजीलाल जी, योग्य शिष्टाचार

सत्यदान तो लोभका त्याग है और उसको मैं चारित्रका अंश मानता हूँ। मूर्छाकी निवृत्ति ही चारित्र है। हमको द्रव्य-त्यागमें पुण्यबंधकी ओर दृष्टि न देना चाहिये, किन्तु इस द्रव्यसे ममत्वनिवृत्तिद्वारा शुद्धोपयोगका वधक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है। जहा उभय पदार्थका बन्ध है वही ससार है। और जहाँ दोनों वस्तुऐं स्वकीय स्वकीय गुणपर्यायोंमें

परिणमन करती हैं वही निवृत्ति है। यही सिद्धांत है। कहा भी है—

> सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां।
> शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिस्सदैवास्म्यहम्॥
> एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणाः।
> तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

अर्थ—यह सिद्धांत उदारचित्त और उदारचरित्रवाले मोक्षार्थियोंको सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्मरहित) चैतन्य स्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हूं। तथा ये मेरे भिन्न लक्षणवाले नाना भाव प्रगट होते हैं, वे मैं नहीं हूं; क्योंकि वे संपूर्ण मेरे भाव परद्रव्य हैं।

इस श्लोकका भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदयमें आते ही संसारका आताप कहां जाता है पता नहीं लगता। आप जहां तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्थाकी ओर दृष्टि न देकर निजात्माकी ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्यकी औषधिका प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो उसका ज्ञाता दृष्टा ही रहना। सो ही समयसारमें कहा है।

> को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
> अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो॥

भावार्थ—यह परद्रव्य मेरा है ऐसा ज्ञानी पंडित नहीं कह सकता, क्योंकि ज्ञानी जीव तो आत्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्योंसे मनुष्यपर्यायकी उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय दो द्रव्य मिलकर सुधाहरिद्रावत् एकरूप नहीं

परिणमे हैं। वहां तो वर्णगुण दोनोंका एकरूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नहीं है किन्तु यहां पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य हैं। इनका एकरूप परिणमना न्यायप्रतिकूल है। पुद्गलके निमित्तको प्राप्त होकर आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता ह। फिर भी रागादिक भाव औदयिक हैं अतः बन्धजनक हैं, आत्माको दुःख जनक हैं, अत हेय हैं। परन्तु शरीरका परिणमन आत्मासे भिन्न है। अतः न वह हेय और न वह उपादेय है। इस ही को समयसारमे श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्यने निर्जराधिकारमे लिखा है—

छिज्जदु भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि ण हु परिग्गहो मज्झ॥

अर्थ—यह शरीर छिद जावो, अथवा भिद जावो, अथवा निर्जराको प्राप्त हो जावो, अथवा नाश हो जावो, जैसे तैसे हो जावो तो भी यह मेरा परिग्रह नहीं है।

इसीसे सम्यग्दृष्टिके परद्रव्यके नानाप्रकारके परिणमन होते हुए भी हष विषाद नहीं होता। अतः आपको भी इस समय शरीरकी क्षीण अवस्था होते हुए कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है

चरणानुयोगमें जो परद्रव्यों को शुभाशुभमें निमित्तत्वकी अपेक्षा हेयोपादेयकी व्यवस्था की है वह अल्प प्रज्ञके अर्थ है। आप तो विज्ञ हैं। अध्यवसान को ही बन्धका जनक समझ इसीके त्यागकी भावना करना और निरन्तर

"एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो"

अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो वाह्य पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं ऐसी भावना रखो।

मरण क्या वस्तु है ? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्यायका वियोग ही मरण है तथा आयुके सद्भावमें पर्यायका सम्बन्ध सो ही जीवन है। अब देखिये जैसे जिस मंदिरमें हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भावमें हमको किसी प्रकारका हानि-लाभ नहीं तब क्यों हर्ष विषाद कर अपने पवित्र भावोंको कलुषित किया जावे। जैसे कि कहा है—

> प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
> ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ॥
> तस्यातो मरणं न किंचिद् भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो ।
> निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥

अर्थ—प्राणोंके नाशको मरण कहते हैं और प्राण इस आत्माका ज्ञान है। वह ज्ञान सद्रूप स्वयं ही नित्य होनेके कारण कभी नहीं नष्ट होता है। अतः इस आत्माका कुछ भी मरण नहीं है तो फिर ज्ञानीको मरणका भय कहांसे हो सकता है। वह ज्ञानी स्वयं निःशङ्क होकर निरन्तर स्वाभाविक ज्ञान का सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप सानन्द ऐसे मरणका प्रयास करना जो परम्परा भावास्रवपानसे बच जावो। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुआ है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याणका मन्दिर है अतः परपदार्थोंकी किंचित मात्र भी अपेक्षा न करें। अब पुस्तकद्वारा ज्ञानाभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं। अब तो पर्यायमें चार परिश्रम कर स्वात्मके अर्थ मोक्षमार्गका अभ्यास करना है। अब इसी ज्ञानरागमका रागद्वेषरागुओंके ऊपर निपात करनेकी आवश्यकता है। यह काम न तो उपदेशका है और न समाधिमरणमें सहायक पंडितोंका

है। अब तो अन्य कथाओंके श्रवण करनेमे समय को न देकर इस शत्रुसेनाके पराजय करनेमे सावधान होकर यत्न पर हो जावो।

यद्यपि निमित्त वली तर्कद्वारा बहुतसी आपत्ति इस विषयमें ला सकते हैं फिर भी कार्य करना अन्तमे तो आपहीका कर्तव्य होगा। अत. जब तक आपकी चेतना सावधान है निरंतर स्वात्म-स्वरूपके चिंतवनमें लगादो।

श्री परमेष्टीका भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायक की ओर ही लक्ष्य रखना, क्योंकि मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ, ज्ञेय भिन्न हैं। उसमें इष्टानिष्ट विकल्प न हो यही पुरुपार्थ करना और अन्तरगमे मूर्छा न करना तथा रागादिक भावोंको तथा उसके वक्ताओंको दूर ही से त्यागना। मुझे आनन्द इस वात का है कि आप नि.शल्य हैं। यही आपके कल्याणकी परमौपधि है

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१४-२]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

आपके शरीरकी अवस्था प्रतिदिन क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धिसे हमारा कोई घात नहीं, क्योंकि आपने निरतर ज्ञानाभ्यास किया है अतः आप इसे स्वय जानते हैं। अथवा मान भी लो शरीरके शैथिल्यसे तदवयवमूल इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती हैं तथा द्रव्ये-न्द्रियके विकृत भावसे भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमें समर्थ नहीं होती है, किन्तु मोहनीयउपशमजन्य सम्यक्त्वकी इसमें क्या

विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उस कालमें जाग्रत अवस्थाके सदृश ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण संसारका अन्तक है उसका आंशिक भी घात नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्थामें भी सम्यग्दर्शन माना है। जहाँ केवल तैजस कार्मण शरीर हैं और उत्तरकालीन शरीरकी पूर्णता नहीं। तथा आहारादि वर्गणाके अभावमें भी सम्यग्दर्शनका सद्भाव रहता है। अतः आप इस बातकी रंचमात्र आकुलता न करें कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्योंकि शरीर भी पर द्रव्य है। उसके सम्बन्धसे जो कार्य होनेवाला है वह हो अथवा न हो परन्तु जो वस्तु आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करनेवाला कोई नहीं। उसकी रक्षा है या संसार तट समीप ही है। विशेष बात यह है कि चरणानुयोगकी पद्धतिसे समाधिके अर्थ बाह्य संयोग अच्छा होना विधेय है किन्तु परमार्थ दृष्टिसे निज प्रबलतम भावना ही कार्यकर है। आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियोंका समागम रहे किन्तु समाधिकर्ताको उनके उपदेश श्रवणकर विचार तो स्वयंको करना पड़ेगा। मैं एक हूँ, चैतन्य हूँ, रागादिक शून्य हूँ यह जो सामग्री देख रहा हूँ परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है, परमात्माके गुणगानसे परमात्माद्वारा परमात्मा पदकी प्राप्ति नहीं किन्तु परमात्माद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे ही उस पदका लाभ निश्चित है। अतः सब प्रकारके संकल्पोंको त्यागकर भाई साहब! अब तो केवल वीतराग निर्दिष्ट पथपर ही आभ्यंतर परिणामसे आरूढ़ हो जाओ और बाह्य त्यागकी जहाँ तक मर्यादा है वहाँ तक निज भावमें बाधा न पहुँचे। अपने परिणामोंके परिणमनको देखकर ही त्याग करना क्योंकि जैन-सिद्धान्तमें सत्य पथ मूर्छा त्यागवालेको ही होता है, अब जो जन्म भर मोक्षमार्गका अध्ययन किया उसके फलका समय है

इसे सावधानतया उपयोगमें लाना। यदि कोई महानुभाव अन्तमें दिगम्बर पदकी सम्मति देवें तब अपनी अभ्यतर विचारधारासे कार्य लेना। वास्तवमें अन्तरंग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पदके पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये अन्यथा अच्छी तरहसे यह कार्य सम्पन्न करते। हीन-शक्ति शरीरकी दुर्बलता है। आभ्यतर श्रद्धामें दुर्बलता न हो। अतः निरन्तर यही भावना रखना—

एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

अर्थ—एक मेरी शास्वत आत्मा ज्ञान-दर्शनलक्षणमयी है शेष जो बाहिरी भाव हैं वे मेरे नहीं हैं, सर्व संयोगी भाव हैं।

अतः जहां तक बने स्वयं आप समाधान पूर्वक अन्यको समाधिका उपदेश करना, समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है। तब यह कौन सा विशिष्ट कार्य है। वह तो उन शत्रुओंको चूर्ण कर देता है जो अनन्त ससारके कारण हैं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१४–२]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

इस ससार समुद्रमें गोते खानेवाले जीवों को केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियोंने आश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होंगे। आपने लिखा कि हम मोक्षमार्ग प्रकाश की दो प्रति भेजते हैं सो स्वीकार करना। भला ऐसा कौन

होगा जो इसे स्वीकार न करे। कोई तीव्रकषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनंगीकार करे तो करे परंतु हम तो शतशः धन्यवाद देते हुये आपकी भेंट को स्वीकार करते हैं। परंतु क्या करें निरंतर इसी चिन्तामें रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जो वास्तवमें हम इसके पात्र हों। अभी हम इसके पात्र नहीं हुये, अन्यथा तुच्छ सी तुच्छ बातोंमें नाना कल्पनायें करते हुये दुखी न होते। अब भाई साहब। जहां तक बने हमारा और आपका मुख्य कर्तव्य रागादिकके दूर करनेका ही निरंतर रहना चाहिये, क्योंकि आगमज्ञान और अभ्यास बिना संयतत्वभावके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं। अब सब प्रयत्नका यही सार होना चाहिये जो रागादिक भावोंका अस्तित्व आत्मा में न रहे। ज्ञान वस्तुका परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका फल है। किन्तु ज्ञानका फल उपेक्षा नहीं, उपेक्षाफल चारित्रका है। ज्ञानमें आरोपसे वह फल कहा जाता है। जन्म भर मोक्षमार्गविषयक ज्ञान संपादन किया अब एकबार उपयोगमें लाकर उसे आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोगका अभिप्राय लोगोंने परवस्तुके त्याग और ग्रहणमें ही समझ रक्खा है सो नहीं। चरणानुयोगका मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिके मेटनेका है परंतु वह पर वस्तुके संबंधसे होते हैं अर्थात् पर वस्तु उसका नोकर्म होती है अतः उसका त्याग करते हैं। मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओंके संबंधसे भयभीत रहता है। मैं तो किसीके समागमकी अभिलाषा नहीं करता हूं। आपको भी सम्मति देता हूं कि सबसे ममत्व हटानेकी चेष्टा करो। यही पार होनेकी नौका है। जब परमें ममत्व भाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहंबुद्धि घट जावेगी, क्योंकि ममत्व और अहंकारका अविनाभावी संबंध है। एकके बिना अन्य नहीं रहता। भाई ठीक बात मैंने देखा कि अब तो स्वतंत्र हूं। ज्ञानमें सुख होता

होगा इसे करके देखूं। ६०००) रुपया मेरे पास था। सर्व त्याग कर दिया, परन्तु कुछ भी शातिका अश न पाया। उपवासादिक करके शांति न मिली। परकी निदा और आत्मप्रशसासे भी आनदका अकुर न उगा। भोजनादिकी प्रक्रियासे भी लेश शातिको न पाया। अतः यही निश्चय किया कि रागादिक गये विना शांतिकी उद्भूति नही, अतः सर्व व्यापार उसीके निवारणमें लगा देना ही शातिका उपाय है। वाग्जालके लिखनेसे कुछ भी सार नहीं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१४-४]

महाशय, योग्य शिष्टाचार

मैं यदि अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो जैसा आप लिखते हैं मैं उसका पात्र नहीं, क्योंकि पात्राताकी नियामक कुशलताका अभाव है। वह अभी कोसों दूर है। हा, यह अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तव दुर्लभ भी नही। वक्तृत्वादि गुण तो आनुसगिक हैं। श्रेयामार्गकी सन्निकटता जहां जहां होती है वह वस्तु पूज्य है, अतः हम और आपको वाह्य वस्तुजालमें मूर्छाकी कृशताकर आत्मतत्त्वको उत्कर्ष वनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यासका प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नहीं होता। साथहीमें परपदार्थोंसे उपेक्षा होनी चाहिये। आगमज्ञानकी प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिताका फल और ही है। मिश्रीकी प्राप्ति और स्वादुतामें महान् अन्तर है। यदि स्वादका अनुभव न हुआ तव मिश्री पदार्थका मिलना केवल अन्धेकी लालटेनके सदृश है, अत अव यावान् पुरुषार्थ है वह इसीमे कटिवद्ध होकर लगा देना ही

श्रेयस्कर है जो आत्मज्ञानके साथ साथ उपेक्षारूप स्वात्म लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं—मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है परन्तु जो अर्जित कर्म हैं उनका फल तो मुझे ही चखना पड़ेगा, अत कुछ भी विषाद नहीं।

विषाद इस बातका है—जो वास्तविक आत्मस्वरूपका घातक है उसकी उपक्षीणता नहीं होती। उसके अर्थ निरन्तर प्रयास है। बाह्य पदार्थका छोड़ना कोई कठिन नहीं। किन्तु यह नियम नहीं, क्योंकि अध्यवसानके कारण छूटकर भी अध्यवसानकी उत्पत्ति अन्तस्तत्त्व वासनासे होती है। उस वासनाके विरुद्ध शस्त्र चलाकर उसका निपात करना। यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है परन्तु फिर भी वह क्या है केवल शब्दोंकी सुन्दरताको छोड़कर गम्य नहीं। दृष्टान्त तो स्पष्ट है—अग्निगम्य उष्णता जो जलमें है उसकी भिन्नता तो दृष्टिविषय है। यहाँ तो क्रोधसे जो क्षमाकी प्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न आवे तब तक कैसे व्यक्त है। ऊपरसे क्रोध न करना क्षमाका साधक नहीं। आशयमें वह न रहे यही तो कठिन बात है। यथा उपायसे तत्त्वज्ञान सा तो हम आप सर्व जानते ही हैं किन्तु फिर भी कुछ गूढ़ रहस्य है जो महानुभावोंके समागमकी अपेक्षा रखता है। यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है। उसकी सेवा क्या है—"ज्ञाता दृष्टा" और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकल्प जानना।

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

श्री धन्यकुमारजी

श्रीमान् बाबू धन्यकुमारजी पहले जेलर थे। वहासे निवृत्त होनेके बाद धर्मसाधन करते हुए ये अपनी पत्नीके साथ ईसरी आकर रहने लगे। वहीं इनका समाधिपूर्वक पिछले वर्ष स्वर्गवास हुआ है। ये प्रकृतिके भद्र और धार्मिक रुचिके व्यक्ति थे। पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा थी। यहा पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र दिये जाते हैं।

[१५—१]

श्रीयुत महाशय धन्यकुमारचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

मैंने आपके पत्रको बहुत उपादेय समझा और आपको सहर्ष धन्यवाद देता हू जो आपने यथार्थ-घातक त्रुटि मेरे समक्ष रख दी। आपके सहवाससे मुझे तो लाभ ही है।

वैशाख सु० १५ सं० १९९७ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५—२]

श्रीयुत धन्यकुमारजी, दर्शनविशुद्धि

आप जानते हैं कि जब तक यह जीव बाह्य पदार्थोंके द्वारा

अपनी महत्ता समझ रहा है, उससे जो न हो, थोड़ा है। धर्मकी रक्षा करनेवाले रत्नत्रयधारी पवित्र आत्मा होते हैं। उन्हींके वाक्य आगमरूप होकर इतर पुरुषोंको धर्मलाभ करानेमें निमित्त होते हैं। धन आदि जो बाह्य जड़ पदार्थ हैं उन्हें अपना मानना अपनेको जड़ बनानेकी चेष्टा है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ज्ञानी जीवका अनादर हो जावे तो इसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु ज्ञानी वही है जो इन उपद्रवोंसे अपमानित न हो। स्यालिनीने श्रीसुकुमाल स्वामीका उदर विदारण करके अपने क्रोधकी पराकाष्ठा का परिचय दिया, किन्तु सुकुमाल स्वामी उस भयङ्कर उपसर्गसे विचलित न होकर उपशमश्रेणी द्वारा सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके पात्र हुए। अतः मैं उसीको सम्यग्ज्ञानी मानता हूँ जिसकी आत्मामें मान-अपमानसे कोई हर्ष-विषाद नहीं होता।

आत्मकल्याणके लिए अधिक समयकी आवश्यकता नहीं, किन्तु निर्मल अभिप्रायकी महती आवश्यकता है। गृहस्थ-अवस्थामें नाना प्रकारके उपद्रवोंका सद्भाव होनेपर भी निर्मल अवस्थाका लाभ असाध्य या असम्भव नहीं। वासना ही संसार और मोक्षकी जननी है। मेरा स्वास्थ्य तीन मासके मलेरिया ज्वरसे दुर्बल हो गया है। इससे मैं वाह्य विशेष कार्य करनेमें असमर्थ हूँ। समय पाकर आपके पत्रका उत्तर दूँगा।

ईसरी
श्रावण वदि ११, सं. १९९७

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-३]

योग्य इच्छाकार

हमारा विचार राजगृही जानेका निश्चित है। दीपमालिका

वाद जावेंगे। आप कब तक आवेंगे। यह मान ही हमारे अन्त-स्तत्त्वका बाधक है। जैसे हमारे राग-द्वेष जाते हैं, परन्तु फिर आते हैं। यही तो विपत्तिमूलक वार्ता है। घर छोड़ा, जगत घर बना लिया। घरमे तो परिमित कुटुम्ब होता है। यहाँ तो उसकी इयत्ता नहीं। यही ममता तो ससार की माता है।

ससारमें मनुष्य बहुत कुछ सुख चाहते हैं। परन्तु जिन कारणोंसे सुख होगा उनका स्पर्श भी नहीं करते। यही कारण है जो आजन्म उस नित्य स्वाधीन आत्मोत्थ सुखसे वञ्चित रहता है। केवल मोदककी कथा कर मधुरता का स्वाद लेना चाहता है जो सर्व ही अलीक है। श्रीयुत हरनारायण जी को कहना—अब तो चरम वय है। चरम पुरुषार्थ करनेकी घड़ी है।

कार्तिक कृ० ७, सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं वहाँसे एक दम चला आया। यह भी कर्मज भाव है। मेरा आभ्यन्तर किसीसे विरोध नहीं। यदि अज्ञान व प्रमादवश हुआ भी हो तब उसका पश्चाताप है। परन्तु अब ६ मासके लिये अकेले रहना है, किसीके साथमें नहीं रहना। मेरे सर्वसे उत्कृष्ट बाबाजी हैं। उनके साथमे भी न रहना मैंने तय कर दिया। कोई भी चेष्टा मेरे अब कोई करेगा, विफल होगी। आश्रममें नहीं रहूँगा, क्योंकि वहाँ का रहना ही लोकोंको दुःख का बीज हुआ। ईसरी रहनेका निषेध नहीं। इस संसारवनमें हमने अनन्त दुःख पाये। दुःखका कारण मूल हमारा ही दोष है। हम पर को

[१५-६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……अब कुछ कमजोरी हो गई। वह निवृत्त होने पर राजगृही जाऊँगा। जब भी अन्यत्र जानेकी चेष्टा करता हूँ यही सर्व आपत्ति आ जाती है। भीतरसे देखा जावे तो अपनी आत्मा में ही सर्व दुःखकी जड़ है। वह जावे, काम बने। हमने केवल परको ही उपकारका क्षेत्र बना रक्खा है। मैं तो उसे मनुष्य ही नहीं मानता जो स्वोपकारसे वञ्चित हैं।

गया
अषाढ़ वदी ११ सं० १९९९ 		आ शु चि
गणेश वर्णी

[१५-१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

… यहाँ से द्रोणगिरि ८९ मील है। अभी तक तो अच्छा हूँ। कलकी भगवान जानें।…बनारसके बाद मैं तो एक बार भोजन करने लगा। पानी भी दूसरी बार नहीं लेता। रुपया पैसा सब छोड़ दिया। केवल १ रजाई, २ धोती, ७ चादरा, १ दरी, १ बिछौना, २ तौलिया।

देवेन्द्रनगर
फा० व सं २ 		आ शु चि
गणेश वर्णी

[१५-११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……मेरी प्रवृत्ति परमार्थ मार्गकी ओर है। परन्तु वास्तवमें

परीषह सहनका बल नहीं। फिर भी अब जो कुछ नियम लिया है, पालन करूँगा। मनुष्य जन्म दुर्लभ है। परन्तु कायाकी रक्षा करना उससे भी कठिन है। इसका जो घात करते हैं वह अनन्त संसारके पात्र होते हैं। हमारा पूर्ण विचार विहार भूमिमें ही अन्तिम आयु बितानेका है।

बड़ा मलहरा
फा० सुदि ६, सं० २००० }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

... आप लोगोंका धर्म साधन शान्तिपूर्वक होता होगा, क्योंकि स्थान पवित्र है। यद्यपि मूल कारण तो भावमें है। फिर भी निमित्त कारण भी बाह्यमें होना चाहिये।

आश्विन कृ० २ सं० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

... आप सानन्द जीवन बिता रहे हैं यह आपके पुण्य परिणामों का फल है। मुझे इसका हर्ष है जो आपका जीवन धर्म ध्यानमें सफल हो रहा है।

ज्येष्ठ सुदि २, सं० २००३ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका धर्मसाधन भी योग्य रीतिसे होता होगा।

अपराधी मानते हैं। इसीसे दुःखी होते हैं। हे प्रभो! कब सुमति का उदय आवे और इन मिथ्या तर्कोंसे पिण्ड छूटे।

ज्येष्ठ कृ० १, सं० १९९८ } 		आ० शु० चि०
							गणेश वर्णी

[१५—५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……जहाँ उपयोगकी निर्मलता हो वहीं रहना। उपयोग निर्मलता के अर्थ ही बाह्य प्रयास है। संसारमें शान्तिका कारण यही है। इसकी मलीनता ही संसारकी जननी है, अतः उसीकी निर्मलता करना। यद्यपि आपके रहनेसे हमको तो लाभ ही है। तथापि जहाँ आपको स्वयं लाभ हो और आपके द्वारा अन्य व्यक्तियोंको लाभ हो वहीं पर रहना और अच्छा है। मृग कहीं जावे स्थानमें सुगन्ध नहीं, सुगन्धकी वस्तु पासमें है। परन्तु खोजता अन्यत्र ही है। यही भूल है। इसे जान लेना ही सम्यग्ज्ञान है।

ईसरी 						आपका शुभचिन्तक
मार्गशीर्ष कृ० ६, सं० १९९८ } 	गणेशप्रसाद वर्णी

[१५—६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……आनन्द गया पहुँचे। परन्तु फिर मलेरिया सामग्री सहित आया। आनन्द वही रहता है जो किसीके चक्रमें नहीं आता। हम आनन्दकी ऊपरी बातें करते हैं। आनन्द क्या है इससे विमुख हैं। कला जानना और बात है, उसका रसिक होना और

बात है। गाना सुनकर मूर्ख लोक भी सुख मानता है, परन्तु अनुभव मृगपशुको ही होता है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

'शान्तिसे जीवन बिताना यह कहना और बात है, शान्तिसे काल बिताना और बात है। उपदेश देना लिखना यह कार्य बाह्य बात है। अस्तु जो हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

""कर्मकी प्रबलताको समभावसे सहना ही हमने इस समय उचित समझा है। अन्यथा इस रूप प्रवृत्ति न होती। आप लोग नाना कल्पना करते होंगे। ये सर्व अनात्मीय हैं। शान्तिके कारण इन सबका त्याग ही है।""हम अब गयासे आगे नहीं जा सके। पैरके अगूठामें दर्द हो गया। अब शान्त है। यद्यपि हमारा विचार गर्मीमे प्रायः शीत प्रदेशमें रहनेका रहता है। परन्तु उदयने कहा अभी जो हमारा कर्जा है, अदा करो। हमने भी देना उचित समझा, क्योंकि ऋण चुकाना ही धर्म है। अब सर्व तरहसे शान्ति है। अन्तरगकी शान्ति पुरुषार्थ अधीन है। जब सुअवसर आवेगा, स्वयमेव कार्य वन जावेगा।

चैत सुदी १४, सं० १९९९ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-९]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……अब कुछ कमजोरी हो गई। यह निवृत्त होने पर राजगृही जाऊँगा। कर्म भी अत्यन्त जानेकी चेष्टा करता हूँ यही सब आपत्ति आ जाती है। भीतरसे देखा जावे तो अपनी आत्मा में ही सर्व सुखकी जड़ है। वह जावे, काम बने। हमने केवल परको ही उपकारका क्षेत्र बना रक्खा है। मैं तो उसे मनुष्य ही नहीं मानता जो स्वोपकारसे वञ्चित है।

गया
आषाढ़ बदी ११ सं० १९९९ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

…यहाँ से द्रोणगिरि ८९ मील है। अभी तक तो अच्छा हूँ। आगेकी भगवान जानें।…समारम्भ आप मैं तो एक बार भोजन करने लगा। पानी भी दूसरी बार नहीं लेता। रुपया पैसा सब छोड़ दिया। केवल १ रजाई, २ धोती, २ चादर, १ दरी, १ बिछौना, २ तौलिया।

देवेन्द्रनगर
प्र० ब० ? सं० २ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

……मेरी प्रकृति परमार्थ मार्गकी ओर है। परन्तु वास्तवमें

परीषह सहनका बल नहीं। फिर भी अब जो कुछ नियम लिया है, पालन करूँगा। मनुष्य जन्म दुर्लभ है। परन्तु कायाकी रक्षा करना उससे भी कठिन है। उसका जो घात करते हैं वह अनन्त संसारके पात्र होते हैं। हमारा पूर्ण विचार विहार भूमिमें ही अन्तिम आयु बितानेका है।

बड़ा मलहरा
फा० सुदि ६, सं० २००० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

......आप लोगोंका धर्म साधन शान्तिपूर्वक होता होगा, क्योंकि स्थान पवित्र है। यद्यपि मूल कारण तो भावमें है। फिर भी निमित्त कारण भी बाह्यमें होना चाहिये।

आश्विन कृ०२ सं० २००१ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५-१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

.....आप सानन्द जीवन बिता रहे हैं यह आपके पुण्य परिणामोंका फल है। मुझे इसका हर्ष है जो आपका जीवन धर्म ध्यानमें सफल हो रहा है।

ज्येष्ठ सुदि २, सं० २००३ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१५-१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका धर्मसाधन भी योग्य रीतिसे होता होगा।

यों तो संसार है। फिर भी आपसे विवेकी मन इसकी वायुसे सुरक्षित हैं। मैं तो इसमान्यकी तरह इन गृहस्थोंमें आकर फँस गया। इसमें इनका दोष नहीं। जो आलसमें फँसता है, लोभ से ही फँसता है। मैं स्पर्शके अभिमानमें फँस गया। मैंने इस देशको निज माना। इसीके वशीभूत होकर फँस गया। अब अंतरंगसे विचार है कि वर्षा बाद फिर वहाँ आनेका प्रयत्न करूं। परसाल आया था परन्तु बिहारके झगड़ेने रोक दिया।

कुमार
मैसाख सुदि ४ सं २ ४ } आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१५—१५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

—आपने जो लिखा अक्षरशः सत्य है। मनुष्य वही है जो पहले आत्महित करे। परहित तो आनुषङ्गिक है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है जो आज तक किसीके द्वारा परहित होने का प्रयत्न नहीं हुआ। निमित्त कारण की मुख्यतासे ऐसा कथन किया जाता है। मैं किसीके द्वारा यहाँ नहीं फंसा। अपने ही दुर्बलताभावसे फंस गया। और मैं क्या संसारमात्र अपनी दुर्बलतासे संसार की यातनाओं का सहता है। मेरा अन्तरंग विचार है या अन्तिम आयु भी गिरिराजजीमें ही पूर्ण करूं। अपवाद और उत्सर्गमें मैत्रीभाव होना चाहिए। यही मार्ग है और इसका अनुसरण करना ही श्रेयस्कर है। परन्तु लौकिक अपवादकी रक्षा भी करनी चाहिए। यह भी हमारा दुर्बलता है, अन्यथा इसकी परवा न करते।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० मंगलसेन जी

श्रीमान् ब्र० मंगलसेन जी का जन्म कार्तिक कृष्णा १३ वि० सं० १९४७ को मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत मुबारकपुर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम लाला भिक्खीमल जी और माताका नाम श्री मुनियादेवी था। जाति अग्रवाल है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मेट्रिक तक हुई है। अपने व्रती जीवनमें इन्होंने अपनी धार्मिक योग्यता भी बढ़ाई है।

विवाह होनेपर भी ये गृहप्रपञ्चमें अधिक दिन तक रत न रह सके और गार्हस्थिक जीवनसे उदास रहने लगे। फलस्वरूप इन्होंने १९८१ के माघमें सप्तम प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए। दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज स्वय है। अपने त्यागी जीवनमें इन्होंने वेदी प्रतिष्ठा आदि अनेक कार्य कराये हैं। ग्राम-सुधार योजनामें रुचि होनेसे कुछ समय इनका इस कार्यमें भी व्यतीत हुआ है। ये बचपनमें भजन गायनके बड़े रुचिया थे, इसलिए इनके द्वारा भी इन्होंने समाजकी सेवा की है।

पूज्य वर्णी जी महाराज से इनका पुराना सम्बन्ध है। फल-स्वरूप ये बहुत काल तक उनके सम्पर्कमें रहे हैं और साक्षात् सम्पर्क न रहने पर पत्र व्यवहार द्वारा उसकी पूर्ति करते रहते हैं। यहा पूज्य वर्णीजीने इन्हें जो पत्र लिखे वे दिये जाते हैं।

[१६—१]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो आपकी आजीविका है उसे सहसा न मिटाओ। कल्याणका मार्ग आत्मामें है। केवल पराबलम्बी होकर कल्याण चाहनेसे कल्याण नहीं होता। आपकी इच्छा-जो करना। स्वाध्याय करो। यही कल्याणका मार्ग है। व्यर्थ मत भटको। मैं बाबाजीकी आज्ञानुसार रहूँगा।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६—२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका मार्ग एकत्वमें है। अनेकत्वहीने तो संसार बना रखा है। यदि हम अपना हित चाहें तो परसे ममत्व मिटावें, न कि जोड़ें। हमको तो अन्तरङ्गसे यहाँ आनेसे विशेष लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत कई अंशमें हानि हुई। मैं उस समागमको चाहता हूँ जो परकी आशा न करे। बाबाजी मेरे मित्र तथा पूज्य हैं। जैसी उनकी आज्ञा होगी वैसा ही करूँगा।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६—३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ कल्याणमें है। हम अन्यमें देखते हैं। हे भगवन् आत्मन्! अब तो इस पराधीनबन्धनके जालसे पृथक् हो। इस

परद्रव्योंका आश्रय छोड़। गाथा ४०८, ४०९ समयसारमें लिङ्ग छोड़नेका यह आशय है जो देहाश्रित लिङ्गमे ममत्व छोड़ना। अनादिसे परके आश्रय ही तो रहे। इसीका नाम बन्ध है। मोक्ष नाम तो परसे भिन्न होनेका है। कब ऐसा दिन आवे जो इन परवस्तुओं से ममत्व छूटे। निर्मल आश्रय ही मोक्षमार्ग है। क्रिया तो पर-द्रव्याश्रित त्यागनी ही पड़ेगी। हमने १५ दिन मौन रखा। आगे एक दिन मौन और एक दिन बोलनेका विचार है। जितने झंझटसे बचें उतने ही कल्याणके पास जावेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

समताभाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोंका मुख्य कर्त्तव्य है और सब शिष्टाचार है। उपयोग लगानेकी आशासे सर्वत्र जाइये, परन्तु अन्तिम बात यही है जो चित्तवृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्नही सराहने योग्य है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

प्रशस्त भाव ही संसार बन्धनके नाशका मूल उपाय है। शास्त्र-ज्ञान तो उपायका उपाय है। यावत् हमारी दृष्टि परोन्मुख है तावत् स्वोन्मुख दृष्टिका उदय नहीं। परन्तु जब स्वोन्मुख हो

तब तो स्वकीय रूपका प्रतिभास हो। केवल स्वरूपका प्रतिभासक है। परन्तु तद्रूप रहना यह बिना मोहके उपशमके ही होगा। कहनेमें और करनेमें महान् अन्तर है। आप जानते हैं, प्रथम सम्यग्दर्शनके होते ही जीवके परपदार्थोंमें उदासीनता आ जाती है और जब उदासीनताकी भावना दृढ़तम हो जाती है तब आत्मा ज्ञाता दृष्टा ही रहता है। अतः आतुर नहीं होना। उद्यम करना हमारा पुरुषार्थ है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६–६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथोपकथनकी शैलीको छोड़कर कर्तव्यपथमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। कल्याण करनेवाला आप है। परपदार्थकी आकांक्षा ही बाधक है। परके सम्बन्धसे रागादिक होते हैं और रागादिकोंके नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है। अतः निःशंक होकर निराकुलतारूप उपयोगद्वारा ही आत्मतत्त्वकी विशुद्धि होगी। अतः जो आकुलताके उत्पादक हों उन्हें सर्वथा त्याग कर स्वात्मगुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चाहिए। अपनीमण्डलीका मोक्षमार्गमें साधक ज्ञान अभी आप सब एकान्तमें अपने ही ग्रामोंके उपवनोंमें ९ या ४ दिन अवसर पाकर रहनेका अभ्यास करोगे तो अधिक लाभ उठाओगे। हमारे सवारी आदिका त्याग है, अन्यथा हम आपको उन्हीं उपवनोंमें मनुष्य बनाकर रहते, क्योंकि बाह्य साधन वहाँ योग्य थे। चिन्ता किसी बातकी न करना। मेरी तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी

चिन्ता न करो। मोक्षपथमें लग जाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

इतना परिग्रह रखना श्रेयस्कर होगा जिससे आपकी इच्छा पूर्ति हो जावे। संक्लेशता न हो और न इतना अधिक हो कि गृध्नता पैदा हो जावे। संसारमें उन जीवोंकी प्रशंसा है जो जालसे पृथक् होनेकी चेष्टा करनेमें लग जाते हैं। आपने अच्छा विचार किया। लाला शीतलप्रसादजीने भी सं० २००० में गृहसे विरल होनेका विचार किया है। पृथक् होनेके पहले अच्छी तरहसे चित्तवृत्तियोंके निरोध करनेका प्रयास करें। केवल बाह्य पदार्थोंके त्यागसे ही शान्तिका लाभ नहीं जबतक मूर्च्छाकी सत्ता न हटेगी। मूर्च्छा घटाना ही पुरुषार्थ है। इसके वास्ते महान् उत्तम विचारोंकी आवश्यकता है।

ईसरी
आश्विन शु० ३, सं० १९९९

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—८]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द समय बिताना और जहाँ तक बने निराकुलताका लक्ष्य त्यागमें रखना। जो भी कार्य करो अन्तिम फल उसका शान्तिसे देखना। यहाँ तक ही वस्तुकी व्यवस्था है। जिसने

इस व्यवस्थाको जान लिया वह धर्मोंमकी सफलता पानेका भागीदार हो गया।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६–९]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप यहाँ निमित्तोंकी कटुतासे गृहवास छोड़ना चाहते हो सो भाई साहब। इस दुष्षमकालमें सर्वत्र निमित्तोंमें विपर्ययता हो रही है। यहाँ रहकर मुझे अच्छी तरहसे अनुभव हो गया कि अपनी परणतिका पवित्र बनानेकी चेष्टा करना ही बुरे निमित्तोंसे बचनेका उपाय है। निमित्त कभी भी बुरे नहीं होते। शंख पीत नहीं होता, परन्तु कामला रोगवालेका पीत भासमान होता है। इसी तरह हमारी जो अन्तस्तलस्थित कलुषता है वही निमित्तोंमें इष्टानिष्ट कल्पना करा रही है और जब तक यह कलुषता न जायेगी तब तक, संसारमें भ्रमण कर आइये शान्तिका आंशिक भी लाभ न होगा क्योंकि शान्तिको रोकनेवाली कलुषता तो वहीं बैठी हुई है। क्षेत्र छोड़नेसे क्या होगा? जैसे रोगी मनुष्यको एक मामूली घरसे निकालकर एक दिव्य महलमें ले आया जाय तो क्या वह निरोग हो जावेगा? अथवा काँचके नगको स्वर्णमें पची करा दीजिये तो क्या वह हीरा हो जायगा?

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६–१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। यही दुःख जाने सो यह बारम्बार पिष्टपेषण ही

है। आप वही लिखते हैं और वही उत्तर हम देते हैं। एकबार चित्तवृत्तिकी चञ्चलताको छोडो और स्वोन्मुख होओ। आज तक परोन्मुख रहे और उसका फल भी जो पर वस्तुका होता है वही हुआ। सब संगतिको छोड़कर एक स्वात्मसंगति करो। वही सर्व-शान्तिकी जड़ और सर्व प्रश्नोंके उत्तर करनेमें समर्थ है। जो दुःख आपको है वही तो हमको है। यदि न होता तो कदापि हम उत्तर न देते। उत्तर देना ही इसमें प्रमाण है। जैसे मांगने-वाला दुःखी है वैसे दाता भी करुणाक्रान्त होनेसे दुःखी है। हाँ, दुःखमें कारण पृथक् पृथक् अवश्य है। पर हैं दुःखी दोनों। मेरी तो श्रद्धा यहाँ तक है कि जहाँ तक अभिप्रायमें परोपकारिणी बुद्धिका सद्भाव है चाहे वह दर्शनमोहके सद्भावमें हो और चाहे चारित्रमोहके सद्भावमें, आत्मामें दोनों ही बाधाकारिणी हैं। अब ऐसा भाव उत्पन्न करो कि परसे कल्याण होनेकी आकांक्षा ही शान्त हो जावे, क्योंकि अभिलाषा अनात्मीय वस्तु है। इसका त्यागी ही आत्मस्वरूपका शोधक है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सानन्द सागर पहुँच गये और यहाँसे ५ या ७ दिनमें चलेंगे। बाईजीके कारण आना पड़ा। संसारमें अन्यत्र शान्ति नहीं है। अपने पास है। अन्यत्र खोजनेकी चेष्टा व्यर्थ है। आप सबसे पहले जहाँ तक बने प्रत्येक वस्तुसे मोह हटानेकी चेष्टा करें और चित्तमें हमेशा शुद्ध परिणमनका अभ्यास करें। बाह्य पदार्थोंसे स्वात्महित नहीं होगा। अपने ही भीतर शान्ति खोजनेका निरन्तर

प्रयास करो। अन्य किसीके ऊपर बुरा-भला माननेका अभ्यास छोड़ो। मोहकी दुर्बलता भोजनकी न्यूनतासे नहीं होगी, किन्तु रागादिके त्यागनेसे होगी।

सागर } आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—१२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पर्यूषण पर्व सानन्द हो गया। अब चित्तमें आकुलता हो पुस्तक लेकर बागमें चले गये। वहीं निर्वाण भूमि है। जो लोग विशेष रूपसे धर्मके सम्मुख नहीं हैं उनके लिये तीर्थयात्रा और साधुसमागम धर्मके कारण है। उसका सर्वोत्तम अपना लिया। सानन्द समय तभी आवेगा जब कुटुम्बी जन तथा शत्रु और मित्रोंमें समता आ जावेगी। घर छोड़नेमें कुछ नहीं। हर जगह घर बनाना पड़ेगा, क्योंकि अभी आपकी इतनी कषाय नहीं गई जो अपमान और मानमें समानता आ सके। अभी तो भूमिका ही आरम्भ है। यदि नींव कची होगी तो महल नहीं बनेगा। अतः जहाँ तक बने बगीचामें फूसकी मढ़ैयाभी बनाकर अभ्यास करो। कभी-कभी शाहपुर खतौली आकर अभ्यास करो। ऊपरी लिबाससे अन्तरंगकी चमक नहीं आती।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६—१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

साता और असाता दो इस संसारमें हैं। इन में से किसी

एकके उदयमें ही यहाँ रहनेकी पद्धति है। इसमें हर्षविषाद करने से यह पद्धति निरन्तर रहती है, निकालनेका मार्ग नहीं मिलता। जो महापुरुष इन अन्यतर परिणतिसे हर्षित और विषाद युक्त नहीं होते वे ही इससे छुटकारा पा जाते हैं। मार्ग कहीं नहीं और सब जगत्में है। चित्तके व्यापारमें थोड़े परावर्तनकी आवश्यक्ता है। निरुद्देश्य या गुमराह रहनेसे संसारवनसे पार होना अति कठिन है। विना कुतुबनुमाके दिशाओंका ज्ञान नहीं होता और बिना दिशाज्ञानके अज्ञानान्धकारसे व्याप्त ससारअटवीसे भला कौन पार हो सकता है? अत. यहा वहां या मेरे पास आनेका विकल्प छोड़कर एकवार स्वोन्मुख होकर स्वीय रत्न (आत्मज्ञान या रत्नत्रय) की खोज करो। वह अपने ही में है। आप ही आप शान्त चित्तसे कुछ काल अभ्यास करो। सर्व आपत्तियोंका नाश अनायास हो जायगा। अब तो परकी सगति प्राप्ति और भी अलाभदात्री है। यह भ्रम भगा दो। आप ही में स्वयभू पद है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—१४]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कर्मोदयकी प्रबलता देखकर अशान्त न होना। अर्जित कर्मका भोगना और समता भावसे भोगना यही प्रशस्त है। ससारमें किसीको शान्ति नहीं। केलेके स्तम्भमें सारकी आशा के तुल्य ससारमें सुखकी आशा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–१५]

श्रीयुत मगलसेनजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पराधीनताकी मूर्छा ही संसारका मूल है। यों तो जो कुछ सामग्री हमारे पास है वह सर्व कर्मजन्य है, परन्तु मूर्छा वस्तु कर्मजन्य नहीं। इसकी उत्पत्ति कर्मोंके अभावमें ही होती है। इसकी दशा ही संसारकी नाशक है। औदयिक भाव ही कर्मबन्धके जनक हैं और वे भाव भी केवल जो मोहनीयके उदयमें होते हैं; वही हैं। शेष कुछ नहीं कर सकते। वचनकी चतुरतासे कुछ लाभ नहीं। लाभ तो आभ्यन्तरकी परिणतिके होनेसे होता है। जहां भावों नहीं परिणतिकी मलिनता और निर्मलताके निमित्त हैं।

केवल अन्तरङ्गकी बलवत्ता ही श्रेयोमार्गकी जननी है। समवसरणमें असंख्य विभूतियोंके रहने पर भी जीव अपने कल्याणके मार्गमें सावधान रहता है और निर्जन स्थानमें रह कर भी शक्तिहीन अकल्याणका पात्र बन जाता है।

आ शु चि०
गणेश वर्णी

[१६–१६]

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका उत्साह प्रशंसनीय है। त्याग धर्ममें कायरताको स्थान नहीं। हम तो जैसे हैं हम जानते हैं परन्तु मार्गके अनुयायी हैं। आप मार्गके अनुयायी बनो। व्यक्तिके अनुयायी बनने में कोई लाभ नहीं। जहाँ तक बने आभ्यन्तर परिणामोंके आधारपर ही बाह्य त्याग करना। परिग्रह रखनेकी तो मैं शिक्षा नहीं देता।

जितना भी भीतरसे त्यागोगे उतना ही सुख पाओगे। जैनधर्ममें परिग्रहका त्याग बताया है। ग्रहण करनेका उपदेश नहीं। कषायों को कृश करनेका उपदेश है। जो समय इस विचारमें लगे वही प्रशस्त है। अपनी भूल ही से तो यह जगत है। भूल मिटाना धर्म है। परपदार्थके साथ यावत् सम्बन्ध है तावत् ही ससार है। घरसे सम्बन्ध छोड़कर अन्य से सम्बन्ध करना अति लज्जास्पद है। हमारा विचार भी निरन्तर त्यागकी ओर जाता है, परन्तु अन्तरगकी मलिनता कुछ भी होने नहीं देती। कहनेमें और करनेमे बहुत भेद है। अनेक जन्मके अर्जित कर्मोंका एकदमसे दूर हो,जाना सम्भव नहीं, अतः शातिसे त्याग करो। जितनी शान्ति त्याग करते समय रहेगी उतने ही जल्दी ससारका नाश होगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६--१७]

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

'प्राणान्त होगये' यह शब्द हितकर नहीं। उसका क्या खेद जो वस्तु नियमसे होनेवाली है। उसका विचार ही व्यर्थ है। उत्तम काममें वासना ही ससारबधनको काटनेवाला आरा है। घरसे बाहर जानेमें मैं तो कोई लाभ नहीं समझता। लाभ तो आभ्यन्तर उदासीनतामें है। पराधीनता कदापि सुखद वस्तु नहीं। मैं सेवा-धर्म नौकरीको अति निन्द्य समझता हूँ। अपनी योग्य व्यवस्थाकी कुटियासे पराधीनताका स्वर्ग भी अच्छा नहीं। परन्तु आपने जो ऐसी कल्पना कर रखी है कि अन्यत्र ही आप कल्याणका पथ देख रहे हैं। आपकी इच्छा। घर छोड़ना अच्छा नहीं। वहां तो

आपकी आय है उसे आयोंसे मेल कर व्यवस्थित करें। जब चित्त घबड़ाय तो दो चार दिन शाहपुर या कटनीसे आकर तत्त्व चर्चा करें।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६–१८]

श्रीयुत मक्खनलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

अभी आप स्वयं ही अपनी भावसन्ततिका अच्छी तरह विचार करो। तब अनायास यह समझमें आ जावेगा कि ये भाव त्यागधर्मके बाधक हैं। आपके ध्यानमें न आवे तब हम से पूछो। हम अपने अनुभवके अनुसार बतावेंगे—समान है या अन्तर है। क्या करना होगा यह प्रश्न तो ऐसा है जैसे एक नवोढ़ा गर्भवती अपनी सासुसे पूछती है और कहती है—जब हमारे सन्तानोत्पत्ति होगी जगा देना। जितने मलिन परिणाम होंगे उतने ही अधिक संग्रहकर बनोगे। निर्मलतामें भयका अवसर नहीं। यदि यह होता तो यह अनादिनिधन मोक्षमार्ग कदापि विकाशरूप न होता। आजकल निर्मलताका अभाव है, अतः मोक्ष मार्गका भी अभाव है। परपदार्थमें जिस दिन हृदयसे यह बात दूर हो जावेगी कि ये न मोक्षमार्गके साधक हैं, न बाधक हैं उसी दिन मोक्षमहलकी नींव धरी गई समझिये। जब तक यह श्रद्धा नहीं तबतक यह कथा संकल्प मात्रमें मोक्षकी साधक है। आप जाओ इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु हमारी तो अन्तरंगसे यह सम्मति है जो उस द्रव्यको रेलमें व्यय न करके धर्मध्यानमें व्यय करना श्रेयस्कर है। मनकी शल्यको निष्कासन कर शीघ्र

बनो। वर्णीजी हों चाहे दिगम्बर गुरु हों, कोई भी व्रती बनानेमें समर्थ नहीं। मनकी निःशल्य वृत्ति ही करणानुयोगके अनुसार भोजनादि करनेमें व्रती बना देगी। कायरताके भाव छोड़ो और सिंह बनो। मोक्षमार्गमें वही पुरुष गमन कर सकता है जो सिंह-वृत्तिका धारी हो। वहां शृगालवृत्तिवालोंका अधिकार नहीं। आपकी इच्छा हो सो करो, परन्तु जो करो सो अच्छी तरह परामर्श कर करो। व्यक्त करना अच्छा नहीं। यदि इस भयसे व्यक्त करना है कि लोकोंके भयसे व्रत पालेंगे तब वह व्रत नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८–१८]

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि गृहस्थीमें राग द्वेष नहीं घटते सो ठीक है। किन्तु जबतक अन्तरंग निर्मलताकी आंशिक विभूतिका उदय न हो तबतक गृहस्थीको छोड़नेसे भी रागादिक नहीं घटते। यह नियम नहीं कि घरको छोड़नेसे ही रागादिक घट जाते हैं। आपने जो अनुभव किया वह एकदेशीय है। मेरा अनुभव है कि घर छोड़नेसे वर्तमान कालमें रागादिक बढ़ते है। उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। हां, यह अवश्य है कि राजमार्ग यही है कि वीतरागमार्गके अर्थ नियमसे परिग्रह त्यागकी आवश्यकता है; परन्तु साथमें यह भी नियम है कि बाह्य योग्यताके अनुकूल ही त्याग होता है। हमारी आत्मा इतनी कायर हो गई है कि निमित्तोंके संग्रह ही में मोक्षमार्गकी कुञ्जी चाहती है। आप घरसे उदासीन हो। बाहर रहो, कौन रोकता

है। परिग्रह भी निर्वाहके अनुकूल रखना अनुचित नहीं, ठीक ही है। आप जानते हैं कि अष्टमप्रतिमा तक परिग्रह रहता है। यदि आपका अर्जनमें उपयोग नहीं लगता, मत करो। परन्तु फिर जैसे आजकलके त्यागी हैं क्या उस तरहसे विचरने का अभिप्राय है या कुछ परिग्रह रखकर बाहर रहनेका अभिप्राय है, स्पष्ट लिखो। फिर हम सम्मति देंगे। आजकलकी हवा विलक्षण है, इसलिये प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करना कल्याणका मार्ग है। अब मेरा स्वास्थ्य भी प्रति दिन क्षयोन्मुख है, किन्तु सन्तोष ही करना लाभदायक है। आप जहाँ तक बने अन्तरंगकी निर्मलताकी वृद्धि करना। उसके लिये एकत्वकी भावना ही कल्याणकी जननी है। कल्याणका मार्ग स्थानोंमें नहीं तथा कपड़े और घर छोड़नेमें भी नहीं। जहाँ है वहीं है।

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१९-२०]

श्रीयुत मगनलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला। संसारमें ऐसा ही होता है। जहाँ तक बने अपने हाथे पर शान्तिसे काल बिताना। यातायातमें कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग निकट है, दूर नहीं। परके आश्रयसे वह सदा दूर रहा है और रहेगा। और जिन भाग्यशाली वीरोंने पराश्रितकी भावनाका पृथक् किया वे ही वीर अल्पकालमें उसके पात्र होंगे। मांगनेसे भीख तक नहीं मिलती, फिर भला मोक्षमार्ग जिससे सदाके लिए संसारबन्धन छूट जाते जैसा अपूर्व पदार्थ क्या दानका

विषय हो सकता है? आप पथ्यसे रहना, इसीमें हित है। आत्मशुद्धिके भी कारण यदि रागादिकी मन्दता होती जावे तो कालान्तरमे यही परिणाम हो जाता है। परन्तु यहां तो कथा ही में तत्त्वकी प्राप्ति मानकर हम लोग सन्तोषित हो जाते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२१]

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चित्तमें जैसे-जैसे परपदार्थोंकी मूर्छा घटती जायगी वैसे-वैसे शान्ति उदयरूप होगी। आप जानते हो कि इस रोगसे आप ही दुःखी नहीं। जब तक मोहका अभाव नहीं; हीन पुण्यवान्से लेकर महान् पुण्यशाली तक दुःखी हैं। सुख न ससारमें है, न मोक्षमे (सिद्धशिलामें) और न कर्मोंके सम्बन्धमें है, न कर्मोंके अभावमें। सुख तो अपने पास है। और न उसका यह पुद्गल द्रव्य रोकनेवाला ही है। हम ही अज्ञानी होकर उसके विषयमें नाना प्रकार यद्वा तद्वा कल्पना करके उसको अनेक रूप देकर अनुभव करते हैं। परमार्थसे वह नानारूप नहीं। अखण्ड चैतन्यके साथ अनादिकालसे तन्मय है। परन्तु कामला रोगी जैसे शखमें स्वेतता का तादात्म्य होनेपर भी पीतशखका ही अनुभव करता है उसीके समान निराकुल सुखका आत्माके साथ तादात्म्य होते हुए भी हम आकुलतारूप ही उसे अनुभवका विषय करते हैं। इस भूलका फल अनन्त संसार ही होता है। अत अब समस्त परपदार्थोंकी ओरसे चित्तवृत्तिको संकोच कर आत्माकी ओर

लगाना। इसमें स्वयं इस विषयमें रहता नहीं आह, इसीसे पत्र देते हैं। अन्यथा क्या आवश्यकता थी।

आ शु चि॰
गणेश वर्णी

[१६-२२]

श्रीयुत् मक्खनलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

भइया, पत्रमें सारबोधक अल्प शब्दोंमें अभिप्राय आना चाहिये। जितना समय तीन पन्नेके पत्र लिखनेमें लगाया उतना समय यदि निज परिणामोंकी समालोचनामें लगाते तो जैसे-जैसे विकल्पज्वाला शान्त होती जाती वैसे-वैसे शान्ति मिलती। स्वर्ग जिसके हम कर्ता बन रहे हैं, यदि चाहें तो उसे हम ध्वंस भी कर सकते हैं। जो कुम्भकार घट बना सकता है क्या उसे वह फाड़ नहीं सकता? इसी तरह जिस संसारको हमने सञ्चय किया, यदि हम चाहें तो उसका ध्वंस भी कर सकते हैं। मेरी तो यह श्रद्धा है कि सञ्चय करनेमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता है। ध्वंस करनेमें बहुत सरल उपाय है। मकान बनवानेमें बहुत काल और बहुत जनोंकी आवश्यकता होती है, ध्वंसमें उतना समय और उतने जनोंकी आवश्यकता नहीं होती। आप समझदार होकर हमारा आश्रय चाहते हैं यह क्या उचित है? अपने पुरुषार्थको सम्हालो, स्वप्रशंसा त्यागो और धीरतासे काम लो। ज्ञानाभ्यासमें समय लगाओ। लौकिक कार्योंसे उदासीन रूपसे रहो। संसारकी स्वप्नावस्था मानो। परमें इष्ट-अनिष्ट कल्पना त्यागो। स्थानविशेष हो जहां अभ्यन्तरमें

स्वात्मस्फूर्ति हुई वहीं है। दूसरे प्राणियोंकी ही कथा मत करो, अपनी कथा करो और देखो कि आज तक मैं किन दुर्वलताओंसे ससारमें रुला और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करो यह मेरी निजी सम्मति है। आप सब लोग एकबार गावके बाहर स्वच्छ स्थानमें ही तत्त्वविचार करें। चाहे शाहपुर हो या सलावा, खातौली आपका गाव हो। केवल भोजन गांवमें कर आओ। अनन्तर अपना सारा समय तात्त्विक चर्चा और साथ ही साथ रागद्वेषकी कृशतामें लगाओ। बाहर (हस्तिनागपुर आदि) जाकर भोजनादि सामग्रीके फेरमें न पड़ो। मन चगा तो कठौतीमें गगा। यदि मनमें शान्ति और पवित्रताका उदय है तब गांवके बागमें ही हस्तिनागपुर है। यदि निराकुलतापूर्वक एक दिन भी तात्त्वक विचारसे अपनेको भूषित कर लिया तब अपने ही में तीर्थ और तीर्थङ्कर देखोगे। एकवार यथार्थ भावनाका आश्रय लो और इन कलक भावोंकी ज्वालाको सन्तापके जलसे शान्त करो। इससे अपने ही आप अहबुद्धिका प्रलय होकर सोऽहं विकल्पको भी स्थान मिलनेका अवसर न आवेगा। वचनकी पटुता, कायकी चेष्टा, मनके व्यापार इन सबका वह विषय नहीं। आप यही आरोप हमपर करते होंगे, परन्तु हम भी उस जालमें हैं जिसमें आप हैं। फिर हमारी प्रवृत्तिपर ध्यान न दो। यदि आप लोग सत्यपथके अनुयायी हैं तब अपने मार्गसे चले जाओ। यही परमपदका पथ है। बावाजीसे कहना कि महाराज! निस्पृह होकर आपको खतौलीका रहना वाधक नहीं। जहाँ सूरज है वहीं दिन है। जहा निस्पृह त्यागी रहते हैं वहीं निमित्त अच्छा हो जाता है। जहाँ शान्त परिणामी निवास करता है वही स्थान तीर्थ है। जहाँ निमित्त अच्छे हों वे ही तीर्थ हों सो नहीं। जहाँ साधुजन हैं वही तीर्थ है। विशेष क्या लिखें? यह सर्व लिखना भी

हमारे मोहका विलास है। मूर्च्छाकी न्यूनतामें ही स्वात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६-२३]

श्रीयुत महाशय लाला मक्खनलालजी, दर्शनविशुद्धि

आपने जो ऐसा विचार किया सो सर्वथा उत्तम है। अब थोड़ेसे जीवनके लिये आप जैसे स्वतन्त्र धार्मिक मनुष्यका पराधीनतामें जीवन बिताना अच्छा नहीं। उदयाधीन जो होता है, होगा। जो कुछ है उसीमें पुरुषार्थ करो। उसीसे सर्व कुछ होगा। शान्तिका मूल कारण यह है कि चित्तमें जो क्षोभ है उसे त्याग दो और जो कुछ मिलता हो उसीमें सन्तोष करो। और स्वप्नमें भी परार्थ कल्याणकी भावना न आना श्रेयस्कारिणी है। विशेष क्या लिखूं ? आप जहाँ तक बने, सानन्द जीवन बिताइये। स्वप्नमें भी आकुलता न करियेगा। बाबूजीके लिये भी स्वाध्यायका प्रेम होना हितकारी है। लौकिक वैभव आदि कोई भी सुखका साधन नहीं। उनसे शंका-समाधान करके आप निश्चय करा दीजिये कि बिना आभ्यन्तर बोधके हित होना अशक्य है। लौकिक प्रभुतावाले कदापि आभ्यन्तर सुखी नहीं हो सकते। वर्तमानमें जितने प्रभुताशाली हैं वे अत्यन्त दुःखी हैं। सबको यह चिन्ता है कि हमारी रक्षा कैसे हो ?

एक मासमें एकबार मौन रखनेका अभ्यास करो। संसारमें यावत् परिणाम होते हैं, स्वाधीन होते हैं। यह प्राणी व्यर्थ कर्ता बनकर सबको अपने अधीन मान दुखी होता है।

अनादिसे कोई भी आजतक ऐसा दृष्टान्त देखनेमें नहीं आया कि एक भी परिणमन किसीने अन्यरूप परिणमाया हो। फिर भी यह जीव मोही होकर ऐसी विपरीत चेष्टा करता है। फल उसका स्वयं दुःखी होना है। हे प्रभो! यह सुमति दो कि अब हम इस कुचक्रसे बचें। फिर भी वही बात, प्रभु कौन हैं देनेवाले? स्वय इस विपर्य्ययभावको छोड़कर प्रभु बन जाओ। प्रभु जो हैं सो प्रभु नहीं बना सकते, किन्तु प्रभुने जिन परिणामो से प्रभुता प्राप्त की है उन परिणामोंका आत्माके साथ तादात्म्यकर हम स्वयं प्रभु हो जायँगे और इतर प्राणियोंके कल्याणमें निमित्त-कारणसे 'णमो अरहंताण' की जाप्यके विषय होने लगेंगे। यह सब होना स्वाधीन है, परन्तु यह प्राणी अनादि कालसे परपदार्थोंके साथ अभेदबुद्धिकी कल्पनाके साथ एकीभाव कर रहा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-२४]

श्रीयुत् महाशय मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका मार्ग आत्मामे है। निमित्त कारणमें शान्ति नहीं। इस तत्त्वके यथार्थ ज्ञान बिना हम दुर्गतिके पात्र हो रहे हैं। ऐसी श्रद्धासे कभी भी हम कल्याण-पथके पथिक नहीं हो सकते। लाला शीतलप्रसाद जी से हमारी धर्मस्नेह कहना। खेद इस बातका है कि कई जगह दिगम्बर भाई बलात्कारकी वजहसे श्वेताम्बर हो रहे हैं। यह बहुत ही अनुचित बात है। क्या वह पूजन करनेके पात्र नहीं? यदि आपका पुरुषार्थ हो तब लाला शीतलप्रसादजीकी सम्मति

लेकर एक बार खतौली जावो और लाला बाबुलालजीको समझाओ। वह योग्य व्यक्ति हैं। सम्भव है इस कार्यको करनेमें योगदान देवें। इस समय आवश्यकता है, अन्यथा वे सर्व श्वेताम्बर हो जावेंगे। तब पश्चात्तापके सिवाय कुछ न मिलेगा। मुजफ्फर नगरवालोंके हमारे पास कई पत्र आवे हैं, परन्तु उत्तर देना उचित नहीं समझा।

२१-२-१८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२५]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। संसारमें शान्तिका मार्ग खोजना हमारी महती अज्ञानता है, क्योंकि मार्ग तो आप में है, अन्यत्र खोजना रज्जुमें सर्प भ्रान्तिके तुल्य है। अन्य की कथा छोड़ो। जो एक गाँवसे दूसरे गाँव जाते हैं वह भी मार्ग हमारे ज्ञानमें है। यदि न हो तब उत्तरसे दक्षिण जानेवाला दक्षिण क्यों चलता है, उत्तर क्यों नहीं जाता? ज्ञानमें दक्षिणकी दिशा आती है और उस ज्ञानके अनुकूल चलकर अभीष्ट स्थानमें पहुँच जाता है। इसी प्रकार हमारे आत्मा ही में मोक्षमार्ग है। हमारी कल्पना जब तक निमित्तों पर रहती है हम भटकते हैं। जिस दिन आत्मामें आ जाती है उसी समय हम मोक्षमार्गी बन जाते हैं। इस पर गम्भीर विचार करो। केवल परनिमित्तदृष्टिपर मत चलो। मोह विवेक करा आ सुमार्ग पर लावे। विशेष क्या लिखें। हमारी दृष्टि अनादिकालसे परमें ही आत्मकल्याण देखकर कुण्ठित हो रही है। अतः इस विवेकरूपी मरसानसे धारदार

बना लेना चाहिए। इस प्रान्तमे गर्मी अधिक पड़ती है, अतः आपकी तरफसे जो आवेगा वह इसे सहन करनेमे व्यथित होगा। अतः सर्वसे उत्तम तो भाद्र मास ही रहेगा। अभी मैं यहां हूँ। यहासे शायद जबलपुर जाना पड़े। स्वाध्यायका फल ज्ञान है। किन्तु ज्ञानकी महिमा चारित्रसे है। चारित्रहीन ज्ञानकी कोई विशेष प्रभुता नहीं।

नोट.—१. मूर्च्छाका त्याग ही कल्याण का पितामह है। २. ईसरी शान्तिका स्थान था परन्तु वहाँ बाह्य निमित्तोंकी त्रुटि थी। ३. आपका देश अच्छा है, परन्तु स्थान नहीं।

शान्तिनिकुंज
सागर

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२६]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सर्वत्र अशान्तिका साम्राज्य है। शान्तिका राज्य तो निर्मोही जीवोंके होता है। यदि आप सुख शान्तिसे जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो परपदार्थके गुण दोष-विवेचक विभावको त्यागो। कोई भी वस्तु अशान्तिप्रद नहीं। हमारी रागादि परणति ही आत्मा को अशान्तिमय बना देती है। उसका त्याग करना ही हमारा कर्तव्य है। पर वस्तु न त्याग की जाती है और न ग्रहण की जाती है। जब हम अपने विभाव रागादि परिणामोंको दुःखोत्पादक जान सवरमय आत्माकी परिणति करनेमें समर्थ होते हैं, अनायास पर-वस्तु का सम्बन्ध छूट जाता है। मैं कब कहता हूँ, जो सत्समागम न करो। परन्तु शान्ति व अशान्ति समागममें नहीं। वह तो जहाँ है वहीं मिलेगी। हमारा

विचार कुछ दिन बाद पावापुरकी ओर जानेका है। स्वास्थ्य अच्छा है।

आ शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–२७]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। सानन्द स्वाध्याय करिये। कल्याणका मार्ग यही है। राग-द्वेषकी निवृत्ति ही धर्म है। वह तो काल पाकर होगी। केवल श्रद्धा हो जाना उसके होनेमें कारण है। आप जहाँ तक बने अभिप्रायको निर्मल बनाओ। गृहस्थमें आकुलता रहती है वह ठीक है, परन्तु सर्वथा आकुलताका कारण परपदार्थको मानना हमारी महती भूल है। केवल अनादि कालसे यह जीव परपदार्थोंके संसर्गमें अपनी प्रवृत्ति कर रहा है और यही संस्कार आभ्यन्तरमें है जिनके बलसे निरन्तर आकुलित रहता है। विशेष उत्तर अवसर पाकर दूगा। अभी नैनागिर आ रहा हूँ। फिर शाहपुर जाऊँगा क्यों कि वहां पर वार्षिक खुलेगा। ग्यारह हजार रुपया यहाँ हुआ है।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–२८]

श्रीयुत लाला म गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। स्थानकी सुन्दरता परिणामोंकी पवित्रतापर निर्भर है। प्रत्येक प्राणी चाहता है—आत्माको सुख

हो और उसीके अर्थ निखिल प्रयास करता है। परन्तु इन प्रयासोंका फल कटुक ही होता है। सुखका उपाय आत्माके निर्मल भावोंपर निर्भर है। निर्मल भावोका उदय परपदार्थोंमें इष्टानिष्ट कल्पनाके अभावमें होता है। हम अपने कुटुम्बी जनको दु खका कारण मान उन्हें अनिष्ट बतानेमें नही चूकते और विरक्त पुरुषोंके समागमको सुखका कारण मान इष्ट कल्पना करनेमें अपनी सम्पूर्ण बुद्धि लगा देते हैं। यह सब भूल ही हमारे कल्याण मार्ग में विघ्न-स्वरूप है। आप जब तक मुवारिकपुर और तीर्थभूमिमें अन्तर समझकर हेयोपादेयभावसे मुक्त न होगे तब तक शान्ति मार्गसे दूर ही रहोगे। अतः चाहे वहाँ रहो चाहे न रहो, परन्तु उस क्षेत्रमें व्यर्थकी कल्पना मत करो। हम स्वय इस दोपसे रिक्त नहीं। परन्तु दोषको दोष ही मानते हैं। आपके मन्तव्यमें अब तक वह स्थान धर्मध्यानमें विघ्नकर है यह शल्य नहीं जाती, यही महती त्रुटि है। त्रुटिको दूर कर सत्य मगलसेन बनो। व्यर्थके ऊहापोहको त्यागो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–२६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

असलमें जब तक अपनी कषायपरिणति है तब तक यह सब उपद्रव है। कषायके अभावमें कहीं रहो कोई आपत्ति नहीं। कषाय के अस्तित्वमें चाहे निर्जन वनमें रहो चाहे पेरिस जैसे शहरमें निवास करो सर्वत्र ही आपत्ति है। यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे परान्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके

सम्मुख है। खेद इस बातका है जो मोही जीव स्वसदृश ही निर्मोही को बनानेकी चेष्टा करता है। आप मोहको नहीं छोड़ना चाहता। यहाँपर क्या सर्वत्र यही बात देखनेमें आती है। हम जो लिखते हैं उसपर अमल नहीं करते, केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागनेके भावसे वंचितकर छिपानेका प्रयत्न करते हैं।

आ० शु० चिं०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३०]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, हमको अबतक मलेरिया मित्रता नहीं छोड़ता। जो बन्ध है उसे भोगना ही उचित है। यह कौन कहता है जो गार्हस्थ्य जीवनमें निराकुलताकी पूर्ति नहीं। यदि निराकुलताकी पूर्ति गृहवास में होजावे तब कौन ऐसा चतुर मनुष्य इसे त्याग दैगम्बरी दीक्षाका आलम्बन लेता। एक कौपीनके सद्भावमें साक्षात् मोक्षमार्ग रुक जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं जो गृहावस्थामें एकदेश मोक्षमार्ग न हो। यदि गृह छोड़नेसे शान्ति मिले तब तो गृह छोड़ना सर्वथा उचित है। यदि उसके विपरीत आकुलताका सामना करना पड़े तब गृहत्यागसे क्या लाभ। चौबेसे छब्बे होना अच्छा परन्तु दुबे होना तो सर्वथा ही हेय है। अभी दूरस्था भूधरा रम्या देख रहे हो। जिन्होंने गृहवास छोड़कर क्षुल्लक ऐलकपद पद अंगीकार किया है व मोटरों व रेल सवारियोंमें सानंद यात्रा कर रहे हैं तथा गृहस्थोंसे भी विशेष आकुलताके पात्र हैं। तथा जो आरम्भ त्यागके नीचे हैं वे गृहस्थसे अधिक परिग्रह पासमें रखते हुये भी त्यागी बन रहे हैं। तथा वृत्तिको इतनी पराधीन बना रक्खी है जो विवरण

करते लेखनी कम्पायमान होती है । अपना परिग्रह तो त्याग दिया और फिर अन्यसे याचनाकर सग्रह करना क्या हुआ, खेती करनेके तुल्य व्यापार हुआ । आप विवेकी हैं, भूलकर पराधीन न होना । सानन्द स्वाध्यायमें काल लगाना । किसी काममें जल्दी न करना । स्वर्गीय चिरोंजाबाईजीका कहना था कि बेटा ! अपना परिग्रह छोड़कर परकी आशा न करना, अन्यथा करनेसे दुःखके भाजन होगे । यह हमें अनुभव है ।

आ० शु चिं०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३१]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणके हेतु जो कुछ विकल्प होगा वह अच्छा ही होगा, उसमें अन्यथापन नहीं । लौकिक सुखके हेतु जो भी विकल्प होगा वह सर्वथा हेय एव दु खदायी होगा । कषायोंका निग्रह और कषायोंकी पुष्टि करनेमें जो विकल्प होते हैं वह भिन्न रूपके हैं । उनसे आत्माका परिणमन भी अन्य रूपसे कार्य करनेमें प्रवृत होगा । चोरीसे धन कमाने और न्याय मार्गसे धन अर्जन करनेके परिणामोमें महान् अन्तर है । दण्डके निमित्तसे धन देनेमें और दानके निमित्तसे धन त्यागमें कितना अन्तर है ? अत. कषायोंके निग्रह करनेके अर्थ जो कषाय है वह बन्धका मूल नहीं ।

का० कृ० १२, सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३२]

श्रीयुत महाशय लाला भगवत्सेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा यत्न निरन्तर बाह्य पदार्थोंके गुण दोष विचारमें पर्य्यवसान हो जाता है, क्योंकि हमारे ज्ञानमें प्राय बाह्य पदार्थ ही तो आ रहे हैं। अन्तस्तत्त्वकी ओर दृष्टिको अवकाश ही नहीं मिलता। दृष्टि अन्तस्तत्त्वकी अनुभूति कर सकती है परन्तु उस ओर उन्मुख ही नहीं होती। उन्मुखताका कारण जो सम्यक्त्वगुण सो मिथ्यात्वके उदयमें विकसित ही नहीं होता। अतः यदि कल्याणकी अभिलाषा है तब इन बाह्य पदार्थोंके चक्रमें न आओ। हमारी तो सम्मति यह है जो ऐसा अभ्यास करो जो यह बाह्य पदार्थ ज्ञेयरूप ही प्रतिभासे। अन्यकी कथा तो छोड़ो, जिसने मोक्षमार्ग दिखाया है वह भी ज्ञेयरूपसे ज्ञानमें आवे।

ईसरी
भा सु ९ सं २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-३३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

हमें मलेरिया फिर आने लगा। बाबाजीका स्वास्थ्य गिरता जाता है। उनके रहनेसे हम राजगृही न जा सके। सागरसे एक रसोइया आया है। आप स्वाध्यायमें चित्त लगाओ। शान्तिका कारण आप ही की परणति है। परकी सहायता बाधक है। अन्तरङ्ग शत्रुका बल जभी तक है तब तक हम पराधीन हैं। पराधीनता ही हमें संसारसे बनाये है तथा यही निजस्वरूपसे दूर किये है। अकाट्य सिद्धान्त है जो सर्व पदार्थ अपने अपने

चतुष्टय को लिये सनातनसे धारावाही प्रवाहसे चले आ रहे हैं। हमारी असत्कल्पनाएँ अन्यथा करना चाहती हैं। उल्लूकी दृष्टिमे दिन रात्रि ही दीख रहा है। पर क्या दिन रात्रि हो जावेगा ? कदापि नहीं। अतः इस विवेककी कथाको अपनाओ और अनादिभूल को त्यागो। परक्षेत्र आदिके स्नेहसे विरक्त होओ। हमारा सर्वसे धर्मस्नेह कहना। यहाँ वही हलचल है। देखें क्या होता है ? मोहका प्रकोप है जो विश्व अशान्तिमय हो रहा है। जो आत्मा अपने स्वरूपकी ओर लक्ष्य रखते हैं और अपने उपयोगको राग-द्वेषकी कलुषतासे रक्षित रखते हैं वही इस अशान्तिसे दूषित नहीं होते। आप जहाँ तक बने ऐसा प्रबन्ध करना जो उत्तरकालमें आपत्तिजनक न हो। परिग्रह लेनेमें दुःख, देनेमे दुख, भोगनेमे दु ख, रक्षामे दुःख, धरनेमे दुःख, सड़ने में दु.ख। धिक् इस दु:खमय परिग्रह को। मेरी शीतलप्रसाद जीसे दर्शनविशुद्धि।

पौष सुदि ६ सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-३४]

'कर्मकी गति विचित्र है यह मानना ठीक नहीं। यह सब आत्मद्रव्य का ही विकार है। स्वपरिणामों द्वारा अर्जित ससारको परका वताना महान् अन्याय है। कर्मका ही मानना यही तो एकान्त साख्यमत की कल्पना है। अथवा हम ऊपरसे जैन-सिद्धान्तके माननेवाले वनते हैं और अन्तरङ्ग दृष्टिसे एकान्त वासनासे दूषित रहते हैं।

ससारका अन्त करनेके लिये आत्मद्रव्यको पृथक् करनेकी चेष्टा करनी ही उचित है। सकल्प-विकल्पकी परम्परा ही तो

हमें जगतमें भ्रमण करा रही है। जब तक इनका प्रभुत्व रहेगा, हमें इनकी प्रजा होकर ही निर्वाह करना होगा। हमारी ही कल्पनासे उद्भूत परिणामोंके हम दास बन जाते हैं। इसमें प्रलोभन परद्रव्यकी लालसा है। यह कदापि हमें सुखकर नहीं। स्वाध्यायमें कालक्षेप करना। चित्तकी अशान्ति देख अशान्त न होना। यहाँ यही होता है। मनक सर्वाङ्ग पार मय होता है। संसारकी जितनी पर्याय हैं, दुःखमय हैं। इनमें सुखकी कल्पना भ्रम है।

गया
फाल्गुन शु० ९, सं० १९९८ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–३५]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप अच्छी तरहसे आ गये। अब मत भेजना क्योंकि फसल हो चुकी है और शाहपुर भी मना कर देना। अब यहाँ पर वर्षा होनेसे गर्मी शान्त हो गई। अब हमारा विचार गुणावा पावापुरकी तरफ जानेका है। वर्षाऋतुमें प्रायः जीवोंको विशेषतया एक स्थान पर रहनेसे ही शान्ति मिलती है। अब आयुका ¾ भाग तो आपका बीत चुका है। श्रेय निश्चयका कर ही अब अपने कल्याणके मार्ग को सुचिरूप करना चाहिए। सर्व जीवोंसे क्षमाभाव रखना। अपने कुटुम्बी जनोंसे विशेषरूपसे तथा जनसे भी विशेष आत्मीय पुत्रोंको क्षमा करना। पुत्रोंकी अपेक्षा निज जीवसे निर्मल परिणामों द्वारा त्यागमार्गको सरल करना। आज कल मेरी बुद्धिमें तो ही मार्ग उत्तम है—गृहस्थ-अवस्थामें रहना इष्ट हो तब जलमें कमलकी तरह रहना चाहिए। अष्टमी प्रतिमा तक परिग्रहका सम्बन्ध रहता

है, अतः यह प्रसिद्ध न करना चाहिए जो हमने सर्व कुटुम्बी जनोंको त्याग दिया। जिस दिन पैसासे ममता छूट जावे, घर-छोड़ना श्रेयस्कर है। फिर रेल आदि सवारीमें बैठना अच्छा नहीं। तथा सानन्द जीवन बिताओ। व्यर्थ विकल्पोंमें मत पड़ो। यही मुख्य मार्ग कल्याणका है। कोई क्या बतावेगा? अपनी अन्तरात्मासे पूछो। यही उत्तर मिलेगा--जिन कार्योंके करनेमें आकुलता हो उन्हें कदापि न करो चाहे वह अशुभ हो चाहे शुभ हो।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। अब मेरा स्वाथ्य अच्छा है। खतौलीसे गुड्डची का सत आया था। उससे आराम हो गया। लाला हरिश्चन्द्र जी सागर हैं। सानन्द हैं। अध्ययन करते हैं। इन्द्रचन्द्र अच्छा होगा। आप जब आवें दो मासको निश्चिन्त होकर आना। मेरा शरीर अब नीरोग है। भैया! संसारमें भटकने से कुछ लाभ नहीं। सर्व जगह मनुष्य औदयिक कषायोंके अनुकूल ही तो चलते हैं। केवल घर छोड दिया, बाल बच्चे छोड़ दिये। क्या इसीसे निर्मल हो गये? निर्मलतामें कारण अन्तरङ्ग मनोवृत्तिकी विकृति-परिणति न हो। सो तो दूर रहा। त्यागके छलसे अपनी कषाय पुष्ट करना ही तत्त्व रह जाता है। अतः आप सर्व विकल्प छोड़कर कहीं रहो, यहाँ भी आवो कुछ हानि नहीं। परन्तु यह प्रसिद्ध न करो जो हमने गृह त्याग दिया।

जिस दिन सुअवसर आवेगा, अनायास यह पर छूट जावेगा। तत्त्वसे त्याग निज वस्तुका होता है। पर तो पर द्रव्य है। उसका त्याग कैसा। त्याग चारित्रमें जो विभाव है उसका होता है। सो यदि सामर्थ्य है तब उसे त्यागो। तत्त्वज्ञान पूर्वक त्याग प्रशस्त है, अन्यथा तो कषाय ही का हेर फेर है। नागनाथ कहा या सप नाथ कहा। यदि शाहपुरवाले पं० शीतलप्रसाद जी मिलें तब हमारी दर्शनविशुद्धि कहना। मुंसिफ सा० से भी दर्शनविशुद्धि। श्रीइन्द्रचन्द्र व उनकी मां से आशीर्वाद।

ईसरी
जेठ सुदी ६ सं० २००
}
आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–३७]

श्रीयुत महाशय भगवानसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो कुछ काम करो दृढ़तासे करो, उसमें सफल होओगे। ५० वर्षसे ऊपर हो गये, अबतक भी वही बात। कैसे आत्महित होगा, क्या करें, किसके पास जावें, किस शास्त्रका अध्ययन करें? सब बातोंका उत्तर एक है—आत्मविश्वास करो, न कहीं जाओ, न कहीं आओ। घर ही में कल्पवृक्ष है। केवल उसको जाननेकी आवश्यकता है। अन्यथा बालू पेलते जाओ तेलकी बूंद भी नहीं मिलना है। तत्त्वज्ञान क्या अभूतपूर्व वस्तु है? जहाँ आत्मबोध हुआ वहीं तत्त्वज्ञान हो जाता है। यदि आत्मबोध नहीं तब जगतभर घूम आओ स्वप्नकी दशा है। बिना समझे सकल शास्त्रोंका अध्ययन मृगतृष्णा है। अतः सब विकल्पोंको त्यागो, एक परमात्मस्मरणमें जाओ।

सागर
ज्येष्ठ सुदि ६, सं २००१
}
आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-३८]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम कटनी आ गये। एक मास रहेंगे। श्री मूलशंकर जी भी आज कल यहीं हैं। आप अब निश्चिन्त होकर जैसा कहते थे आत्मकल्याणमें समय लगाइये। कहनेसे कल्याणका लाभ नहीं। करनेसे लाभ होता है। स्वाध्याय करना ज्ञानका कारण है। यथाशक्ति तदनुकूल अपनी प्रवृत्ति करना ही संवर निर्जराका कारण है। यही कारण है जो असंयमी देवोंकी अपेक्षा संयमी तिर्यञ्च के विशेष शान्ति और कर्मोंकी निर्जरा होती है।

कटनी
कार्तिक सुदि ४, सं० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-३९]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी. योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका कारण यही है जो परिग्रहसे विरक्त रहना। मेरी तो यह सम्मति है जो बात हम लोग व्यवहारमें लाते हैं वह अन्तस्तत्त्वमें आनी चाहिये। कल्याण कोईके द्वारा मिलता नहीं और न किसीकी उपासना उसमें प्रयोजक होती है, केवल शुद्ध द्रव्यका अवलम्बन ही उसका उपाय है। अत. जहाँ तक बने परकी मूर्च्छा छोड़ो। संकल्प-विकल्पका मिटना ही तो मोक्षमार्ग है। मैं उस दिनको पञ्च कल्याणक तिथिके सदृश ही पूज्य मानूँगा। अब आप सर्व तरफ से चित्तको संकुचित करो और वर्षा कालमें जहाँ तक बने मेरे साथ रहिए। अब मैं कटनी जा रहा हूँ।

फाल्गुन वदि १, सं० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४०]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यदि आत्मीय परिणति पर स्थिर हो गये तब कल्याण दूर नहीं। परपदार्थोंका सम्पर्क उसका बाधक नहीं। बाधक अपना ही कलुषित परिणाम है। अतः चाहे घरमें रहो, चाहे वनमें रहो कलुषित परिणाम न हो इसकी चेष्टामें सावधान रहो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४१]

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। बाबू विनोदके पत्र नहीं आया सो देना। बनारसवाला रुपया मिलना दिया होगा। ज्ञानका द्रव्य अक्षय है। उससे मुक्त होना ही उत्तम है। स्वाध्याय सानन्द होता होगा। संसारमें शान्तिका कारण बाह्य कारणोंसे परे है। फिर भी उसका साधन है। अन्तरङ्गकी निर्मलता क्या है इस ओर हमारा लक्ष्य नहीं जाता। यद्यपि वह प्रतिसमय हमारे जीवनमें आती है परन्तु हम उसके विरुद्ध अनुभव करते हैं। जिस समय कोई कषायका उदय आता है, हमारी आत्मा कलुषित हो जाती है। साथ ही उत्तर क्षणमें कुछ शान्ति भी होती है किन्तु हम उस शान्तिका कषाय रूप कार्यका कार्य कल्पना करते हैं। यही विपर्यय ज्ञान हमारी शान्ति का बाधक है। अस्तु समय पाकर कार्य बन भी जायगा। पत्रसे स्वास्थ्यका समाचार देना। मनोहर वर्णी सहारनपुर गये हैं।

[illegible]पुर
ज्येष्ठ कृ० १२, २००१

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–४२]

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे और शान्तिसे स्वाध्याय करते होंगे। निमित्त कारणों की प्रणालीसे कदापि क्षुब्ध न होना। वह प्रणाली सर्वत्र है। संसारमें जहां जाइये वहीं यह अपना साम्राज्य जमाए है। परन्तु धन्य तो वह मनुष्य है जो इसके चक्रमे नहीं आता। निमित्त बलात्कार हमारा कुछ अनर्थ नहीं कर सकते। यदि हम स्वय उनमें इष्टानिष्ट कल्पना कर इन्द्रजाल की रचना करने लग जावें तब इसे कौन दूर करे? हमी दूर करनेवाले हैं। अत. सर्व विकल्पो को छोड़ केवल स्वात्मबोधके अर्थ किसी को भी दोषी न समझना और सब को हितकारी समझना। यदि ये बाह्य दुःखके कारण न होते तो कौन इस ससारसे उदास होता, अतः किसी भी प्राणीको अपना बाधक न समझ कर ही कल्याण का पथिक होता है। यदि हरिश्चन्द्रजी यात्रासे आ गये हों तब हमारा धर्मस्नेह कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जैसी कषाय उपशम होती है वैसा ही त्याग होता है। घर को त्यागने से ही मोक्ष होता है यह श्रद्धा कथञ्चित् ठीक है। किन्तु एकान्त अच्छा नहीं। आप किञ्चिन्मात्र भी अधीर न हूजिए। परिणामोंकी निर्मलतासे आपके सर्व कार्य अनायास

सिद्ध हो जावेंगे। धीरतासे काम लीजिए। त्यागमें स्वाधीन जीविका मन नहीं। यह तो दुर्बलताका भाव है जो हम पराधीन न होंगे। संसारमें स्वाधीन कौन है? त्यागी परिग्रही कैसा स्वाधीन मेरी समझमें नहीं आता। परिग्रह धर्मका साधक नहीं बाधक है। अब भावों आने दीजिए, अभीसे चिन्ता क्यों? बाबाजी का आशीर्वाद

आ॰ शु॰ चि॰
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-४४]

श्रीयुत लाला मगनसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका समाचार आपके चि॰ इन्द्रकुमारसे जानकर प्रसन्नता हुई। आज कल यहाँ पर लाला सुमेरचंद जी आये हुए हैं। परम सज्जन हैं। आपका स्वाध्याय सम्यक् होता होगा। मेरी तो यह सम्मति है जो आप मनोयोगपूर्वक स्वाध्यायमें निज समयको यापन करें और यथाशक्ति रागादि को क्षीण करनेका प्रयास करें। घर रहनेमें रागादिकोंकी वृद्धि होती है इस भूतको हृदयसे निकाल दो और जब तक इसको नहीं निकालोगे कभी भी रागादिकसे निर्मुक्त न होगे। घर छोड़कर फिर भी तो घर ही में रहोगे? अटवीमें रहनेकी तो योग्यता नहीं, क्योंकि सर्व पापोंका पूर्णरूपसे त्याग करनेके अभी हम पात्र नहीं। अभी तो उस सकल पापत्यागकी भावनाभ्यासके ही हम पात्र हैं। जब तक परिणामोंमें पर पदार्थके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा है कोई भी त्याग सफली भूत नहीं होता। चरणानुयोगमें निमित्त कारणोंके दूर करनेका उपदेश है, क्योंकि वे सब बन्धके कारण अध्यवसान भावोंके जनक होते हैं। परमार्थसे देखा जावे तब हम उन्हें हठात् निमित्त

बना लेते हैं। निमित्तका यही अर्थ तो है जो हमारे रागादि भावोंमे वह विषय होते हैं। इसका यह अर्थ तो नहीं जो निमित्त कारणने रागादिकोंको उत्पन्न किया। जैसे कोई मनुष्य आतापसे पीडित होकर छायामे बैठ गया। तब इसका यह अर्थ नहीं जो उसे छायाने बैठाया। वह स्वयं उसके पास जाकर बैठ गया। इसी तरह यह स्त्री आदि पदार्थ हैं। यदि यह जीव रागादिक करे तो वह उसमें विषय हो जाते हैं। बलात्कारसे रागादिकोंके जनक नहीं होते। फिर भी यह मोही जीव उन्हें अनिष्ट मान उनके त्याग करनेकी चेष्टा करता है। बलिहारी इस बुद्धि की। विशेष ऊहापोह स्वय करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–४५]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

गोली आ गई। बाबाजीका स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल है। भीतरसे सावधान हैं। ऐसी अवस्थामे परमात्मरूप आत्मा ही का शरण है। अन्यका शरण व्यर्थ है। मेरी तो यह धारणा है जो परकी सहायता परमात्मपदकी बाधक है। आत्माकी केवल अवस्था ही का नाम मोक्ष है। यदि आपमें इतनी समता आ गई है जो परके निमित्तसे हर्ष विषाद नहीं होता है। तब हमारी समझमे और इससे अधिक क्या चाहते हो? यदि चाह है तब वह समता नहीं। समताका जहाँ उदय है वहाँ आत्माकी कृत्यकृत्यावस्था हो जाती है, करनेको शेष नहीं रहता। आप सानन्दसे रहो यही

सिद्ध हो जावेंगे। धीरतासे काम लीजिए। त्यागमें स्वाधीन जीविका रत्न नहीं। यह तो दुर्बलताका भाव है जो हम पराधीन न होंगे। संसारमें स्वाधीन कौन है? त्यागी परिग्रही कैसा स्वाधीन मेरी समझमें नहीं आता। परिग्रह धर्मका साधक नहीं बाधक है। अब भावों आने दीजिए, अभीसे चिन्ता क्यों? बाबाजी का आशीर्वाद

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-४४]

श्रीयुत लाला भगवत्सेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका समाचार आपके चि० इन्द्रकुमारसे जानकर प्रसन्नता हुई। आज कल यहाँ पर लाला सुमेरचंद जी आये हुए हैं। परम सज्जन हैं। आपका स्वाध्याय सम्यक् होता होगा। मेरी तो यह सम्मति है जो आप मनोयोगपूर्वक स्वाध्यायमें जिस समयको आपन करें और यथाशक्ति रागादि को क्षीण करनेका प्रयास करें। घर रहनेमें रागादिकोंकी वृद्धि होती है इस मूलको हृदयसे निकाल दो और जब तक इसको नहीं निकालोगे कभी भी रागादिकसे निमुक्त न होगे। घर छोड़कर फिर भी तो घर ही में रहोगे? अटवीमें रहनेकी तो आम्यता नहीं क्योंकि सर्व भावोंको पूर्णरूपसे त्याग करनके अभी हम पात्र नहीं। अभी तो एक सकल पापत्यागकी भावनामात्रके ही हम पात्र हैं। जब तक परिणामोंमें पर पदार्थके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा है कोई भी त्याग सफली भूत नहीं होता। चरणानुयोगमें निमित्त कारणोंके दूर करनेका उपदेश है, क्योंकि वे सब बन्धके कारण अध्यवसाय भावोंके जनक होते हैं। परमार्थसे देखा जावे तब हम उन्हें हठात् निमित्त

बन्धन है। संसारकी जननी यही ममता है। इसे त्यागो ससार पार हुआ।

नवलपुर
अषाढ़ सुदी ८, सं० २००२

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-४७]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आप समयसारका पाठ करते हैं, उत्तम है। कल्याणका मार्ग दरशानेका निमित्त है। उपादानशक्ति तो आत्मामें है। इसके उदय होते ही सर्व आपदाओंसे आत्मा सुरक्षित हो जाता है। आवश्यकता हमको आत्मीय परिणतिको कलुषित न होने देनेकी है। कोई संसारमें न तो हमारा शत्रु है और न मित्र है। शत्रुता-मित्रताकी उत्पत्ति हम स्वय करते हैं। जब एक द्रव्य दूसरेसे भिन्न है। फिर हम क्यों न उसको पर जानें। क्यों परको आत्मीय मानें। यह मानना मिथ्यात्व है। यही जड़ ससारकी है। आज क्या अनादिकालसे यह जीव इसी मान्यतासे दुखी है। यह मान्यता जिस दिन छूट जावेगी उसी-दिन ससार बन्धन छूट जावेगा। बन्धनका करनेवाला ही बन्धनको मोचन कर सकता है। हम बन्धन करनेवाले परको मानते हैं और छुड़ानेवाले भी परको मानते हैं। बन्धन करनेवाले स्त्रीपुत्रादिको मानते हैं और छुड़ानेवाले श्री अरिहन्तादिको मानते हैं। इस पर वस्तुकी व्यवस्थामें अपने अनन्त सुखको खो बैठे हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

चाहते हैं। दूसरा पत्र शीतलप्रसाद जी का है। उन्हें पहुँचा देना। बल्कि आप एक दिन जाना और उन्हें खूब दृढ़ करना। आपभी योग्य हैं। गोली आपकी खासी। पर मलेरिया तो न आवे अच्छा है क्योंकि अब आयु थोड़ी रह गई है। कोई बाधाजनक नहीं। आप तब यहीं रहेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-४-४६]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

बहुत कालसे आपका समाधानकारक कोई पत्र नहीं मिला। यद्यपि हमको पूर्ण विश्वास है आप धर्मकार्योंमें शिथिल न होंगे। तथा शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। आप जानते हैं, संसार के निवासी जीव संसारकी ही बात करते हैं और उसकी वृद्धिका ही निरन्तर प्रयत्न करते हैं। यदि कोई आपको निर्दोष होनेपर भी दोषी बना देवे तब भी आपको धर्मकार्योंसे विमुख नहीं होना चाहिये तथा उनके आरोपसे उनके प्रति क्षुब्ध भी न होना चाहिए तथा जो कार्य आपका आपके मद्रामका साधक था उसमें अरुचि न होनी चाहिये। प्रत्युत आपत्तियोंके आनेपर समयापेक्षया अधिक प्रयास धर्मसाधनमें करना चाहिये। यद्यपि मेरा लिखना असंगत हो, क्योंकि मैं जो कुछ लिख रहा हूँ किंवदन्तियोंके आधार पर ही तो लिख रहा हूँ, मिथ्या हो परन्तु आपका मेरे पास न आना सन्देहका ही जनक है, अतः आप इसका निराकरण पत्र द्वारा शीघ्र करें, जिससे मुझे सन्तोष हो। एक बार आकर कुछ दिन ध्यानका लाभ लीजिए। स्नेह ही तो

[१६-४६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम आपके पत्रका प्रायः उत्तर देते हैं। अभी गर्मीका प्रकोप बहुत है, अत आषाढ़ बदिमें जाऊंगा आगमज्ञान मुख्य वस्तु है। परपदार्थका ज्ञाता दृष्टा रहना ही तो आत्माका स्वभाव है और उसकी व्यक्तता मोहके अभावमें होती है। अत आवश्यकता उसीके कृश करनेकी है। यथार्थ ज्ञान तो सम्यग्दर्शनके होते ही हो जाता है। इष्टानिष्ट कल्पना चारित्रमोहके उदयसे होती है। उसका अभाव होना देश-संयमादि गुणस्थानोंके क्रमसे होगा। आप लोग एकदम चाहते हैं कि हमारे वीतरागकी शान्ति आ जावे सो मेरी समझमें नहीं आता। पर्यायके अनुकूल ही शान्ति मिलेगी। हापटा मत मारो, शनैः शनै. सब होगा। विशेष क्या लिखें—तात्त्विक बात तो थोड़ी है, विस्तार बहुत है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो विपरीत मोहके जानेके बाद जो आत्मानुभव सम्यग्ज्ञानीके होता है वही क्रमसे मोहादिकके अभाव होनेपर कैवल्य पदरूपमें परिणमन हो जाता है। अगर आपकी श्रद्धा सत्य है तब आप अपनेको ससारी मत मानो, क्योंकि सिद्ध पर्यायके सम्मुख हो। आशा है, अब सब व्यग्रताओंको छोड़ जो पर्याय उत्पन्न हो गयी है उसे वृद्धिरूप करनेकी चेष्टा करोगे। कदाचित् यह कहो, सम्यग्दृष्टी भी तो निन्दा-गर्हा करता है। मेरी इसमें यह श्रद्धा है जो सम्यग्दृष्टिके मोहके उदयसे निन्दा-गर्हा होती है। वह अहम्बुद्धिसे उसका कर्त्ता नहीं। निन्दा-गर्हा अनात्मीय धर्म है। अनात्मीय धर्ममें उसके उपादेय बुद्धि नहीं। इसका यह अर्थ नहीं जो मैं स्वच्छन्दताका पोषक हूं। स्वेच्छाचारिता तो सम्यग्ज्ञानीके होती ही नहीं, क्योंकि आत्म-

[१६-४८]

श्रीयुत महाशय लाला मगनसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम यहांसे पौर्णमासी को भोजन कर चलेंगे और मढ़ाकर ठहरेंगे। वहांसे मधुवन होकर प्रतिपदाको ईसरी पहुँच जावेंगे। कोठीकी भेजनेकी आवश्यकता नहीं। जलवायु यहांका अच्छा है परन्तु शहरोंमें रहना प्रायः रागादिका निमित्त है। अतः हम वहाँ जा रहे हैं। दूसरे बाबा भागीरथजीकी निस्पृहता वहां जानेको प्रेरित कर रही है। वस्तुतः जब तक अपनी कषायपरिणति है तब तक यह सर्व उपद्रव हैं। कषायके अभावमें कहीं रहो कोई आपत्ति नहीं। कषायके अस्तित्वमें चाहे निर्जन वनमें रहो, चाहे पेरिस जैसे शहरमें निवास करो सर्वत्र ही आपत्ति है। यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे पराङ्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके सन्मुख है। खेद इस बात का है जो मोही जीव स्वयं ही निर्मोहीको बनानेकी चेष्टा करता है। आप मोहको नहीं छोड़ना चाहता। यहाँ पर ही क्या सर्वत्र यही बात देखनेमें आती है। हम जो लिखते हैं उस पर अमल नहीं करते। केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागनेके भावसे वञ्चित कर छिपानेका प्रयत्न करते हैं। कहने की अपेक्षा जानना कठिन है और जानने की अपेक्षा लिखना कठिन है और सबसे कठिन अन्तरङ्गसे उसे करना है। करनेका नाम काय, मन, वचन व्यापारसे करना समझते हैं। असलमें उस भावका न होना है। उपचारसे त्यागव्यवहारमें परिणत हो जाता है।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[१६–५२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग रोकनेवाला कुटुम्ब नहीं। आपकी जो इच्छा सो करो। इसमें कौन प्रतिबन्धक हो सकता है परन्तु कुटुम्बपर दोषारोपण कर त्याग करना अथवा त्याग कर उसकी शल्य रखना महान् अनर्थकी जड़ है। सर्व पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे परिणमन कर रहे हैं। उनपर किसीका अधिकार नहीं, जो अन्यथारूपको परिणमावे। व्यर्थके विकल्पजालसे अपनेको बाँध लेना उत्तम पुरुषको उचित नहीं। हमारी शक्ति ज्वर आनेसे दुर्बल हो गई है, अत. विशेष पत्र नहीं लिख सकते। आप अभी न भेजना। हम यहाँ आषाढ़ वदि को ईसरी जावेंगे।

हजारीबाग }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–५३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम एक पत्र इसके पहिले दे चुके हैं और जो पत्र आता है उसका उत्तर भी देते हैं। परन्तु आप लोगोंका लक्ष्य उस तरफ नहीं जाता। केवल निमित्त कारणोंकी उत्तमता और जघन्यता पर ही विचार करके सन्तुष्ट हो जाते हो। घरमें रहनेसे बन्ध और बाहर रहनेसे निर्जरा यही चर्चाका विषय रह गया है। अचिन्त्य शक्तिशाली आत्माको इन पर पदार्थोंके सहवाससे इतना हम लोगोंने दुर्बल बना दिया है जो बिना

क्योंकि जहाँ प्रतिक्रमणको विष कहा है वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत नहीं हो सकता।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-५०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका कारण अन्तरङ्गकी निर्मलता है, न परका आश्रम है और न १२ मासका मौन है। परन्तु आपकी बात आप जानें। शीघ्रतासे काम करना परिपाकमें उत्तम हो तब तो ठीक है, अन्यथा पश्चात्ताप होता है। यथापदवी कार्य अच्छा होता है। आवेगमें कार्य करना ठीक नहीं। हमारा स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु योग्य रीतिसे अभी कुछ नहीं कर सकते।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-५१]

श्रीयुत महाशयजी योग्य दर्शनविशुद्धि

धर्मसाधनमें शान्ति है। किन्तु परिकर जो शान्ति चाहता है, अशान्त बना देता है। परन्तु जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा है उसे शान्तिका ही लाभ है। औषधि परमात्माका स्मरण है। इससे बड़ी कोई औषधि हो तो टेलीफोन द्वारा अविलम्ब भेजो। चिन्ता न करना। शक्ति आने बाद उत्तर दूँगा।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोह-क्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

अर्थात् स्वरूपमें आचरण का नाम चारित्र है। इसी का अर्थ स्वसमयप्रवृत्ति है और यही वस्तु स्वभावपनेसे धर्म है। इसीका नाम शुद्धचैतन्य का प्रकाश है और यथावस्थित आत्मगुणपनेसे साम्यशव्दसे कहा जाता है। और यही दर्शन-चारित्र, मोहनीयके उदयसे जायमान समस्त मोह और क्षोभके अभावसे अत्यन्त निर्विकार जो जीवका परिणाम है, साम्यशव्दसे कहनेमें आता है, अत दश-लक्षण पर्वमें जिन गुणोंकी हम पूजा करते हैं इसीके अन्तर्गत है। यह धर्म मुख्यरूपसे निर्मोही जीवका परिणाम है और फिर इसकी मध्यम वृत्ति, निरीह वृत्ति दिगम्बर साधुओंके होती है। उससे नीचे दर्जेमें पञ्चम गुणस्थानवालोंके होती है। चतुर्थ गुणस्थानवालोंके उसकी श्रद्धा है। प्रवृत्तिमे वह धर्म नहीं। मिथ्यादृष्टियोंके तो उसकी गन्ध ही नहीं। अत. यह बात अपनी आत्मासे पूछते हैं कि हमारे कौनसा भाव है केवल बाह्य मन-वचन-कायके व्यापारसे उसका सम्बन्ध नहीं। यह तो उसके अनुमापक हैं। वह वस्तु तो निर्मल आत्मामे उदय होती है। जिन्हें आत्मकल्याण करना है वह इन क्रोधादिक कषायोंको कम करने की चेष्टा करें। आप लोग ससारसे भयभीत हैं। परन्तु अभी निमित्त कारणों की योजनामें ही मुग्ध हो रहे हैं। अस्तु, कल्याण तो अपनी आत्माके ऊपरका भार उतारनेसे ही होगा। वह भार केवल शब्दों द्वारा दशधा धर्मके स्तवनादिसे नहीं उतरेगा किन्तु आत्मामें जो विकृत औदयिक भाव हैं उन्हें अनात्मीय जान त्यागनेसे होगा। विशेष हमारा स्वास्थ्य गत १८ माससे इतना दुर्बल हो गया है जो उपदेश करता है,—अर्हत्परमेष्ठी का ही

पुस्तकके हम स्वाध्याय नहीं कर सकते, बिना मन्दिर गये हमारा श्रावकधर्म नहीं चल सकता, बिना मुनिदानके हमारा अतिथि-संविभाग नहीं बन सकता, बिना सत्समागमके हमारी प्रवृत्ति नहीं सुधर सकती। कहाँ तक लिखें—यावत् कार्योंमें निमित्तका बोलबाला है। अतः कल्याण करना है तब अपनी ओर देखो और अपने ज्ञायकभावकी स्वच्छताको कलंकसे बचाओ। अनायास कल्याणमार्गके पात्र हो जाओगे। विशेष पत्र देना समयका दुरुपयोग करना है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–५४]

श्रीयुत महाशय लाला भगवत्सेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। हमारा धर्ममें अच्छी प्रवृत्ति रही होगी। परमार्थसे तो यह निवृत्तिरूप है। परन्तु यह मोही जीव उसे व्यवहारमें प्रवृत्तिरूप मानता है अर्थात् मन्द कषायके कार्योंको धर्म का व्यवहार करता है। धर्म तो स्वरूपमें लीनताका नाम है। भगवान कुन्दकुन्द स्वामीने कहा है—

> सम्पज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।
> जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो॥
> दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागात्मोक्षः।
> तत एव सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः॥

इससे इष्ट फलवत्ता होने से वीतराग चारित्र उपादेय है और सरागचारित्र हेय है। वस्तु मर्यादा यही है। वह चारित्र क्या पदार्थ है सो स्वामी कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोह-क्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

अर्थात् स्वरूपमें आचरण का नाम चारित्र है। इसी का अर्थ स्वसमयप्रवृत्ति है और यही वस्तु स्वभावपनेसे धर्म है। इसीका नाम शुद्धचैतन्य का प्रकाश है और यथावस्थित आत्मगुणपनेसे साम्यशव्दसे कहा जाता है। और यही दर्शन-चारित्र, मोहनीयके उदयसे जायमान समस्त मोह और क्षोभके अभावसे अत्यन्त निर्विकार जो जीवका परिणाम है, साम्यशव्दसे कहनेमें आता है, अत दश-लक्षण पर्वमें जिन गुणोंकी हम पूजा करते हैं इसीके अन्तर्गत है। यह धर्म मुख्यरूपसे निर्मोही जीवका परिणाम है और फिर इसकी मध्यम वृत्ति, निरीह वृत्ति दिगम्बर साधुओंके होती है। उससे नीचे दर्जेमें पञ्चम गुणस्थानवालोंके होती है। चतुर्थ गुणस्थानवालोंके उसकी श्रद्धा है। प्रवृत्तिमें वह धर्म नहीं। मिथ्यादृष्टियोंके तो उसकी गन्ध ही नहीं। अत. यह बात अपनी आत्मासे पूँछते हैं कि हमारे कौनसा भाव है केवल बाह्य मन-वचन-कायके व्यापारसे उसका सम्बन्ध नहीं। यह तो उसके अनुमापक हैं। वह वस्तु तो निर्मल आत्मामें उदय होती है। जिन्हें आत्मकल्याण करना है वह इन क्रोधादिक कषायोंको कम करने की चेष्टा करें। आप लोग संसारसे भयभीत हैं। परन्तु अभी निमित्त कारणो की योजनामें ही मुग्ध हो रहे हैं। अस्तु, कल्याण तो अपनी आत्माके ऊपरका भार उतारनेसे ही होगा। वह भार केवल शब्दो द्वारा दशधा धर्मके स्तवनादिसे नहीं उतरेगा किन्तु आत्मामें जो विकृत औदयिक भाव हैं उन्हें अनात्मीय जान त्यागनेसे होगा। विशेष हमारा स्वास्थ्य गत १८ माससे इतना दुर्वल हो गया है जो उपदेश करता है,—अर्हत्परमेष्ठी का ही

स्मरण करो। इन लौकिक मनुष्योंका सम्पर्क छोड़ो।

आ शु० चि
गणेश वर्णी

[१६—५५]

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। मेरा तात्पर्य यह है जो आप निःशल्य होकर कुछ दिन घर ही स्वाध्याय करो और जो उदयमें है उसको आनन्दसे भोगो। पुत्रकी शादी हो गई। उसकी तो आपको चिन्ता नहीं। चिन्ता करनेसे होता ही क्या है? मेरा तो यह विश्वास है कि आत्मकल्याणकी भी चिन्ता न करो; कार्य करते जाओ। मनुष्य जन्ममें संयमकी योग्यता है इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य जन्म पाया और संयम हो गया। यदि कारण-कूट मिल जावें, हो सकता है। कौन ऐसा मनुष्य है जो संयमकी अभिलाषा न करता हो? परन्तु कहनेमात्रसे संयम नहीं होता। अनुकूल कारणोंके सद्भावमें संयमका उदय होना दुर्लभ नहीं। अतः जहाँ तक बने मूर्च्छाको छोड़ना और विशेष विकल्प न करना। हमारा तो आपसे प्राचीन परिचय है। यदि आपमें कोई दोष है तब आप मर्यादासे अधिक व्यय करते हैं। इस पर आप विचार करें। खेस आ गया। नर्म्मोवालीका होता तब अच्छा था। यह भी अच्छा है। परन्तु अब न भेजना। जब कभी नर्म्मोवाली की रुई उत्तम मिल जावे तब धनवा लेना। जल्दी न करना।

बरुआसागर
पौष बदि ७ सं० २ ३

आ शु० चि
गणेश वर्णी

[१६–५६]

श्रीयुत् लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बहुत दिन हुए आपका पत्र आया था। वह आज मिला। आपने लिखा, मुझे भेदज्ञान हो गया। अब और क्या चाहते हो ? इसकी महिमासे आपके सब मनोरथ सिद्ध हो जावेंगे। अब विकल्प छोड़ो। इसीके अर्थ सकल प्रयास हैं। शास्त्रस्वाध्यायका इतना ही फल है। अब तो जितने अंश निवृत्तिके हैं, उपयोगमें आना चाहिये। हमारा स्वास्थ्य अब प्रतिदिन क्षीण दशाको प्राप्त हो रहा है। एक बार इच्छा थी जो उस प्रान्तमें आवें। परन्तु बाह्य कारण अनुकूल नहीं। प्रथम तो हर स्थानमें हिन्दु-मुसलमानोंके झगड़े हो रहे हैं तथा लोगोंमें अशान्ति बहुत है। अन्नकी प्राप्ति दुर्लभ हो रही है। ऐसी दशा जीवोंके पापोदयसे होती है। उसकी निवृत्ति शुभ परिणामोंसे होती है। उस ओर जीवोंका लक्ष्य नहीं। अथवा यों कहिये, संसारमें यही होता है। अत. जिन्हें इस चक्रमें न फंसना हो उन्हें परपदार्थसे ममता त्याग देनी चाहिये। निर्मोही जीव सुखके भाजन हो सकते हैं। मोही जीव सर्वदा दुःखी रहेंगे। उन्हें सुखका मार्ग समवसरणमें भी नहीं मिल सकता। सूर्योदयमें घूघू (उल्लू) को नहीं दीखता। सूर्यके विकाशमें नेत्रवान् ही देखता है, यह ठीक है। फिर भी यह नियम नहीं कि देखे ही। आँख बन्द करले तब कोई क्या करे ? विशेष क्या लिखें—हमारा विचार कुछ दिन द्रोणगिरी रहनेका है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–५७]

लाला त्रिलोकचंद्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके यहाँ बड़े-बड़े विद्वानोंका समारोह हुआ। उनके सम्पर्कसे जो लाभ हुआ होगा वह तो आप ही जाने। हम तो इतना जानते हैं कि जितनी मूर्च्छा घटी होगी उतना ही आनन्द मिला होगा। इस पत्रको मुबारिकपुर भेज देना।

सागर
वैशाख वदि १४ २ ४

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–५८]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आत्मलाभसे उत्कृष्ट लाभ नहीं। यदि वह हो गया तब अब न तो हमारी आवश्यकता है और जिससे आपको आत्मलाभ हुआ उसकी आवश्यकता है। अब तो आवश्यकता उसे स्थिर करने की है। एतदर्थ मूर्च्छा त्यागो। परसे ममता त्यागो। सानन्दसे जीवनयापन करो। यथापात्र दान दो। जिससे आकुलता न हो वह करो। स्वाध्यायका फल पुण्यबन्धमात्र ही है। मुझे हर्ष इस बातका है जो आप लोगोंका काल तत्त्व-विचारमें जाता है। श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना। तथा लाला हुकमचन्दजी आदिसे दर्शनविशुद्धि कहना। वहाँ पर हमारा समयसार हस्तलिखित रक्खा है। उसे समगौरया श्रीमान् पं० मुन्नालालजीके हाथ भेज देना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-५६]

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जो लिख रहे हैं, लौकिक शिष्टाचारकी यही प्रणाली है। परमार्थसे विचारो,शास्त्रीय शब्दोंके प्रयोगको ही जब हम एकान्तसे विचारते हैं तब जो पर पदार्थोंमें हमारी ममता है वही तो दुखकी जननी है और भी गहरेपनसे विचारो तो परको छोड़ो। जो हमारी निज शरीरमें आत्मबुद्धि है वही तो परमें ममताका कारण है। शरीरको भी छोड़ो। शरीरमें आत्मीय बुद्धिका कारण अन्तरङ्ग मिथ्यात्व है। वही हमारा प्रबल शत्रु है। यदि वह न हो तब हम शरीरको पोषण करते हुए आत्मीय न मानें। अत शत्रु पर विजय करना ही हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये। जिसके एकत्व भावना हो गई उसके सर्व धर्म होगया। धर्म कोई बाह्य वस्तु नहीं। अन्तरङ्गमें कलुषित भावका न होना यह भाव कब होवे हैं, जब अन्तरङ्ग अभिप्राय अति निर्मल हो जाता है। उसके लिये केवल अपनी तरफ देखना ही बहुत है। परकी तरफ देखना ही ससारका कारण है। आत्माका ज्ञान इतना विशद है जो उसमें निखिल पदार्थ प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। परन्तु हमारे देखनेमें राग, द्वेष, मोह नहीं होना चाहिये। अन्त-रङ्गसे न तो आप मुझे चाहते हैं और न मैं आपको चाहता हूँ। बहिरगसे आप हमारे और हम आपके यही बात मोही पदार्थोंमें लगाना। जहां एक तरफ मोह है वहां दूसरी तरफ उपचारसे जो चाहो सो कहो। जैसे भगवानमें दीनदयालु पतितपावन आदि अनेक आरोप प्रतिदिन लोग करते ही हैं।

ज्येष्ठ सुदी ४, स०२००४

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–६०]

श्रीयुत् महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं हमारा आपसे धार्मिक स्नेह है और जबतक हमारे व आपके यह मोह है वहां ही यह संसार बन्धन है। जिस अन्तरङ्गमें यह वासना मिट जावेगी, न मैं आपका और न आप मेरे। हम और आप तो अभी उस पथके मज्जालु हैं, धर्ममें आनेसे आपसे आप ममता मिटती जाती है। समता आती जाती है। एक दिन न रहेगी ममता न आवेंगे समता। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जो उपयोग शिक्षाचारमें जाता है वह अपने ही स्वरूपके संभालने में जावे तब परकी अपेक्षा न रक्खो। हम तो स्वयं इस जालमें फंसे हैं परन्तु आपको हितैषी मान यही कहेंगे आप इसमें मत फंसो। यदि हमारी सम्मति मानो तब परमेश्वरमें प्रेम भी त्यागो। भक्ति करो यह भी कमजोरीका चक्र है। मोहके सद्भावमें ही यह होता है। परन्तु तात्त्विक दृष्टिसे सम्यग्ज्ञानी कुछ नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं जो उसके भक्ति नहीं परन्तु उसके अभिप्रायकी वही जाने। मेरा तो यह विश्वास है—कोई किसी की क्या जाम। अपना २ परिणमन अपने २ में हो रहा है। व्यवहार की कथा विचित्र है।

वै० सुदि ६, सं० २ ४ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–६१]

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आया। वृत्त जाने। कातरता ही मोक्षमार्गकी

घातिका है। इसे स्थान मत दो। पर का आश्रय त्यागो। स्वाधीन बनो। जब हम और आपको यह निश्चय हो गया जो सब द्रव्य अपने-अपने रूप परिणमते हैं तब आवश्यकता नहीं जो हम किसीकी अनुचित प्रशंसा करें। भगवान वीतराग सर्वज्ञ हैं तथा मोक्षमार्गोपदेशी हैं। मोक्षमार्ग क्या, संसारमार्गके भी उपदेष्टा हैं। इतना ही भगवान का स्वरूप है। इतर व्यवहार करना क्या उचित है? परन्तु मोही जीव जो न करे सो अल्प है। आपको कल्याण करना इष्ट है तब वह प्रवृत्ति जो अनादिसे अपना रहे हो, त्यागो। शूरवीर बनो। पर पर ही है। अपना अस्तित्व जो परके सम्बन्धसे विजातीय हो रहा है उसको छोड़ो। दृढ़प्रतिज्ञ बनो। यही संसार को छेदने का उपाय है। अपनी सत्ता को अपनाओ।

अषाढ वदि ५, सं० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६२]

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

अब मैं यहीं रहूँगा। आप स्वाध्यायमें सत्समागमकी अपेक्षा विशेष प्रवृत्ति करिये। सत्समागम आस्रव का कारण है और स्वाध्याय स्वात्माभिमुख होनेका उपाय है। सत्समागममें प्रकृति विरुद्ध भी मनुष्य मिल जाते हैं। स्वाध्याय से इसकी सम्भावना भी नहीं। इसकी समानता रखनेवाला अन्य कोई नहीं। चाहे करके देख लो। इसकी अवहेलनासे ही हम आज पद पदमें तिरस्कृत होते हैं, दर-दर गिड़गिड़ाते हैं।

सागर
अषाढ शु० ६, सं० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६३]

श्रीयुत् लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। स्वाध्याय सानन्दसे होता होगा। कल्याण का मार्ग तो आभ्यन्तर कषायके अभावमें है। यह स्वाध्याय सहकारी कारण है।

सागर } आ० शु० चि०
भाद्रव शुक्ला ११ सं० २ ४ } गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६४]

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। समाचार जाने। देखो, यह जो हमारी आपकी कल्पना है जो परसे कल्याण होता है, निमित्ताधीन होती है और मोहज है। अतः मङ्गलमें तो यही रखना चाहिये कि जिस दिन यह कल्पना मिट जावेगी उस दिन क्या होगा ? यह वही कह सकते हैं जिसके कल्पना मिटेगी। वही जानेगा भी। पहले तो हम और आप आगमके बलसे कहते हैं, अनुभव होना अशक्य है। हाँ, जब किसी विषयका राग होता है और उसका विषय सिद्ध होने पर वह राग मिट जाता है उस समय जो शान्ति आती है, उससे अनुमान कर सकते हैं जो सम्पूर्ण मोहाभावसे अखण्ड शान्तिका अनुभव होता होगा। अथवा यहां अनुभवका क्या काम है। कोई किसी प्रकार का विकल्प ही नहीं। हमारी तो यह सम्मति है जो इन विकल्पोंको छोड़िए। शास्त्रोंमें जो प्रक्रिया इसकी लिखी है उसी उपायका अवलम्बन कर परिणति स्वच्छ बनानेका प्रयत्न करिये। अथवा आगम की कथा छोड़िए। जिस

जिस कार्यके करनेमें सक्लेश होता है वे सब कार्य त्यागनेकी चेष्टा करिये। हम तो एक यही उपाय कल्याणका समझते हैं। मैं कुछ नहीं जानता, फिर भी लोग मुझे एक जाननेवाला मानते हैं। न जाने इसमें कौनसा हेतु है ? आजकल वर्णी मनोहर-लालजी यहीं हैं। बहुत सुबोध हैं। मेरी तो यह सम्मति है कि अब आप थोड़े दिन शान्तिसे स्वाध्याय करो और जो पास में हैं उसीके अनुसार व्यय करो। आपके अनुकूल व्यय उत्तम होता है। समयकी बात है जब जैसा आवे सन्तोषपूर्वक बिताना चाहिये। मैं भाद्र मास तक यहीं रहूँगा। एक बार बरुआसागर जानेका विचार है। अभी, ग्रामके बाहर हूं। आपका विचार क्या भादोंमें आनेका है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—६५]

महानुभाव इच्छाकार !

मैं आपको पुण्यशाली समझता हूँ जो तत्त्वज्ञ-महाशयोंके सह-वास में आपका समय जाता है। यद्यपि आत्मा स्वभावतः अद्वैत है। आत्मा ही क्या सभी वस्तु अद्वैत है। और कल्याण-लाभ के लिये यह अद्वैत भावना अत्यन्त उपयोगिनी है। एकत्व भावना का यही तत्त्व है। परन्तु मोह में हमारी आत्मा इतनी पतित हो चुकी है जो हम स्वयं अद्वैत होकर जगत्को अपना मानने का प्रयास करते हैं। 'ममेदं अस्याहम्" यह मेरा है मैं इसका हूँ इत्यादि विकल्पोंमें उलझकर ससारके पात्र बने हैं। तथापि अहमेदं इत्यादि कम्मे णोकम्मम्मि इत्यादि—पाठ हम पढ़ते हैं।

परन्तु उस रूप होने का प्रयत्न नहीं। केवल सम्यग्दर्शन की कथा कर संतोषामृत का पानकर तृप्ति कर लेते हैं और वह भी कथामें ही रह जाता है। यदि परीक्षा करना हो तब जो तत्त्व का विवेचन कर रहा है उसके प्रतिकूल शब्दों का प्रयोग करके प्रत्यक्ष उसके भावोंका निर्णय कर लो। अस्तु इसमें क्या रक्खा है? जो हो, आप लोग जानें या प्रभु जाने। हम संसारको सुलझानेका उपदेश देते हैं परन्तु स्वयं नहीं सुलझते। ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्थित चलता है और चलेगा, यह तो ठीक है, परन्तु त्यागाश्रम ठीक चलता है इसकी कथा भी नहीं। यह क्या बात है? इस प्रान्त को पाकर यदि इस धर्म की पुष्टि न की तब तो मैं यही समझा जो अभी उस आश्रम की नींव पक्की नहीं। अतः आवश्यकता त्यागधर्म की है। इसके होनेसे एक ब्रह्मचर्याश्रम क्या, सभी धर्मके कार्य निर्विघ्न चल सकते हैं। इसके बिना लवण बिना भोजन की तरह कोई भी कार्य की पूर्ति नहीं। मेरा यह विश्वास है जो भोगी ही योगी हो सकता है। बिना भोग के योग नहीं। मुख्यतया सुखी जीव ही काल पाकर वीतरागी होता है। यह उत्सर्ग नहीं, अपवाद भी नहीं। दुःखमें भी भावना अच्छी होती है। प्रायः तीर्थङ्कर स्वर्गसे ही इस भूलोकमें अवतीर्ण होते हैं। किन्तु नरकसे भी आकर तीर्थङ्कर होते हैं। अत कहने का तात्पर्य यह है जो इस प्रान्तके मनुष्य भोगी बहुत हैं। अब उन्हें उचित है जो त्यागधर्मको अपनावें। बहुत दिन गाढ़ी दालमें घी का स्वाद चक्खा, मधुररसका स्वाद लिया, पुष्प-फलको भोगा। आजन्मसे आज तक यही किया। परन्तु इससे शरीर ही को पुष्ट किया जो पर वस्तु है और परसे ही पुष्ट किया। गारा, चूना, ईटसे मकान ही बनता है, इन्द्र-भवन नहीं बन जावेगा। इसमें हमारा कोई अपराध नहीं। किन्तु उसको

अपना माना यही हमारी महती अज्ञानता है। अब इसे त्याग देवें, अतएव त्यागधर्म की आवश्यकता है। अतः आवश्यकता हमको इस बातकी है जो बहुत दिन पर को अपना माना, आजन्मसे यह कार्य किया, अब इस चोट्टापन को त्याग कर अपने को अपनावे जिससे संसार की यातनाओंके पात्र न हों। इसके होते आपका जो आश्रम है वह अनायास चलेगा। अथवा आपका न आश्रम है और न आप आश्रमके हैं। यह व्यवहार भी न रहेगा। अथवा आपकी उसमें जो निजत्व की कल्पना है तब इस धर्म की महिमासे वह भी विलीन हो जावेगी। वह क्या विलीन हो जावेगी, श्रीगोमट्ट स्वामी यात्राके जानेका विकल्प है वह भी शान्त हो जावेगा। जो कुछ आपके पास है उसे त्यागो और ब्रह्मचर्याश्रमको देकर अपरिग्रही बनो। श्रीगोमट्टस्वामी जाकर क्या इससे अधिक निर्जरा सम्पादन कर लोगे? सम्भव है आपकी मण्डली इस वाक्यसे असन्तुष्ट हो जावे। परन्तु मेरा जो विश्वास है, त्यागमें निर्जरा है और वन्दनामें पुण्य है। आजकल अष्टान्हिका पर्व है। देव लोग नन्दीश्वर जाते हैं। पुण्यलाभ सम्पादन करते है। यदि हम चाहे तब संयम धारण कर उनसे अधिक लाभ ले सकते हैं। किन्तु संयम पालें तभी। अतः आप वहाँ जो आवे उसे यही उपदेश देना जो ब्रह्मचर्यका पालन कर देवोंको मात करदो। त्यागधर्मका व्याख्यान करना यह पत्र सुना देना, यह आकांक्षा न करना जो हमारे आश्रमको यह बलाय मिले। सर्व मडलीसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०

गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६६]

योग्य इच्छाकार

हम तो शान्ति उसको समझते हैं जहाँ फिर उस विषयका विकल्प ही न उठे। हम तो अब तक ऐसे शान्ति रसास्वादनसे वञ्चित हैं। हाँ श्रद्धा अवश्य है और यह विश्वास है कि काल पाकर शान्ति भी मिलेगी। आप लागोंके चक्रमें आ गये। यह आपका दोष नहीं हमारी मोहकी दुर्बलता है। अन्यथा कोई कुछ नहीं कर सकता। आत्मा सर्वत्र स्वतन्त्र है परन्तु मोही जीव निरन्तर पर पदार्थोंमें दोषारोपण करता है। कल्याणका मार्ग कहीं नहीं आप ही में है। यदि आप इसपर अमल करोगे तो अल्पकालमें मुक्तिके पात्र हो जाओगे। यदि मोहके आवेगमें आकर इतस्ततः भ्रमण करोगे तब जैसे वर्तमानमें हो वही रहोगे। केवल गाँठका द्रव्य खो दोगे। हमारी तो यही सम्मति है कि किसीके चक्रमें न आना, अन्यथा जो संसारी जीवोंकी गति है वही गति होगी।

भाद्रपद सुदी ११ सं २ ५ } आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६७]

योग्य इच्छाकार

आत्मा अनादिसे अनन्त ज्ञायक है। परद्रव्यसे भिन्न स्वरूपसे अभिन्न होकर भी अनादिसे कर्मबन्धके साथ यह दशा हो रही है जो प्रत्येक प्राणीका अनुभूत है। कौन मनुष्य दुःख चाहता है परन्तु कर्मबन्धका ऐसा विलक्षण प्रभाव है जो परको भिन्न मान जगत रागद्वेषमय हो रहा है। हाँ, ऐसे भी विरले प्राणी हैं जो इस चक्रमें होकर भी शान्त हैं। इसका आश्चर्य नहीं।

भीतरकी निर्मलतामे वह शक्ति है जो इन सब विरुद्ध समागमके सद्भावमें भी जिसके प्रभावसे जलमें कमलवत् निर्लेप रहते हैं वह प्राणी इनमे हैं। कुछ इनका देश भिन्न नहीं। कहना कुछ शान्तिका उत्पादक नहीं है। शान्तिका उदय अन्तरगमें स्वाभाविक परिणामसे होता है। मोहके अभावमें आत्मा विकृत भावोंसे रहित हो जाता है। यही कैवल्यावस्था है। इसकी महिमा कुछ पदार्थोंके आभाससे नही और न प्रतिभास सुखका कारण है। अत. हमको आवश्यकता विकृत भावोंसे वचनेकी है। यदि विकृतभाव औदयिक होवे, होने दो। उसमें निजत्व कल्पना न करो। इससे अधिक हमारा पुरुषार्थ नहीं। वडे-वड़े पुरुष भी इससे अधिक क्या करते हैं? कुछ नही, केवल अभिप्रायकी निर्मलता है जो बुद्धिपूर्वक सर्व दु.खापहारिणी है। अत. उसको निर्मल वनाना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिये। स्वप्नमें भी किसीको अन्यथा नहीं मानना चाहिये और न किसी प्राणीको शत्रु मानना चाहिये, चाहे कोई कितना ही अपकार करे। उसके प्रति हमारा विषादरूप परिणाम न होना चाहिये और चाहे कोई कितना भी उपकार करे उसके प्रति हर्षभाव न होना चाहिये। हर्ष-विषाद दोनों ही परिणाम विकृत हैं। मोहसे इनमें उपादेय और अनुपादेय बुद्धि होती है। दोनो ही ससारके जनक हैं। हमको तो कुछ विशेषता प्रतीत होती नहीं; जिससे उसके विषयमें हम क्या कह सकते है? मेरा यह विश्वास है, अन्यका अभिप्राय अन्य कुछ नहीं कह सकता। जो व्यवहार होता है वह निजके ज्ञानमें जो आता है वही कहा जाता है। प्रमाणके लिये यह कहा जाता है—भगवानके ज्ञानमे ऐसा ही आया है।

कठघर कूपिका
आषाढ शु० ८, सं० २००८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–६८]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया संतोष हुआ। तत्त्व तो परमार्थसे यही है जो परपदार्थको पर मानना आपको आप मानना। ज्ञानमें ज्ञेय आता है वह तो उसकी स्वाभाविक स्वच्छता है। उसमें ज्ञेय झलकता है अर्थात् ज्ञेय निमित्तक ही यह विकारावस्थाको प्राप्त होता है। व्यवहार यह होता है हम ज्ञेयको जानते हैं। आपके पत्रसे यह निश्चय हो गया जो आप समयसारके तत्त्वको समझने लगे हैं। रागद्वेषकी हानि स्वयमेव ज्ञानीके हो जाती है। हम कुछ नहीं जानते ऐसा स्वप्नमें भी खेद नहीं करना चाहिये। तत्त्वसे विचार करो केवलीके ज्ञान और सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमें विशेष अन्तर नहीं। वे भी स्वपरको जानते हैं यह भी स्वपरको जानता है। वे बहुत पदार्थोंको जानते हैं यह अल्प जानता है। सूर्य दीपककी तरह ही तो अन्तर है। अतः खेद करना हाय हम कुछ नहीं जानते अच्छा नहीं। स्वपरभेद ज्ञानसे अन्य अब क्या चाहते हो। रागादिक होते हैं एतावता सम्यग्दृष्टिके क्या बिगाड़ हो गया। उन्हें ज्ञेयरूप ही तो जानता है। औदयिक भाव ही तो उन्हें मानता है। उन परिणामोंको उपादेय तो नहीं मानता। जैसे मुनि महाराजके संज्वलनके उदयमें महाव्रतादि होते हैं, उन्हें करता भी है और यथायोग्य भोक्ता भी होता है परन्तु वह मुनि उन्हें उपादेय नहीं मानता। जिन्हें उपादेय नहीं मानता उनके रहनेमें परमार्थसे प्रेम नहीं। इसीतरह सम्यग्दृष्टि जीवोंकी विषय कषायके कार्योंमें प्रवृत्ति है। उनकी गाड़ी मोक्षमार्गमें तेज चालसे जा रही है और इसकी मन्द चालसे जा रही है, अन्तर इतना ही है। अतः सबप्रकार के विकल्पोंको त्याग स्वाध्याय करते जाओ। अन्य विकल्प करनेकी चेष्टा न करो तथा यह अच्छा और अमुक निकृष्ट

यह सब विकल्पोंको त्यागो। आपके पत्रसे हमको प्रसन्नता हुई। आप जब अवकाश मिले, आना। निःशल्य होकर आना।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-६६]

श्रीयुत् महाशय ला० मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

अपने परिणाम निर्मल करनेकी चेष्टा करना ही पुरुषार्थ है। असख्यात लोकप्रमाण कषाय हैं। कल्याणका मार्ग सुलभ है। सरलता चाहिये। जो काम करें निष्कपटतासे करें। हमको आपका देश इष्ट था, क्योंकि उस प्रान्तमे विवेकी हैं किन्तु हमारी मोहान्वता ने यहाँ ला पटका। परन्तु इसका भी विषाद नहीं। हमने अपनी परीक्षा कर ली। आप किसीसे ममता न करना। मैं तो कोई वस्तु नहीं परमात्मासे भी ममता न करना। यही तत्त्व है। स्नेहको निर्मूल करना यही भावना हितकारी है। हमको इत बातकी बडी प्रसन्नता है कि आप अब पहिलेसे बहुत शान्त हैं। मेरी मुजफ्फरनगरवालोंसे दर्शनविशुद्धि कहना।

सागर
ज्येष्ठ सुदि ६, सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-७०]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका लाला सुमेरुचन्द्रजी के पास आया, समाचार जाने। महाशय! व्यग्रता बाह्य कार्योंसे नहीं होती। व्यग्रता यदि अन्तरंगमें हो तब समझना चाहिए कि अब हमारा पतन हुआ।

ऐसे तो आप जानते हैं हम आपको प्रतिदिन व्यग्र होना पड़ता है। अन्तरङ्गसे पर को पर समझो। निरन्तर अपनेमें दोष और गुण की परीक्षा करते जाओ। जो गुणों की वृद्धि हो, जानो आज दिन अच्छा गया। हमको उस भार बुलाने की चेष्टा करना कोई लाभदायक नहीं। अब हमारी शक्ति नहीं कि कुछ कर सकें। आप स्वाध्याय करो और इन सम्मेलनोंके चक्रमें न पड़ो।

बरुआसागर }

आ० शु० चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–७१]

श्रीयुत महाशय लाला भगवानदासजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका पवित्र विचार ही संसार बन्धन मिटानेमें कारण है। पर तो पर ही है। पदार्थ व्यवस्था इस प्रकार की ही है। हम आज तक आत्मीय स्वरूप को जाने बिना ही पर को निज मान भ्रमण कर रहे हैं। अब यह निश्चय हो गया कि हम ज्ञाता दृष्टा हैं तब फिर स्वयं यह भ्रम जो हमें परमें आत्मा मना रहा था अनायास चला जावेगा। देखो अष्टा वक्रगीतामें लिखा है–

> अहम् अहम् तात नाथ मोह कृष्ण भो।
> ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः॥

अतः सर्व विकल्प त्याग उपेक्षा को अपनाओ। हम संसारी कायर हैं ऐसी हीनता मिथ्यामसे छोड़ दो। भगवान् के समक्ष भी अज्ञानी बनकर स्तवन मत करो। जब आपने भगवान का नाम लिया तभी तो भक्ति करते हो फिर अज्ञानी मानना अच्छा नहीं।

हमको आपका समागम इष्ट है। अब हमारी अवस्था भी पकपान सदृश है। कब आओगे, उत्तर देना। हम सागर ही हैं।

बरुवासागर }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६-७२]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, चश्मा नहीं मिला। यदि कल्याण चाहते हो तो स्वतत्र बनने का प्रयास करो। पर जितने हैं पर हैं वे हमारा क्या कर सकते हैं? हम उनका क्या कर सकते हैं? यदि इनको अपनाया अपने अस्तित्वमे अन्तर आया, क्षति हुई। मेरी बात मानो किसी का भी साथ मत करो। आप ही का साथ करो।

क्षेत्रपाल-ललितपुर
कार्तिक सुदि २, स० २००८ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६-७३]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी सा०, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, अब सर्व विकल्प छोडकर अन्तरंग मूर्च्छा को कृश करो। कल्याण का मार्ग आप ही मे है। व्यर्थ संसारमें भटकना है। निमित्तमें निमित्तका परिणमन रहेगा। उपादानमें उपादानकापरिणमन रहेगा। निर्विवाद विषयमें विवाद करने का समय नहीं। अनादिसे हम अपनी ही भूलसे

ही बन्धको प्राप्त हो रहे हैं। जिस समय यह अज्ञान गया अनन्त संसार चला गया। विशेष यह है कि परकी आशा छोड़ो।

२, ' २ }

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६–७४]

श्रीयुत लाला भगवत्सेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं हृदयसे कहता हूँ जो परके अतिशयको मानकर मत लुभाओ। द्रव्यके परिणमन हैं, होते ही रहते हैं। शुद्ध जीव पदार्थके परिणमनको आगम द्वारा मानकर उसके ऊपर भी लुभानेकी चेष्टा मत करो। होना था हो गया। यदि शुद्ध परिणमनसे मोहित हो तब आकाशादि पर क्यों नहीं मोहित होते। कदाचित् यह कहो जो उसमें चैतन्यशक्ति नहीं। शुद्ध जीवमें जो चैतन्य शक्ति है क्या उससे तुम्हें कुछ लाभ है या नहीं? लाभ होता है यह तो कह नहीं सकते। 'अरसमरूवमगंधं' गाथा देखो। तब यही कहना पड़ेगा जो कुछ नहीं। तब जैसे शुद्ध आत्मा वैसे ही आकाश। कदाचित् कहो—उनमें शुद्ध चैतन्यका परिणमन होनेसे राग होता है तब राग तो बन्धका ही कारण हुआ। अतः ऐसा चिन्तवन करना चाहिए जिससे राग न हो फिर चाहे वह शुद्ध चैतन्यका हो व शुद्ध द्रव्यका हो व घटादिकका हो। अतः इन अंतरायके विकल्पोंको त्यागो और आत्महित करो। इससे भी अब विकल्प त्यागो। अब आपकी इच्छा हो आओ जाओ, न हो न आओ। हम तो यही चाहते हैं और उसीका प्रयास आगमसे मानते हैं जो आपको रागादिसे लिप्त नहीं होने देता। शास्त्रस्वाध्याय करनेका यही फल है जो परपदार्थोंमें इष्टानिष्ट कल्पना मिट जाय।

पर पदार्थ न तो मिटेंगे और न तुम्हारी इच्छाके अनुकूल

परिणमन करेंगे। व्यर्थके उपद्रव वलात्कार क्यों करते हो ? सनत्कुमार व उसकी माँ का स्वामित्व छोड़ो, चाहे घर रहो चाहे अन्यत्र रहो। विशेष क्या लिखें ? जो लिखते हैं अपनी परिणतिसे दुखी होकर लिखना पडता है . लिखना नहीं चाहते। जिस दिन पत्र देना आपसे छूट जावेगा फिर आप जान लेना अब वर्णीजीका हमसे सम्बन्ध नहीं रहा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—७५]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, इच्छाकार

बहुत काल बाद पत्र आया। शान्ति आपको आई, इसका कारण आपकी निज परिणति है। अन्य तो निमित्तमात्र हैं। अतः आप तो विशेष प्रयास, जिससे कि स्थायिनी शान्तिके पात्र हो, उसीमें करिए। मैं तो जो हूँ सो हूँ। किन्तु आराध्य आत्माओं का अवलम्बन त्याग स्वात्मावलम्बनमें ही रमण कीजिये। अनायास यह बन्धन हमें अनन्त ससारका कारण बना रहा है। बन्धन क्या हमारा जो स्वजन्य मोह है वह विलय जावेगा। श्री सनत्कुमारसे आशीर्वाद। यदि सुख चाहो तब स्वात्मावलम्बनका पाठ पढ़ो, आयके अनुकूल व्यय करो।

सागर
कार्तिक सुदि ३ स० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—७६]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग परावलम्बन त्यागे ही होता है। इस शिष्टाचार पद्धतिने अबोध-पद्धतिकी तरह

ही बन्धको प्राप्त हो रहे हैं। जिस समय यह अज्ञान गया अनन्त संसार चला गया। विशेष यह है कि परकी आशा छाड़ो।

२, १, २ }

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[१६—७४]

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं हृदयसे कहता हूँ जो परके अतिशयको जानकर मत लुभाओ। व्यर्थके परिणमन हैं, होते ही रहते हैं। शुद्ध जीव पदार्थके परिणमनको आगम द्वारा जानकर उसके ऊपर भी लुभानेकी चेष्टा मत करो। होना था हो गया। यदि शुद्ध परिणमनसे मोहित हो तब आकाशादि पर क्यों नहीं मोहित होते। कदाचित् यह कहो जो उसमें चैतन्यशक्ति नहीं। शुद्ध जीवमें जो चैतन्य शक्ति है क्या उससे तुम्हें कुछ लाभ है या नहीं ? लाभ होता है यह तो कह नहीं सकते। 'अपरणुवविसेसं' गाथा देखो। तब यही कहना पड़ेगा जो कुछ नहीं। तब जैसे शुद्ध आत्मा वैसे ही आकाश। कदाचित् कहो—उनमें शुद्ध चैतन्यका परिणमन होनेसे राग होता है तब राग तो बन्धका ही कारण हुआ। अतः ऐसा चिन्तवन करना चाहिए जिससे राग न हो फिर चाहे वह शुद्ध चैतन्यका हो व शुद्ध द्रव्यका हो व परादिकका हो। अतः इन आवरणके विकल्पोंको त्यागो और आत्महित करो। हमसे भी अब विकल्प त्यागो। जब आपकी इच्छा हो आओगे, न हो न आना। हम तो यही चाहते हैं और इसीको प्रबल आत्मा मानते हैं जो आपको रागादिकसे लिप्त नहीं होने देता। शास्त्रस्वाध्याय करनेका यही फल है जो परपदार्थमें इष्टानिष्ट कल्पना मिट जावे।

पर पदार्थ न तो मिटेंगे और न तुम्हारी इच्छाके अनुकूल

यही हमारा आपका कर्तव्य है। सब अच्छा होगा। हम दो मास और यहाँ रहेंगे।

सागर
अगहन बदि ३, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७८]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, इच्छाकार

आप आनन्दसे जीवन-यात्रा समाप्त करना। किसी की चिन्ता न करना। आत्मा एकाकी है। मोहके वशीभूत होकर नाना यातनाओंकी पात्र हो रही है। आप तत्त्वज्ञानी हैं। सब विकल्प त्याग कर अन्तिम काय करना। मुझे पूर्ण श्रद्धा है जो आप सावधानीपूर्वक उत्सर्ग करेंगे। आपके बालक समर्थ हैं। आप स्वय समर्थ हैं। यही समय सावधानीका है। मूर्च्छा त्यागना। मैं तो कोई वस्तु नहीं, परमात्मासे स्नेह त्यागना।

सागर
अगहन वदि ६, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७९]

श्रीयुत महाशय लाल मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी श्रद्धा निर्मल है, यही कल्याणकी जननी है। आत्मामें जो देखने-जाननेकी शक्ति है वह निरन्तर रहती है। तरतम परिणमन रहे, इससे हानि नहीं। हानि का कारण परमें निजत्व कल्पना है। यही ससार की दादी है।

ही आज तक हमें निजस्वरूपसे वञ्चित रक्खा है। अतः अब इस पराधीनताको त्याग स्वाधीन-मार्गमें लगना ही श्रेयोमार्ग है। आपने स्वाध्याय अच्छा किया है। अब आपको विशेष क्या लिखूँ—आप आवेंगे उस समय स्वयं ही यही कहेंगे। सनत्कुमारसे आशीर्वाद कहना तथा यह कहना जो थोड़ा-बहुत स्वाध्यायमें उपयोग लगावे तथा जहाँ तक बने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करे। विशेष क्या लिखें। जो जितना विषयोंसे उदासीन रहेगा उतना ही अधिक प्रसन्न रहेगा। धनादिकी विपुलता सुखका कारण नहीं, मूर्च्छाकी न्यूनता सुखका कारण है। आप सागर ही आवें।

सागर
कार्तिक सुदि ५, सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–७७]

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। भाई साहब कल्याणका मार्ग तो जहाँ हैं वहीं ही है। यह तो हमारी आपकी कल्पना है जो पर भी कारण है इसका निषेध नहीं, परन्तु कार्य-सिद्धि कहाँ होती है इसपर दृष्टिपात देना चाहिये। सामग्री कार्यकी जनक है। किन्तु कार्य कहाँ होता है यह भी विचारणीय है। आप तो सानन्द स्वाध्याय करिये और जो कुछ परिणतिमें रागादिक हों उनमें तटस्थ रहिए। यही उनका त्याग है। अनन्त जन्म बीत गये; हमने अपनी परिणतिपर अधिकार न पाया। उसीका यह फल है जो अनन्त-संसारकी यातना भोगी। इसका खेद व्यर्थ है जो गयी सो गई। वर्तमान पर्यायका अन्यथा न जाने देना चाहिये

पर्य्याय कारणकूटसे उत्पन्न हुई है, एक दिन अवश्य ही विघटैगी। इसके रहनेका हर्ष नही और जानेका विषाद नहीं करना ही महापुरुषोंका मुख्य कार्य है। स्वभावमें विकृति न आने पावे यही पुरुषार्थ है। श्रद्धा अटल रहना ही मोक्षमार्गकी आद्य जननी है। आप निश्चिन्त रहिये और जो कुछ दृढ़ निश्चय किया है वह न जाने पावे, यही महती पुरुषार्थता है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद फिर अनन्त ससारकी जड़ कट जाती है। फिर वह नहीं रह सकता। अपनी आत्मा ही अपनेको अनन्त ससारसे पार उतारनेवाला है। परावलम्बन ही बाधक है। आपके बालक सुबोध हैं। पुत्रोंका यही कर्त्तव्य था जो आपके पुत्रोने किया। मैं उनको यही आशीर्वाद देता हूँ जो वे धर्ममें इसी प्रकार निरन्तर दृढ़ रहें। आप शीत कालमें न आना। वसन्तऋतुमे आना। मुझे आनन्द है जो आपका जीवन धर्ममे जा रहा है। श्री सनत्कुमार दर्शनविशुद्धि। मेरीभावनाका पाठ कर लिया करो। यही सन्देश श्री इन्द्रकुमारको देना।

सागर
अगहन सुदी ५, स० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८१]

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

समगौरया द्वारा वस्त्र आगये, उपयोगी हैं। आपका स्वास्थ्य अच्छा है। सयमकी सिद्धिका मूल है। अब शीत-काल मे एक स्थान पर ही रहना और बाह्य परिश्रम विशेष न करना। समय पाकर ही विशेष कल्याण होगा। तथा मेरा तो निजका यह विश्वास है—जिसने मोह पर विजय प्राप्त करली उसने संसार

जहाँ तक साम्य-भाव है, वहाँ तक ही यह निजस्वरूपमें रहता है। भगवान् यहां फँस गया। फँसानेवाला स्वयं विकृत भाव है—

'साम्यसोमानमालम्ब्य कृत्वात्मन्यात्मनिश्चयम्।
पृथक्करोति विज्ञानी संश्लिष्टे जीवकर्मणी॥

अतः आपत्ति आने पर स्वरूपसे च्युत न होना चाहिये। आप जानते हैं नारकी कितनी वेदनामें ग्रस्त रहते हैं परन्तु वे भी उस अवस्थामें स्वरूपलाभके पात्र हो जाते हैं। अतः शारीरिक वेदना अन्तर्दृष्टिकी बाधक नहीं। फिर भी मोही जीव इस चक्रमें आते रहते हैं। पर-पदार्थका अणुमात्र भी अपराध नहीं।

'रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते।
एषः जिनोपदेशोऽयं संक्षेपाद्बन्धमोक्षयोः॥

सानन्दसे दिन बिताना और शीतकाल बीतने पर आना। शीघ्रता न करना। बालकोंसे आशीर्वाद तथा हमारा यह संदेश कहना—स्वाध्यायमें दत्तचित्त रहें। चाहे १५ मिनटका कर्तव्य जान कर करें। ब्रह्मचर्य सभी पर्वों पर पालन करें।

सागर
अगहन सुदी २, सं २ ६

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१६—८०]

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। आपका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो गया यह पढ़कर अति प्रसन्नता हुई और आप रोग-आक्रान्त होने पर भी स्वभावसे च्युत नहीं हुये इसकी महती प्रसन्नता हुई। यह ही

[१६—८३]

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। कल्याणका मार्ग कहीं नहीं, अपनेमें ही है। आवश्यकता श्रद्धा एव निर्मल परिणामोंकी है। जिसकी श्रद्धा दृढ़ है उसका उत्थान अनायास हो जाता है। अनादि कालसे हमारी प्रवृत्ति परपदार्थोंमें रही। उसीसे आत्माका कल्याण अकल्याण मानकर मोह, राग, द्वेष द्वारा अनन्त यातनाओंके पात्र रहे। अतः इन पराधीनताके द्वारा हुए संकटोंसे यदि अपनी रक्षा करनेका भाव है तब अपनेको केवल जाननेका प्रयत्न करो। दृष्टि बदलना है। समीप ही श्रेयोमार्ग है। पराधीनता त्यागो। शुद्धचित्तसे परामर्श करो, कहीं भ्रमणकी आवश्यकता नहीं। उष्ण जलको शीतल करनेके अर्थ जैसे उष्णता दूर करनेकी आवश्यकता है, शीतलता तो उसकी स्वाभाविक वस्तु है। इसी तरह आत्मामें शान्ति स्वाभाविक है। परन्तु अशान्तिके कारण मोहादि शत्रुओंको दूर करनेकी आवश्यकता है। शान्ति तो अन्तस्तलमें निहित है। श्री सनत्कुमारजी आशीर्वाद। जहाँ तक बने बाह्याडम्बरसे बचना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८४]

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आये समाचार जाने। मेरा शरीर निरोग है। यह गल्प है जो मेरा फागुनमें अवसान होगा। आप चिन्ता न करें।

पर विजय प्राप्त करली। सबसे प्रबल अरिके विजय होने पर शेष कोई रहता ही नहीं। अन्य कर्मोंमें अरिकल्पना सहकारिताये है। परमार्थसे शत्रु तो मोह ही है। धन्य है उन महानुभावोंको जिन्होंने इस अरिको ही अरि समझा। जिसने इस पर विजय प्राप्त कर ली वही परमात्माका उपासक और निर्ग्रन्थपदका पात्र होता है। यह भी एक कहना कुछ दिनका है वह स्वयं परमात्मा है। परमार्थ से वह वही है। उसकी कथा कहना मोहीका काम है। वह अनिर्वाच्य है। श्रीमहेन्द्रकुमार जी तथा श्री सनत्कुमार जी योग्य दर्शनविशुद्धि। जहाँ तक बने स्वाध्यायसे प्रेम करना।

सागर,
अगहन सुदि ९, सं० २ ०९ 	आ॰ शु॰ चि॰
गणेश वर्णी

[१६—८२]

श्रीयुत लाला मथनसेन जी योग्य इच्छाकार

पत्र आया। कल्याणका मार्ग यही है जो परमें निजत्व कल्पना न करना। आपत्तियाँ तो औदयिकी हैं। आती जाती रहती हैं। ऐसा उपाय करना जो अब आगे इन कामोंमें न आवें। मूल उपाय यही है। उन्हें अवक्तव्य भवा करता जावे। विशेष क्या लिखूँ—सन्तोषसे जीवन बिताना।

सागर
अगहन सुदि १२, सं० २ ९ 	आ॰ शु॰ चि॰
गणेश वर्णी

[१६—८६]

श्रीमान् लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे जो रुचि है वही कल्याणका मार्ग है। अन्यत्र कहीं कुछ नहीं। इसका अर्थ यह है कि हमारे लिये कुछ नहीं, हमारा कल्याणमार्ग हम मे ही है। हम जहाँ जावेंगे वहीं हममें है। आप जब आवें, बडी प्रसन्नता हमें है परन्तु कार्यकी उत्पत्ति तो आप में ही होगी। स्वाध्याय करना परम धर्म है।

ईसरी बाजार,
जेठ सुदि ११, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी
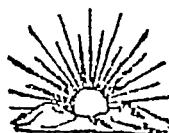
संसारमें शान्तिकी मूल चिन्तानिवृत्ति है। मेरी तो यह भावना है आप अपने स्वरूपका बोध अन्यत्र मनको न जाने दो। मोक्ष-मार्गका मूल कारण परमें निज कल्पनाका त्याग है। जिस कालमें मोहका नाश हो जावेगा राग द्वेष अनायास चले जावेंगे। आप तो ज्ञानी हैं। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। फिर अपनाना कहाँका न्याय है। जिस दिन अपनाया जावेगा अनायास यह आपत्ति टल जावेगी। आप भूलकर अभी आनेकी चेष्टा न करना। श्री सनत्कुमार आशीर्वाद। जितना निर्मल रहोगे उतना सुख पाओगे।

सागर
पौष सुदि १२ सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६—८५]

श्री महाशय कल्याणके पात्र हो

पत्र आया, समाचार जाने। स्वाध्याय ही कल्याण करेगा। हमने कुछ नहीं किया। आपकी योग्यताने आपका विकाश किया। एक बार प्रवचनसार श्री बाँचना और जहाँ तक बने ममता त्यागना। सार यही है। संसार का बीज मोह है। यही जीवना ज्ञानियोंका काम है। अभी गर्मी बहुत है। वर्षामें आनका विचार करना।

ईसरी बाजार,
जेठ बदि १, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१६–८६]

श्रीमान् लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे जो रुचि है वही कल्याणका मार्ग है। अन्यत्र कहीं कुछ नहीं। इसका अर्थ यह है कि हमारे लिये कुछ नहीं, हमारा कल्याणमार्ग हम मे ही है। हम जहाँ जावेंगे वहीं हममे है। आप जब आवें, बड़ी प्रसन्नता हमे है परन्तु कार्यकी उत्पत्ति तो आप में ही होगी। स्वाध्याय करना परम धर्म है।

ईसरी बाजार,
जेठ सुदि ११, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी
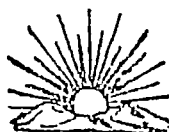
ब्र० गोविन्दलाल जी

श्री मान् ब्र० गोविन्दलाल जी का जन्म अषाढ़ सुदि १ वि० सं० १९३२ को गया में हुआ था। पिता का नाम श्री छक्कनलालजी जैन था। जाति खण्डेलवाल और गोत्र सुहाड्या था। इनकी शिक्षा इण्टरमेडियट तक हुई थी। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपनी धार्मिक योग्यता भी अच्छी तरह सम्पादित कर ली थी।

ये शिक्षा प्राप्त करने के बाद कलक्टरी कचहरी में शिरस्तेदारके के पद पर रह कर सरकारी नौकरी करने लगे थे। वहाँसे निवृत्त होनेके बाद इन्होंने ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली थी। इनके दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णी जी महाराज ही थे।

पूज्य श्री वर्णी जी महाराजके सम्पर्कमें आनेके बाद अपना उदासीन जीवन व्यतीत करते हुए ये ईसरी उदासीनाश्रममें रहने लगे थे। इन्हें सरकारकी ओरसे पेंशन मिलती थी। इसलिए ये अन्त तक अपना खर्च स्वयं वहन करते रहे। इनके पास जो सम्पत्ति थी उसमेंसे लगभग ५-७ हजार रुपया इन्होंने दानमें भी व्यय किया था। वि० सं० २ [illegible] कार्तिक मासमें समाधिपूर्वक इन्होंने इहलीला समाप्त की थी। इनका जीवन निस्पृही, परोपकारी और धर्मनिष्ठ था। ये प्रायः पूज्य श्री वर्णी जी महाराजको उनकी अनुपस्थितिमें पत्र लिखा करते थे। उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णी जी महाराजने इन्हें जो पत्र लिखे थे वे यहाँ दिये जाते हैं।

[१७—१]

श्रीयुत महाशय गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके द्रव्यको तो हम न्यायमार्गका समझते हैं। परन्तु हमारा उदय अभी वहाँकी यात्राका नहीं, अन्यथा हमारा प्रयास विफल न होता, सरियातक आये। अकस्मात् पैरमे वेदना हो गई, अब एकदम शान्त है किन्तु मार्गमें स्वाध्यायकी त्रुटि हमको एकदम असह्य हुई जो कि हमारा जीवन है। यह शीतऋतु है। स्वाध्याय रात्रिमें ४ घंटा हमारा इसरीमे होता था वह एकदम चला गया, अतः खेद हुआ। शक्ति तो हमारे पैरोमे १६ मील चलनेकी है। ६ बजे बाद चौधरीवानसे चले और १२ मील चलकर १० बजे सरिया आगये। दूसरे लिखनेका एकदम अभ्यास छूट गया। हम रिक्सामें बैठना तो उचित नहीं समझते। मनुष्य सवारीका तात्पर्य डोलीसे है सो भी जब चलनेकी शक्ति एकदम न रहे उस समयकी बात है। आप जानते हैं कि मैंने जब गिरिराजपर डोलीपर जाना अनुचित समझा तब श्रीवीरप्रभुके निर्वाणक्षेत्रको रिक्सा पर नहीं जा सकता। वन्दनाका अर्थ अन्तरङ्ग निर्मलता है। जहाँ परिणामोंमें संक्लेश हो जावे वहाँ यात्रा जानेका तात्त्विक लाभ नहीं। आपने लिखा कि हमारे द्रव्यसे यदि यात्रा नहीं करना चाहते तो श्री कन्हैयालालजी वा श्री पतासीबाई खर्च करनेको प्रस्तुत हैं सो यह कहना तो तब उचित था जब आपके द्रव्यको अयोग्य समझता। तथा मेरे पास भी १००) थे जिनको मैंने बनारस भिजवा दिये। अब यदि २ मास बाद निमित्त मिल गया तब जा सकते हैं परन्तु अभी तो शीतकालमें नहीं जावेंगे। समयसारकी यात्रा करेंगे। यह निय... तीन मास तक लिया है जो प्रातःकाल स्वाध्यायके समय बोलना और

फिर नहीं बोलना। तथा ईसरी जाकर १ मासमें एकबार ही पत्र डालना, मतिपत्रको पत्र देना। शेष कुशल है। यदि मेरे निमित्तसे आपको कोई प्रकार व्याकुलता हुई हो तो क्षमा करना जो कर्मरूप उसमें मैं हो गया।

आ शु चि०
गणेश वर्णी

[१७—२]

श्रीयुत बाबू गोविन्दलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका वा श्रीबाबू राजेन्द्रकुमार जवेरीका वा पुनः किवारी और दूसरा पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं यह संसार रागद्वेषमूलक है। तथा जब हमारे पास परिग्रह है तब *हम कहें—हमें इसकी मूर्च्छा नहीं, असम्भव है। यह विकल्प नहीं,* अन्य हागया। विकल्पजाल छूटना ही मोक्षमार्गका साधक है। हमारा दिन मौनका सुख और शान्तिमें जाता है। निमियाघाटसे ईसरी आगये, परन्तु स्थान यदि मेरेसे पूछा जाय तब *निमिया-*पाट शान्तिप्रद और रम्य तथा जल व वायु दोनोंकी अपेक्षा ईसरीसे अच्छा है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१७—३]

श्रीयुत बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा यहाँ आनकर संसार समुद्रके विपर्यौवर्में फंस गये, सो छूटे कब थे ? बाबूजी जबतक आभ्यन्तर माहकी

सत्ता बलवती है तबतक इस जीवका कल्याण होना दुर्लभ है। आचार्योंने जो लिखा है 'निःशल्यो व्रती' सो इतना उत्तम लक्षण है जो वचनागोचर इसका भाव है। हम धर्मसाधन तो करना चाहते हैं और उसके अर्थ घर भी छोड़ देते हैं, धन भी छोड़ देते हैं परन्तु शल्य नहीं छोड़ते। यही कारण है जो आप बिना फंसाये फस गये। अस्तु अब इस कथाको छोड़ो। श्री रतनलालके वियोगसे इस समय उसकी अनाथ विधवा असहाया तथा हीना है, अतः आपका जितना पुरुषार्थ हो उसे लगाकर उसके धनकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना तथा उन दोनों माँ बेटीकी सुरक्षित स्थानमें रहनेकी व्यवस्था करके ही अबकी वार नि.शल्य होकर ही आना। हम लोग अभी बहुत जघन्य श्रेणीके मनुष्य हैं और चाहते हैं कि उत्तम श्रेणीवालोंके आत्मीक रसका आस्वाद लेवे। सो स्वाद तो दूर रहा जो है उसीके स्वादसे वञ्चित रहते हैं। उतावली न करना, धीरतासे काम करना। यदि उसके कुटुम्बी आपत्ति करें तब पञ्चायतकी शरण लेना। श्रीयुत बाबू विलासरायजी तथा सेठी चम्पालालजी आदि वहाँ हैं। आप कुछ भी भय न करना। आप स्वयं ३० वर्ष अदालतमें विताए, आप क्यों भीरु होंगे? राजगृही जानेका विचार पक्का है परन्तु कारणकूट मिलने पर ही तो कार्यमें परिणत होगा। आजकल सेठी प्रेमसुखजी ३ दिनसे ज्वरसे पीड़ित हैं, कुछ नहीं खाया। आज कुछ शान्ति है। शेष ब्रह्मचारी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्रीकुञ्जीलालजी अच्छे हैं। भगतजी कलकत्ते गये। यह न समझना हमें बिल्कुल नादान समझ लिया। आपका तो उनसे सम्बन्ध था इससे यदि दु.ख हो तो आश्चर्य नहीं। परन्तु हम तो आपसे भी विलक्षण हैं जो बिना सम्बन्धके दुखी हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—४]

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दप्रसादजी योग्य दर्शनविशुद्धि

रतनलालजीका असामयिक स्वर्गवास असिदु:खका कारण सुननेवालोंको हुआ। फिर आपकी तो कथा ही दूसरी है। सबसे बलवान दु:ख तो उसकी गृहिणी और बच्चोंको हुआ होगा। आप जहाँ तक बने उन्हें अच्छी तरह सान्त्वना देना, क्योंकि आप उनके हितैषी हैं। विपत्तिमें शान्ति देना उत्तम पुरुषोंका काम है। संसार दु:खमय है। वही पुरुष इसमें सुखी हो सकता है जो मूर्छा छोड़े। परन्तु वह बिचारी अनाथ विधवा क्या कर सकती है? उसकी रक्षा करना मेरी समझमें एक महान् पुण्यके बराबर है। विशेष क्या लिखें। हमारा आप कोई विकल्प न करना। याम्यता मिलने पर राजगृही आवेंगे। हमारे तो श्री पार्श्व नाथ और वीरप्रभुमें कोई अन्तर नहीं।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७—५]

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दप्रसादजी योग्य दर्शनविशुद्धि

हमने पत्र दिया है। हमारा विचार राजगृही आनेका है परन्तु अभी आना कठिन है, अतः आपको यदि अवकाश हो तो देख जाना। संसार दु:खमय है। इससे उद्धारका उपाय मोक्षकी छाया है। उसपर हमारी दृष्टि नहीं। दृष्टि क्यों हो, निरन्तर पर पदार्थों में रत हैं, अतः तत्त्वज्ञान भी कुछ उपयोगी नहीं। केवल

तत्त्वज्ञानका उपयोग, हमारी प्रतिष्ठा रहे इसीके लिये है। व्रतादिकका उपयोग पर पदार्थकी मूर्च्छा जाए विना कुछ नहीं। सेठ कमलापतिका कोई समाचार नहीं। अति लोभी; एक पोस्ट कार्ड तक नहीं दिया। आपकी उनपर बड़ी श्रद्धा है तथा उनकी आप पर है, अतः एक पत्र डाल देना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आप हमारी चिन्ता न करना, क्योंकि उदयाधीन सर्व सामग्री मिलती है। आपका आना तब होगा जब वीर प्रभुने ज्ञानमें देखा होगा। कहने से कुछ नहीं, अतः निःशल्य होकर वहीं सानन्दसे स्वाध्याय आदिमें समय बिताइए यही कल्याण का पथ है। देखिए उदयकी बात, हमारे मनमें यह आई थी जो आपसे ताजा घी मगावें, परन्तु मनने कहा क्यों लिखते हो पर आपने भेज दिया। यह क्या है उदय ही तो है। यह सर्व होकर भी मनुष्योंकी यथार्थ प्रवृत्ति न हो यही आश्चर्य है!

श्रीयुत लालचन्दजी से इच्छाकार, आप सानन्द नित्य नेममे उपयोग लगाइए यही पर्यायका लाभ है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७-६]

श्रीयुत महाशय गोविन्द बाबु, योग्य दर्शनविशुद्धि

बन्धुवर, आप रञ्चमात्र विकल्प न करना। आपको मेरी प्रकृतिका पता है। फिर आप लिखते हैं—आपका क्षमा माँगना ( ) का कारण है। नहीं, मेरी बाल्यावस्थासे ही किसी भी प्राणीके प्रति स्वप्नमें द्वेषबुद्धि नहीं रहती फिर आप तो हमारे

महात्मा स्नेही सज्जन हैं। प्रत्युत आपके बिना मुझे यहाँ बहुत ही खेदसा रहता है। मैं उनसे प्रसन्न रहता हूँ आ अन्तरंग सुख बिल रहते हैं। अब आप मेरी तरफसे कोई भी कणिका शल्य मयी न रखिये और जहाँ तक बने धर्म ही अपना कल्याणकारी है इसी ओर लक्ष्य रखियेगा। मैंने ब्रह्मचारियोंसे पूछा तब निम्न पुस्तकें उनने माँगी। समयसार सटीक ब्रह्मचारी भगवानदास और ब्र० आत्मानन्द स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ब्र० कमलापति। १ पत्र आप इस पतेसे डाल देवें, वी० पी का पता ईसरी मगनसेनके नाम लिख देवें। मोक्षमार्ग मिलता नहीं, अतः नहीं लिखा। और पुस्तकें आपके आनेपर मँगावेंगे। बादाम प्रायः मैं अबसे आम आप नहीं खाता अत हमारे व आपके व जगत पूज्य पार्श्वप्रभुके चरण समर्पितका रख न करना। फिर भी हम भी तो आखिर छद्मस्थ अल्पज्ञ प्रमादी जीव हैं। यदि किसी प्रकारकी त्रुटि हो जावे तो उसे अनात्मधर्म मान वस्तु मर्यादा मान तट ज्ञानी होना, न कि खेद करना। आप जानते हैं आज तक हम और आप जो इस संसारमें भ्रमण कर रहे हैं उसका मूल कारण यही प्रमाद दशा है। यदि हम प्रमादसे अन्यथा लिख देवें तब क्या यह लिखना श्रेयस्कर होगा कदापि नहीं। अथवा आप लिख आवें अथवा कोई लिख जावे, प्रशंसनीय नहीं। जब आप यहाँ शुभागमन करेंगे मैं सब समाधान कर दूगा। और भी लिखता हूँ मेरी ऐसी प्रकृति है जो बिना देनेवालेकी मर्जीके बिना तथा अपनी आवश्यकताके बिना रुपया व्यय करना नहीं जानता। स्याद्वाद विद्यालयसे अन्त प्रेम है, अत पुनरुक्ति आदि आपसे हो गई न कि भ्रम। मेरे पास अब कुल १०) था उसमें ७ ०) और स्याद्वाद विद्यालयमें देनेका निश्चय किया है। केवल डाकखानेसे निकालनेका विलम्ब है, । ३) रह गये हैं, इसीमें

स्वकीय आयुको पूर्ण करूँगा। यदि न्यूनता पड़ेगी, आप सज्जन हैं, मुझे किञ्चित भी विकल्प नहीं। शष आपके सर्व समाचार लोकोंसे कह दिये। आपका पत्र आने पर सन्तोष होगा।

जेठ सुदी ६, स० २००४ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–७]

श्रीयुत महाशय बा० गोविन्दलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे यह एक पद्धति लिखनेकी है। वास्तव आनन्द तो तब होगा जब यह रागादि शत्रु दूर हों। इनके सद्भाव में काहेका आनन्द। जिस रोगको हमने पर्याय भर जाना और जिसके अर्थ दुनियाँके नामी वैद्य हकीमोंको नव्ज दिखाया तथा उनके लिखे या बने या पिसे पदार्थोंका अनुपान किया और कर रहे हैं वह तो वास्तवमें हमारा रोग नहीं, जो रोग है उसको न जाना और न उसके जाननेकी चेष्टा की और न उस रोगके वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट रामबाण औषधका प्रयोग किया। यद्यपि उस रोगके मिटनेसे यह रोग सहज ही मिट जाता है। जैसे सूर्योदयमें अन्धकार। अस्तु, अब मैं यहासे जेठ सुदी १ या २ को चलूंगा। कोईको मेरे पास भेजनेकी आवश्यकता नहीं, मेरा उदय ऐसा ही कहता है जो सानन्द रहो और किसी को अपनेसे कष्ट मत पहुँचाओ तथा पर्यायकी सार्थकता करो यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। श्री चन्दाबाईसे मेरा इच्छाकार कहना। मैं तो उन्हें बहुत सज्जन और धर्मात्मा जानता हूँ। यद्यपि मेरा विचार जल्दी आनेका न था परन्तु ऐसा ही होना था, निश्चित सिद्धान्त तो

पड़ी है, भावका यह भाव है। श्री छोटेलालजीका इच्छाकार तथा सर्व ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। जो मनुष्य अपनी आलोचना करेगा वह संसारसे पार होगा। जो परकी समालोचनामें अपना समय लगावेगा वह संसार भ्रमणका पात्र होगा, विशेष क्या लिखें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—८]

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

अपरंच हमारा आना जाना पराधीन हो गया। यहांसे मैंने कई बार आनेका प्रयत्न किया परन्तु कारण कूटके न मिलनेसे नहीं आ सका। अब गर्मी बहुत पड़ने लगी है। यहां पर केवल ४ बजे तक गर्मी रहती है। इस से यह विचार किया जो जेठ भर यहीं रहना उत्तम होगा क्योंकि यहां की अपेक्षा गर्मी कम पड़ती है। आज पं नन्हेंलालजी वैद्य आए हैं। २) मासिक का १ मकान भाड़ा लेनेका विचार है। नन्हेंलालको भेज देवें। वैसे आश्रमवासे कहें सा लिखना। आश्रमवासी सम्पूर्ण ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। श्रीयुत प्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७—६]

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपकी जो श्रद्धा है उसके हम स्वामी नहीं। परन्तु हमारी श्रद्धा है जो किसीके उपदेशसे किसी

पर प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि ऐसा था तब अनन्त वार सम-वसरणमें गए और अनन्तबार द्रव्यलिंग धारण कर ग्रैवेयक गए परन्तु आत्मकल्याणसे वञ्चित रहे, अतः मेरे निमित्तसे आप आनेकी चेष्टा कर रहे हैं यह मेरी बुद्धिमें नहीं आता है। वच्ची की दयासे वहां पर हैं यह भी बुद्धिमें नहीं आता है। जिस मोहसे ठहरे हो उसका नाम भी नहीं। अपने मोहभावसे सर्व चेष्टा है, वच्चीकी दया नही। अपने परिणाममें जो उसके निमित्तसे अनुकम्पा हुई है उसके दूर करनेकी सर्व चेष्टा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१०]

श्रीयुत महाशय गोविन्दरामजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द आ गए। उदयाधीन सामग्री भी मिल गई, परन्तु गर्मीका प्रकोप सर्वत्र है। सर्वसे बड़ा सुख इस वातका हुआ जो चित्त अब क्षुब्ध नहीं होता। हमारा यह विचार यहां आनेसे हुआ जो श्री तीर्थराजको छोड़ गृहस्थोंके सम्बन्धमें रहना अच्छा नहीं, क्योंकि ममत्व ही वन्धका जनक है। यहां तक निश्चय किया, चाहे आप लोग रहो या न रहो। भाद्र मास तक तो ईसरी ही रहना।

आ० शु० चि०
गणेश व०ī

[१७–११]

श्रीयुत बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःख तो कल्पनामें है, कल्याण आत्मामें है। मैं स्वयं अकिंचित्कर आपसे पुरुषोंका उपकार कर सकता हूँ? फिर फागुन वदी १ को वहाँ आऊंगा ही। श्रीप्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धि। कलकत्तेसे कोई समाचार आया नहीं। गृहस्थका संग दुःखद है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७–१२]

श्रीयुत महाशय बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द स्वाध्याय होता होगा स्वाध्यायका फल रागादिकों की उपशमता है। यदि उपशमता तीव्रोदयसे न भी हो तब मन्दता तो अवश्य ही होनी चाहिये। मन्दता भी न हो तो विवेक अवश्य होना चाहिये। यदि विवेक भी न हो तब तो स्वाध्याय करनेवालेने क्या लाभ स्वाध्यायसे लिया। जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिका निरन्तर अवलोकन कर वास्तविक सुधार करनेका प्रयत्न करता है वही इस व्यवहारधर्मसे लाभ उठा सकता है। जो केवल ऊपरी दृष्टिसे शुभोपयोगमें ही सन्तोष कर लेते हैं वे उस पारमार्थिक लाभसे जिससे चिरकालीन शान्ति मिले वंचित रहता है। जो परिग्रह वर्तमानमें आकुलता का उत्पादक है यदि व्यवहार धर्मसे वह मिल गया तब मेरी समझमें आकुलताके सिवाय क्या लाभ

उठाया ? यदि अज्ञानी जीव इससे सन्तोष कर लें तब आश्चर्य नहीं। परन्तु जो स्वाध्याय करके तत्त्वज्ञानके सम्पादन अर्थ निरन्तर प्रयास करते हैं यदि वे मनुष्य सामान्य मनुष्योंकी तरह भी इसीमें सन्तुष्ट हो जावें तब आश्चर्य है। जिन्होंने शान्तिके ऊपर ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है उन्हें इन बाह्य ज्ञेयोंमें उलझना उचित नहीं। अपनी लालसाको छोड़नेके अर्थ जिन जीवोंने त्यागधर्मको अङ्गीकार किया फिर भी इन्हींकी तरफ यदि लक्ष्य रक्खा तब उस जीवने उस त्यागमें क्या लाभ उठाया। क्योंकि त्यागका अर्थ आकुलताका अभाव है। यदि वह न हुई तब उस त्यागसे क्या लाभ ? जितने कार्य्य संसारमें मनुष्य करता है उसका लक्ष्य सुखकी ओर रहता है और सुखोत्पत्ति वास्तव रीतिसे विचार किया जावे तब त्यागसे ही होती है। इसीसे जैनधर्मका उपदेश त्यागको लक्ष्य करके ही है। यदि इसपर लक्ष्य न दिया तब वह मार्मिक ज्ञानी नहीं। इसके ऊपर जिनकी दृष्टि रही वही त्याग कर सफल प्रयत्न हो सकते है। हम जेठ बाद आवेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१३]

श्रीयुत बाबुजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मनुष्य वही है जो निर्द्वन्द्व रहे। हम तो ऊपर से बहुत चेष्टा निर्द्वन्द्व होनेकी करते हैं परन्तु आभ्यन्तर व्यापारके बिना कुछ होता नहीं। वहां की उपेक्षा यहां अशान्तिके बहुत बाह्य कारण हैं फिर भी उनसे आत्मरक्षाकी निरन्तर चेष्टा रहती है। मोही जीव

बाह्य कारणोंसे पृथक् होनेका प्रयत्न करता है परन्तु जो कारण हैं अशान्तिके हैं उनका परिज्ञान ही नहीं। यही कारण है कि एक बाह्य कारणसे छूटता है और उससे कहीं अधिक संग्रह कर लेता है यही तो महती भूल है। जब तक इसको न निकालेगा सभी प्रयास निष्फल हैं। हम अपनी व्यवस्था जो अनुभूत है लिख रहे हैं। आप लोगोंकी आप जानें या वीर प्रभु जानें। हम भी जानते हैं परन्तु हमारा जानना अनुमानाभास भी हो सकता है। आभ्यन्तर कलुषताको छोड़नेकी चेष्टा ही मोक्षमार्गमें जानेकी गली है। इस गलीसे मोक्षमार्गका पन्थ दीखता है।

सागर
जेठ वदि ११ सं० २००

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७—१४]

श्रीयुत बाबु गोविन्दप्रसाद जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। आत्मवान् जीव ही श्री १००८ पार्श्व प्रभुके निर्वाण क्षेत्रमें निवास करनेका पात्र होता है। आप लोगोंके सौभाग्यका उदय है जो निराकुलतामें धर्म साधन कर रहे हैं। ऐसी भावना भाता जो हम भी आ जावें। अब हमारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। २ या ३ वर्षके मिहमान हैं, आप लोगोंके समागममें समाधिमरण हो। अन्तिम आशा है जो अन्तिम संस्कार श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें आप लोगों द्वारा हो। पं० शिखरचन्दजीसे धर्मविशुद्धि। योग्य व्यक्ति हैं। जो त्यागी महाराज हों, सबसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१५]

श्रीयुत बाबु गोविन्दलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। पैदल चलनेवालोंको गर्मी और शर्दीका पता मालूम होता है। सवारीसे जानेवालोंको इसका बोध नहीं। हमे श्री गिरिराज आना इष्ट है परन्तु किस प्रकार पहुँचेंगे इसका पता नहीं। उदय ही पहुँचायेगा। उदय भी पुरुषार्थका भेद है। किन्तु एक बात स्मरण रखना—हमको बहुत अशोंमे आपकी समाज नहीं चाहती, अतः सब तरहसे परामर्श करके ही हमारे बुलानेका प्रयत्न करना। अभी कुछ नहीं गया है। श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरके पट्टशिष्योंने हमको कमंडलु छीननेकी धमकी दी है। प्राय: आपकी समाज अधिकांशमें उनके श्रीमुखसे निकला उसे ही आर्षवाक्य मानती है, अतः हम तो आवेंगे ही परन्तु अब आप लोगोंके द्वारा आना अच्छा नहीं। इसे अच्छी तरह विचार लेना। व्यर्थके झगड़ेमें मत पड़ना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वाध्याय ही परम तप है। प्रायश्चितके विषयमें लिखा था सो कोई विकल्प न करो। यदि विकल्प मेटना है तब दो दिन मौनसे बिताओ और एक पात्रको भोजन करा देना।

इटावा
चैत्र सुदि ६ सं० २००६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-१६]

श्रीयुत बाबु सा०, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हम तो आपके द्वारा स्वप्नमें भी अपमानित नहीं किए जाते, क्षमा काहे की करें। आप

सानन्दसे धर्म साधन करिए। आपके हृदयमें यह कैसे आ गई जो मैं विलायत जाता हूं और यदि आगमानुकूल जाऊं तब क्या क्षति है ? विलायत तो भरतक्षेत्रमें ही आगमानुकूल है। मेरा तो यह कहना है कि १०० गृहस्थ हों, २० विद्वान् हों, ९० त्यागी हों। एक बड़ा भारी जहाज हो। उसमें शुद्ध खान-पान रहे। अथवा हवाई विमान हो, ५० लाख रुपया हो २४ घंटे में अमरीका पहुँच जावे। वहाँ पर १५ लाख रुपया लगाकर एक मन्दिर बनाया जावे। तथा वहाँ ऐसी प्रभावना की जावे जो यह जैनधर्म कहलाता है। ऐसी ही प्रभावना अमेरिकामें भी की जावे। परन्तु यह होना क्या सम्भव है ? अस्तु मैं तो जैनधर्मका भक्तमात्र हूँ। कोई कुछ समझे। तथा यह भी मेरी भावना है जो प्राणी मात्रको धर्म समझाया जावे चाहे किसी वर्गका हो। केवल हम ही उसके पात्र हैं यह सब ठीक नहीं। पं० रिखबचन्दजी से दर्शनविशुद्धि। सर्वत्यागी गणसे इच्छाकार।

इटावा } आ० शु० चि०
आ० ब० ६ स० २ ६ } गणेशप्रसाद वर्णी

[१७–१७]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। परन्तु जसवन्तनगर आप, एकदम ज्वर आ गया तथा पैरोंमें सूजन आ गई। अभी अच्छे होनेकी सम्भावना नहीं। एक मासमें आराम होगा। तबतक इटावा ही रहेंगे। क्या होगा हम नहीं कह सकते। हमने पुरुषार्थ में त्रुटि न रक्खी परन्तु भाग्यमें सहायता नहीं। आपको इसका खेद न करना चाहिए। मेरा सर्व महाशयोंसे

इच्छाकार। श्री अधिष्ठाता सोहनलालजीसे विशेष कहना। सेठ जी का अब स्वास्थ्य अच्छा होगा। हमारी क्या दशा होगी, श्री भगवान जाने।

इटावा
पौष सुदि १२, स० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१७-१८]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मै सब प्रकारसे आपकी वैयावृत्य करनेको तैयार हूं परन्तु यहाँसे सब चले गये, कोई यहाँ पर नहीं है। तथा यहाँ पर गर्मी बड़े वेगसे पड़ रही है। आप जानते हैं आज कल ऐसा काल है जो ऊपरसे व्याख्यान देनेवाले बहुत हैं अमल करनेवाले न वक्ता हैं और न श्रोता हैं। अस्तु आपने आजन्म धर्मसाधन किया है। यथाशक्ति दान भी दिया है। अब अन्तिम समय श्री पार्श्वप्रभुके पादरजको न छोड़िए और अन्तरङ्ग में निर्मल वृत्ति रखिए। अन्य तो निमित्तमात्र हैं। आत्मीय मूर्च्छाको छोड़िए। आत्मा अकेला है, अकेला ही जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है और अकेला ही मुक्तिका पात्र होता है, अतः आप शान्तिसे रहिए और असाध्य बीमारी न हो तब शीघ्रता न करिए। जो रुचे सो अल्प भोजन करिए। औषधिके चक्रमें न पड़िए। केवल पार्श्व स्मरण औषध सेवन करिए, और समाधिमरणका पाठ सुनिए। पर्यायके अनुकूल त्याग करिए, आडम्बरमें न पड़िए। राग द्वेषके अभावमें आप स्वयं परमात्मा हैं, अतः परमेश्वर की भक्ति करिए परन्तु भक्तिमें राग न करिए। परमेश्वर [illegible]

स्मरण ही आत्माको शान्तिदायक होगा। यदि किसीसे ममता हो तब उसे त्यागिए यही कल्याणका मार्ग है। बाह्यमें निमित्त कारणका ही त्याग किया जाता है परन्तु अन्तरंग त्याग बिना वह त्यागा जाता है। मैं आशा करता हूँ जो आप सब विकल्प छोड़ शान्त होनेका प्रयास करेंगे। आप स्वयं वर्णी हैं। आपकी वृत्तिसे अन्य वर्णी बन जाते हैं। आप क्या वर्णीका आश्रय लेते हैं।

इटावा
वैशाख सुदि ६, सं २ ७

आ शु चि॰
गणेशवर्णी

[१७–१९]

श्रीमान् बाबुजी, योग्य इच्छाकार

मैं आपका पत्र ले चुका। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आनन्दसे स्वाध्याय करिए। स्वाध्यायका तात्पर्य आत्मा पदार्थ पर से भिन्न है, ज्ञाता दृष्टा है। कोई द्रव्य का कोई द्रव्य न कर्ता है न धर्ता है और न नाशक है। व्यर्थ की कल्पना छोड़िए। मैं तो कोई ज्ञानी विज्ञानी नहीं किन्तु जो वीतरागी विज्ञानी हैं उनकी भी आशा छोड़िए। अपनी भूल मेटा यही शिवमार्ग है।

इटावा
वैशाख सुदि ६, सं २ ७

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१७–२०]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी योग्य इच्छाकार

आपकी सम्मति प्रशस्त है परन्तु वहां पहुँचना तो कठिन हो रहा है। शरीरशक्ति प्रबल नहीं। भावना यही है जो आपकी

सम्मति है। मैं आपको निजी समझता हूं। सर्व त्यागी मण्डलसे इच्छाकार।

इटावा
जेठ सुदि २, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२१]

श्रीयुत बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। अब मेरा स्वास्थ प्रतिदिन पक्वपान सदृश ही होता जाता है। गर्मी के प्रकोपसे एक मील चलना असम्भव है। कहां यह उत्साह था जो श्री गिरिराज के पादमूल में समाधि करूंगा। अब कहा यह भावना जो एक स्थान मे शान्तिसे जीवन यापन करूं। अब अन्तरगसे किसीसे भाषण करनेको उत्साह नहीं होता किन्तु श्रद्धामें न्यूनता नहीं। आप भी शरीरकी कुछ भी दशा हो परिणामोंमे उत्साह रखना। कल्याणका मूल परिणामकी अमलता है, समलता घातक है। समलताका कारण अन्तरङ्गसे भेदज्ञानका अभाव है। अतः अपनेको भेदज्ञानसे ओतप्रोत रखना। गल्पवादमें काल न जावे। भगवतीआराधनाका स्वाध्याय करना। शल्य न करना। अब समय सावधानीका है। बाबु धन्यकुमार इच्छाकार, योग्य हैं। तथा उनके घरसे भी इच्छाकार कहना।

इटावा
द्वि० अषाढवदी ३, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१७-२२]

महानुभाव, इच्छाकार

मैंने पत्र डालना बन्द कर दिया है। शरीर की अवस्था दूषित

न हो ऐसा उपाय करना, यही कल्याणका पथ है। मेरा तो यह विश्वास है तो पर पदार्थमें मूर्च्छा त्यागो चाहे वह लौकिक पदार्थ हों, चाहे अलौकिक हों। कल्याणका मार्ग तो निरीह वृत्तिमें है। उपेक्षा ही मावकी जननी है। अब एकोऽहं नान्योऽहं यही भावना भावो। अब हमारा शरीर यात्रा योग्य नहीं।

इटावा
श्रावण वदी ६ सं २००७

आ शु चि॰
गणेश वर्णी

[१७-२३]

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसाद जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। अब वृद्धावस्थामें मकरध्वजकी आवश्यकता नहीं। आपको भी मैं सम्मति दूंगा जो अब आप भी सर्व विकल्पोंको त्यागिए। तथा अधिकांशमें यही भावना भाइए-

'जन्मे मरे अकेला चेतन सुख दुखका भोगी'

इसका ही सहारा कल्याणकारी है। कोई शक्ति नहीं जो आत्माका कल्याण कर सके। हम मोही जीव संसार भरको अपना कल्याणकारी मान लेते हैं। जैनसिद्धान्त तो यह कहता है—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"

सर्वथा असत्यार्थ ही न मानना यही पाठ ही ठीक है। धन्य कुमारजी आगए अच्छी तरह हैं।

ललितपुर
श्रावण सुदि ४ सं २००८

आ॰ शु चि॰
गणेश वर्णी

[१७–२४]

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दलाल जी, जैन इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आपका अपराध क्षमा करूँ इसका यह अर्थ हुआ जो कि आपको अपराधी बनाऊँ अतः मेरी तो यह भावना है जो आप किसीके अपराधी नहीं और न हैं, और न आगामी होंगे। थोड़े कालकी संसार स्थिति है उसे पूर्ण कर लो पश्चात् यथा नाम तथा होगे। खाने पीनेसे आत्मा अपराधी नहीं होता। गृद्धता अपराधकी जनक है। सो नहीं होनी चाहिए। अतः पर्यायानुकूल भोजन करनेमे कुछ भी अपराध नहीं। व्यर्थके विकल्प मत करो। सानन्द से स्वाध्याय करो। कार्य करते जाओ। सबसे ममता त्यागो। मेरी तो यह श्रद्धा है जो अन्य से ममता त्यागो यह तो सब कोई कहता है पर धर्म तो यही कहता है कि अपनेसे ममता त्यागो। हम क्या कहें ?"

"अपनी सुध भूल आप आप दुख उपायो।"

किसी को क्या दोष देवें ? अस्तु पछतानेमे कुछ लाभ नहीं। सन्तोष ही लाभका जनक है। सन्तोषका अर्थ परसे सम्बन्ध छोड़नेका है। अब जहाँ तक बने आपकी दृष्टि ही कल्याण जननी है। अनादि कालसे पर दृष्टि ही रही, हमने परको अपराधी समझा यही पहली त्रुटि जीवनमें रही, इसे त्यागो। सब त्यागियोंसे इच्छाकार। मैंने न तो कोईका अपराध किया और न कोईने मेरा अपराध किया, अतः क्षमा मांगना उचित नहीं समझता हूँ। यदि मैं अपराधी हूं तो अपना ही अपराधी हूं। जब तक इसे न छोड़ू गा कुछ भी न होगा।

क्षेत्रपाल ललितपुर
अषाढ सुदी ३, सं० २००८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० हुकुमचन्द्रजी

श्रीमान् ब्र० हुकुमचन्द्रजीका जन्म मेरठ जिलान्तर्गत सलावामें कार्तिक कृष्णा ६ वि० सं० १९५२ को हुआ था। पिताका नाम लाला मामूमलजी और जाति अग्रवाल है। प्रारम्भिक शिक्षा होनेके बाद ये अपने घरका कार्यभार स्वयं देखने लगे। इनके यहाँ जमींदारी और रुपयेका व्यापार होता था।

इनका विवाह तो हुआ था। किन्तु १२ वर्षकी वयमें ही पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृह-कार्यसे विरत हो आत्म-साधनामें लग गये। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने षट्खण्डागम और कषायप्राभृत जैसे महान् ग्रन्थोंमें भी प्रवेश पा लिया है। सर्व प्रथम इन्होंने महाराजके साथ व्रत प्रतिमाके व्रत लिए थे और कुछ काल बाद ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वीकार कर ली है। दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज हैं।

अपने गार्हस्थिक जीवनमें इन्होंने कांग्रेस द्वारा देशसेवाके कार्योंको भी रुचिपूर्वक किया है। कुछ दिन तक ये नगर कांग्रेसके मंत्री भी रहे हैं। उत्तर प्रान्तीय गुरुकुल खुल जानेपर ये बहुत कालतक उसके अधिष्ठाता भी रहे हैं। आजकल ये इस गुरुकुल द्वारा धर्म और समाजकी सेवा करते रहते हैं। इनकी चित्तवृत्ति माध्यस्थ्य सेवाभावी और निरहंकारी है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति है। अक्सर इनका अधिक समय उनके सान्निध्यमें जाता है। अवकाश रहने पर पत्राचार द्वारा अपनी जिज्ञासा पूर्ति करते रहते हैं। फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजद्वारा जो पत्र इन्हें लिखे गये हैं उनमेंसे कतिपय उपलब्ध हुए पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१८–१]

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकमचन्द्र जी जैन ब्रह्मचारी,

योग्य इच्छाकार

मैं का० सुदि २ को श्री गिरिराजजीकी ओर प्रस्थान करूँगा वहां पर महान् समारोह होनेवाला है। व्याख्यान तत्त्व विवेचन तो होवेंगे ही किन्तु यह होना प्रायः कठिन है। जो ४ या ६ व्यक्ति जो कि सर्व तरहसे सम्पन्न हैं मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हों। मोक्ष मार्गसे तात्पर्य निवृत्तिमार्गसे है। संयम विना सम्यग्दर्शन ज्ञान कर्मबन्धन नहीं काट सकते। आपेक्षिक विवेचना कर मूल अभिप्रायका घात नहीं होना चाहिए। अतः जहांतक पुरुषार्थ हो इसमें लगाना जिससे मेला और यात्राकी सार्थकता हो। आज जो धार्मिक संस्था यथार्थ नहीं चलती उसका मूल कारण हमारे गृहस्थ भाई त्यागी होकर संस्था नहीं चलाते। अतः परिश्रम कर अबकी वार वह प्रयत्न करना जो ४ या ६ गृहस्थ आप लोकोंकी गणनामें आ जावें। केवल शब्दोंकी बहुलतासे प्रसन्न हो जाना पानी विलोवन सदृश है। तथा वहां पर जो संस्था है उसमे २०० छात्र अध्ययन करें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए। तथा आपकी जो मण्डली हो कमसे कम २० महानुभाव उसमें होना चाहिए। इस प्रकारके व्याख्यान होना चाहिए जो प्राणीमात्रको उसमें रुचि हो। धर्म्म वस्तु व्यक्तिगत है। विकाशकी आवश्यकता है। जब असंख्यात लोकप्रमाण कषाय हैं तब उनका अभाव भी उतने ही प्रकारका होगा। पूर्ण कषायके अभावका नाम ही तो यथाख्यातचारित्र है। एक भी भेद जहां रहे वहां वह यथाख्यात नहीं हो सकता।

भगवान् समन्तभद्रने तो लिखा है—'गृहस्थो मोक्षमार्गस्था'—आदि अतः ऐसा विवेचन करो जो सर्व मनुष्य लाभ उठा सकें।

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[१८-२]

श्रीमान् प० हुकमचन्द्र जी तथा सर्व मण्डली,

योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। प्रसन्नता इस बातकी है जो आप लोक सामूहिक रूपसे एक विशेष क्षेत्रपर तत्त्व विचार कर रहे हैं। किन्तु अब अन्यत्र जानेकी इच्छा करना ही आपके तत्त्व विचारमें बाधक है। इस विकल्पका त्यागो जो अन्यत्र विशेष लाभ होगा। लाभ तो पर समागम त्यागमें है, न कि पर समागममें। हम शिखिरजी मोह वश जा रहे हैं। लाभ विशेष होगा यह नियम नहीं। फिर आप ये कहोगे क्यों जा रहे हो। मोहकी प्रबलतासे।

आपका समागम अति उत्तम है। तत्त्व विचार क्षयोपशमके आधीन है। कल्याण होना मोहकी कृशतामें है। समयसार ही कल्याणमें प्रयोजक हो सो नहीं, कल्याणका कारण तो अन्तरंगकी निर्मलता है। कल्याणकी व्याप्ति माहके अभावमें है। सर्वांगमका ज्ञान इसका साधक नहीं, अतः भूलकर इस भीषण गर्मीमें अपने उपयोगका दुरुपयोग न करिए। मैं आगे जेठमें गया पहुँचूगा। जहाँ पर हूँ यहाँसे २५ मील है। श्रीहस्तिनाग पुरके मंदिरकी शीतलताको त्याग विहारकी ज्वालामें भूलकर कभी मत आइए। मैं आपको तथा आपकी मण्डलीको उत्तम दृष्टिसे

देखता हूं, अत. यही सम्मति दूगा जो बाहर जानेके विकल्प त्यागिए। मैं तो अब मदिरमें जाता हूँ तो प्रतिमाके समक्ष यह भावना व्यक्त करता हूं-भगवन्! आपके ज्ञानसे ऐसा देखा गया हो जो अब वापिस 'न आना पड़े। मेरी कार्य मात्र करनेमें यही भावना रहती है जो अब फिर न करना पड़े, चाहे शुभ कार्य हो चाहे अशुभ। आप लोक ज्ञानी हैं। ज्ञानके साथ मुमुक्षी भी हैं। फिर अब चिर स्थितिका एक स्थान बनाकर सर्वसे सम्बन्ध छोड़िए और मुझे भी अपना जान इन विकल्पोंसे मुक्त कीजिए। विशेष क्या लिखू।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—३]

श्रीयुत महाशय प० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य कल्याण-भाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप विवेकशील हैं, अतएव आप जहाँ रहेंगे वहाँ उसीका प्रचार होगा। आप करें चाहे न करें मेरी तो यह सम्मति है जो अन्तरंग परिणामोंमें परमें निजपना न आवे यही तत्व मोक्षका उपयोगी है। चाहे कहो चाहे सुनो, जब तक परको नहीं भूलोगे शान्ति न मिलेगी। एक ही तात्पर्य है। 'आतमके अहित विषय कषाय' इसका यही अर्थ है। मुजफ्फर-नगरवालोंको यही सदेश कहना और कहना इसीके अनुयायी बनें। जो काम करो यह तत्व न भूलो चाहे वह कार्य यथाशक्ति कुछ हो,

आपका सम्पर्क सबको इष्ट है। सम्पर्कसे लाभ होता ही है, नियम नहीं। परन्तु जब होगा तब संसर्गसे ही होगा।

आ शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८–४]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी साहब श्रीयुत पण्डित शीतलप्रसाद जी व श्रीयुत लाला मक्खनलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। आप लोकोंका समागम अत्यन्त हितकर है परन्तु उदय भी होना चाहिए। कल्याणका मार्ग सुलभ है किन्तु हृदय सरल होना आवश्यक है। हृदयकी सरलताका अर्थ है अन्तरङ्ग माद्र भी नहीं होनी चाहिए। हम अपनी कहते हैं। ७८ वर्षके हो गए परन्तु भीतरसे जिसको कहते हैं उस पर अमल करनेसे वञ्चित रहे। निरन्तर जगत्‌की चिन्तामें व्यस्त रहे। इसमें अन्तरङ्ग रहस्य स्वप्रशंसाके भिक्षुक रहे। बाहरसे भद्र बनना अन्तरङ्गकी भद्रताका अनुमापक नहीं। आप लोकोंका धन्य है जो निर्ममतासे क्षेत्र पर धर्मध्यान करनेका लाभ ले रहे हो। आप कुछ विचारें, हमें जैसा ज्ञानमें आया लिख दिया। हमारा विचार भी ईसरीमें अन्तिम आयुके अवसान का है। अब भी पारसनाथका ही शरण है। आपको वचन दिया था उसका पालन न कर सके इसकी क्षमा चाहते हैं।

पौष वदि १ }
सं० २ ०६ }

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[१८-५]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार अवगत किए। मेरी तो अन्तरङ्गसे यही सम्मति है—आप लोकोंने पुरुषार्थ कर जो समागमका लाभ लिया है वह सर्वको हो। अतः जहाँ तक बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ चले उसे एक मिनटको भी भग न करना। मुझे तो आप महानुभावोंके समागमसे अपूर्व लाभ होगा इसमें कोई शंका नहीं, परन्तु मैं हृदयसे यही चाहता हूँ जो आप लोकोंका निरपाय समागम हुआ है वह आनिर्वाण भंग न हो। पुरुषार्थोंमें परम-पुरुषार्थ मोक्ष ही है। तीन पुरुषार्थोंमे शान्ति नहीं। चरामवस्था भी उनकी हो जावे, परन्तु उनमें शान्तिका आस्वाद नहीं। तथा हि—

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्म्मणा।
एभ्यः ससारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मनः॥
विहाय वैरिणं काममर्थञ्चानर्थसकुलम्।
धर्म्ममप्येतयोर्मूल सर्वत्र चानादरं कुरु॥

तात्पर्य्य यह है जो धर्म अर्थ कामसे ससारमें शान्ति नहीं प्रत्युत अशान्तिकी ही उत्पत्ति होती है। अत. आप लोकोंका जो पुरुषार्थ है वह निरपाय पदके अर्थ है। समागम उत्तम हो यह भी एक कहनेकी शैली है। न हो यह भी एक कथन पद्धति है। वस्तु-की स्वच्छावस्था ही तो हमको प्राप्त हो, निरन्तर यही ध्येय ज्ञानीके है। यद्यपि श्रद्धाकी प्रवलतासे सम्यग्ज्ञानीकी महिमा अनिर्वाच्य है तथापि चारित्रमोहनीयकी महिमासे ६ मास मृत मनुष्यको वलभद्र छोड न सका। अस्तु, इसके लिखनेका आपके सामने अवसर न था। विशेप क्या लिखूँ, कल्याणका मार्ग आपमें है। हम अन्यत्र

अन्वेषण करते हैं। यही महती है (   ) है। वीचमें जो है सो मैं क्या लिखूं। मेरा तो यह कहना है—जितना पुरुषार्थ शब्द वर्गणाओंमें हमारा है उसका शतांश भी यदि आभ्यन्तरमें हो तब यह जो कुछ पल्यासमें होता है, अनायास शान्त हो जावेगा। बलकन्दसिंह यहाँ आगए सानन्द हैं। सबमण्डलीसे यथायोग्य। सत्समागममें यथार्थ निर्णय हो सकता है, आज कल प्रायः जो लिखनेकी पद्धति है उसमें आडम्बरताकी गन्ध प्रायः रहती है। अस्तु हम लोगोंको उचित है जो अन्तःकरणकी शुद्धिपूर्वक तत्त्वका निर्णय करें। यदि अन्तःकरण न माने मत मानो फिर निर्णय करो।

माघ सुदि ९
सं २ १०

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१८–६]

योग्य इच्छाकार

आज भगवान्‌के निर्वाणका दिवस है। सभी लोक पावापुर गए हैं। कुछ मनमें आया जो शास्त्रोंका कुछ लिखूं। अन्तरंगसे मैं आप लोगोंके समागमका चाहता था परन्तु कारणकूटके अभावमें नहीं हो सका। परन्तु आपको सम्मति देता हूं जो भूल कर भी हस्तनागपुर क्षेत्रका त्याग कर अन्यत्र न जाना। कहीं कुछ नहीं और सर्वत्र सब कुछ है। तब भ्रमण करनेसे क्या लाभ। वहीं पर जो लाभकी वस्तु है अपनेमें ही है। जब यह सिद्धान्त है तब व्यर्थ भ्रमण करनेसे क्या लाभ प्रत्युत हानि है। मोही जीव क्या न करे सो थोड़ा। मोही जीव ही तो यह कहता है—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत् परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥

अनवस्थित चित्तवाले तोकु छ भी नहीं । उनका समागम भूलकर न करना । और आपकी जो मण्डली है, प्रत्येक व्यक्तिको इच्छाकार कहना और यह कहना सर्वसे ममता त्यागो । सर्वसे तात्पर्य्य अपनेसे भी है। जो अपनेसे ममता त्याग देगा वह फिर अन्यसे ममता करेगा सम्भव नहीं । यदि उचित समझो तब गुरुकुलकी अपील हो तो यह सन्देश हमारा सुना देना जो आप लोकोंका व्यय हो उसमें १) मे पैसा गुरुकुल को देवें । जैसे आपका वार्षिक व्यय ४०००) है तब ६२॥) गुरुकुलको है। खर्च भोजन वस्त्र विवाह। छात्र सम्मेलनमें यह कहना जो छात्र १००) मासिक व्यय करें वह १॥-) गुरुकुल को देवें । यदि क्षुल्लक मनोहरजी आए हों तब हमारी इच्छाकार कहना और कहना गुरुकुल सस्था को पुष्ट करो इसमेंवि शेष लाभ है। निवृत्तिमार्गमें यह सर्वथा अनुचित नहीं।

जिनभवन गया
का० व० ३०, स० २०१०

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[१८-७]

श्रीयुत महाशय लाला हुकमचन्द्रजी.

योग्य कल्याणभाजन हो

सानन्दसे स्वाध्याय होता होगा । ज्ञानके द्वारा ही आत्मकल्याण होता है। हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ यही है । अनादि कालसे इसको न पाकर जो दशा जीवकी हुई वह प्रत्यक्ष है, परन्तु जीव लापरवाहीसे उसका प्रतीकार नहीं करता । अत्यन्त

सन्निहित प्रतीकार है, परन्तु परके द्वारा ही उसको चाहता है यही दाप है। जब तक यह दोष न जावेगा यही दशा रहेगी। हमने सुना है मुजफ्फरनगरमें पञ्चकल्याणक होनेवाले हैं। क्या यह सत्य है। यह सत्य है तब आपका शुभागमन तब तक रुक ही जावेगा। यदि वहाँवाले इसे वहीं पर एक ऐसा ज्ञानाश्रम स्थापें जिसमें आप की गादी वहां रहे तब प्रान्त भरके मुमुक्षुओंको आश्रय मिले। मैं हृदयसे लिखता हूं। विशेष आपके समागमका सर्व चाहते हैं। यहां की समाज विवेकशील है।

आ० सु० १०
सं २ ११

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१८-८]

श्रीयुत महाशय पं हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे। सानन्द तो असम्भव नहीं। मेरा तो विश्वास है आनन्दका विपरिणमन बहु कारणसाध्य है और आनन्दका विकाश स्वाधीन है। परन्तु अज्ञानी जीवकी मान्यता ही विघातक है। अतः जिसे आनन्दरसामृत पान करना हो उसे पराधीनताका त्याग करना उचित है। आपकी मण्डली जो हो सबसे यही बात कहना। हमारी तो बुद्धिमें आता है जो व्यग्रता नहीं होना चाहिए। यह कार्यमात्रका बाधक है।

ईसरीबाजार
आश्विन सुदि ९ सं २ ११

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१८—९]

श्रीयुत महाशय प० हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

महानुभाव सकल पञ्चान मुजफ्फरनगर योग्य कल्याणपात्र हो। क्या लिखूं अब मेरी शक्ति इस योग्य नहीं जो आप लोकों के सम्पर्कमें आ सकूँ। यदि मेरी सम्मति मानो तब स्वय आप लोक सर्व कर सकते हैं। आपके प्रान्तमें बाह्य साधन भी हैं, उपयोग करना चाहिए। प० हुकमचन्दजी एक योग्य व्यक्ति हैं। हम भी उपयोग कर सकते हैं परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं। आप लोक तो साक्षर हैं। चारों जाति में श्रेयोमार्ग खुला है। साक्षान्मार्ग इसी पर्य्यायमें है। परन्तु हम तो अपनेको बिलकुल अकर्मण्य समझते हैं। एक ने कहा है—

> अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
> एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः॥

जिस समय उस ओर लक्ष्य दिया यह ससार अनायास मिट जावेगा। गल्पवादके रसिक नहीं होना चाहिए। हम तो अब लिखनेमें भी आलस करते हैं।

ईसरीबाजार
पौषसुदि ११, स २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—१०]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। अशुद्ध सांजन ये भावोंके विशेषण हैं, विशेष कुछ नहीं। हमारा स्वास्थ्य अब अवस्थानुकूल है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्री शीतलप्रसाद जीसे इच्छाकर कहना और जो जो महाशय हों सबसे यथायोग्य कहना। मेरी तो यह सम्मति—मार्गदर्शकका स्मरण आपका कारण नहीं। उसने जिन कारणोंसे आ अभिमत प्राप्त किया उन कारणोंपर चलना चाहिए।

फागुन वदि १, सं २ ११ } आ शु चि
गणेश वर्णी

[१८—११]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकारि

पत्र आया, समाचार जाने। आप सानन्द होंगे। संसारका मूल कारण यह आत्मा जब अशुद्ध सांसन भावरूप परिणमन करता है तभी तो संसारका जनक होता है अशुद्ध भावोंका तादात्म्य आत्मासे है। इन्हीं भावोंका नाम रागादि है और सांसन भाव परिणमन पुद्गलोंका है। जिसे ज्ञानावरणादि कह सकते हैं। ये दोनों अविनाभावी हैं। एकके अभावमें अन्य नहीं रह सकता है। जिस समय सूक्ष्म लोभका अभाव होता है अन्तर्मुहूर्त बाद ही ज्ञानावरणादि कर्मकलंक अपने आप स्वयं देकर खिर जाते हैं। अतः आवश्यकता राग दूर करने की नहीं। वे तो स्वयं काल पूर्ण कर विनष्ट हो जावेंगे और न मोहादि द्रव्यकर्म पृथक् करनेकी है। केवल रागमें राग न करनेकी आवश्यकता है। जिस समय रागादि परिणाम हों भीतरसे उनमें रुचि न हो। विशेष नहीं। अब हमारी अवस्था कुछ भी परिश्रम करनेमें अक्षम है। सर्व साधर्मियोंसे दर्शनरूप रहें। यही संदेश कहना। जितना धर्मिष्ठ हो उससे अधम ही यही संदेश कहना। गुरुजनका ऐसा उत्सव करना

जिससे मासवाद फिर लोकोंको विना पत्रिकाके स्वयमेव आनेकी रुचि हो। छात्रोंकी ऐसी रुचि हो जो ब्रह्मचर्य्य ही मे जीवन व्यय हो। ऐसा दृश्य कर्त्तव्यरूपमे छात्रलोक दिखावें जो युवकोंके मनमे गुरुकुलमें छात्र बनकर अध्ययन करें ऐसी जिज्ञासा हो जावे। लाला मक्खनलालजी सानन्द होंगे। श्री लाला त्रिलोकचन्द्रसे कहना तत्त्वश्रद्धान शून्य मनुष्यकी दशा जो होती है उस पर दोष करना ही व्यर्थ है।

फा० सु० १०, स० २०११ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१२]

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकुमचन्द्रजी,

योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप वस्तुस्वरूप जानते हैं। क्या लिखें, जिसमें शान्ति मिले सो करना। सम्यग्दृष्टि उदयानुकूल वर्त्तमानमें कार्य्य करें इसमें कोई विवाद नहीं। परन्तु उस उदय में वह शक्ति नहीं जो उसके मूल श्रद्धानको हानि पहुँचा सके। संसारका कारण परमार्थसे तो उसके रहा नहीं। मेरी तो यह सम्मति है जिससे मुजफ्फरनगरवालोंको आप द्वारा शान्ति मिले सो करिए। हमारी ओरसे यह कह देना—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयम।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

अत. समाजको यह कह देना, यदि कल्याण चाहते हो तब श्लोक पर दृष्टि दो—

वैशाख वदि ३०
स० २०१२ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१३]

कल्याण भाजन हो

यह क्या लिखते हो। अंकुर ही से तरु होता है। अतः कुछ न कहो। मोहकी महिमामें क्या न हो थोड़ा है। मोह मात्रमें तो कुछ नहीं होता। आप आनन्दसे जीवन बिता रहे हो। मेरा विश्वास है तटस्थ जीव कहीं रहे कुछ व्यग्र नहीं होता। व्यग्रताका कारण परका अपनाना है। जिसके यह छूट गया वह सदा अव्यग्र रहता है। जो परको अपनाते हैं वे कभी भी आनन्दका स्वाद नहीं पाते। जिनोंने आप जैसा रत्नोंके सर्व कल्याण हो गया।

येन सर्वं परं ब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत्।
किं चिन्तयति निर्भिन्नो द्वितीयं यो न पश्यति॥

ईसरी बाजार, जि० हजारीबाग
जेठ सुदि ६, सं० २०१२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१४]

श्रीमान् पं० फूलचन्द्रजी श्रीमान् लाला शीतलप्रसाद जी
योग्य कल्याणमय जीवन हो

पत्र आया समाचार जाने। गुरुकुलकी सेवा आप लोग कर रहे हैं यह तो व्यवहार है। परमार्थसे आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं। सेवा ही चमत्कार करनी पड़ती है। जिसकी सेवा कर रहे हैं परमार्थसे तो वह तो न विरागी है और न रागी है। परन्तु अनादि मोहादि निमित्तक रागोंसे आक्रान्त हो रहा है।

एतन्निवारणके अर्थ ही यह औषध है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो नवीन रोगका कारण मिट गया है। परन्तु जो प्राचीन रोग सत्तामे बैठा है उसके अपहरण करनेके अर्थ ही यह गुरुकुल सेवा, साधर्मियोंकी वैयावृत्य, स्वाध्याय प्रवचन, पञ्चपरमेष्ठी स्मरण आदि उपचार हैं। काल पाकर यह औषध भी छूट जावेगी। हम लोक अपनेको कायर न मानें और न यह कहें क्या करें पञ्चम काल है। रहा हम तो पञ्चम काल नही। विशेष क्या लिखें, पक्व पान हैं। फिर भी आप लोकोकी शूरता वीरता धीरता और वीतरागता देख चित्तसे प्रसन्न रहते है। आपके जानेसे हमको अन्तरङ्गसे जो मोही जीवोको होता है वह ऊपरसे न हो फिर भी है। किन्तु प्रसन्नता इस बातकी है जो आपकी मण्डलीको आपके वहां रहनेसे आनन्द है। परमार्थसे तो जितने उपद्रव दूर हों अन्तरगसे उतना ही प्रसन्नता होनी चाहिए। हम लिखना जानते हैं परन्तु उतना कर्त्तव्यमे नहीं लाते यही दुर्बलता है। सर्व मण्डलीसे यथायोग्य कहना और यह कहना जो उत्तरप्रान्तमें विशेष शीतलता है वह हममे भी आवे। श्री हरिश्चन्द्र दर्शनविशुद्धिः। समागम पाकर कमल न रहना।

ईसरीवाजार
आषाढ़ वदि १, स० २०१२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८—१५]

श्रीयुत महाशय पं० हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, श्री प० शीतल प्रसादजी, योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने। आप लोक भ्रमणकर परोपकार कर रहे हैं। इस अवस्थामे ऐसा होना स्वाभाविक है और स्वभा-

वाञ्छिमें बाधक नहीं प्रत्युत साधक ही है। व्ययकी उदासीनतामें कुछ तत्त्व नहीं। बड़े आचार्य प्रमत्तगुणस्थान तक क्या यह नहीं करते। तदुक्त—

> परः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये।
> उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥

क्या यह निर्विकल्पकता मोहाभावके पहले नहीं होती है? यदि होती तब ये वाक्य न निकलते। अतः मैं तो आपके कार्यसे प्रसन्न हूँ। धार्मिक वृत्तिका विस्तार ही होना श्रेयस्कर है। वहाँ पर जो मण्डली हो उसको कहना जो धर्मके कार्य हैं उनमें इसी प्रकारकी तन्मयता कल्याणजननी है। सबसे महान् यह भाव होना चाहिए जो महापुरुष हुए वे मनुष्य ही तो थे। हम भी तो मनुष्य हैं। किन्तु अन्तर इतना ही है जो हम सत्यकी ओर दृष्टिपात नहीं देते। दृष्टि तो है। जो ज्ञान परको जाने और आपको न जाने यह बुद्धिमें नहीं आता। हम आत्माको नहीं जानते सो बात नहीं, जानते हैं, किन्तु उसमें जो विकार भाव हैं उन्हें अपनाने लगे। अपनानेवाले हम ही तो हैं यह प्रत्यय किसे नहीं। यही बात ये जो विकृतभाव हैं वे औपाधिक हैं। जो क्लेशकर है उसे त्यागो। शरीर वृद्ध है, विशेष लिखनेको उत्साह नहीं होता।

माट—यदि कल्याणकी इच्छा है तब परका सहारा त्यागो इससे अधिक कुछ नहीं। विशेष बात जो भाई कल्याणके अभिलाषी हैं वह तीर्थयात्राकी तरह १ मास २ मास हस्तनागपुर रहें। कल्याणका कारण गृहत्याग भी तो है। मूर्च्छा त्याग ही तो कल्याण है। ज्ञानार्जन का फल भी यही है। यदि यह नहीं हुआ तब जैसा धन वैसा ही ज्ञान। विचारसे कुछ अन्तर नहीं।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
आषाढ़ वदि १२, सं २ ११

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१८-१६]

श्रीयुत महाशय प० हुकमचन्द्रजी साहब, योग्य कल्याण-भाजन हो

मेरा तो यह दृढ़तम विश्वास है, जिसकी ज्ञानमें रुचि हो गयी उसका देव गुरु शास्त्रमें श्रद्धा हो गयी। यह तो उसका फल है। केवल ज्ञानगुणकी महिमा है जो स्वपरकी व्यवस्था बनाए है। उसके विभावमें यह सर्व दृश्यमान हो रहा है। उसके स्वभावमे तो वही वही है। अत' सर्व विकल्पोंको त्याग उसीका विकल्प रहे यही कर्त्तव्य मार्ग होना श्रेयोमार्ग है। अब हमारी अवस्था परिश्रम करने योग्य नहीं। यदि त्रिलोकचन्द्रजी मिलें तो कहना—श्री विश्वम्भरको न देखो अपनेको देखो। बालकको आशीर्वाद।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
अ० सुदि ६, सं० २०१२

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१८-१७]

श्रीमान ब्रह्मचारी प० हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। वहाँकी समाजकी कृतज्ञता जान परम प्रसन्नता हुई। मेरी तो यह सम्मत्ति है जो आप प्रथम भादों सुदि ५ से पूर्णिमा तक उन्हे सानन्दसे दशधा धर्मका व्याख्यान देकर तृप्त कर देवें। ऐसा करनेमें कोई क्षति नहीं। कल्याणका मार्ग तो हर कालमें है। पर्व विशेष दिनोंमें होता है परन्तु जब सिद्धोंकी स्थापना कर हम पूजादि व्यवहार करते हैं—मूर्तिमें भगवान्की स्थापना कर पूजादि करते हैं तब यह करना अनुचित नहीं। विशेष क्या लिखें। समाजको अब इस बातका प्रयत्नकरना

आवश्यक है जो स्वयं परिश्रम कर तत्त्ववेत्ता बने। आ ग्राम ग्राम् की व्यवस्था कर सके और स्वकीय स्वरूपको न जाने, समझमें नहीं आता। परन्तु हम औरोंको उपदेश देते हैं स्वयं उससे तटस्थ रहते हैं। अतः आ चतुर हो उन्हें उचित है—१ दोहा वा गाथा या चौपई या श्लोक प्रतिदिन कण्ठ करें। २ वर्षमें ७२० गाथा कण्ठस्थ हो सकती हैं, जीवकाण्डके पण्डित हो गए। इसी प्रकार ३ वर्षमें कर्मकाण्डके विद्वान् हो सकते हैं। ३ श्लोक कण्ठ करें। १० वर्षमें और ३ करनेसे २ वर्षमें नमः श्रीवर्द्धमानाय इतना भी प्रतिदिन याद करें। १० वर्षमें जीवकाण्ड कर्मकाण्डके प्रौढ़ विद्वान् हो सकते हैं। परन्तु उससे मत नहीं होना चाहते हैं। परसों ही सर्व हो जाय। सो तो आज तक हो ही रहा है। भगवान्का नाम लेना भगवान् नहीं बनावेगा। भगवान् निर्दिष्ट पथपर चलने से भगवान् हो जावोगे। करके देख लो। आपके पत्रसे बड़े प्रसन्न हुए। प्रसन्नताका कारण यथार्थ है। गुणानुरागी आप हैं। श्री पं० शीतलप्रसादजीसे इच्छाकार। पं० त्रिलोकचन्द्रजीसे धर्मस्नेह। ज्ञान पानेका फल तो सर्वसे उपेक्षा करना। परन्तु यथाशक्ति काम भी करना। पूर्ण उपेक्षा तो पूर्ण चारित्रमें है। अविरत अवस्थामें तो असम्भव है अद्धामें है। परन्तु अभी वह विचारमें नहीं। मैं तो उन्हें वैसा ही मानता हूँ जैसा कि पहले मानता था।

ईसरी बाजार, } आ शु चि
भाद्र सुदि १, सं २ १२ } गणेश वर्णी

[१८–१८]

श्रीयुत पं हुकमचन्द्रजी महाचारी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। कल्याणका पथ तो मोहके

अभावमें है। मेरी तो यह दृढ़ श्रद्धा है—जितने प्रयास सम्यग्दृष्टि करता है उसका उद्देश्य उन कार्योंकी सन्तति अगाड़ी नहीं चाहता, अतः सम्यग्दृष्टिके ही संवर होता है। उसके कर्तृत्व बुद्धि नहीं। कर्तृत्व होना और बात है। दोष मेटनेको सम्यग्दृष्टि बनना अच्छा नहीं। श्री लाला मक्खनलालजी व श्री पण्डित शीतल प्रसादजीसे घने स्नेहसे कल्याणभाजन हो कहना। स्नेह पत्र तो स्नेह विरहका सूचक जानना। माघ बदि १४ से ३ दिन बनारस विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती होगी।

पौष बदि ६, सं० २०१२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० कमलापतिजी सेठ

श्रीमान् ब्र० कमलापति जी सेठका जन्म लगभग सत्तर वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके बरायठा (बड़ा) में हुआ था। जाति गोलापूर्व थी।

इनके दो विवाह हुए थे। उनमेंसे प्रथम पत्नीसे एक पुत्रकी प्राप्ति हुई थी और दूसरी पत्नीसे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी। सब सन्तानें जीवित हैं और सदाचारपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन यापन कर रही हैं।

सेठजी स्वभावके सरल और धर्मात्मा पुरुष थे। जो भी इनसे सम्पर्क स्थापित करता था उसपर वे अपनी ममता उड़ेले बिना नहीं रहते थे। अपने जीवनमें इन्होंने सप्तम प्रतिमाके व्रत स्वीकार किये थे और उनका अच्छी तरह पालन करते थे।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके प्रति इनका विशेष अनुराग था और अधिकतर समय उन्हींके सान्निध्यमें जाता था। यदा-कदा अवसर होनेपर वे पत्रों द्वारा अपनी जिज्ञासा प्रकट किया करते थे। उत्तर स्वरूप पूज्य वर्णीजी इन्हें जो पत्र लिखते थे उनमेंसे उपलब्ध हुए कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[१६—१]

श्रीमान् महाशय सेठ कमलापति जी, योग्य इच्छाकार

आपकी प्रवृत्ति बहुत ही निमित्तमार्गकी ओर प्रसार कर रही है। इसका आपको तो आनन्द आता ही होगा, परन्तु हमको श्रवण कर ही आनन्द आता है। मनुष्य-जन्म लाभका यही फल है। अनन्त मनुष्य जन्म पाए, परन्तु संयमरत्नके विना नहीं के तुल्य हुए। यदि इस जन्मका भी सयमकी रक्षामे उपयोग न किया तब इतर जन्मों से कौनसी विशेषता इसके लाभ में पायी। विषयसुखकी सामग्री तो सर्वत्र सुलभ है। सयमके लाभकी योग्यता इसी मनुष्यजन्ममे है। जिन महाशयोंने या महापुरुषोंने इस ओर लक्ष्य दिया उन्होंने कुछ अपने महत्त्वको समझा। हम तो आपके वियोगसे व्यामोहजालमें उलझ गये। मनुष्य पर्यायवुद्धि होता है, यह सर्वथा नहीं। हम सदृश ही इसके पात्र हैं। परन्तु फिर भी निवृत्तिमार्गके उत्कृष्टत्वकी श्रद्धा हृदयमें जाज्वल्यमान रहती है। अनेक बार मनमे उत्कृष्ट श्रावकके उत्कृष्ट भावकी अभिलाषा रहती है, परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्बलता और कारण-कलापके अभावमें मनकी कल्पना मन ही में विलीन हो जाती है। अहर्निश निष्परिग्रहव्रतकी अभिलाषा रहती है और ऐसा भी नहीं है जो कुछ भाव न हों, परन्तु वास्तवमें उपादानकी न्यूनता प्रबल बाधक है। जिन जीवोंकी भवस्थिति अल्प रह गयी है उन्हें अनायास साधन मिल जाते हैं। जिनकी भवस्थिति बहुत है उन्हें साक्षात्कारण मिलने पर भी विपरीत परिणमन हो जाता है। जैसे, मरीचिकुमार। इसका यह तात्पर्य नहीं जो पुरुषार्थकी ओर दृष्टिका निषेध हो। श्रद्धामें अन्तर

न होना चाहिए। आपके समागमके बाद हमको तो निरन्तर हानिका ही लाभ हुआ। इसमें किसी का दोष नहीं। मैं निजकी भूल ही मानता हूं। फिर भी—

"जो जो देखी वीरप्रभुने सो सो होसी वीरा रे"

इससे चित्त व्यग्र नहीं होता।

अब तो अन्तरङ्गसे यह प्रबल भावना हो गई है जो वर्षे बाद पार्श्वप्रभुके शरणमें अपने का पहुँचा देना। फिर क्या होगा भी पार्श्वप्रभु ही जान। हमारी भावना यह है तथा ऐसा नियम भी है जो भावनाके अनुकूल कार्य होता है। सम्भव है जो हमारी भावना सफलीभूत हो जावे। यह भी नियम नहीं जो आप लोगोंके समागमादिसे हमारी कषायकृशता हो जावे। निमित्त तो निमित्त ही है। आप लोगोंके परिणामोंकी कथा श्रवण कर कुछ साहस होता भी है, परन्तु फिर अन्तमें वही मार्ग लेना पड़ता है जो कार्यकी उत्पत्तिके प्रति मुख्य उपादान यथार्थ होना चाहिये। उपादानकी योग्यता इस पर्याय में है। सम्भव है, व्यक्त हो जावे। संयम कोई अलौकिक वस्तु नहीं। संज्ञी जीव मनुष्यपर्यायमें उसका लाभ ले सकता है। हम लोग भी तो उसके पात्र हो सकते हैं, परन्तु मनोदुर्बलताके कारण दैन्यवृत्तिवाले बन रहे हैं। बाह्य तपकी कठिनता देखकर ही भयभीत हो जाते हैं। परमार्थसे विचार किया जावे तब भय तो कषायमें है। इसके अभावमें काहेका भय। अस्तु, हम आपके व्रतकी प्रशंसा करते हैं। इस वाक्यका अर्थ यह है जो व्रत वस्तु सर्वथा प्रशस्त है। श्रीबाबू गोविन्द, सोहनलालजीसे दर्शनविशुद्धि। यदि वहाँ पर पताशीबाई हों तब मेरा उनसे इच्छाकार तथा सावित्री, चन्दाबाई, सरस्वती आदिसे

इच्छाकार सबसे कहना। मनुष्य-जन्मका यही फल है जो अपनी आत्माको संयममार्गमें लगाना। और सामग्री सब सुलभ हैं परन्तु सबसे कठिन सयम मिलना है। यह साधारण लोगोंकी धारणा है, परन्तु ऐसा नहीं। और सामग्री का लाभ तो कठिन है, क्योंकि पराधीन है। सयम मिलना स्वाधीन है, क्योंकि आत्मधर्म है। जैसे क्रोध करनेमें अनिष्ट-पदार्थका सहवास आदि अनेक कारण चाहिये और क्षमाके लिये केवल आत्माकी आवश्यकता है। विशेष क्या लिखें—कषायसे दग्ध हैं। अतः बुद्धि अपना कार्य नहीं करती। अथवा यों कहिये बुद्धिका काम तो होता है, परन्तु कषायके समिश्रण होनेसे स्वच्छ नहीं होता। अत. जिन महानुभावोंको आत्महित करना हो उन्हें इसका सस्कार मिटाना चाहिये। अथवा मिटावो। हमको यही उचित है जो हम आपसे ससग त्याग देवें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

सिं० राजारामजी

श्रीमान् सिंघई राजारामजीका जन्म लगभग ६० वर्ष पूर्व सागर जिलाके अन्तर्गत पथम ग्राममें हुआ था। पिताका नाम बंशीधरजी और माताका नाम सिरपाबाई था। जाति गोलापूर्व थी। अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका ध्यान मुख्य रूपसे व्यापारकी ओर आकर्षित हुआ और इस निमित्त से सागर आकर रहने लगे।

सागरमें रहते हुए अपनी व्यापारिक कुशलताके कारण इन्होंने व्यापारमें बड़ी उन्नति की और यहाँके धनी-मानी पुरुषोंमें इनकी गणना होने लगी। वर्तमानमें इनका परिवार बहुत ही समृद्ध और सुसम्पन्न है। सागरनिवासी श्रीमान् पं० मुन्नालालजी रांधेलीय इनके लघुभ्राता हैं।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे गृहकार्योंसे विरक्त हो गये और ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर उनका योग्यतापूर्वक पालन करने लगे। इन्होंने ऐहिक लीला सन् १९५० में समाधिमरण पूर्वक समाप्त की थी।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा थी। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये उपलब्ध हुए पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२०–१]

श्रीयुत महाशय ब्र० सिंघई राजाराम जी, योग्य इच्छाकार

आपका कई बार पत्र आया, मैं उत्तर न दे सका। इसका मूल कारण यह है जो मेरी सम्मति तो यह है जो ये पत्र व्यवहार भी कुछ हितकारी नहीं। एक तरहसे निवृत्तिमार्गमें बाधक हैं। जितना सम्पर्कसे परिग्रह है, उससे अधिक पत्रसे होता है। अतः मेरी सम्मति मानो तब जो काल पत्रके लिखनेमें जाता है वह काल स्वाध्यायमें लगाओ। जहाँ तक बने, परकी गुण-दोष विवेचना छोड़ो। गृहस्थके घर जो भोजन मिले, सन्तोष-पूर्वक कर लो। जिसके घर भोजन करो उसके हितकी बातें कहो। भोजनकी स्वच्छताका उपदेश दो। वस्तु, चाहे भोजन में अल्प हो, स्वच्छ हो। पानी छाननेका वस्त्र अत्यन्त स्वच्छ हो। अस्तु, यह चर्चाकी आवश्यकता यहाँ न थी, इस बातकी है जो अपनी आत्माको स्वच्छ बनाया जावे; क्योंकि हमारा अधिकार सीमित है, वस्तुमर्यादाके अनुकूल ही रहना चाहिये। सिद्धान्तका भी यही अभिप्राय है। सर्व पदार्थ अपने अपने रूप में ही रहते हैं। कल्पनासे कुछ ही मान लो, परन्तु कल्पनाके अनुसार पदार्थ नहीं बदलता। अपने ज्ञानमें हमने रसरीको सर्प मान लिया, एतावता रसरी सर्प न हुई, परन्तु हमारी कल्पनाने सर्प मानकर हमको भयभीत कर दिया। अतः पर पदार्थको अनादिसे सुखकर व दुःखकर माननेकी जो प्रकृति है उसे त्यागो। यह अभ्यास यदि दृढ़तम हो जावेगा, अनायास इस संसार-बंधनसे हमारी मुक्ति हो जावेगी। इससे हमारे साथ जो पत्र व्यवहारकी प्रकृति है, त्याग दो। उससे दो लाभ होंगे—

परपदार्थको जाननेकी आदत छोड़नेका अवसर मिलेगा तथा परिग्रह-पापसे दूर जाओगे। सर्वमण्डलीसे इच्छाकार।

ईसरी बाजार, | आ० शु० चि०
जेठ वदि १२, सं० २००५ | गणेश वर्णी

[२०—२]

श्रीयुत् महाशय ब्र० सिंघई राजाराम जी, योग्य इच्छाकार
..........वास्तवमें प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं। लाभ तो आत्माकी प्रशंसा व अप्रशंसा दोनों हीमें, जहाँ हर्ष-विषाद न हो वहीं है। उस दिनको अपने कल्याणका समझो जब आत्मामें परकृत उपकार अनुपकारकी भावना मिट जावे। भैया राजाराम! मेरे अपनाने से न तो आपका कल्याण होगा और न आप मुझे अपनावेंगे। इससे मेरा भी कुछ कल्याण न होगा। वह दिन आपके उत्कर्षका होगा जिस दिन आप अपनेको अपनावेंगे। भैया! यदि मेरी बात पर श्रद्धा है तब अब ये सब कल्पनाएँ छोड़ दो। मैं सागर ही रहता; परन्तु न तो मैंने अपनेको अपनाया और न सागरको अपनेको अपना समझा। यह तो मैंने वास्तविक तत्त्व, जो समझा, आपको लिखा। अब लौकिक बात लिखता हूँ। वैशाख सुदि ११, सं० २००४ को श्री द्रोणगिरि क्षेत्र पर मैंने यह प्रतिज्ञा ली थी कि सागर-समाज एक लाख रुपया महिला-समाज महिलाविद्यालयको देवे तब आना; अन्यथा सागर न आना और यदि आना हो जाय और वह यह पूरी न करे तब क्षुल्लक हो जाना। मैं सत्याग्रह न करता था; परन्तु मुझे हठात् ले गये। फल जो हुआ सो आपसे गुप्त नहीं। यही हरामी प्रतिमाका कारण हुआ; परन्तु मेरी कुछ क्षति न हुई। हाँ, इतनी क्षति अवश्य हुई कि श्री १००८ पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमि छूट गई तथा

जलवायुके लिये वह स्थान अच्छा था वह भी छूट गया। अस्तु, इसका कोई हर्ष-विषाद नहीं। उदयानुकूल सब बाह्य सामग्री मिलती है, परन्तु मोक्षमार्गका लाभ उदयाधीन नहीं। यह तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। हर स्थान और हर सञ्ज्ञी पर्यायमें इसका लाभ होता है। अत. सन्तोष है। यदि यह न हुआ तब मनुष्यपर्यायका कोई तत्त्व हमने न निकाला। अतः जहाँ तक बने, आप कहीं रहो परन्तु बुद्धिपूर्वक मोक्षमार्गके लाभसे वञ्चित न रहना यही मेरा सन्देश सब त्यागीवर्गसे कह देना। जो ज्ञानी हैं, उनसे क्या कहूँ? उनके तो यह खेल बाएँ हाथका है। परन्तु श्रोतावर्गसे अवश्य कहना। शास्त्र बाँचने और सुननेका फल तत्काल मोक्षमार्गका आंशिक लाभ है। यदि यह न हुआ तब कुछ न हुआ। स्त्रीसमाजसे भी कहना, शास्त्र श्रवणका फल यह है जो पर्यायमे निजत्व-कल्पना छोड़ दो। आत्मा न तो नपुसक है और न स्त्री है और न पुरुष है। अतः पर्यायमें जो अपनेको तुच्छ समझती हो उसे छोड़ो और निजत्व का अनुभव करो। अपना कर्त्तव्य सम्हालो। जिनको तुम अपना मानती हो वह न तुम्हारे हैं और न तुम उनकी हो। वैसे कौन कहता है, तुम्हारी यह सम्पदा नहीं है, परन्तु इसमें मग्न न होओ। यदि व्यापारी-वर्ग हो तव कहना, यह जड़वाद बहुत अर्जन किया और इसीको खाया, दान दिया अथवा न खाया और न दान दिया, तिजोड़ी भर दी जो सात पीढ़ी खावे। फल क्या हुआ सो आपको अनुभूत है। परन्तु अब कुछ दिन आत्मीयगुणोंका विकाश करो। विकारको तजो जिससे आत्माको शान्ति मिले। हम तो सागरसमाजका उपकार मानते हैं जो उसके द्वारा हम उस पतित-अवस्थासे इस वेषमें पहुँच गए। परिणामवस्तु अन्तरङ्गकी अवस्था विशेष है। उसके विषयमें हम आपको

परपदार्थको अपनानेकी आदत छोड़नेका अवसर मिलेगा तथा परिग्रह-पापसे छूट जावोगे। सर्वमंगलसे इच्छाकार।

ईसरी बाजार, ज्येठ वदि १२, सं० २००५ | आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[२०–२]

श्रीयुत् महाशय प्र० सिंघई राजाराम जी, योग्य इच्छाकार

………वास्तवमें प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं। लाभ तो आत्माकी प्रशंसा व अप्रशंसा दोनोंमें, जहाँ हर्ष-विषाद न हो वहाँ है। उस दिनको अपने कल्याणका समझो जब आत्मामें परकृत उपकार अनुपकारकी भावना मिट जावे। भैया राजाराम! मेरे अपनाने से न तो आपका कल्याण होगा और न आप मुझे अपनावेंगे। इससे मेरा भी कुछ कल्याण न होगा। वह दिन आपके उत्कर्षका होगा जिस दिन आप अपनेको अपनावेंगे। भैया! यदि मेरी बात पर श्रद्धा है तब अब ये सब कल्पनाएँ छोड़ दो। मैं सागर ही रहता; परन्तु न तो मैंने अपनेको अपनाया और न सागरने अपनेको अपना समझा। यह तो मैंने वास्तविक तत्त्व, जो समझा, आपको लिखा। अब लौकिक बात लिखता हूँ। वैशाख सुदि १२, सं० २००४ को श्री द्रोणगिरि क्षेत्र पर मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि सागर-समाज एक लाख रुपया महिला-समाज महिलाविद्यालयको देवे तब जाना; अन्यथा सागर न जाना और यदि जाना हो जावे और वह यह पूरी न करे तब छुल्लक हो जाना। मैं सत्याग्रह न करता था; परन्तु मुझे हठात् ले गये। फल जो हुआ सो आपसे गुप्त नहीं। यही द्रव्य भी प्रतिमाका कारण हुआ; परन्तु मेरी कुछ क्षति न हुई। हाँ, इतनी क्षति अवश्य हुई कि श्री १००८ पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमि छूट गई तथा

जलवायुके लिये वह स्थान अच्छा था वह भी छूट गया। अस्तु, इसका कोई हर्ष-विषाद नहीं। उदयानुकूल सब बाह्य सामग्री मिलती है; परन्तु मोक्षमार्गका लाभ उदयाधीन नहीं। यह तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। हर स्थान और हर सज्ञी पर्यायमें इसका लाभ होता है। अत. सन्तोष है। यदि यह न हुआ तब मनुष्यपर्यायका कोई तत्त्व हमने न निकाला। अतः जहाँ तक बने, आप कहीं रहो परन्तु बुद्धिपूर्वक मोक्षमार्गके लाभसे वञ्चित न रहना यही मेरा सन्देश सब त्यागीवर्गसे कह देना। जो ज्ञानी हैं, उनसे क्या कहूँ ? उनके तो यह खेल बाएँ हाथका है। परन्तु श्रोतावर्गसे अवश्य कहना। शास्त्र बाँचने और सुननेका फल तत्काल मोक्षमार्गका आंशिक लाभ है। यदि यह न हुआ तब कुछ न हुआ। स्त्रीसमाजसे भी कहना, शास्त्र श्रवणका फल यह है जो पर्यायमें निजत्व-कल्पना छोड़ दो। आत्मा न तो नपुसक है और न स्त्री है और न पुरुष है। अतः पर्यायमें जो अपनेको तुच्छ समझती हो उसे छोड़ो और निजत्व का अनुभव करो। अपना कर्त्तव्य सम्हालो। जिनको तुम अपना मानती हो वह न तुम्हारे हैं और न तुम उनकी हो। वैसे कौन कहता है, तुम्हारी यह सम्पदा नहीं है, परन्तु इसमें मग्न न होओ। यदि व्यापारी-वर्ग हो तब कहना, यह जड़वाद बहुत अर्जन किया और इसीको खाया, दान दिया अथवा न खाया और न दान दिया, तिजोड़ी भर दी जो सात पीढ़ी खावे। फल क्या हुआ सो आपको अनुभूत है। परन्तु अब कुछ दिन आत्मीयगुणोंका विकाश करो। विकारको तजो जिससे आत्माको शान्ति मिले। हम तो सागरसमाजका उपकार मानते हैं जो उसके द्वारा हम उस पतित-अवस्थासे इस वेषमें पहुँच गए। परिणामवस्तु अन्तरङ्गकी अवस्था विशेष है। उसके विषयमें हम आपको

क्या लिखें—न तो हम आपके स्वामी हैं और न आप हमारे हैं। सिंघईजीसे कहना—पर्यायकी अन्तिम अवस्था है, जितना इसमें मूर्च्छा त्यागोगे, सुख पाओगे। न तो कहीं शान्ति देगा और न गुलाबचन्द्र और न उनकी माँ और न रज्जू मुनीम और न मन्दिर-सरस्वतीसदन मानस्तम्भ आदि। ये तो सर्व ऊपरी निमित्त हैं। कल्याणका मार्ग तो अन्तरङ्गकी निर्मल-परिणति ही होगी जिसमें इन विभावोंके कर्तृत्वका अभिमान नहीं। हम क्यों बार-बार लिखते हैं? तुम्हारा अन्न खाया है तथा और बहुत उपकार हमारे ऊपर हैं उसीका यह तमाशा है। यद्यपि कोई किसीका कुछ नहीं करता। हम जो लिख रहे हैं सो निमित्तकारणकी मुख्यतासे। अथवा आज गर्मीका प्रकोप था, अतः उपयोग अन्यत्र न जावे। अथवा इस जातिकी कषाय थी। शाप लुम। सर्व त्यागीवर्ग तथा विशेषतया पं० छोटेलाल वर्णीजीसे इच्छाकार। नोट—श्रीयुत पं० लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त' जी से कहना—आपके भावोंका जानकर प्रसन्नता हुई, परन्तु हमारी रक्षा करनेवाला न कोई है और न था और न होगा, क्योंकि हमारी पुण्यप्रकृति वैसी है और हम इससे दुःखी भी नहीं। हाँ, आपके परिणाम अति प्रशस्त हैं। श्रीयुत विद्यार्थी नरेन्द्रजीसे आशीर्वाद। दवाई आ गई, परन्तु अभी हमारे उस असका उदय नहीं जो दवाई लाभ पहुँचा सके। कार्यके प्रति कारणकूट होना चाहिए। हमको इस बातका अफसोस है जो आप ज्ञान पदकी अवहेलना करते हो। तुम्हारी इच्छा जो हो सो करो, परन्तु हम इसे अच्छा नहीं मानते। यह भी विश्वास है जो आप हमारा कहना भी इस विषयमें उपादेय न मानोगे।

मुरार छावनी, ग्वालियर जेठ सुदि ६ सं० २ ५	आपका शुभचिन्तक गणेशप्रसाद वर्णी

श्री ब्र० शान्तिदासजी

श्रीमन् ब्र० शान्तिदास जी नासिकके रहने वाले थे। इन्होंने जीवन कालमें बूढ़ी चँदेरी क्षेत्रकी बहुत सेवा की है। स्वभावके शान्त और निरहङ्कारी थे। पूज्य श्री वर्णी जी के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा थी। पूज्य वर्णी जी महाराजने इन्हें जो पत्र लिखे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२१—१]

श्रीमान् ब्रह्मचारी शान्तिदास जी, योग्य इच्छाकार

आपकी हिम्मत प्रशसनीय है। हम तो अकिञ्चित्कर हैं। आप पुरुषार्थी हैं। जो चाहो करो, परन्तु संघ न होनेसे होना कठिन है। धर्मध्यान अच्छा होता होगा। हमारा भी अच्छा होता है।

ईसरी बाजार,
आषाढ सुदि १५, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२१—२]

श्रीमान् प्र० शान्तिवासजी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे आपकी अन्तरङ्ग-परिणति प्राणियोंके कल्याण की है, परन्तु किया क्या जाय। असंयमित-मनुष्योंमें आपका जो भाव है तदनुकूल-प्रवृत्ति होना असम्भव है। मेरी तो यही सम्मति है—आनन्दसे स्वाध्याय करो तथा अन्य विकल्प त्यागो। हम स्वयं आपकी भावको उत्तम समझते हैं, किन्तु क्या करें? अतः आपकी शक्ति जो है उसे अन्यत्र मत लगाओ, केवल स्वहितमें लगाओ। आनुषङ्गिक परकी भलाईमें लगे इसका विकल्प न करो।

ईसरी बाजार,
भाद्र सुदि ४, सं० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० खेतसीदासजी

श्रीमान् ब्र० खेतसीदासजीका जन्म वि० सं० १६२५ को विहार प्रदेशके गिरडीह नगरमें हुआ था। पिताका नाम प्रयाग-चन्द्रजी, माताका नाम रुक्मिणीदेवी और जाति खण्डेलवाल थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी फिर भी इन्होंने स्वाध्याय द्वारा अच्छी योग्यता सम्पादित कर ली थी।

इनके श्री गिरनारीलालजी, चिरञ्जीलालजी और श्री महावीर-प्रसादजी ये तीन पुत्र तथा श्री पूर्णीबाईजी और ईसरीबाईजी ये दो पुत्रियाँ इस प्रकार कुल पाँच सन्ताने हैं। श्री ईसरीबाई यद्यपि अजैन कुलमें विवाही गई हैं पर ये अपने पूज्य पिताजीके द्वारा प्राप्त संस्कारोंके कारण जैनधर्मका उत्तम रीतिसे पालन करती हैं।

ब्र० जी स्वभावके उदार, कट्टर तेरह पन्थके अनुयायी और सप्तम प्रतिमाके व्रत पालते थे। इन्होंने अपने जीवन कालमें एक शिखरबन्द मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी व्यवस्था के लिए दो मकान लगा गये हैं।

वैसे तो ये अपने पुत्रोंके पास ही रहते थे फिर भी इनका अधिकतर समय स्वाध्याय आदि कार्योंमें ही व्यतीत होता था। इन्होंने समता तत्त्वका अच्छी तरह अभ्यास किया था। इनका समाधिमरण फाल्गुन शुक्ला ८ वि० सं० २०११ को हुआ था।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी विशेष भक्ति थी। फल-स्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखा गया एक पत्र यहाँ दिया जाता है।

[२२-१]

श्रीयुत ब्रह्मचारी खेतसीदासजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सर्व कुटुम्बसे दर्शनविशुद्धि। आप तो आप ही हैं। आपको क्या लिखें। मनुष्यको सब बन्धनोंमें स्नेहबन्धन अतिप्रबल है। मैं आपको निरन्तर कहता था—छोड़ो इस जालको, परन्तु मैं सागरके चक्रमें आ गया। अब मुझे आप लोगोंकी सुधियाँ याद आती हैं जो भी पार्श्वप्रभुका शरण मत छोड़ो। उस समय मोहके नशामें एक न मानी। जब नशा उतरा तब अब याद आती है। हाँ क्या अनर्थ हुआ, परन्तु अब क्या होता है। जब जीव नरकमें पहुँच जाता है तब याद आती है जो मनुष्य पर्यायमें संयमादि न पाला। अब क्या होता है। बहुत स्वाँग मारे तब सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। अस्तु, आप भी अब मोहको छोड़िये और शेष जीवनको सुखमय बिताइए। आपके बालक मामा अब शुद्ध प्रक्रियासे ही भोजनादिकी व्यवस्था करते होंगे तथा सदाचारादिकी रक्षामें सावधान होंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० जीवारामजी

श्रीमान् ब्र० जीवारामजी मेरठके आस-पासके रहनेवाले थे। इनका अन्तिम समय श्री १०५ क्षु० सहजानन्द जी (मनोहरलाल जी) के सम्पर्कमें व्यतीत हुआ है। पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा थी। यहाँ पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गए दो पत्र दिए जाते हैं।

[२३–१]

श्री ब्र० जीवारामजी, इच्छाकार

आनन्दसे काल जावे यही करना। आपत्तियाँ तो पर्यायमें आवेंगी जावेंगी, सहना करना। अशान्ति न आवे यही कर सकते हैं।

इटावा
पौष शु० १ स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२३–२]

श्री ब्र० जीवारामजी, योग्य इच्छाकार

संसारकी गति विचित्र है, यह सब कहते हैं। अपनेको इससे पृथक् समझते हैं यही आश्चर्य है। जिस दिन अपनी दुर्बलताका बोध हो जावेगा यह कल्पना विलीन हो जावेगी।

पौष सु० १४, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२२-१]

श्रीयुत ब्रह्मचारी लेखसीदासजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सर्व कुटुम्बसे दर्शनविशुद्धि। आप तो आप ही हैं। आपको क्या लिखें। मनुष्यको सब बन्धनोंमें स्नेहबन्धन अतिप्रबल है। मैं आपको निरन्तर कहता था—छोड़ो इस जालको, परन्तु मैं सागरके चक्रमें आ गया। अब मुझे आप लोगोंकी सूक्तियाँ याद आती हैं जो श्री पार्श्वप्रभुका शरण मत छोड़ो। उस समय मादके नशामें एक न मानी। अब नशा उतरा तब अब याद आती हैं। हाँ क्या अनर्थ हुआ, परन्तु अब क्या होता है। जब जीव नरकमें पहुँच जाता है तब याद आती है जो मनुष्य पर्यायमें संयमादि न पाला। अब क्या होता है। बहुत स्वांग मारे तब सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। अस्तु, आप भी अब मोहको छोड़िये और शेष जीवनको सुखमय बिताइए। आपके बालक प्रायः अब खुद प्रक्रियासे ही भोजनादिकी व्यवस्था करते होंगे तथा स्वाध्यायादिकी रक्षामें सावधान होंगे।

आ॰ शु॰ चि॰

गणेश वर्णी

ब्र० जीवारामजी

श्रीमान् ब्र० जीवारामजी मेरठके आस-पासके रहनेवाले थे। इनका अन्तिम समय श्री १०५ क्षु० सहजानन्द जी (मनोहरलाल जी) के सम्पर्कमें व्यतीत हुआ है। पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा थी। यहाँ पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गए दो पत्र दिए जाते हैं।

[२३-१]

श्री ब्र० जीवारामजी, इच्छाकार

आनन्दसे काल जावे यही करना। आपत्तियाँ तो पर्यायमें आवेंगी जावेंगी, सहना करना। अशान्ति न आवे यही कर सकते हैं।

इटावा
पौष शु० १ स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२३-२]

श्री ब्र० जीवारामजी, योग्य इच्छाकार

ससारकी गति विचित्र है, यह सब कहते हैं। अपनेको इससे पृथक् समझते हैं यही आश्चर्य है। जिस दिन अपनी दुर्वलताका बोध हो जावेगा यह कल्पना विलीन हो जावेगी।

पौप सु० १४, स० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० नाथूरामजी

श्रीमान् ब्र० नाथूरामजीका जन्म वि० सं० १९६६ को मध्यप्रदेशके दरगुवाँ ग्राममें हुआ है। पिताका नाम श्री लालचन्दजी माताका नाम श्री केशरबाई और जाति परवार है। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका विशारद तृतीय खण्ड तक अध्ययन हुआ है। इनके घरमें साहूकारीका व्यापार होता था।

प्रारम्भसे ही इनका चित्त गृहकार्यमें बहुत ही कम लगता था इसलिए पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका सम्पर्क मिलने पर इन्होंने उनके पास वि० सं० २ २ को सातवीं प्रतिमाके व्रत ले लिये थे। इनका वे उत्तम रीतिसे पालन करते हुए अपने गुरुकी वैयावृत्त्य सेवा-शुश्रूषामें ही निरन्तर लगे रहते हैं। मुख्य रूपसे यही इनका स्वाध्याय है यही संयम है और यही तप है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके ऊपर बड़ा अनुग्रह है। प्रायः ये पूज्य श्री वर्णीजीके बारामास साथ रहते हैं, इसलिए पत्राचारका प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता है। एक ही ऐसा पत्र मिला है जो वि० सं० २ । को किसी कार्यवश इनके बाहर रहने पर इन्हें लिखा गया था। उसे यहाँ दिया जाता है।

[२४-१]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी नाथूरामजी, योग्य इच्छाकार

रुपया ५०) आया था। हमने उसी समय २५) तो शाहपुर-विद्यालयके तिलोयपण्णत्तिके लिए दे दिये। ५) छात्रोंको फलके लिये दे दिये। २०) का आदिपुराण लिया गया। मैंने अपने उपयोगमें नहीं लगाया। मैं रुपया रख नहीं सकता। आप आइन्दा हमारे अर्थ रुपया न भिजवाना। श्री बाईजीको मैं बहुत ही निर्मल मानता हूँ। उनसे मेरा इच्छाकार कहना। आइन्दा मेरे द्वारा रुपया बाँटनेको न भेजें और न मेरे लिये भेजें। हम तो ईसरी छोड़कर बहुत ही पछताए, पर अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। जो भवितव्य था हुआ। कल्याणका मार्ग सर्वत्र विद्यमान है, पात्र होना चाहिए। मेरा श्री जीसे इच्छाकार तथा श्रीयुत चम्पालालजीसे इच्छाकार कहना। तथा सर्व उदासीन भाईयोंसे इच्छाकार। अब हम सागरमें हैं, किन्तु चतुर्मास देहातमें करेंगे। शहरमें उपयोग नहीं लगता। यहाँ शास्त्रमें प्रायः जनता बहुत आती है। एक हजारके अन्दाज आती होगी।

सागर,
चैत्र सुदि ४ सं० २००९

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी

श्रीमान् ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी सागर जिलान्तर्गत कर्रापुरके रहनेवाले हैं। इनकी आयु लगभग २० वर्ष है। पिताका नाम श्री नन्दलाल जी था। जाति परवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है। गृहत्यागके बाद इन्होंने अपना धार्मिक ज्ञान भी बढ़ा लिया है।

विवाह होनेपर कुछ दिनमें ही पत्नी वियोग हो जानेसे वे गृहकार्यसे विरत रहने लगे और पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका सम्पर्क मिलनेपर वे उनके पट्ट शिष्य होकर उन्हींके साथ रहने लगे। इन्होंने उनके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा वि० सं० १९८९ में ली थी।

वे स्वभावके निर्भीक, निरभिमानी सेवाभावी और कर्तव्य परायण हैं। यों तो वे श्री १०८ आ० सूर्यसागर महाराजकी सेवामें अनवरत लगे रहते थे पर उनके समाधिमरणके समय इन्होंने जिस निष्ठासे उनकी सेवा की है उसका दूसरा उदाहरण इस कालमें मिलना दुर्लभ है।

वे प्रायः सब तत्र भ्रमण करते हुए धर्मप्रचारमें लगे रहते हैं। इनकी भोजन व्यवस्था आडम्बर शून्य और मनोवृत्ति सेवापरायण है इसलिये जहाँ भी वे जाते हैं वहाँकी जनता इन्हें छोड़ना नहीं चाहती। समाजमें ऐसा सेवाभावी निरहंकारी त्यागी होना इस कालमें दुर्लभ है।

पूज्य वर्णी जी महाराजमें भी इनकी विशेष भक्ति है। फलस्वरूप पूज्य वर्णी जी द्वारा इन्हें लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२५–१]

श्रीयुत महाशय लक्ष्मीचन्द्रजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं मनुष्य वही संसारसे पार होगा जो किसी भी पदार्थमें राग-द्वेष नहीं करेगा। संसार बन्धनरूपमें है। आपने यह लिखा जो आपने महाराज को अपना गुरु माना तब उनकी आज्ञा मानो। आपने यह कैसे निश्चय किया कि मैं महाराजकी आज्ञा नहीं मानता। आप जानते हैं महापुरुषोंका ही कहना है जो कहो उसे करो, परन्तु कहना न्याययुक्त हो। मेरा न तो दिल्लीसे स्नेह है और न उज्जैनसे और न किसीसे, क्योंकि गुरुदेवका ही कहना है जो दिगम्बर वही है जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हो। मेरी महाराजमें भक्ति है। भक्ति किसको कहते हैं—'गुणानुरागो हि भक्तिः।' गुरुका गुण वास्तव है राग-द्वेषनिवृत्ति। तब आप ही विचारो मेरी जब उनमें भक्ति है तब मेरा उद्देश्य निरन्तर रागादि निवृत्तिकी ओर ही तो रहेगा। तभी तो मैं सच्चा गुरुभक्त कहलाऊँगा। दिगम्बर गुरुओंका यही तो उपदेश है—यदि संसार बन्धनसे मोचनकी वाञ्छा है तब दिगम्बर हो जावो। दिगम्बर भक्तसे संसार मोचन नहीं होगा। शारीरिक व मानसिक निर्बलता इसमें बाधक है सो नहीं, कषायकी उद्वेगता इस पदकी बाधक है। गर्मीका प्रकोप उतना बाधक धर्मसाधनका नहीं जितना बाधक अन्तरङ्ग कषायका सद्भाव है। वास्तवमें प्रवृत्तिरूप व्रत कषायमें ही होता है और उसी व्रतमें ये गर्मी, सर्दी क्षुधा और तृषादिक परिषह हैं और उन्हींके उदयमें वेदना है और उनकी उद्वेगतासे विचलित भी नहीं होता और जहाँ उस संज्वलन

ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी

श्रीमान् ब्र० लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी सागर जिलान्तर्गत कर्रापुरके रहनेवाले हैं। इनकी आयु लगभग ५० वर्ष है। पिताका नाम श्री नन्दलाल जी था। जाति परवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है। गृहत्यागके बाद इन्होंने अपना धार्मिक ज्ञान भी बढ़ा लिया है।

विवाह होनेपर कुछ दिनमें ही पत्नी वियोग हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका सम्पर्क मिलनेपर ये उनके पट्ट शिष्य होकर उन्हींके साथ रहने लगे। इन्होंने उनके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा वि० सं० १९८९ में ली थी।

ये स्वभावके निर्भीक, निर्लोभी सेवाभावी और कर्तव्य परायण हैं। यों तो ये श्री १०८ आ० सूर्यसागर महाराजकी सेवामें अनवरत लगे रहते थे पर उनके समाधिमरणके समय इन्होंने जिस निष्ठासे उनकी सेवा की है उसका दूसरा उदाहरण इस कालमें मिलना दुर्लभ है।

ये प्रायः यत्र तत्र भ्रमण करते हुए धर्मप्रचारमें लगे रहते हैं। इनकी भोजन व्यवस्था आडम्बर शून्य और मनोवृत्ति सेवापरायण है इसलिये जहाँ भी ये जाते हैं वहाँकी जनता इन्हें छोड़ना नहीं चाहती। संक्षेपमें ऐसा सेवाभावी निरहंकारी त्यागी होना इस कालमें दुर्लभ है।

पूज्य वर्णी जी महाराजमें भी इनकी विशेष भक्ति है। फलस्वरूप पूज्य वर्णी जी द्वारा इन्हें लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

बुन्देलखण्ड अब हमको प्रतीत हुआ। उत्तम प्रान्त है। द्रव्यकी त्रुटि है परन्तु कई अंशोंमे अत्युत्तम है। प० जीसे हमारी कल्याण पात्र हो यह भावना उनके प्रति रहती है। योग्य व्यक्ति है। यदि वे हों तब कहना कि सर्व चिन्ता छोड़ जैनागमका प्रकाश करना। इससे उत्तम शान्तिका मार्ग नहीं।

ईसरी बाजार, हजारीबाग }
भाद्र वदि १, स० २०११ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

का मन्द उदय होजाता है तब वहाँ धर्मध्यानकी उत्पत्ति हो जाती है। वह उद्वेग क्षुधादिकोंका नहीं होता, क्योंकि सप्तम गुणस्थानमें असाताकी उदीरणा या तीव्रोदय नहीं रहता। वास्तव चारित्र तो प्रतिपक्षी कषायके अभावमें होता है। जितने अंश कषायके रहते हैं व सर्व चारित्रके बाधक ही हैं। इससे जिसके उदयमें महाराजका अपना गुरु माना उसके उदयमें बराबर मानते रहेंगे इसमें सन्देह का स्थान नहीं। हम चाहते तो हैं—महाराजका ऐसा आशीर्वाद हो जो ऐसा अवसर हमें मिले जो इन उपद्रवोंसे हमारी रक्षा हो। मैं तो मानना और न मानना दोनों ही उपद्रवोंकी जड़ हैं ऐसा मानता हूँ। परन्तु इसमें तारतम्य है। एक ऐसी भी अवस्था है जो इससे भी परे है उसका अनुभव हम जैसे तुच्छ जीवोंका नहीं, महाराज ही जानें। हम तो उनके वचनोंके आधारसे लिख गए। वस्तु क्या है वह जानें—

जेठ सुदि ४ सं० १९९५ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२५—२]

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्द्र जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। खेद करनेकी बात नहीं। आपको समागम ऐसे निरपेक्ष व्यक्तिका है जो अन्यत्र दुर्लभ है, अतः मेरी सम्मति मान्य तब पं० जीसे दशाध्याय सूत्र प्रवेशिका पढ़ लो और स्वाध्यायमें उपयोग लगाओ। पश्चात् मध्यप्रान्तमें रहो—सागर, सुरई, दमोह, जबलपुर। स्वपर कल्याण करो। यहाँ पर आपके अनुकूल वातावरण नहीं। हम तो सर्व सहन कर लेते हैं। मध्यप्रान्त

बुन्देलखण्ड अब हमको प्रतीत हुआ। उत्तम प्रान्त है। द्रव्यकी त्रुटि है परन्तु कई अंशोमे अत्युत्तम है। प० जीसे हमारी कल्याण पात्र हो यह भावना उनके प्रति रहती है। योग्य व्यक्ति है। यदि वे हों तब कहना कि सर्व चिन्ता छोड़ जैनागमका प्रकाश करना। इससे उत्तम शान्तिका मार्ग नहीं।

ईसरी बाजार, हजारीबाग
भाद्र बदि १, स० २०११

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० शीतलप्रसादजी

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसाद जी का जन्म मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत शाहपुरमें आषाढ़ कृष्णा ७ वि० सं० १९८८ को हुआ था। पिताका नाम लाला मथुरादासजी था। जाति अग्रवाल है। प्राथमिक शिक्षा लेनेके बाद वे अपने पिताके साथ बहुत दिन तक कपड़ेका व्यापार करते रहे।

इस समय वे पूर्ण ब्रह्मचर्यके साथ दूसरी प्रतिमाके व्रत पालते हैं। इनके दीक्षा गुरु पूज्य वर्णी जी महाराज स्वयं हैं। ब्रह्मचर्य दीक्षा लेनेके बाद ये गृहकार्यसे पूर्ण विरत हो गये और धर्मध्यान पूर्वक अपना जीवन यापन करने लगे। इन्होंने स्वाध्याय द्वारा धार्मिक ज्ञान भी अच्छी तरह सम्पादित कर लिया है और उस प्रान्तकी स्वाध्याय मण्डलीके प्रमुख सदस्य हैं। वर्तमानमें वे हस्तिनापुर उत्तरप्रान्तीय गुरुकुलके अधिष्ठाता पदका कार्यभार सम्हालते हुए धर्म और समाजकी सेवा कर रहे हैं। ये स्वभावसे विनम्र और मिष्ट हैं।

पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी विशेष भक्ति है। यदा कदा जिज्ञासावश उन्हें पत्र भी लिखते रहते हैं। उत्तरस्वरूप जो पत्र पूज्य श्री वर्णीजीने इन्हें लिखे हैं उनमेंसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२६—१]

श्रीयुत महाशय पं० शीतलप्रसादजी साहब, योग्य इच्छाकार

आप लोकोंका समय निरन्तर आगमाभ्यासमें जाता है इससे उत्तम पर्यायका उपयोग क्या हो सकता है। हम तो निरन्तर अनुमोदनासे ही प्रसन्न रहते हैं। लाला मक्खनलाल जीसे इच्छाकार। वह तो विलक्षण जीव हैं। मनुष्यपर्य्यायकी सफलता ममता त्यागमें है।

फा० सु० ५, स० २०१० }   आ० शु० चि०
                                          गणेश वर्णी

[२६—२]

श्रीयुत महाशय शीतलप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। शान्तिका कारण न तो किराना है और न हस्तनागपुर है और न ईसरी है। शान्तिका कारण तो अन्तरङ्ग विकृतिका अभाव है जो आपकी दूर हुई वह क्यों दूर हुई आप जानो। मेरी तो यह धारणा है जो हम मोही जीव केवल निमित्तोंपर सर्व अपराधोंके कारणोंका आरोप करते हैं। यह महती त्रुटि है। मैं अपनी कथा लिखता हूँ। आपमें हो व न हो। अस्तु, गुरुकुल संस्था उत्तम है। यदि उस प्रान्तवाले चाहें तब १०० छात्रोंका प्रबन्ध होना कठिन नहीं। परन्तु दृष्टिपात हो तब न। १०० आदमी १०००) प्रतिव्यक्ति देवें। अनायास गुरुकुल चल सकता है। श्री त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि। श्रीमान् भगतजीसे इच्छाकार। जहाँ तक बने

स मार्गको सम्यग्ज्ञानी बनाना। चारित्र अनायास आ जावेगा। यथार्थ पदार्थका जाननेकी महती आवश्यकता है। वहाँ पर जा हकीमजी हैं, हमारा आशीर्वाद कहना। सब जीव रक्षाके पात्र हैं। मनुष्यकी मनुष्यता यही है जो अपनेके सदृश सबको देखे।

माघ बदि १, सं २ ११ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२७–१]

श्रीमान् त्यागी परशुरामजी, इच्छाकार

आपको तो वही समागम है जिस समागमको अच्छे-अच्छे पुरुष चाहते हैं। यह आपकी सज्जनता है जो आप हमसे भी कल्याण किया चाहते हैं। आप तो हंस जैसे श्रोता हैं। हम तो अगत्या श्रीपार्श्वप्रभुके पादमूलमें ही आयु पूर्ण करेंगे, क्योंकि पोतके पक्षी हैं। कल्याणका मार्ग तो पास ही है, कहीं रहिये। निमित्तकी योग्यता भी पास ही है; क्योंकि सञ्ज्ञीपना और निरोगता, जैनधर्ममें प्रेम, उत्तम क्षेत्र आदि सर्व कारण मिल ही रहे हैं। धर्मकी वृद्धिके साधन, कल्याणमूर्ति बाईजी तथा कल्याणभवन आदि सबसे आप सम्पन्न हो। अब परिणामोंकी निर्मलता जो मुख्य धर्म साधनका कारण है सो आपकी ही है। यदि उसमें कुछ विषमता आती हो तब उसे दूर करनेकी चेष्टा करिये। विशेष क्या लिखूँ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० हरिश्चन्द्रजी

श्रीमान् ब्र० हरिश्चन्द्रजी सहारनपुरके आस-पासके रहनेवाले हैं। प्रारम्भसे ही ये गृहस्थसे विरत हो लोकसेवाके कार्यमें लगे रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रतके साथ सत्यव्रतका ये उत्तम प्रकारसे पालन करते हैं। जीवनमें कितनी ही कठिनाई और आर्थिक हानि क्यों न उठाना पड़े पर ये भूलकर भी असत्य भाषण करना स्वीकार नहीं करते।

श्री हस्तिनापुर गुरुकुलकी ये प्रारम्भसे ही सेवा करते आ रहे हैं और वर्तमानमें उपअधिष्ठाताके पदको सम्भालते हुए उसीकी सेवा कर रहे हैं। बीचमें संस्कृत और धर्मशास्त्रकी शिक्षा लेनेके लिए ये बनारस विद्यालयमें भी रहे हैं। ये स्वभावसे निस्पृह हैं।

पूज्य श्री वर्णीजीमें इनकी अनन्य भक्ति है। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२८—१]

श्रीयुत ब्र० लाला हरिश्चन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

" ...अब आप सानन्द धर्मध्यान करें और जहाँ तक बने आजीविकाके योग्य द्रव्योपार्जन कर धर्मकी लेन पर आजावें। संसारकी दशा निरन्तर वही रहेगी। इसके चक्रसे निकलना बड़े महत्त्वका कार्य है।

ईसरी
२५-१२-१९३७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—२]

श्रीयुत ब्र० महाशय लाला हरिचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

" आपने जो चावल भेजे वह आगए तथा खरबूजा आदि आगए। मेरी समझमें नहीं आता, आप इतना क्यों करते हैं? भाई साहब जहाँ तक बने इस द्वन्द्वसे पृथक् होनेकी चेष्टा करो और आत्मकल्याणके मार्गमें अग्रेसर होओ; वहाँका पथिक वही हो सकता है जो त्याग मार्गके सम्मुख होगा। सबसे प्रथम निःशल्य होनेकी चेष्टा करो और विद्योपार्जनमें काल यापन करो। अनन्तर निवृत्तिमार्गका कषायकी तरतमता देखकर उपाय करो। लाला अर्हद्दासजीसे दर्शनविशुद्धिः।

ईसरी
३१-५-३८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

" चिन्ता करनेसे कुछ साध्य नहीं, अब तो कर्तव्यपथ पर

आनेसे ही कल्याण है। हम हमारीबाग नहीं आवेंगे। संग दुःखकर है, अत निसंगमें ही सुख है। विरागता कहीं नहीं, अपने अन्तस्तलकी रागादि परणति मिटाओ।

ईसरी
२९-३-१९

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८–४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——जहाँ तक बने अब आप अपनी दृढ़ श्रद्धा रखिए और केवल श्रद्धाकी दृढ़ता मोक्षमार्ग नहीं। जबतक उसपर अमल नहीं करोगे, कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। यही सर्वत्र कार्यकी सिद्धि होनेकी प्रणाली है। अब केवल बातोंसे कार्य न होगा।

ईसरी
८-५-१९

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[२८–५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——हमारी तो यह सम्मति है, अब आप विशेष व्यय करनेके अर्थ व्यापारमें न फँसें। यदि व्ययसे हो जावे क्यो परन्तु आकुलता कर धनकी उत्पत्ति कदापि धर्मकी जननी नहीं। जिनके पास अन्यायका द्रव्य है उनके द्रव्यसे उन्हें तो धर्मका लाभ दूर रहो; उनका द्रव्य जहाँ लगेगा वहाँ भी लाभ न होगा। वर्तमानमें जो आयतन हैं, उनसे लाभ उठाओ हो।

ईसरी
२ -५-१९

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[२८-६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

... देखो, जहा तक बने ऐसी व्यवस्था बनाओ जो चिरन्तन विना किसी उपद्रवके धर्मसाधन होता रहे। आज कल गृहस्थ लोग बहुत कुछ धर्मसाधनके पिपासु रहते हैं, किन्तु ऐसे कारण कूट उनके हैं जो मनोनीत धर्म साधन नहीं कर सकते। आपको दैवने उन कारण कूटोंसे स्वयमेव बचा दिया, केवल आजीविका की चिन्ता आपको है। सो यदि योग्य रीतिसे आप निर्वाह करेंगे तब तीन या चार वर्षमें स्वतन्त्र हो सकते हो, किन्तु यदि उस पथ पर अमल करो। वह आपसे होना अति कठिन है। जहा तक बने स्वाध्यायमें काल लगाना। श्री जिनेश्वरदास जी आदि मण्डली के साथ तत्त्वचर्चा करो। यह जीव कल्याण चाहता है, परन्तु केवल इस भावसे उसका लाभ होना कठिन है। कल्याणका मार्ग आभ्यन्तर कषायोंकी कृशतामें है सो होना स्वाधीन है, पर उसे भी स्वर्ग-नरकादिकी प्राप्ति जैसे परसे होती है वैसा मान रक्खा है। हमारी समझमें ऐसा वह नहीं है, वह तो शुद्धभावके आश्रय है। शुद्धभावका उदय स्वमें होता है। उसमे निमित्त कारणोंकी मुख्यता नहीं। अत. एकान्तमें अच्छी तरहसे मनन करो और पराधीनताके वन्धनसे मुक्त होनेका उपाय करो। विशेष चर्चा समागमसे होती है, सो वहाँ प्राय. अन्यत्र से समागम अच्छा है।

हजारीबाग, १६ ६-३६ } आ० शु० चि० गणेशप्रसाद वर्णी

[२८-७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

... उदयकी बलवत्ता यद्यपि आपके अध्ययनमें विघ्नकरी हो

गई; परन्तु आप इसे बाधक न समझें और स्वास्थ्य लाभकर स्वीय चरित्रकी पूर्ति करें। अध्ययन ही इस समय आपके कल्याण मार्गमें पाथेय होगा।

ईसरी
११-१-४६

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—८]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——ज्ञान मनसे उत्तम धन अन्य नहीं सो उसके विकाशमें सब चिन्ताओंका त्याग करो। आत्माकी निर्मलताका मुख्य कारण यही है। धनादिक पदार्थ तो उसके घातकके नोकर्म हैं। सबसे मुख्य लाभ यही है जो आत्माकी निराकुलताका हेतु हो। श्री सं० निजामसलजी साहब योग्य दर्शनविशुद्धिः।

ईसरी
२७-७-४

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—९]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——इतना प्रबल मोहको त्यागकर अब चित्तवृत्ति शान्त कर अध्ययन करो। अभी आपकी आयु विद्यार्जनकी है त्यागके वास्ते तो पर्याय बहुत है। अब भी तो त्यागी हो, केवल हम आदमीकी तरह हस्ती, ममक, मिर्च छोडनेमें कुछ तत्त्व नहीं। तत्त्व तो ज्ञानार्जनकर राग-द्वेषकी कृशतामें है। ज्ञानार्जनकर स्वात्म-दृष्टिको निर्मल करना अपना ध्येय बनाओ। आजकलके

त्यागियोंकी प्रवृत्तिको देखकर व्यामोह न करना। उद्विग्नता विद्यार्जनमें महती क्षतिकारी है।

भादों वदि १, सं० १९९६ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[२८-१०]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... मनुष्य वही है, जो अपना हित करले। साता या असाता का उदय रति व अरतिके साथ ही अपना कार्य कर सकता है। अतः जहाँतक असाताको दूर करनेकी चेष्टा न कर मोहके कृश करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। कुत्तेकी तरह लाठीको नहीं चबाना चाहिए। जितने भी आत्माके साथ कर्मबन्ध हैं, मोहके सद्भावमें हैं। इसके बिना आपसे आप चले जाते हैं, अतः मोहनीय कर्मके उत्पादक राग-द्वेष, मोह इन आत्मपरिणामोंको समूल नाशकर ससारका अन्त करना ही ज्ञानी जीवका कार्य है।

ईसरी २१-६-४१ } आ० शु० चि० गणेश वर्णी

[२८-११]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... आपने स्वाधीनतापूर्वक विद्याभ्यास करना प्रारम्भ किया अति उत्तम है। परन्तु इस प्रकार व्यवस्था करना जो शीघ्र ही इस कार्यसे छुटकारा पाजाओ। संसारमें शान्तिका उपाय तत्त्वज्ञान-

पूर्वक राग-द्वेष निवृत्ति है, अतः पहले तत्त्वज्ञान अर्जन करो, त्यागधर्मकी प्रशंसा सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही है।

अ० सु० ४ सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——इस संसारमें यही होता है। जब तक संसार पर्यायका अन्त न हुआ तब तक यही होगा। संसारके अन्तके कारण जानते हैं, परन्तु जब तक उनका सद्भाव आत्मामें नहीं होता तब तक कामकी सिद्धि होना कठिन है।

गिरिडीह, }
७-१०-४१ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१३]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——जगत् विकाररूप है, इसका दूर करना परमार्थसे कठिन है। हमारा स्वास्थ्य अब यही कहता है, अपनी ओर आओ। इन पराश्रित कार्योंसे विरत होओ पर मोहकी महिमासे पीड़ित हैं। केवल श्रद्धाके बलसे आत्मा जीवित है, अन्यथा जो होता है वही होगा।

मेरठ }
२८-१२-४८ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८-१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——मेरी [illegible] है, आना[illegible] ही साधक है। यह

आवश्यक नहीं जो षट्रसोंका त्यागकर अध्ययन किया जावे। करोगे तब प्रायः कुछ बाधा ही होगी।

सागर
जेठ बदि ६, स० २००८ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—१५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

वासना भी कोई वस्तु है। संसार ही इसी वासनाका वन हार है। हम लोगोंने अनादि कालसे शरीरको निज समझा है और इसीके सम्बन्धसे जाति-कुलकी भी हमारी आत्मामें गौरवता ठसी हुई है। यद्यपि यह कोई गुरुत्वका परिचायक नहीं। गुरुताका सम्बन्ध आत्मगुणकी निर्मलतासे है। उस ओर हम लोगोंका लक्ष्य नहीं, लक्ष्य न होनेका मूल कारण अनादि कालसे परमें निजत्वकी कल्पना अन्तःकरणमें समा रही है। उसका पृथक् होना अति कठिन है। उसका उपाय बड़े-बड़े महर्षियोंने सम्यक् दिखाया है, परन्तु उसमें हमारा आदर नहीं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[२८—१६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

.... असाताके उदयमें वही होता है, अत. शान्तिसे जो बीत गया उसे जाने दो। अब जिससे शान्ति मिले वह उपाय करना मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। लौकिक कार्योंमें सुख है नहीं, व्यर्थ चेष्टा करना है।

पूर्वक राग-द्वेष निवृत्ति है, अतः पहले तत्त्वज्ञान अर्जन करो, त्यागधर्मकी प्रशंसा सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही है।

भ० सु० ४ सं० १९९७ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—१२]

योग्य दर्शनविशुद्धि।

——इस संसारमें यही होता है। जब तक संसार पर्यायका अन्त न हुआ तब तक यही होगा। संसारके अन्तके कारण जानते हैं, परन्तु जब तक उनका सद्भाव आत्मामें नहीं होता तब तक कार्यकी सिद्धि होना कठिन है।

गिरिडीह, } आ० शु० चि०
७—१०—४१ } गणेश वर्णी

[२८—१३]

योग्य, दर्शनविशुद्धि

——जगत् विकारमय है, इसका दूर करना परमार्थसे कठिन है। हमारा स्वास्थ्य अब यही कहता है, अपनी ओर आओ। इन पराश्रित कार्योंसे विरत होओ पर मोहकी महिमासे पीड़ित हैं। केवल श्रद्धाके बलसे आत्मा जीवित है, अन्यथा जो होता है वही होगा।

मेरठ } आ० शु० चि०
२८—१२—४८ } गणेश वर्णी

[२८—१४]

योग्य दर्शनविशुद्धि

——मेरी तो श्रद्धा है, ज्ञानार्जनकी इच्छा ही साधक है। यह

आवश्यक नहीं जो पट्रसोंका त्यागकर अध्ययन किया जावे। करोगे तब प्रायः कुछ वाधा ही होगी।

सागर
जेठ वदि ६, स० २००८

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८–१५]

योग्य दर्शनविशुद्धि

वासना भी कोई वस्तु है। ससार ही इसी वासनाका बन हार है। हम लोगोंने अनादि कालसे शरीरको निज समझा है और इसीके सम्बन्धसे जाति-कुलकी भी हमारी आत्मामें गौरवता ठसी हुई है। यद्यपि यह कोई गुरुत्वका परिचायक नहीं। गुरुताका सम्बन्ध आत्मगुणकी निर्मलतासे है। उस ओर हम लोगोंका लक्ष्य नहीं, लक्ष्य न होनेका मूल कारण अनादि कालसे परमे निजत्वकी कल्पना अन्तःकरणमें समा रही है। उसका पृथक् होना अति कठिन है। उसका उपाय बड़े-बड़े महर्षियोंने सम्यक् दिखाया है, परन्तु उसमे हमारा आदर नहीं।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[२८–१६]

योग्य दर्शनविशुद्धि

...... असाताके उदयमें वही होता है, अत शान्तिसे जो बीत गया उसे जाने दो। अब जिससे शान्ति मिले वह उपाय करना मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। लौकिक कार्योंमे सुख है नहीं, व्यर्थ चेष्टा करना है।

दूसरोंको पर समझो, उतना ही अर्जन करो जो तुम्हारे निजके धर्मसाधनमें बाधक न हो। हम स्वयं अतिथि बनें।

मेरी तो यह धारणा है जो न्यायानुकूल अर्जन करता है वह स्वयं अतिथि है क्योंकि अतिथिसंविभागव्रत लोभ निरास और संघको दानसे उसकी ज्ञानार्जनमें स्थिरताका कारण है। हम जब स्वयं ज्ञानार्जन करनेमें लग जावेंगे तब स्वयं अतिथि हो जावेंगे, अत इस अभिप्रायको छोड़कर ही विद्याभ्यास करो।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[२८-१७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी तो भावना मात्र ही आपके उत्कर्ष की है। मुझे तो अब आकिंचन्य धर्म ही शरण है। आशा है आप निराश न होंगे। मनुष्य केवल ज्ञान उपार्जन कर लेता है, यह क्या कमी बात है।

सागर
२६ ७ ५२

आ शु चि
गणेश वर्णी

प्रशममूर्ति माता चन्दाबाई जी

श्रीमती ब्र० प्रशममूर्ति माता चन्दाबाईका जन्म आषाढ़ शुक्ला तृतीया वि० सं० १९४६ को वृन्दावनमें हुआ था। पिताका नाम बाबू नारायणदासजी और माताका नाम राधिकादेवी था। जाति अग्रवाल है। इनकी प्राथमिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी।

जन्मसे वैष्णव होने पर भी इनका विवाह आरानिवासी प्रसिद्ध रईस और जैन धर्मानुयायी बाबू धर्मकुमारजीके साथ ग्यारह वर्षकी उम्रमें सम्पन्न हुआ था। किन्तु एक वर्षके बाद ही इन्हें पति वियोगके दुःसह दुःखका सामना करना पड़ा।

इतना होने पर भी इन्होंने अपनेको सम्हाला और अपने गुरुजनोंका सहयोग मिलनेपर अपने जीवनको बदल डाला। ये पहले संस्कृत और धर्मशास्त्रके अध्ययनमें जुट गईं। उसके बाद इन्होंने एक कन्या पाठशालाकी स्थापना की। आगे चलकर इसी कन्या पाठशालाने जैन बालाविश्रामका वृहद्‌रूप धारण किया। श्री अ० भा० दि० जैन महिलापरिषद्‌की स्थापना और महिलादर्श मासिक पत्रका सञ्चालन भी इन्होंने ही किया है। इनकी सेवाएँ बहुत हैं। यदि इस युगमें इन्हें नारी जागरणका अग्रदूत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

वर्तमानमें ये ब्र० प्रतिमाके व्रत पालती हुई धर्म और समाजकी सेवा कर रही हैं। इनके दीक्षा गुरु श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज हैं। ऐसी लोकोत्तर महिलारत्न वर्तमानमें हमारे बीच मौजूद हैं इसे समाजका भाग्य ही कहना चाहिए।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है। पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहां दिये जाते हैं।

ग्रन्थको पर समझो, उतना ही मनन करो जो तुम्हारे निजके धर्मसाधनमें साधक हो। हम स्वयं अतिथि बनें।

मेरी तो यह धारणा है जो न्यायानुकूल अर्जन करता है वह स्वयं अतिथि है, क्योंकि अतिथिसंविभागव्रत लोभ निरास और संघको दानसे उनकी ज्ञानार्जनमें स्थिरताका कारण है। हम जब स्वयं ज्ञानार्जन करनेमें लग जावेंगे तब स्वयं अतिथि हो जावेंगे, अतः इस अभिप्रायको छोड़कर ही विद्याभ्यास करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२८—१७]

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी तो भावना मात्र ही आपके उत्कर्ष की है। मुझे तो अब आकिंचन धर्म ही शरण है। आशा है आप निराश न होंगे। मनुष्य केवल ज्ञान उपार्जन कर लेता है, यह क्या कमी बात है।

सागर
२६ ७ ५२ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

वचित रहा। अतः अपनी ओर दृष्टि देकर ही श्रेयोमार्गकी ओर जानेकी चेष्टा करना ही मनुष्य कर्त्तव्य पथ है। श्री निर्मलकुमारकी मातासे इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—२]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा। हम भी यथा योग्य स्वाध्याय करते हैं, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है उसके अभावमें कुछ शान्तिका लाभ नहीं। व्यापार करनेका प्रयोजन आय है, आयके अभावमें कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बाईजी! समागमको दोष देना तो अज्ञानता है। क्या करें, हमारा अंतरंग अभी उस तत्त्व तक नहीं पहुँचा जहाँसे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठके अर्थमें ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है। ज्ञानका फल विरति है, वह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हूँ, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है। विशेष क्या लिखूँ? श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवेचन शैली बहुत ही उत्तम है। आपको क्या लिखूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति प्रायः अलौकिक है। जहाँ तक बने अब उसे याता-यातकी हवासे रक्षित रखिये। श्री चिरञ्जीव निर्मलबाबूकी माँ सानन्द होंगी? उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना। अब शेष जीवनमें जो उदासीनता है उसे ही वृद्धिरूप करनेमें उपयोगकी निर्मलता करें यही कल्याणका मार्ग है। यह बाह्य समागम तो पुण्यका

[१—१]

श्री प्रशममूर्ति तत्त्वज्ञाननिधि ब्र० पं० चन्दाबाईजी

योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य (स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसाम्) अच्छा होगा। लौकिक स्वास्थ्य तो पञ्चम कालमें धनिक समाजका प्रायः विशेष सुविधाजनक नहीं रहता। इस समयकी न जाने कैसी हवा है जो मोक्षमार्गकी आंशिक प्राप्ति भी प्रायः जीवोंको दुर्लभसी हो रही है। त्याग करने पर भी तात्त्विक शान्तिका आस्वाद नहीं आता, अतः यही अनुमान होता है या आभ्यन्तर त्याग नहीं। मैं अन्य प्राणियोंकी कथा नहीं लिख रहा हूँ स्वकीय परिणामोंका परिचय आपको करा रहा हूँ। जैनधर्म तो वह वस्तु है या उसका आंशिक भाव यदि आत्मामें विकास हो जावे तब आत्मा अनन्त संसारका उच्छेद कर जिनेश्वरके लघुनन्दन व्यपदेशका पात्र हो जाय। अतः निरन्तर यही भावना रहती है कि हे प्रभो! आपके दिव्य ज्ञानमें यही आया हो जो हमारी श्रद्धा आपके आगमके अनुकूल हो, यही हमें संसारसे पार करनेका नौका है।

वही व्यक्ति मोक्षमार्गका अधिकारी है जो श्रद्धाके अनुकूल ज्ञान और चारित्रका धारी हो। कभी २ चित्तमें उद्वेग आ जाता है कि अन्यत्र जाऊँ अन्तमें यही समाधान कर लेता हूँ कि अब पारसप्रभुका शरण छोड़कर कहाँ जाऊँ। यहीं आपोंने परिणामोंकी सुधारणा तो स्वयं ही करना पड़ेगी। यह जीव आगन्तुक निमित्त कारणोंकी प्रधानतासे ही आत्मतत्त्वके स्वादसे

वचित रहा। अतः अपनी ओर दृष्टि देकर ही श्रेयोमार्गकी ओर जानेकी चेष्टा करना ही मनुष्य कर्त्तव्य पथ है। श्री निर्मलकुमारकी मातासे इच्छाकार।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—२]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा। हम भी यथा योग्य स्वाध्याय करते हैं, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है उसके अभावमें कुछ शान्तिका लाभ नहीं। व्यापार करनेका प्रयोजन आय है, आयके अभावमें कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बाईजी! समागमको दोष देना तो अज्ञानता है। क्या करें, हमारा अंतरंग अभी उस तत्त्व तक नहीं पहुँचा जहाँसे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठके अर्थमें ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है। ज्ञानका फल विरति है, वह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हूँ, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है। विशेष क्या लिखूँ? श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवेचन शैली बहुत ही उत्तम है। आपको क्या लिखूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति प्रायः अलौकिक है। जहाँ तक बने अब उसे याता-यातकी हवासे रक्षित रखिये। श्री चिरञ्जीव निर्मलबाबूकी माँ सानन्द होंगी? उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना। अब शेष जीवनमें जो उदासीनता है उसे ही वृद्धिरूप करनेमें उपयोगकी निर्मलता करें यही कल्याणका मार्ग है। यह बाह्य समागम तो पुण्यका

फल है और निर्मलता संसार बंधनका छेदन करनेमें तीक्ष्ण असिधारा है। यह जितनी निर्मल रहेगी उतनी ही शीघ्रतासे इसका निपात करेगी। हमने आपके समक्ष सराग जातिके धर्म प्रमत्ताका विचार किया था। कोईने बात न पूछी और न कोई साधन जानेका मिला, अतः आपकी सम्मति ही सर्वोपरि मानकर यहीं रहना ही निश्चय रक्खा है। शेष यहाँके सर्व त्यागी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्री आत्मानन्दजी चला गया। श्री सूरजमल जीका कार्य्य जैसा था वैसा ही है। "जा जा देखी वीतरागने सा सो होसी वीरा रे" इसीमें सन्तोष है। मैं तो निश्चय हूँ कुछ इसमें चेष्टा नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–३]

श्री महामूर्ति चन्दाबाईजी साहब योग्य इच्छाकार

पर्वराज सानन्द पूर्ण हुआ दशधा धर्मको यथाशक्ति सुना सुनाया, मनन किया। क्या आनन्द आया इसका अनुभव जिसका हुआ हो जाने। इसका पूर्ण आनन्द तो दिगम्बर दीक्षा स्वामी श्री मुनिराज जानें। आंशिक स्वाद तो सबीके भी आता है और इसकी जड़ अविरल अभ्यास ही प्रारम्भ हो जाती है जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती हुई अनन्त सुखात्मक पदका पात्र इस जीवको बना देती है। परमार्थ पथमें जिन जीवोंने यात्रा कर ली है उनकी दृष्टिमें ही यह तत्त्व आता है, क्योंकि इस पवित्र दशधा धर्मका सम्बन्ध उन्हीं पवित्र आत्माओंसे है। व्यवहाररत तो उसकी गन्धको तरसते हैं। आडम्बर और है,

वस्तु और है। नकलमें पारमार्थिक वस्तुकी आभा भी नहीं आती। हीराकी चमक कांचमें नहीं। अत. पारमाथिक धर्म्मका व्यवहारसे लाभ होना परम दुर्लभ है। इसके त्यागसे ही उसका लाभ होगा। व्यवहार करना और बात है और व्यवहारमे धर्म्म मानना और बात है। व्यवहारकी उत्पत्ति मन, वचन, काय और कषायसे होती है और धर्मकी उत्पत्तिका मूल कारण केवल आत्मपरिणति है। जहाँ विभाव परिणति है वहाँ उसमे धर्म मानना कहाँ तक सगत है? आपकी परिणति अति शान्त है। यही कल्याणका मार्ग है। बाबू निर्मलकुमारकी माँ सानन्द होंगी। उनसे मेरा इच्छाकार कहना और बाबूजीसे भी मेरी दर्शनविशुद्धि, किसी प्रकारका विकल्प न करें।

जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहूँ नहि होसी काहे होव अधीरा रे॥

विशेष क्या लिखूं?

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका धर्म साधन अच्छे प्रकारसे होता होगा। अतरगके परिणामोंके ऊपर दृष्टिपात करनेसे आत्माकी विभाव परिणति का पता चलता है। आत्मा परपदार्थोंकी लिप्सासे निरन्तर दु.खी रहता है। आना जाना कुछ नहीं, केवल कल्पनाओंके जाल में फँसा हुआ अपनी सुधमें बेसुध हो रहा है। जाल भी अपनी

ही कर्तव्यताका ही बोध है। एक जिनागम ही शरण है। यही आगम पंचपरमेष्ठीका स्मरण कराके आत्माकी विभावसे रक्षा करनेवाला है। श्री चिरंजीव निर्मलाबाबूसे मेरा आशीर्वाद। उनकी नियाकुलता जैन जनताका कल्याण करनेवाली है। उनकी माँ साहबको इच्छाकार कहना। मेरा विचार भी राजगृहीकी वन्दनाका है और कार्तिक सुदी ३ को यहाँसे चलनेका था परन्तु यहाँ पर बिहार उड़ीसा प्रान्तकी खंडेलवाल सभाका कार्तिक सुदी ५।११ तक अधिवेशन है, इससे अगहनमें विचार है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया समाचार जाना। अब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वामी समन्तभद्राचार्यने तो ऐसा लिखा है—

> स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां।
> स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा॥
> तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्ति-
> रिति तैवमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥

जब तक आभ्यन्तर हीनता नहीं गई तभी तक यह बाह्य निमित्तोंकी मुख्यता है और आभ्यन्तर हीनताकी न्यूनतामें आत्मा ही समय बलवान् धारण है। यही परम कर्तव्य इस पर्यायसे होना श्रेयस्कर है। लौकिक विभव तो प्रायः अनेक बार प्राप्त किये परन्तु जिस विभव द्वारा आत्मा इस चतुर्गतिके फन्देसे

पृथक् होकर सानन्द दशाका भोक्ता होता है वही नहीं पाया। इस पर्यायमे महती योग्यता उसकी है, अतः योग्य रीतिसे निराकुलता पूर्वक उसको प्राप्त करनेमें सावधान रहना ही तो हमें उचित है। मेरा श्री निर्मलकुमारकी मांसे इच्छाकार कहना और कहना कि अब समय चूकनेका नहीं। यह श्रद्धान बड़ी कठिनतासे पाया है। बुआजी आदिसे धर्मस्नेह कहना। स्थिर प्रकृतिका उदय तो उनके है। यह निरोगिता भी कोई पुण्योदयसे मिली है। उन्हें वाह्य ज्ञान न हो परन्तु अन्तःनिर्मलता है। मैंने अगहन सुदी १५ तक ईसरीसे ४ मीलसे वाहर न जाना यह नियम कर लिया है, क्योंकि आपके शुभागमनके वाद कुछ चंचलता वाहर जानेकी हो गई थी। चचलताका अन्तरंग कारण कषाय है, उसका वाह्य उपाय यही समझमे आया है। श्रीद्रोपदीजी को कहिए जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाका स्वाध्याय करें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री निर्मलवावूकी माँका समाचार भगतजी द्वारा जानकर चित्तमे क्षोभ हुआ परन्तु इस वाक्यको पढ़कर सन्तोष हुआ —

> ज जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि।
> णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा॥
> तं तस्स तम्हि काले तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
> को सक्कइ चालयिदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा॥

जो हो कुछ चिन्ताकी बात नहीं। इस समय हमें सार्थक और मार्मिक सिद्धान्त श्रवण कराके स्वात्मोत्थ निराकुल आनन्दामृतका आस्वादन कराके अनन्तानुपम सिद्ध भगवानका ही स्मरण करानेकी चेष्टा करानी ही श्रेयस्करी है। इस गाथाको छोड़कर लौकिक वार्ताओंकी चर्चाका अभाव ही अच्छा है। इस संसारमें सुख नहीं, यह तो एक सामान्य वाक्य प्रत्येककी जिह्वा पर रहता है ठीक है परन्तु संसार पर्यायके अभाव करनेके बाद तो सुख है। सुख कहीं नहीं गया, केवल विभाव परिणतिके हटानेकी दृढ़ आवश्यकता है। इस अवसर पर आप ही उनकी वैयावृत्तिमें मुख्य पथिनी हैं। यह स्वयं साक्षी है। ऐसा शत्रुको पराजय करें जो फिरसे उदय न हो। यह पर्याय सामान्य नहीं और वैसा उनका विवेक है वह भी सामान्य नहीं। अतः सब विकल्पोंको त्याग एक यही विकल्प मुख्य होना कल्याणकारी है जो असातोदयके मूल कारणको निपात करनेकी चेष्टा सतत रखनी चाहिये। असातोदय रोग मेटनेके लिए वैद्य तथा औषधादिकी आवश्यकता है फिर भी इस उपचारमें नियमित कारणता नहीं। अंतरंग निर्मलतामें वह सामर्थ्य है जो उस रोगके मूल कारणको भेद देता है। इसमें वैयावृत्य उपचारकी आवश्यकता नहीं केवल अपने पौरुषको सम्हालनेकी आवश्यकता है। श्री वादिराज महाराजने अपने परिणामोंके बलसे ही तो कुष्ठ रोगकी सत्ता निर्मूल की। सेठ धनञ्जयने औषधके बिना पुत्रका विषापहरण किया। कहाँ तक लिखें हम लोग भी यदि उस परिणामको सम्हालें तो यह बिजलीका आताप क्या वस्तु है? अनादि संसार आतपको शमन कर सकते हैं। मेरे पत्रका भाव उन्हें सुना देना।

[१—७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्री निर्मलबाबूकी माँकी विशुद्ध परणति है। असाताके उदयमे यही होता है। और महर्षियों को भी यह असातोदय अपना कार्य करता है परन्तु उनके मोहोदय की कृशता है, अत. वह अघाती प्रकृत्ति कुछ कार्य करनेमे समर्थ नहीं होती। यही बात अशत. श्री निर्मलबाबूकी माँमें भी है, अतः वे सप्रसन्न इस उदयको निजरारूपमें परिणत कर रही हैं। उन्हें इस समय मेरी लघु सम्मतिसे तात्त्विक चर्चाका ही आस्वाद अधिक लाभप्रद होगा। ससार असार है कोई किसी का नहीं यह तो साधारण जीवोंके लिए उपदेश है, किन्तु जिनकी बुद्धि निर्मल है और भावज्ञानी हैं उन्हें तो प्रवचनसारका चारित्र अधिकार श्रवण कराके—

"आतमके अहित विषय कषाय।
इनमें मेरी परणति न जाय॥"

यही शरण है ऐसी चेष्टा करना ही श्रेयस्करी है। अनादि कालके अद्यावधि ससारमें रहनेका मूल कारण यही विषय कषाय तो है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद विषय कषायका स्वामित्व नहीं रहता, अत· अविरत होते हुए भी अनन्त ससारका पात्र सम्यक्त्वी नहीं होता। यदि उनकी आयु शेष है तब तो नियमसे निर्मल भावों द्वारा असाताकी निर्जराकर कुछ दिन बाद हम लोगोंको भी उनके साथ तात्त्विक चर्चाका अवसर आवेगा। आपका प्रबल पुण्योदय है जो एक धार्मिक जीवकी वैयावृत्त करनेका अनायास अवसर मिल रहा है। श्रीयुत भगत

जीसे मेरी सानुनय इच्छाकार कहना। वह एक भद्र महाशय हैं। उनका समागम अति उत्तम है। श्री निर्मल बाबूकी माँका मेरी ओरसे यही स्मरण कराना—अरहंत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा। व्याधिका सम्बन्ध शरीरसे है। जो शरीरको अपना मानते हैं उन्हें व्याधि है, जो भेदज्ञानी है उन्हें यह उपाधि नहीं।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१—८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका बाह्याभ्यंतर स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्रीयुत निर्मल बाबूकी माँका भी स्वास्थ्य अच्छा होगा। अनेक यत्न करने पर भी मनकी चंचलताका निग्रह नहीं होता। आभ्यन्तर कषायका जाना कितना विषम है। बाह्य कार्योंके अभाव होने पर भी उसका अभाव होना अति दुष्कर है। कहनेकी चतुरताका कुछ पता नहीं। श्रद्धाके साथ साथ चारित्र गुणकी अनुभूति ही शान्तिका स्वाद तभी आ सकता है। मन्द कषायके साथ चारित्र का होना कोई नियम नहीं। शेष आपके स्वास्थ्यसे हमें आनन्द है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१—९]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

इस आत्माके अन्तरंगमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएं उदय

होती है और वे प्रायः बहुभाग तो संसारका कारण ही होती हैं वही कहा है—

संकल्पकल्पतरुसंश्रयणात्त्वदीयं,
चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् ।
तत्रार्थस्तव चकास्ति न किञ्चिनापि,
पक्षेपरं भवसि कल्मषसंश्रयस्य ॥

यह ठीक है, परन्तु जो ससारके स्वरूपको अवगत कर आंशिक मोक्षमार्गमें प्रवेश कर चुके हैं उनके इन अनुचित भावोंका उदय नहीं होना ही आंशिक मोक्षमार्गका अनुमापक है। अव्रतीकी अपेक्षा व्रतीके परिणामोंमे निर्मलता होना स्वाभाविक है। आपकी प्रवृत्ति देखकर हम तो प्राय शान्तिका ही अनुभव करते हैं। साधु समागम भी तो बाह्य निमित्त मोक्षमार्गमे है। मैं तो साधु आत्मा उसीको मानता हूँ जिसके अभिप्रायमे शुभाशुभ प्रवृत्तिमे श्रद्धासे समता आगई है। प्रवृत्तिमे सम्यग्ज्ञानीके शुभकी ओर ही अधिक चेष्टा रहती है, परन्तु लक्ष्यमें शुद्धोपयोग है। चि० निर्मलबाबूकी मॉको अब एकत्व भावनाकी ओर ही दृष्टि रखनी श्रेयस्करी है। वह अन्तरगसे विवेकशीला है। कदापि स्वरूपानुभूतिसे रिक्त न होती होंगी? सम्यग्ज्ञानीकी दृष्टि बाह्य पदार्थमे जाती है परन्तु रत नहीं होती। औदयिक भावोंका होना दुर्निवार है परन्तु जबतक उनके होते अन्तरङ्गकी स्निग्धताकी सहायता न मिले तबतक यह निर्विष सर्पके समान स्वकार्यमें क्षम नहीं हो सकते। धन्य है उन जीवोंको जिन्हें अपनी आत्म शक्ति पर विश्वास हो गया है। यह विश्वास ही तो मोक्ष महलकी नींव है, इसीके आधार पर यह महल बनता है। इन्हीं पवित्र आत्माओंके औदयिक भाव अकिञ्चित्कर हो जाते हैं। तब जिनके देशव्रत हो गया उनके भित्ति बनना कार्य आरम्भ हो गया।

इसके पास इतनी सामग्री नहीं जो महल बना सके। इससे निरंतर इसी भावनामें रत रहता है—"कब अवसर सर्व त्यागकर आवे जो निज शक्तिका पूर्ण विकास कर महलकी पूर्ति करूं!"

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१०]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चम्पाबाईजी योग्य इच्छाकार

आजकल यहाँपर सरदी बहुत पड़ती है। शारीरिक शक्ति अब इतनी दुर्बल हो गई है जो आप अन्य बाधाओंको सहनेमें असमर्थ हैं। इसका मूल कारण अन्तरङ्ग बलकी निर्बलता है। अन्तरङ्गकी बलवत्ताके समय यह बाह्य विरुद्ध कारण आत्माके अहितमें अकिञ्चित्कर हैं, परन्तु हम ऐसे आदी हो गये हैं जो उस ओर दृष्टिपात नहीं करते। शीत निवारणके अर्थ उष्ण पदार्थोंका सेवन करते हैं परन्तु जिस शरीरके साथ शीत और उष्ण पदार्थ का सम्पर्क होता है उसे यदि पर समझ उससे ममत्व हटा लें तब मेरी बुद्धिमें यह आता है यह जीव बर्फके समुद्रमें भी अवगाहन करके शीत स्पर्शजन्य वेदनाका अनुभव नहीं कर सकता। यह असम्भव नहीं। घोर उपसर्गोंमें आत्मलाभ प्राप्तिवाले सहस्रशः महापुरुषोंके आख्यान हैं। श्री निर्मलबाबूकी माँजीका स्वास्थ्य अच्छा होगा, क्योंकि बाह्य निमित्त अच्छे हैं। यह अन्तरङ्ग सामग्रीके अनुमापक हैं। यद्यपि ज्ञानी जीव इनमें कुछ भी उत्कर्ष नहीं मानता क्योंकि उसकी दृष्टि निरन्तर केवल पदार्थ पर ही जाती है। केवल पदार्थके साथ जहाँ परकी संमिश्रताकी प्रबलता है वहीं तो नाना यातनायें हैं अतः आप निरन्तर उन्हें

केवल आत्माकी ओर ही ले जानेका प्रयास करें। जिस जीवने यह किया वही तो समाधिका पात्र है। पात्र क्या तन्मय है। समाधिमें और होता ही क्या है। शरीरसे आत्माको भिन्न भावनेकी ही एक अन्तिम क्रिया है। जिन्होंने शरीर सम्बन्ध कालमे वियोग होनेके पहले ही इस भावनाको दृढ़तम बना लिया है उनकी तो अहर्निश समाधि है। अन्तरङ्ग मोहकी वासना यदि पृथक् हो गई तब बाह्यसे यदि क्रियामें असातोदय निमित्तजन्य विकृति हो जावे तब फलमे बाधा नहीं और सातोदयमे अनुकूल भी क्रिया हो जावे और मोह वासना न गई हो तब फलमे बाधा ही है। अबके वर्षा बाद मेरा स्वास्थ्य भी कुछ विशेष सुविधाजनक नहीं फिर भी अच्छा ही है, इससे सन्तोष है। सन्तोष करना ही चरम उपाय है। वह पहिले नहीं होता। किसीके हाथसे उत्तम पुष्प ऐसे खड्डेमें गिरा जो मिलना कठिन हो गया। तब क्या कहता है 'कृष्णा हेतु' किन्तु यही बात पहिले हो तब क्या कहना है। अस्तु—

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—११]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

ससारकी दशा अति भयङ्कर है, यह यूरोपीय युद्धसे प्रत्यक्ष होगा। फिर भी स्नेहकी बलवत्ता है जो प्राणी आत्महितमें नहीं लगता। वही जीव सुखी है जो ससारसे उदासीन है, क्योंकि इसमें सिवाय विपत्तिके कोई सार नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–१२]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। श्री अनूपमाला देवीको इस समय आपसे मनुष्य शीघ्र ही शान्ति कर सकते हैं। इस वर्ष यहाँ अत्यन्त गर्मी पड़ रही है। मैं पैदलके कारण नहीं आ सका। मेरी समझमें तो विकल्पोंका कोई प्रायश्चित नहीं अर्थक्यात लोक प्रमाण कषाय हैं, अतः जहाँतक बन अभिप्रायसे उनका पश्चात्ताप करना ही प्रायश्चित है। रस त्यागना, अन्न त्यागना तो दुर्बलावस्था में स्वास्थ्यका बाधक होनेमें प्रस्तुत विकल्पोंकी पुष्टि ही का साधक होगा। विकल्पोंका अभाव तो कषायोंके अभावमें होता है। कषायों के अभावके प्रति तत्त्वज्ञान कारण है, तत्त्वज्ञानका साधक शास्त्र व साधु समागम है। वस्तुतः आप ही आप सर्व कुछ समर्थ है, किन्तु हमारी ही शक्तिको हमारी ही आभ्यंतर दुर्बलताने अकर्मण्य बना रक्खा है। मनकी दुर्बलता ज्ञानकी उत्पत्तिमें बाधक है किन्तु कषाय व विकल्पोंका साधक नहीं। अतः मनकी कमजोरीसे आत्माका भाव नहीं। अतः उन्हें कहिये इस भ्रमात्मको छोड़ो जो हमारा चित्त कमजोर है। इससे विकल्प होते हैं। अन्तरङ्गसे यही भावना भाओ जो हम अचिन्त्य वैभवके पुञ्ज हैं। सायम इन शत्रुओंका निपात करेंगे। कायरतासे शत्रुका बल वृद्धिगत होता है और अपनी शक्तिका ह्रास होता है। अतः जहाँ तक बने कायरता छोड़ो और अपने स्वरूपका ज्ञाता दृष्टा ही अनुभव करो। यही बलवान और निर्बल सबका शरण है। समवसरणकी विभूतिवाले ही परम धाम जाते हैं और ज्वालामी द्वारा विदीर्ण हुए भी परमधामके पात्र होते हैं। सिंहसे भी बलवान सुभरते हैं और मत्कुण बन्दर भी उसीके पात्र होते हैं। छातामें भी कल्याण होता

है और असातामें भी कल्याण होता है। देवोंके भी सम्यग्दर्शन होता है और नारकियोंके भी सम्यग्दर्शन होता है. अतः दुर्बलता सबलताके विकल्पको त्यागकर केवल स्वरूपकी ओर दृष्टि देनेका कार्य ही अपना ध्येय होना चाहिए। बन्धका कारण कषायवासना है, विकल्प नहीं।

यहाँ अभी आनेका समय नहीं, बाह्य साधनोंकी त्रुटि है। हम पोतके पक्षीकी तरह अनन्यशरण हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१३]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। यद्यपि आभ्यन्तर स्वास्थ्य अच्छा है, तब यह भी अच्छा ही है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे यह स्वास्थ्य भी कथञ्चित् उसमें उपयोगी है। आपके धर्मसाधनमें जो उपयोगी ज्ञान है वही मुख्य है। विशेष चि० निर्मलबाबूकी माँसे इच्छाकार कहना और कहना कि पर्यायकी सफलता इसीमें है जो अब भविष्यमें इस पर्यायका बन्ध न हो और वह अपने हाथकी बात है। पुरुषार्थसे मुक्तिलाभ होता है। यह तो कोई दुष्कर कार्य नहीं। मुझे ५ दिनसे ज्वर हो जाता है। अब कुछ अच्छा है। असाताके उदयमें यही होता है, परन्तु जिन चरणाम्बुजकी श्रद्धासे कुछ दुःख नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२–१४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द वहाँपर होंगी। आपके निमित्तसे यहाँ पर शान्ति का वैभव उचित रूपसे था। आप जहाँ तक स्वास्थ्य लाभ न हो शारीरिक परिश्रम न करें। मानसिक व्यापारकी अर्गलता यद्यपि तो प्रायः कठिन है फिर भी उसके सदुपयोग करनेका प्रयास करना महान् आत्माओंका कार्य्य है। मनकी चंचलतामें मुख्य कारण कषायोंकी तीव्रता और स्थिरतामें कारण कषायोंकी कृशता है। कषायोंके कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है। चरणानुयोग ही आत्माको अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा करनेमें रामबाणका कार्य करता है। द्रव्यानुयोग द्वारा की गई निर्मलताकी स्थिरता भी इस अनुयोगके बिना होना असम्भव है। तथा यही अनुयोग करणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट कारणोंका भी परम्परा तथा साक्षात् जनक है। अतः जिनकी चरणानुयोग द्वारा निर्मल प्रवृत्ति है, वही आत्मायें स्व पर कल्याण कर सकती हैं। चि० निर्मल बाबूकी जननी भी सानन्द होंगी। उनसे मेरी इच्छाकार कहना। तथा कुमारी व उनकी सुपुत्री द्रौपदीजीसे भी यथायोग्य कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२–१५]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। श्रीयुत चि० निर्मलकुमार बाबूजीकी माँका स्वास्थ्य अब अच्छा होगा। असातोदयमें

प्राणियोंका नाना प्रकारके अनिष्ट सम्बन्ध होते हैं और मोहोदय की बलवत्तासे वे भोगने पड़ते हैं, किन्तु जो ज्ञानी जीव हैं वे मोहके क्षयोपशमसे उन्हें जानते हैं, भोगते नहीं। अतएव वही बाह्य सामग्री उन्हें कर्मबन्धमे निमित्त नहीं पड़ती, प्रत्युत मूर्छाके अभावसे निर्जरा होती है। यह ज्ञान वैराग्यकी प्रभुता है। जैसे श्री रामचन्द्रजी महाराजके जब मोहकी मन्दता न थी तब एक सीताके कारण रावणके वशके विध्वंशमें कारण हुए और मोहकी कृशतामें सीतेन्द्र द्वारा अभूतपूर्व उपसर्गको सहन कर केवलज्ञान के पात्र हुए। अत. चि० निर्मल बाबूजोकी मॉके मोहकी मन्दता होनेसे यह व्याधि रूप उपाधि प्राय: शान्तिका ही निमित्त होगी। मेरी तो उनके प्रति ऐसी धारणा है। अत: मेरी ओरसे उन्हें यह कह देना—यह यावत् पर्य्याय सम्बन्धी चेतन अचेतन आपके परिकर हैं उसे कर्म्मकृत उपाधि जान स्वात्मरत रहना। यही अनंत सुखका कारण होगा। क्योंकि वस्तुत. कौन किसका है और हम किसके हैं यह सर्व स्वाप्निक ठाठ है, केवल कल्पना ही का नाम ससार है, क्योंकि इस कल्पनाका इतना विशाल क्षेत्र है जो अद्वैतवादकी तरह ससारको ब्रह्म मान रक्खा है और इसी प्रभावसे नैयायिकोंकी तरह स्वात्मामें तादात्म्यसे सम्बन्धित जो ज्ञान उसको भी भिन्न समझ रक्खे हैं। इन नाना प्रकारके कल्पना जालसे कभी तो हम पर पदार्थके सम्बन्धसे सुखी और कभी दुखी होते हैं और इसीके कारण किसी पदार्थका सग्रह और किसीका वियोग करते २ आयुकी पूर्णता कर देते हैं। स्वात्म-कल्याणका अवसर ही नहीं आता। जब कुछ मोह मद होता है तब अपनेको परसे भिन्न जाननेकी चेष्टा करते हैं और उन महात्माओंके स्मरणमें स्वसमयको निरन्तर लगानेका प्रयत्न करते हैं और ऐसा करते २ एक दिन हम लोग भी वे ही महात्मा हो

[१—१४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द वहाँपर होंगी। आपके निमित्तसे यहाँ पर शान्ति का वैभव दर्शित रूपसे था। आप जहाँ तक स्वास्थ्य लाभ न हो शारीरिक परिश्रम न करें। मानसिक व्यापारकी प्रगतिका रुकना तो प्रायः कठिन है फिर भी उसके सदुपयोग करनेका प्रयास करना महान् आत्माओंका कार्य्य है। मनकी चपलतामें मुख्य कारण कषायोंकी तीव्रता और स्थिरतामें कारण कषायोंकी कृशता है। कषायोंके कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है। चरणानुयोग ही आत्माकी अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा करनेमें रामबाणका कार्य करता है। द्रव्यानुयोग द्वारा की गई निर्मलताकी स्थिरता भी इस अनुयोगके बिना होना असम्भव है। तथा यही अनुयोग करणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट कारणोंका भी परम्परा क्या साक्षात् जनक है! अतः जिनकी चरणानुयोग द्वारा निर्मल प्रवृत्ति है, वही आत्मायें स्व पर कल्याण कर सकती हैं। चि० निर्मल बाबूकी जननी भी सानन्द होंगी। उनसे मेरी इच्छाकार कहना। तथा कुमारी व उनकी सुपुत्री द्रोपदीजीसे भी यथायोग्य कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१५]

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। श्रीयुत चि० निर्मलकुमार बाबूजीकी माँका स्वास्थ्य अब अच्छा होगा। असातोदयमें

आगममें शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगकी समानाधिकारता श्री १०८ कुन्दकुन्द स्वामीने दिखाई है, अतः सम्यग्दृष्टिके इसीसे, सिद्ध होता है जो अशुभोपयोगकी प्रचुरता नहीं। बाह्य क्रियासे अन्तरङ्गकी अनुमिति प्रायः सर्वत्र नहीं मिलती, अतः सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्रियाकी समानता देख अन्तरङ्ग परिणामोंकी तुल्यता समान नहीं। श्रीयुत महाशय भगतजीसे हमारा इच्छाकार कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१६]

श्रीयुत प्रशमूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जैन बालाश्रम खुल गया यह सुखद समाचार जानकर परम हर्ष हुआ। श्री अनूपादेवीको मेरी समझमें मूर्च्छाका कारण शारीरिक कृशता है, मानसिक कृशता नहीं। जो आत्मा मानसिक निर्मलताकी सावधानी रखनेमे प्रयत्नशील रहेगा वही इस अनादि संसारके अन्तको जावेगा। उस मानसिक बलमें इतनी शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलङ्कोंकी कालिमाको पृथक् कर देता है। इस ससारमे मानव-जन्मकी महर्षियोने बहुत ही महिमा गायी है परन्तु उस महिमाका धनी वही है जो अपनी परिणतिसे कलुषताको पृथक् कर दे। वह कलुषता ही आत्माको अज्ञान चेतनाका पात्र बनाती है। कलुषता, का मूल कारण यह जीव स्वयं बनता है। हम अज्ञानसे परको मान उसके दूर करनेका प्रयास करते हैं और ऐसा करनेसे कभी भी

जाते हैं। क्योंकि लोकमें देखा दीपकसे दीपक जलाया जाता है। बड़े महर्षियोंकी उक्ति है पहले तो यह जीव मोहके मद स्वयं 'दासोऽहम्' रूपसे उपासना करता है। पश्चात् जब कुछ अभ्यासकी प्रबलतासे मोह कृश हो जाता है, तब 'सोऽहं सोऽहं' रूपसे उपासना करने लग जाता है। अन्तमें जब उपासना करते हुए शुद्ध ध्यानकी ओर लक्ष्य देता है तब यह सब उपद्रवोंसे पार हो स्वयं परमात्मा हो जाता है, अतः जिन्हें आत्मकल्याण करनेकी अभिलाषा होवे व पहले शुद्धात्माकी उपासना कर अपनेको पात्र बनावें। पात्रताके लाभमें मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ नहीं। श्रेणी चढ़नेके पहले इतनी निर्मलता नहीं आ शुभोपयोगकी गौणता हो जावे। जो मनुष्य नीचली अवस्थामें शुभोपयोगको गौण कर देते हैं वे शुद्धोपयोगके पात्र नहीं। शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं होता। वह तो अप्रमत्तादि गुणस्थानोंमें परिणामोंकी निर्मलतासे स्वयमेव हो जाता है। प्रयास तो कथनमात्र है। सम्यग्ज्ञानी जीव शुभोपयोग होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासनासे अहर्निश पूरितान्तःकरण रहता है। शुभोपयोगकी कथा छोड़ो उसका अशुभोपयोगके निमित्तोंके होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासना है क्योंकि शुभाशुभ कार्य करनेका भाव न होने पर भी चारित्रमोहके उदयमें उनका होना दुर्निवार है, अतः उसकी निरन्तर उन दोनों भावोंके त्यागमें ही चेष्टा रहती है, किन्तु शुद्धोपयोगका उदय न होनेसे उसके शुभोपयोग होता है, करता नहीं। हाँ अशुभोपयोगकी अपेक्षा उसका प्रायः शुभोपयोगमें अधिकांश प्रवृत्ति रहती है। इसमें भी कुछ तत्त्व है। अशुभोपयोगमें कषायोंकी तीव्रता है और शुभोपयोगमें मन्दता है, अतः शुभोपयोगमें अशुभोपयोगसे आकुलता मन्द है और आकुलताकी न्यूनता ही तो सुगम मार्गमें अतिशय सहायक है।

आगममें शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगकी समानाधिकारता श्री १०८ कुन्दकुन्द स्वामीने दिखाई है, अतः सम्यग्दृष्टिके इसीसे सिद्ध होता है जो अशुभोपयोगकी प्रचुरता नहीं। बाह्य क्रियासे अन्तरङ्गकी अनुमिति प्राय: सर्वत्र नहीं मिलती, अतः सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्रियाकी समानता देख अन्तरङ्ग परिणामोंकी तुल्यता समान नहीं। श्रीयुत महाशय भगतजीसे हमारा इच्छाकार कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१६]

श्रीयुत प्रशमूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जैन बालाश्रम खुल गया यह सुखद समाचार जानकर परम हर्ष हुआ। श्री अनूपादेवीको मेरी समझमें मूर्च्छाका कारण शारीरिक कृशता है, मानसिक कृशता नहीं। जो आत्मा मानसिक निर्मलताकी सावधानी रखनेमे प्रयत्नशील रहेगा वही इस अनादि संसारके अन्तको जावेगा। उस मानसिक बलमे इतनी शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलङ्कोंकी कालिमाको पृथक् कर देता है। इस ससारमे मानव-जन्मकी महर्षियोंने बहुत ही महिमा गायी है परन्तु उस महिमाका धनी वही है जो अपनी परिणतिसे कलुषताको पृथक् कर दे। वह कलुषता ही आत्माको अज्ञान चेतनाका पात्र बनाती है। कलुषता का मूल कारण यह जीव स्वयं बनता है। हम अज्ञानसे परको मान उसके दूर करनेका प्रयास करते हैं और ऐसा करनेसे कभी भी

जाते हैं। क्योंकि लोकमें देखा दीपकसे दीपक जलाया जाता है। यही महर्षियोंकी उक्ति है पहले तो यह जीव मोहके मद उत्तम 'दासोऽहम्' रूपसे उपासना करता है। पश्चात् जब कुछ अभ्यासकी प्रबलतासे मोह कृश हो जाता है, तब 'सोऽहं सोऽहं' रूपसे उपासना करने लग जाता है। अन्तमें जब उपासना करते हुए शुद्ध ध्यानकी ओर लक्ष्य देता है तब यह सब उपद्रवोंसे पार हो स्वयं परमात्मा हो जाता है, अतः जिन्हें आत्मकल्याण करनेकी अभिलाषा होवे व पहले शुद्धात्माकी उपासना कर अपनेको पात्र बनावें। पात्रताके लाभमें मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ नहीं। श्रेणी चढ़ने के पहले इतनी निर्मलता नहीं जो शुभोपयोगकी गौणता हो जावे। जो मनुष्य नीचकी अवस्थामें शुभोपयोगको गौण कर देते हैं वे शुद्धोपयोगके पात्र नहीं। शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं होता। वह तो अप्रमत्तादि गुणस्थानोंमें परिणामोंकी निर्मलतासे स्वयमेव हो जाता है। प्रयास तो कथनमात्र है। सम्यग्ज्ञानी जीव शुभोपयोग होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासनासे अहर्निश पूरितान्तःकरण रहता है। शुभोपयोगकी कथा तो उसका अशुभोपयोगके निमित्तोंके होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासना है क्योंकि शुभाशुभ कार्य करनेका भाव न होने पर भी चारित्रमोहके उदयमें उनका होना दुर्निवार है, अतः उसकी निरन्तर उन दोनों भावोंके त्यागमें ही चेष्टा रहती है, किन्तु शुद्धोपयोगका उदय न होनेसे उसके शुभोपयोग होता है करता नहीं। हाँ अशुभोपयोगकी अपेक्षा उसकी प्रायः शुभोपयोगमें अधिकांश प्रवृत्ति रहती है। इसमें भी कुछ तत्त्व है। अशुभोपयोगमें कषायोंकी तीव्रता है और शुभोपयोगमें मन्दता है, अतः शुभोपयोगमें अशुभोपयोगसे आकुलता मन्द है और आकुलताकी हराता ही तो सुखके मार्गमें आंशिक सहायक है।

[१-१७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यहाँ पर इस वर्ष कुछ गर्मीका प्रकोप है। मेरा विचार हजारीबाग जानेका है। श्रीयुत चिरजीवी निर्म्मलबाबूकी माँजी का स्वास्थ्य अच्छा होगा। इस समय उनके परिणामोंकी स्थिरताका मूल कारण आप है, क्योंकि आपके उपदेशका उनकी आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। ससारमें वे ही मनुष्य जन्मको सफल बनानेकी योग्यताके पात्र हैं जो इसकी असारतामे सार वस्तुको पृथक् करनेमे प्रयत्नशील रहते हैं। श्री नेमिचन्द्र स्वामीका कहना है—

> मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
> थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए।
> मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं पि जेण होइ थिरो।
> अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं॥

इन दो गाथाओंमें सम्पूर्ण कल्याणका बीज है। जो आत्मा इनके अर्थपर दृष्टि देकर चर्य्यामे लावेगा वह नियमसे ससार समुद्रसे पार होगा, क्योकि ससारका कारण मूल राग द्वेष ही तो है। इस पर जिसने विजय प्राप्त कर ली उसके लिये शेष क्या रह गया। अत. श्री माँजी से कहना निरन्तर इसीपर दृष्टि दो और यही चिन्तवन करो। यही श्री १००८ भगवान् वीर प्रभु का अन्तिम उपदेश है। समाधिके अर्थ इसके अतिरिक्त सामग्री नहीं। काय कषाय कृश भी इसी परम मत्रसे अनायास हो जाते हैं। इस समय इन आत्मभिन्न पर पदार्थोंमें न तो रागकी आवश्यकता है और न द्वेषकी, मध्यस्थ भावना ही की चेष्टा

उसके जालसे मुक्त होनेका अवसर नहीं आता। यही श्री अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है —

> रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
> उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥

यद्यपि अध्यवसान भावोंकी उत्पत्तिमें पर वस्तु भी निमित्त है, पर वस्तु ही निमित्त है इसका निरास स्वामीने किया है, फिर भी बन्धका कारण अध्यवसान भाव ही है और वह जीवका उस अवस्थामें अनन्य परिणाम है।

> रागो दोसो मोहो जीवस्सेव अणण्णपरिणामा।
> एएण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी॥

अतः पापका मूल कारण आप ही हैं। जब ऐसी वस्तु स्थिति है तब इन निमित्तोंमें हर्ष विषाद करना प्राणी जीवोंके सर्वथा नहीं। सर्वथा नहीं इसका यह भाव है जो श्रद्धा तो ऐसी ही है परन्तु चारित्रमोहसे जो रागादिक होते हैं उनका स्वामित्व नहीं, अतः उसकी कर्त्ता नहीं मान। स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु जिसका स्वास्थ्य बहुत है उसका अभी मीलयारा भी नहीं।

श्री भगूलालजीसे कहना पर्यायकी कलासे घबराना नहीं —

> मानुष विचारो की कहा चाव।
> दिवसकी तीन दशा होत एक दिनमें॥

पर्यायकी तो यही गति है अतः अपनी परिणतिपर ही परामर्श कर अजरामर पदकी अभिलाषा ही इस समय सामयिक है। कुन्दकुन्द महाराज पर हैं उनसे न राग और न द्वेष यही भावना श्रेयोमार्गकी नसी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यहाँ पर इस वर्ष कुछ गर्मीका प्रकोप है। मेरा विचार हजारीबाग जानेका है। श्रीयुत चिरञ्जीवी निर्मलभाकूकी मॉजी का स्वास्थ्य अच्छा होगा। इस समय उनके परिणामोंकी स्थिरताका मूल कारण आप है, क्योंकि आपके उपदेशका उनकी आत्मा पर प्रभाव पडता है। ससारमे वे ही मनुष्य जन्मको सफल बनानेकी योग्यताके पात्र हैं जो इसकी असारतामें सार वस्तुको पृथक् करनेमे प्रयत्नशील रहते हैं। श्री नेमिचन्द्र स्वामीका कहना है—

> मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
> थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए।
> मा चिट्ठह मा जंपह मा चितह कि पि जेण होइ थिरो।
> अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं॥

इन दो गाथाओंमें सम्पूर्ण कल्याणका बीज है। जो आत्मा इनके अर्थपर दृष्टि देकर चर्यामें लावेगा वह नियमसे ससार समुद्रसे पार होगा, क्योकि ससारका कारण मूल राग द्वेष ही तो है। इस पर जिसने विजय प्राप्त कर ली उसके लिये शेष क्या रह गया। अत. श्री मॉजी से कहना निरन्तर इसीपर दृष्टि दो और यही चिन्तवन करो। यही श्री १००८ भगवान् वीर प्रभु का अन्तिम उपदेश है। समाधिके अर्थ इसके अतिरिक्त सामग्री नहीं। काय कषाय कृश भी इसी परम मन्त्रसे अनायास हो जाते हैं। इस समय इन आत्मभिन्न पर पदार्थोंमें न तो रागकी आवश्यकता है और न द्वेषकी, मध्यस्थ भावना ही की चेष्टा

उपयोगिनी है। जो भी कुटुम्बवर्ग है उसकी सम्यग्ज्ञानामृत द्वारा संसारातापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका फल होना चाहिए। धन्य हैं उन ज्ञानियोंको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है। जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[१—१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके विचार प्रायः बहुत ही उत्तम हैं। बालाश्रमके विषयमें अभी थोड़े दिन और ठहर जावें और यदि अशान्तिकी विशेष सम्भावना हो तब आवश्य छुट्टी कर दीजिये। श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्रायः आप लोग इन सर्व आपत्तियोंसे मुक्त रहेंगे यह मेरी दृढ़ श्रद्धा है। यद्यपि परिग्रह दुःखकर है परन्तु गृहस्थावस्था में उसके बिना निर्वाह भी तो नहीं। श्री निर्मलबाबूजीकी माँ का स्वास्थ्य मेरी समझमें शारीरिक बलकी त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्योंमें साधक नहीं होता। आप तो विशेष अनुभवशीला हैं, वर्तमानमें बहुतसे जीव ऊपरी प्रयोगपर मुख्यता देते हैं और उनके हेतु आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है जो परिणामोंमें सहनशक्ति नहीं रहती। अतः जहाँ तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थोंका सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों। आभ्यन्तर जो अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्माका उपचार किया जावे और बाह्यमें जो अनुकूल और स्वल्प रुचिकर हों।

ससारमें शान्तिका एक रूपसे अभाव ही ऐसा नहीं, संसारमें ही शान्ति है किन्तु उसके बाधक कारणोंको हेय समझकर उन्हे त्यागना चाहिए। केवल कथासे कुछ नहीं।

जइ णाम को वि पुरिसो वंधणयम्मि चिरकालपडिवद्धो।
जइ ण वि कुणइ च्छेदं ण सो णरो पावइ विमोक्खं॥

बन्धनकी कथासे वन्धका ज्ञान होगा, वन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है। भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्नकी उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओंके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोड़नेमें ही सफल है। इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्वन्ध है और अतीन्द्रिय ज्ञानके अभावमें ज्ञानका साधक यह शरीर ही वन रहा है। अतः हम निरन्तर उसीकी सुश्रूषामें अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अन्तमें वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण वन जाता है। मेरा तो यह दृढ विश्वास है जो शरीर और मनोवल कम होने पर भी यदि वासनाका वल विकृत नहीं हुआ है तव कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है। देखिये विग्रहगतिमें मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता, अत हमारी मुख्यता अन्तरङ्ग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है। जहाँ तक वने श्री चि० निर्मलबाबूकी मां अधिक न बोलें और सरलसे सरल पुराणको स्वाध्यायमे लावें। पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा जो रत्नकरण्डमें जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करें। मेरी बुद्धिमें उनका अन्तरंग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु द्रव्येन्द्रियकी दुर्वलतासे वह उपयोग रूप नहीं होता। स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पों का साधक ही है, क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्यकी हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी

उपयोगिनी है। जो भी कुटुम्बवर्ग है उसकी तत्त्वज्ञानद्वारा संसारतापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका फल होना चाहिए। धन्य हैं उन ज्ञानियोंको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है। जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१–१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके विचार प्रायः बहुत ही उत्तम हैं। बालाश्रमके विषयमें अभी थोड़े दिन और ठहर जाइये और यदि अशान्तिकी विशेष सम्भावना हो तब अवश्य तक छुट्टी कर दीजिये। श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्रायः आप लोग इन सर्व आपत्तियोंसे मुक्त रहेंगे यह मेरी दृढ़ श्रद्धा है। यद्यपि परिग्रह दुःखकर है परन्तु गृहस्थावस्था में उसके बिना निर्वाह भी तो नहीं। श्री निर्मलबाबूजीकी माँ का स्वास्थ्य मेरी समझमें शारीरिक बलकी त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्योंमें साधक नहीं होता। आप तो विशेष अनुभवशीला हैं, वर्तमानमें बहुतसे जीव ऊपरी प्रयोगोंपर मुख्यता देते हैं और उनके हेतु आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है कि परिणामोंमें सहनशक्ति नहीं रहती। अतः जहाँ तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थोंका सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों। आभ्यन्तर तो अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्माका उपचार किया जावे और बाह्यमें जो अनुकूल और उन्हें रुचिकर हों।

ससारमें शान्तिका एक रूपसे अभाव ही ऐसा नहीं, संसारमे ही शान्ति है किन्तु उसके बाधक कारणोंको हेय समझकर उन्हे त्यागना चाहिए। केवल कथासे कुछ नहीं।

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिबद्धो ।
जइ ण वि कुणइ च्छेदं ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥

बन्धनकी कथासे बन्धका ज्ञान होगा, बन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है। भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है। अत. सब प्रकारसे प्रयत्नकी उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओंके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोड़नेमें ही सफल है। इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्बन्ध है और अतीन्द्रिय ज्ञानके अभावमे ज्ञानका साधक यह शरीर ही बन रहा है। अत: हम निरन्तर उसीकी सुश्रूषामें अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अन्तमें वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण बन जाता है। मेरा तो यह दृढ विश्वास है जो शरीर और मनोबल कम होने पर भी यदि वासनाका बल विकृत नहीं हुआ है तब कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है। देखिये विग्रहगतिमें मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अत. हमारी मुख्यता अन्तरङ्ग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है। जहाँ तक बने श्री चि० निर्मलबाबूकी मां अधिक न बोलें और सरलसे सरल पुराणको स्वाध्यायमे लावे। पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा जो रत्नकरण्डमें जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करें। मेरी बुद्धिमें इनका अन्तरंग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु द्रव्येन्द्रियकी दुर्बलतासे वह उपयोग रूप नहीं होता। स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पों का साधक ही है, क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्यकी हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी

उपयोगिनी है। जो भी कुटुम्बवर्ग है उसकी तत्त्वज्ञानादि द्वारा संसारतापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका फल होना चाहिए। धन्य हैं उन ज्ञानियोंको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है। जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१—१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति अम्बाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके विचार प्राय बहुत ही उत्तम हैं। बालाश्रमके विषयमें अभी थोड़े दिन और ठहर जावें और यदि अशान्तिकी विशेष सम्भावना हो तब अवश्य तक छुट्टी कर दीजिये। श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्रायः आप लोग इन सर्व आपत्तियोंसे मुक्त रहेंगे यह मेरी दृढ़ श्रद्धा है। यद्यपि परिग्रह दुःखकर है परन्तु गृहस्थावस्था में उसके बिना निर्वाह भी तो नहीं। श्री निर्मलबाबूजीकी माँ का स्वास्थ्य मेरी समझमें शारीरिक उतनी त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्योंमें साधक नहीं होता। आप तो विशेष अनुभवशीला हैं, वर्तमानमें बहुतसे जीव ऊपरी अवयोंपर मुख्यता देते हैं और उनके हेतु आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है जो परिणामोंमें सहनशक्ति नहीं रहती। अतः जहाँ तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थोंका सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों। आभ्यन्तर तो अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्माका उपचार किया जावे और बाहरमें जो अनुकूल और धर्म रुचिकर हों।

ससारमें शान्तिका एक रूपसे अभाव ही ऐसा नहीं, संसारमे ही शान्ति है किन्तु उसके बाधक कारणोंको हेय समझकर उन्हें त्यागना चाहिए। केवल कथासे कुछ नहीं।

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिबद्धो।
जइ ण वि कुणइ च्छेदं ण सो णरो पावइ विमोक्खं॥

बन्धनकी कथासे बन्धका ज्ञान होगा, बन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है। भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है। अत. सब प्रकारसे प्रयत्नकी उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओंके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोड़नेमे ही सफल है। इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्बन्ध है और अतीन्द्रिय ज्ञानके अभावमें ज्ञानका साधक यह शरीर ही बन रहा है। अतः हम निरन्तर उसीकी सुश्रूषामें अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अन्तमें वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण बन जाता है। मेरा तो यह दृढ विश्वास है जो शरीर और मनोबल कम होने पर भी यदि वासनाका बल विकृत नहीं हुआ है तब कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है। देखिये विग्रहगतिमें मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अत: हमारी मुख्यता अन्तरङ्ग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है। जहाँ तक बने श्री चि० निर्मलबाबूकी मां अधिक न बोलें और सरलसे सरल पुराणको स्वाध्यायमे लावें। पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा जो रत्नकरण्डमे जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करें। मेरी बुद्धिमें उनका अन्तरग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु द्रव्येन्द्रियकी दुर्बलतासे वह उपयोग रूप नहीं होता। स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पों का साधक ही है, क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्यकी हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी

नहीं ? कल्पनायें हाने लगती है। आप तो स्वयं सर्व विषयक बाधशालिनी हैं उनको समझ सकती हैं। विशेष क्या लिखूँ ? जागनेसे कषायकी शान्ति नहीं होगी। इस वर्ष यहाँ पर गर्मीका प्रकोप कम है। आप किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न कीजिये। मुझे विश्वास है जिनके धर्मकी श्रद्धा है उनके सर्व उपद्रव अनायास शान्त हो जावेंगे। प्रथम तो अभी उपद्रवको सम्भावना नहीं और हो भी तब भी आपके पुण्यसे आपके आश्रमकी रक्षा ही होगी। भावी विघ्न हरणके अर्थ बाहुबलि स्वामीका पूजन नियमसे होना चाहिये। श्रीयुत चिरंजीव निर्मलबाबू व चक्रेश्वर कुमारको भी शान्तिनाथ स्वामीका पूजन नियमसे करना चाहिये। अनायास सर्व विघ्न शान्त होंगे। श्री अनूपादेवीका भी स्वास्थ्य इसीसे शान्त होगा। ये भी एक पाठ विषापहारका नियमसे किया करें। यदि आश्रमकी त्राणा रही भी आवें तब उनके द्वारा निरन्तर सहस्रनामका पाठ कमसे कम १ बार तो अवश्य कराइये और प्रतिदिन महामन्त्रकी तीन माला १ बारमें फेरें तथा निरन्तर अरहन्तका ही स्मरण करें, कुछ भी आपत्ति न आवेगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[१-१६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति साहित्यसूरि श्री चन्दाबाई जी,

योग्य इच्छाकार

आपका धर्मध्यान सानन्द होता होगा, क्योंकि आपको इन दिनों एक निर्मल सम्यग्मूर्ति श्री निर्मल बाबूकी माताकी शुश्रूषा करने

से वैयावृत्तका अनायास निमित्त मिल गया है। धर्मात्मा जीव वही हैं जो कष्ट कालमे धीरतासे विचलित नहीं होते। यों तो 'वस्त्राभावे ब्रह्मचारी' बहुतसे मिलेंगे, परन्तु आपत्ति कालमे शान्तिसे समयका निर्वाह करनेवाले विरले ही होते हैं। वही जीव जगतकी वायुसे अपनी रक्षा कर सकते हैं जिन्हें सत्य आत्मज्ञान का परिचय है। वास्तव बात तो यही है। अधिक पर पदार्थोंकी संगतिसे किसी ने सुख नहीं पाया। इसको त्यागनेसे ही सुखके पात्र बने। अब उनका शारीरिक रोग शान्त होगा। मेरा तो दृढ़ विश्वास है, पहले भी शान्त था, क्योंकि जिसे अन्तरङ्ग शान्ति है उसे बाह्य वेदना कष्टकरी नहीं होती। मेरा उनसे धर्मस्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और कहना जितनी शान्ति है उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि ही इस वेदनाका मुख्य प्रतीकार है। सर्व त्यागी मण्डल आपकी शान्तिवृद्धिका इच्छुक है।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

ब्र० अनूपमाला देवी

श्रीमती ब्र० अनूपमाला जी देवी आरा निवासी प्रसिद्ध रईस स्व० बाबू देवकुमारजीकी पत्नी हैं। श्रीमान् बाबू निर्मलकुमार जी और बाबू चक्रेश्वरकुमार जी इनके पुत्ररत्न हैं। इनमेंसे श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजी आज हमारे बीच नहीं हैं। इनकी शिक्षा प्राइवेट रूपसे हिन्दी तक सीमित है फिर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने धर्मशास्त्रकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है।

ये प्रारम्भसे ही धर्म कार्योंमें सावधान रहीं हैं और अपने पतिके प्रत्येक धार्मिक कार्यमें योगदान देती रही हैं। बनारसका स्याद्वाद विद्यालय भवन और आराका जैन सिद्धान्त भवन इन्हीं दम्पति युगलकी पुनीत सेवाका फल है। इन्होंने और भी अनेक लोकोत्तर कार्य किये हैं।

इन्होंने फाल्गुन सुदि २ वि० सं० १९९७ को श्री १०८ मुनिसागरजी महाराजके सान्निध्यमें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका व्रत स्वीकार किया था और उसका उत्तम रीतिसे पालन करती हुई वे श्री जिन मन्दिर जीमें धर्मध्यानपूर्वक जीवनयापन कर रही हैं। वृद्धावस्था होने पर भी ये आत्मधर्ममें पूर्ण सावधान हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अगाध श्रद्धा है। पत्र व्यवहार फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[२–१]

श्री शान्तिरसपानकर्त्री अनूपमाला देवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, वृत्त जाने। स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है यह भी भीतरकी शुद्धिका ही माहात्म्य है। समाधिमरण तो जब समय आवेगा अनायास हो जावेगा, उसकी चिन्ता न करो। केवल वर्तमान परिणामोंकी निर्मलतापर दृष्टि रक्खो, क्योंकि सम्यग्ज्ञानी जीवके जो औदयिक भोग है उसमें उसके वियोग बुद्धि है और आगामीकी अभिलाषा नहीं। अतीतका प्रतिक्रमण है। ऐसी जिसके सावधानता है उसे भय किस बातका! जब आपका परिणाम वर्त्तमानमें उत्तम है तब उत्तरकालमें उसका फल उत्कृष्ट ही होगा। आप यह बात अतरगसे अच्छी तरह हृदयमे धारण कर लो कि पञ्चम गुणस्थानवालेके वीतरागी मुनिको शान्तिका आस्वादी नहीं आ सकता। ध्यान भी वहीं तक होगा जितनी कषायक कृशता है। परिग्रहके सम्बन्धसे पञ्चम गुणस्थानमें रौद्र ध्यान तककी सम्भावना है परन्तु वह अधोगतिका कारण नहीं। सर्वथा मूर्च्छाका त्याग अणुव्रतवालोंके नहीं हो सकता। अतः व्यर्थकी चिन्ता न करो और सानन्द सर्व पदार्थोंसे ममत्वको छोड़नेकी चेष्टा करो। अब जहाँ तक बने आत्माका परिग्रह आत्मा ही है, इसका निरन्तर रसास्वाद लो। बुद्धिमान् मनुष्य परको अपना परिग्रह नहीं मानता। वत्र जो आपके भाव होते हैं वह भी तो औदयिक हैं। उन्हें अनात्मीय जान उनसे अपनेको भिन्न समझो। उनमें जो ज्ञायक भाव है उसे आत्मीय जान, उसीमें रत हो, उसीमें सन्तोष करो, उसीसे तृप्ति होगी। और इस समय सुगम ग्रन्थोंका जो सरल रीतिसे समझमें आ जावे श्रवण करो। परमात्मप्रकाश बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। समाधि

शतक पूज्यपाद स्वामीका अद्भुत ग्रंथ है। उसका भी स्वाध्याय अवश्य करो। और कायकी कृशताको गौणकर कषायकी कृशता पर ध्यान देना। बाह्य त्यागकी वहीं तक मर्यादा है जो आत्म-परिणामोंमें निर्मलताका साधक हो।

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

[२–२]

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवीजी, इच्छाकार

आपने आजन्मसे धर्मध्यानमें अपनी आयुको बिताया। जब विभावोंके अवसर था उस कालमें आपने स्वरूपकी साव-धानतासे रक्षा की। अब तो कोई निमित्त कारण ही उन विभावों-के उत्पन्न होनेमें नहीं रहे अब तो शान्तिसे ही स्वरूपकी सन्मुखतासे ही अपनी वृत्ति रखना। यही तो अवसर शत्रुके पराजय करनेका है। उसके सहायक मन, वचन और काय तो दुर्बल हो ही गये हैं। अब तो केवल अपने ज्ञाता दृष्टा की स्मृतिकर उसे ऐसा पछाड़ो कि फिर उठनेका साहस न करे। अब पका तो चन्द्रिका की व्याप्तता भाग्यसे मिल गई है जो शत्रुको छिपनेका भी अवसर नहीं मिल सकता। एक बात हमारी मानना, जो गुरु देनेसे मरे उसे विष न देना। अतः अब कायकी कृशताके लिये उद्यम न करना। स्वयमेव आत्माश्रयसे हो रही है अब तो यही भावना भावो—

इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चित्
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।

विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो
न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुने तेऽनघवाक्यरश्मय-
शमाम्बुगर्भा शिशिरा विपश्चितां ॥

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२-३]

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवी, योग्य इच्छाकार
श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जानें। आपके दिल और दिमाग कमजोर हैं सो इससे आपकी जो चरम अभिलाषा है उसमें तो यह योग बाधक नहीं, क्योंकि ज्ञानकी पूर्णताका विकाश तो भाव मनके अभावमे ही होता है और परम यथाख्यात-चारित्रकी प्राप्ति काय योगके ही अभावमें होती है। मन जितना बलिष्ठ होगा उतना ही चञ्चल होगा, तथा इन्द्रियोंमें जितनी प्रबलता होगी उतनी ही विषयोन्मुख होनेमें साधक होगी। अत इनकी यदि निर्बलता हो गई, हो जाने दो। अब रही बात भावोंकी शुद्धताकी सो भावोंकी अशुद्धताका कारण मिथ्यात्व और कषाय है। उस पर विचार करिये। मिथ्यात्व तो आपकी सत्ता में है ही नहीं। अब केवल कषाय ही बाधक कारण रह गया। अस्तु, कषायके होनेमे बाह्य नोकर्म विषयादिक हैं सो उनके साधक कारण इन्द्रियादिक हैं,

यह आपके पुण्योदयसे दूरा ही हो गये हैं। अब तो केवल 'सिद्धेभ्यो नमः' की ही भावना कल्याणकारिणी है। कल्याणके अर्थ ही इन साधनोंकी आवश्यकता है। आत्मा यदि देखा जावे तब स्वभावसे अशान्त नहीं, कर्म कलंकके समागमसे अशान्त सदृश हो रहा है। कर्म कलंकके अभावमें स्वयमेव शान्त हो जाता है। जैसे श्री पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री शीलमूर्ति सीताजीके विरहमें कितने व्याकुल रहे जो वृक्षोंसे पूछते हैं—तुमने सीता देखी है। वही पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणके मृत शरीरको ६ मास लेकर सामान्य मनुष्योंकी तरह भ्रमण करते रहे और जब कर्म कलंक उपशम हुआ तब उपद्रवों-से सुरक्षित हो स्वाभाविक आत्मोत्थ अनुपम चिदानन्दमय हो कर मुक्तिरमाके वल्लभ हुए। यही बात ज्ञानसूर्योदय नाटकमें आयी है—

> कान्ताविरहाकुलमानसो यो बभ्राम बहुशमवासस्सुरः ।
> स किं पुनः स्वास्थ्यमवाप्य लोके समप्रवीर्यो विरराम रामः ॥

अतः सम्पूर्ण विकल्पोंका त्याग निर्विकल्पावस्थामें एक यही विकल्प करना अच्छा है—अर्हन्त परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा। अथवा यह भावना श्रेयस्करी है। आपका मन निर्बल है और मन ही आत्माको नाना प्रकारकी चंचलतामें कारण है। निर्बल शत्रुको जीतना कोई कठिन नहीं, अतः ज्ञानासिकर ऐसा निपात करिए जो फिर शिर न उठा सके। इसके वश होते ही और शेष शत्रु सहज ही में पलायमान हो जावेंगे।

यही परमात्मप्रकाशमें योगीन्द्रदेवने कहा है—

> 'पंचहं णायकु वसि करहु जेण होंति वसि अण्ण ।
> मूल विणट्ठइ तरुवरह अवसइं सुक्कहिं पण्ण ॥'

आपकी इस समय जो चंचलता है वह इस विषयकी है कि हमारा अन्तिम समय अच्छा रहे सो निष्कारण है, क्योंकि आपने उस मार्गमें प्रयाण कर दिया। अब उतावली करनेसे क्या लाभ? अतः श्री धनञ्जयके इस श्लोकको विचारिये कैसा गम्भीर भाव है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

अतः स्वकीय कल्याणका मार्ग अपनेमें जान सानन्द काल यापन करिए और यह पाठ निरन्तर चिन्तना करिये—

सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं निर्विकल्पोऽहं उदासीनोऽहं निजनिरञ्जनशुद्धात्मसम्यग्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहम्। रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपञ्चेन्द्रियविषयव्यापारमनोवचन—कायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूत—भोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्यात्वनिदानशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितशून्योऽहम् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृत-कारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयनयेन तथा सर्वेऽपि जीवा इति निरन्तर-भावना कर्तव्या।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र० माता पतासीबाईजी

श्रीमती ब्र० माता पतासीबाईजीका जन्म आषाढ़ शुक्ला १० वि० सं० १९२१ को मारोठमें हुआ है। पिताका नाम श्री फूलचन्दजी छाबड़ा और माताका नाम श्री सोंगीबाईजी तथा जाति खण्डेलवाल है। पिताके घर आपको हिन्दीकी सामान्य शिक्षा मिल सकी थी। इसके बाद सती जीवनमें आपने श्री पण्डिता भूरीबाईजी इन्दौरके सहवासमें रहकर धर्मशास्त्रका ज्ञान खूब बढ़ाया है और स्वाध्याय द्वारा वह और भी अधिक प्राप्त किया है। वक्तृत्वकलामें आप बड़ी निपुण हैं।

विवाह होनेके बाद १५ वर्षकी उम्र ही इनको वैधव्य जैसे अभिशापका सामना करना पड़ा। किन्तु ये घबराईं नहीं और अपने जीवनको धार्मिक क्षेत्रमें मोड़ दिया। इन्होंने वि० सं० १९८९में सिद्धगिरीमें श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिए थे। तबसे वे बराबर निर्दोष रीतिसे पालन करती आ रही हैं।

इन्होंने अब तक गया, सीकर आदि स्थानों पर १९ महिला पाठशालाएँ स्थापित कराई हैं और विद्यादानमें लगभग १५( ) खर्च किया है। इनका वर्तमानमें मुख्य निवास गया है। ये स्वभावसे बड़ी भद्र मितभाषिणी और दानशीला हैं। बिहार प्रान्तमें नारी जागरणका पूरा श्रेय इनको है। ऐसी आदरणीय तपस्विनी महिलारत्न वर्तमानमें अपने बीच विद्यमान है इसका समाजको गर्व है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है और इनका अधिकतर समय उनके सान्निध्यमें व्यतीत होता है। यहाँ कुछ ऐसे पत्र दिये जाते हैं जो पत्रोत्तरके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हें लिखे हैं।

[३–१]

प्रशममूर्ति श्री पतासोबाई जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप सानन्द स्वाध्याय कीजिये। आने जानेमें स्वाध्याय नियमको विशेष क्षति पहुँचती है। पैदल यात्रा उस समयकी थी जब संघ चलता था। अब एकाकी आदमीकी यात्रा तो केवल कष्टकरी है। निमित्त-कारण उत्तम मिलना चाहिये। आप जानती हैं केवल नन्हेंके साथमें कहां तक परिणामोंकी निर्मलता रहती। बाबूजीके साथ भी जाते तब भी विशेष लाभ न था। हम तो पैदल जाते और वह सवारीमे जाते तब मार्गमें बोलनेको या तो वनके वृक्ष थे या नन्हे और फिर मार्गमें ठीक ठहरने का सुभीता नहीं, रसोई बनानेको सुभीता नहीं, जहां जाओ प्रासुक पानीकी दिक्कत। अत इन सब बाधक कारणोंका अनुभव कर यहां रहना ही उचित समझा और यह नियम किया है कि प्रतिदिन इस यात्राकी विघ्नशान्तिके अर्थ पूर्ण समयसार सस्कृत टीका सहित वाचना। यदि किसी दिन आलस आजावे तब एक रस छोड़कर भोजन करना। बीमारीमें नियम नहीं। बाबूजीको आप समझा देना जो मेरा विकल्प न करें। हम तो यहांपर उन्हींके निमित्त आये, अत उनका उपकार नहीं भूल सकते। यह बात वे जानते हैं। यदि वे न होते तव दो वर्षमें यहां आना मुश्किल था। उन्हींका साहस था जो लाए। अब आप भी शीतकालमें दो मास शान्तिसे गयामें रहिये और वहांके मनुष्य और स्त्री समाजका कल्याण करनेमे निमित्त कारण बनिये। कल्याणका मार्ग सर्वमें है। उद्भूत होनेका निमित्त मिलना चाहिये। देखिये देवोंमें

मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक शक्ति है तथा उस पर्यायमें पीतादि ही लेश्या है, परन्तु फिर भी कर्मभूमि तथा मनुष्य पर्यायके अभावमें मोक्षमार्गकी व्यक्तता नहीं। सम्यक्त्वमात्रकी ही योग्यता है। यहां के निमित्त इतने उत्तम हैं जो अनायास इस पर्यायसे साक्षात् मोक्षमार्गका लाभ यह जीव ले सकता है। अतः आपको भी यहां कुछ दिन जनताकी ओर दृष्टि देनी चाहिये। हमारी वृत्ति तो पराधीन है। प्रथम तो हम परिणामोंसे चपल हैं तथा बातमें पराधीन हैं। आजकल ऐसे जीव नहीं जो किसीकी स्थिरता करें, दोष देखनेवाले ही हैं। यह सब कलिका प्रभाव है। हमारा तो यहां तक विचार आता है कि क्षेत्रसंन्यास कर लेवें, परन्तु अभी एक बार चरम प्रभुकी भूमि स्पर्श करनेका भाव है और कोई शल्य नहीं। काशीके बाबा क्षेत्रकी तो शल्य नहीं, क्यों कि उस प्रान्तकी योग्यता नहीं। इस प्रान्तमें आनेका कारण श्री कन्हैयालालजी वा श्री लल्लू बाबू थे। परन्तु अब वे तटस्थ हैं और यह तटस्थता यथार्थ अच्छी वस्तु है। मेरी तो यहां तक धारणा है जो स्वात्म-कल्याणमें तटस्थता ही मूल कारण है। परन्तु सर्वत्र तटस्थता यथार्थ होनी चाहिये। त्यागका अर्थ ही तटस्थ है। यहां त्यागमें कषाय है वह तो अशान्तिका मार्ग है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–२]

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

वही जीव संसारमें सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदयमें कषायकी वासना न रहे। जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी

निर्मलताके अर्थ होता है। जहां पर वाह्य व्यवहार और उनके कारणोंपर ही लक्ष्य है उनसे क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नहीं। अन्तःसार विना जो भाव होगा वह थोथा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३--३]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने उत्कर्ष गुण को व्यर्थके अभिमानमें न आकर रक्षा करेगा। आजकल लोक (अज्ञानी) प्रशंसासे फूले नहीं समाते। यह धर्मका वाह्य स्वरूप इसी अर्थ पालते हैं। आभ्यन्तर कलुषताके अभावमें वाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नहीं। ऐसे मनुष्योंको उसकी गन्ध नहीं। गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योंकि गृहस्थ तो आतुर है। जहां उन्हें कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते हैं और उसकी ऊपरी वैयावृत्त कर अपना भला समझते हैं। अथवा यों कहिए इन लोगोंको अपने पक्षमें कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोंकी रक्षा करते हैं। सत्य-स्वरूपमें उनके स्वेच्छाचारिताका घात है। हम तो एक कोणमें हैं, अत पार्श्वप्रभुकी चरणसेवा ही इससे इष्ट की है। यहां पर उन प्रलोभनोंकी त्रुटि नहीं। यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गंध नहीं आई और ऐसे आडम्बरोंमें शान्ति काहे की? घर छोडा, दुनियाको घर बना लिया, धिक् इस परिणतिको। इसका अर्थ लल्लूसे पूछना वह चिट्ठीका अर्थ ठीक कहेगा। उनसे भी

परानिवृत्तिः। यह अब हमसे दूर है। श्री सूरजमलजीका हम बहुत उपकार मानते हैं जिन्होंने यह धर्मायतन बना दिया। श्री विलासरायजीसे कहना संसारकी दशा देखकर भी आप अपने समयका सदुपयोग नहीं करते।

श्री पतासीबाई, यदि आत्मशान्तिकी इच्छा है। तब यथार्थ रूपसे स्वात्मभावनाको करना और कायरताका आश्रय न देना। केवल बाह्य त्यागमें अपनी स्वात्मपरिणतिको लगा न देना।

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[३-४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। पत्रोंसे न शान्ति मिलती है, न अशान्ति मिलती है और न स्थानोंमें शान्ति है और न अशान्ति है। यह हमारी गाढ़की बलवती कल्पना है जो अपनेमें हुई चीजका परमें आरोप करते हैं।

मेरी तो यहाँ तक धारणा है जो परके सम्बन्धसे जो भी कार्य होगा वह शुद्ध नहीं हो सकता। शुद्धपर्याय केवल आत्मामें होती है। शुद्धता पर्याय हीके निमित्तसे नहीं होती, अतः वह केवल एक ही द्रव्यकी पर्याय है। मिथ्यात्व अविरत कषाय और योगसे चेतन भी है और अचेतन भी है। परन्तु जो पर्याय कर्मके अभावसे उत्पन्न होती है वह आत्मस्वरूप ही है और उसीका नाम शान्ति है। संसारके अन्दर यदि बिना मूल्य के पदार्थ मिलता है तो वह नाम शान्ति है। जिसे हम कष्ट-साध्य समझते हैं वह इतनी सुगम वस्तु है जो यहाँ कष्टका काम

ही नहीं। अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न ही उसकी प्रथम सोपान है। अभिप्राय निर्मल बनानेके लिए कष्टादिककी आवश्यकता नहीं है। प्रत्युत कष्टोंके कारणोंके अभावमें ही इस महत्त्वकी जड़ है, अतः यह स्वपरके उपकारोंके विकल्पको छोड़ो और सहज रीतिसे जीवन व्यतीत करो। अपने आप उपद्रवोंको बनाना और फिर उनको दूर करनेके लिये आकुलता ज्ञानी जीव नहीं करता। शान्तिका मूल कारण कहीं नहीं और सर्वत्र है। सावधान जीवको सर्वत्र सुलभ है। जहाँ-जहाँ वीतराग जाते हैं वही भूमि तीर्थ हो जाती है। भूमिसे धर्म नहीं, धर्मात्मा पुरुषोंके हृदयमें धर्म है। अतः सुखके कारण धर्मको, जिस समय रागादिक अनात्मधर्मोंकी उपेक्षा होगी, आप ही में देखोगे। ....जहाँ तक बने स्वाध्यायका तत्त्व शान्ति ही में देखना। हमने वैशाख सुदि १ से १५ दिन तक मौन लिया है।

ईसरी, (हजारीबाग)
वैशाख बदि १४, सं० १९९७

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[३—५]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारमें वही जीव शान्तिलाभका पात्र हो सकता है जिसकी मूर्च्छा परपदार्थोंसे हट गयी है। हमारा जीवन इसलिये है कि उसे सफल बनावें। केवल परपदार्थोंकी प्रशंसासे प्रसन्न रहकर कालक्षेपण करना जीवनका दुरुपयोग है। प्रायः मोही जीव जहाँ अन्य आदमियोंने प्रशंसा की फूल जाता है। यही संसारका कारण जघन्य भाव है। जिसको प्रशंसामें आनन्द

है उसे निम्बार्में विषाद है। जिसे हर्ष-विषाद दोनों है वह पामर है, संसारी जीव है। जिसकी प्रवृत्ति इससे परे है वही मुक्तिका पात्र है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[३-६]

इच्छाकार

आपका पत्र आया, शरीरकी निरोगताके अर्थ जो उपाय बताये, समादरणीय हैं। प्रायः जितने मनुष्योंसे समागम हुआ सभीने शरीरकी दुर्बलता पर पश्चात्ताप प्रकट किया, उचित ही है। किन्तु जिस रोगसे मेरी आत्मा अत्यन्त दुर्बल आक्रान्त रहती है, एक समय भी स्वस्वभावमें स्थिरताको नहीं पाती तथा यदि ऐसी पद्धतिका अनुसरण करती रही तब आगामी भी इसी दुर्दशाका पात्र रहेगी। इसके अर्थ किसीने भी मेरेको कुछ न कहा और न इस दुर्दशासे मुक्त होनेका उपाय बताया, अतः इसका यही अर्थ है कि न मैंने इस विषयमें उनको दिग्दर्शन कराया, न उन्होंने मेरेको इसके बदलेमें इसका कुछ उपाय बतलाया। यह तो परस्परका व्यवहार है। शरीरकी निरोगता थोड़ी देरको कल्पना करो हो ही गई तब क्या आनन्द आया, प्रत्युत परद्रव्यमें रत होनेका अवसर आया। अभी रोगावस्थामें आत्मद्रव्यकी अनुचित प्रवृत्ति पर पश्चात्ताप तो होता है, अतः नीरोगतासे मैं अपनी रोगावस्थाको अच्छा समझता हूँ। यद्यपि एकान्त ऐसा नियम नहीं परन्तु पहले वीतराग होनेमें जितना सहकारी बाह्य-वस्तुका

वियोग हुआ उतना संयोग नहीं हुआ। प्रथमानुयोगमें प्रायः ऐसा ही देखनेमें आता है, अत. हमने तो निश्चय कर लिया शरीर की स्वास्थ्यता हमारे अधीन कार्य नहीं। क्यों इतना प्रयास किया जावे जो यद्वा-तद्वा प्रयोगोंकी चेष्टा करनी पड़े। उचित उपाय अपनी आसक्तिके अनुकूल करनेमें कौन चूकता है। यदि उपाय करनेमें भी विफलता हो तब संतोष ही करना चाहिये। न करो तो कर ही क्या सकते हैं? अनादि कालसे हम आहारादि सञ्ज्ञाओंसे पीड़ित हैं और उस पीड़ाका जो प्रतिकार करते हैं वह आबाल गोपाल विदित है। यद्यपि वह प्रतिकार मृगतृष्णाके तुल्य है परन्तु क्या करें। जो उपाय उस दु खसे निवृत्तिका है वह तो अनुभवगम्य नहीं, क्योंकि अज्ञानी हैं। जो इस उपाय के जाननेवाले हैं उनकी उपासनासे दूर भागते हैं, अत. निरन्तर दु खसे सतप्त रहते हैं। अत. जो उपाय अनादि कालसे अपनी सत्ताका एकाधिपत्य जमाये हुए आत्मामें रम रहा है उसीका आश्रय करते हैं। मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथामें अब समयका दुरुपयोग न कर आत्माकी शक्तिको उपयोगमें लाकर अग्निसदृश कर्मेन्धनको दग्ध कर स्वात्मदिव्यज्ञान द्वारा स्वपदका लाभ लेना चाहिए। अब इस अनादि काल निहित मोहको निधन करना ही अपना कर्त्तव्य है। सत्य पुरुषार्थ तो वह है जो फिर इन देहस्थ रोगोंकी यातना न हो। कर्तव्य पथमें आना ही मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिका फल है। स्वाध्याय करके ज्ञानका लाभ तो बहुत मनुष्योंके हो जाता है किन्तु ज्ञानपथ पर यथाशक्ति प्रवृत्ति करना किसी ही भाग्यशाली आत्माके होता है। आत्महित त्रियोग और कषायोंकी प्रवृत्तिसे परे है। योग आत्माका घातक नहीं, घातक तो कषाय है। लोकमें चञ्चल बालककी निन्दा नहीं होती, किन्तु जो प्रमादी और क्रूर होता

यह निन्दनीय है। एवं मोक्षमार्गमें योगों द्वारा जो आत्म-प्रदेश प्रकम्पन है वह बाधक नहीं, कषायका फल भी चारित्रका बाधक है। अतः इसी कषायका जितना भी पुरुषार्थसे निवारण कर सको करो। व्यर्थ प्रमादमें आयुको न जाने दो, क्योंकि इस समय जो सामग्री उपलब्ध है उसका मिलना सामान्य पुण्यका फल नहीं। प्राप्त ज्ञानका उपयोग न कर विशिष्टकी आकांक्षा करना यानी पानीमें रोटीका प्रतिबिम्ब देख जैसे कूकर उसके लिए मुखकी रोटी त्यागकर प्रतिबिम्बकी रोटीकी चेष्टा कर पश्चात्ताप करता है तद्वत् है। विशेष फिर।

आ सु० १ सं १९९८ } आ शु चि गणेश वर्णी

[३—७]

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

इस कालमें स्वाध्यायसे कल्याणमार्गकी प्राप्ति सुलभ है। दूसरे तपके लिये शारीरिक स्थिरताकी महती आवश्यकता है। अनशनादि तप जैसे सुखद होना चाहिये उस रूपसे प्रायः उनका होना कुछ शरीरकी हीनतासे कुछ मनोदुर्बलतासे प्रायः असुलभ है। अन्तरङ्ग तपमें सब प्रथम मनोबलकी बड़ी आवश्यकता है। मनोबल उसीका प्रशंसनीय है जो प्रपञ्च और बाह्य पदार्थोंके संसर्गसे अपनी आत्माको रक्षित रख सकेगा। आज उसके त्यागकी यह स्वाभाविक परणति हो गयी है कि स्वप्रशंसाके भिक्षुक और परनिन्दाके बध्य बन गये हैं। कल्याण-मार्गमें विभावभावोंका आदर नहीं। अतः इन सब विषयोंमें तटस्थ रह

अपना हित करना। व्यर्थकी सामग्री संग्रह करना भी एक तरह से विभावभावके पोषणमें नोकर्म है। कोई भी कार्य हो उसके फलका परामर्श कर आरम्भ करना ही परिपाकमें दुःखावह नहीं होता। शान्तिमार्गकी कथा सुनकर एकदम वाह्य सामग्रीको त्याग देना क्या शान्तिमें कारण है? शान्तिका कारण अशान्तिके आभ्यन्तर वीजको नाश करनेसे होगा। यह बाह्य तो उसमें यदि वह भाव हो तो कर्म्म हो जाता है सो भी उदासीनरूपसे। जितने भी अचेतन पदार्थ रागादिकमें निमित्त पड़ते हैं तटस्थरूपसे वास्तवमें तो हम ही उन्हें निमित्त बनाते हैं। उनकी सर्वथा ऐसी शक्ति नहीं जो हठात् रागादिक उत्पन्न करा देवें। मेरी तो चेतन-अचेतन कारणोंमें एकसी धारणा है। विशेष क्या लिखूँ, क्योंकि हमारा लिखना मोहज भाव है। इसकी सामर्थ्य कितनी है यह लिखना तो ऋषियों द्वारा ही साध्य है। जिसके अन्तर्गत वीतरागताका रस टपकता है। मूर्च्छावालोंकी लेखनी कहाँ तक असली वातको प्रत्यय करा सकती है। सुवर्णमें जड़ा हुआ कांच हीराकी आभा नहीं ला सकता। आवश्यकता की लिखी सो आवश्यकता तो इस बातकी है जो आवश्यकताकी जननी के गर्भमें न जाना पड़े।

आ० शु०-चि०
गणेश वर्णी

[३—८]

श्रीयुत प्रशमगुणसम्पन्न पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

सानन्दसे धर्म-साधन होता होगा। यहाँ पर सर्व-त्यागी सानन्द धर्मसाधन कर रहे हैं। बड़े दिवसोंमें वहुतसे भाइ

आप।..................कल्याणके अर्थ जो मनुष्य उद्यम करता है, वह अति *निःशंक* हो जाता है। *निःशंक* रहना ही तो मोक्षपथिकका पहला अंग है। पर्यायकी पराधीनता उसकी बाधक नहीं। वैसे तो प्रायः मोहके सद्भावमें सभी पराधीन हैं। स्वाधीनता तो पूर्णरूपसे मोहके अभावमें ही होगी।.................. बाबाजीमाससे सब आपको वन्दना कहते हैं। श्रीलक्ष्मणसी तो ऐसे भूल गये जा क्या कहें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[२—६]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके पास क्षेमचन्द्रजी गये। हमको पता नहीं, किस वास्ते गये और न हमने उनसे कुछ कहा। संसारमें मनुष्योंके भाव अपने अनुकूल होते हैं। चाहे उसमें अन्यका उपकार हो, चाहे अपकार हो कोई नहीं देखता। संसार में मायाचारकी प्रचुरता बहुत है। रहे, अपनेको नहीं करना चाहिये। यही आत्म-कल्याणकी कुञ्जी है।

हमारा विचार अब प्राय प्रायगिरि मानेका हो गया सा यदि इस लम्बे समागममें कदाचित्‌ कुछ अपराध हुआ हो उसे हमारा मान आप द्वारा प्रसन्न रहना। श्री लक्ष्मू बाबूसे कह देना अनात्मीय भावका पोषण करना विषधरसे भी भयानक होता है।

नोट—शायद अब हमारा देव-दर्शन बहुत अरसेमें हो।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[३—१०]

श्रीयुत महाशान्तिमूर्ति पतासीबाईजी व कृष्णाबाईजी,
योग्य इच्छाकार

आपका समागम महावीर स्वामीकी यात्राके अर्थ हुआ अच्छा ही हुआ। प्रायः मनुष्य लौकिक कामनाके हेतु ही विशेष रूपसे यात्रा करते हैं। आप ससार निवृत्तिकी कामनाका आशय हृदयमें धारण कर यात्रा करियेगा। मैं तो उस दिनको आपको धन्य समझूँगा जो आपकी प्रवृत्ति अब अन्यसे छूटेगी। आत्मीय गुणका विकाश उसी आत्मासे होगा जो परपदार्थसे स्नेह छोड़ेगा। आत्मकल्याणका अर्थी, शुद्धोपयोगके साधक जो पदार्थ हैं, उनसे भी स्नेह छोड़ देता है। अन्यको कथा ही क्या है। मनुष्यजन्ममें ही आत्मज्ञान होता है सो नहीं, चारों गति ही भेदज्ञानमे कारण हैं। परन्तु सयमका पात्र यही मनुष्य जन्म है, अत इनका लाभ तभी है जब इन परपदार्थोंसे ममताभाव छोड़ा जावे। ममताके त्याग विना समता नहीं और समताके बिना तामसभावका अभाव नहीं। जब तक आत्मामे कलुषताका कारण यह भाव है तब तक शान्तिका उदय नहीं। शान्तिका मूल कारण निरीहवृत्ति है। भ्रमणमें नाना कष्टोंका सामना करना पडता है। तथा उस समय धीरताकी कृशता होती है और चञ्चलता वृद्धिको प्राप्त करती है और चञ्चलभावसे ससार वृद्धि का ही आस्रव होता है, अतः ऐसे समयमें जहाँ नाना प्रकारकी असुविधाएँ हैं, संयमी मनुष्योंको यात्राके अनुकूल नहीं। आत्म-हितका कारण शुद्ध भाव है और कदाचित् विशुद्धभाव भी निमित्त कहा है। परन्तु सक्लेश भाव तो सर्वथा ही अयोग्य है। शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगका समानाधिकरण हो सकता है।

क न्तु अनुमापयोगके साथ तो उस भावका रहना असम्भव युक्तिका उपयोग वहीं तक करना जहाँ तक मूलतत्त्वमें बाध आवे। बहुतसे मनुष्य व्यवहारकी मुख्यताकर मूलवस्तुका घ करते हैं यह अनुचित है। इसीतरह निश्चयकी मुख्यता कर बाह्यप्रवृत्तिका निषेध करते हैं वे भी पतित हैं। तत्त्वप्राप्ति समभावसे ही होती है। सो जहाँ तक बन अविरामपूर्वक साधन करना श्रेयोमार्ग है। ....हम दीपावली बाद कोडर आवेंगे और फिर गया जावेंगे। वही मनुष्य उत्तम है जो म सम्बन्ध रखता है।

ईसरी,
कार्तिक वदि ५, सं २

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—११]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। आपने लिखा सो ठीक है। मूर्च्छा ही बन्ध कारण है। परन्तु यह समझमें नहीं आता कि वस्तुका संबं रहे और मूर्च्छा न हो। असम्भव है। स्वामी कुन्दकुन्दका कहन है कि जीवके घात होने पर बन्ध हो व न हो नियम नहीं परन्तु परिग्रहके सद्भावमें नियमसे बन्ध है। अस्तु हम उस वस्तुका स्वामी तो परिग्रह समझते हैं। परन्तु जिस दिन हमसे मूर्च्छा घटेगी एक सेकेंडमें पृथक् कर देवेंगे फिर विलम्बका काम नहीं। जहाँ तक भीतरसे मूर्च्छा घटना चाहिये और वही हितकर है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१२]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वास्थ्य अच्छा उसीका रहेगा जो पराई चिन्तासे मुक्त होगा। वही संसारबंधनसे मुक्त होनेका पात्र है। यह मनुष्यजन्म इसीसे उत्तम है जो संयमका आश्रय है। अन्य पर्यायमें यह बात नहीं। हमने अपनी परणतिको इतना कलुषित कर रखा है जो पर्यायकी उत्तमतासे कार्य लेनेके पात्र नहीं रहे। केवल इधर उधरकी प्रशंसामें ही आत्मीय गुणका अनुभव करनेमें अक्षम हैं। आप जहां तक बने यातायातके विकल्प छोड़ यातायातके पात्र न बनो। अपनी दिव्यदृष्टिको प्राप्तकर पञ्चम गतिके भोक्ता होनेकी चेष्टा करो। हम दो मास यहीं पूर्ण करेंगे। मोहमें वही होता है जो हमको हुआ।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-१३]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मैं चैत्र वदि २ को यहाँसे ईसरीके वास्ते प्रयाण करूँगा। प्रायः चैत्र वदि १० को वहाँ पहुँच जाऊँगा। यातायात अच्छा है यदि अंतरंगवृत्ति यतितुल्य हो, अन्यथा मार्गक्लेश ही है। इसीसे त्यागकी महिमा है जो अन्तरङ्ग परग्रहणकी लालसा न हो। हिंसा, लिप्सा दोनों ही संसारकी जननी हैं, क्योंकि दोनो भावोंमें कषायरूपी विष मिला हुआ है। देनेवाला अपना अहंकार

पुष्ट करता है। लेनेवाला दैन्यवृत्तिका पात्र होता है। जिनके यह भाव नहीं उनकी सर्व क्रिया निर्जराका कारण है। मेरा भी बापूरस्वामीजीसे धर्मस्नेह कहना। शारदा बालिकाने ७) रुपये भेजे थे मैंने एक त्यागीको जो यहाँ आ रहा है, भद्र है। इनके द्वारा समाचार जाने। कल्याण वही आत्मा कर सकता है जो मूर्च्छाके वशमें न आवे। आज यहाँ पर सोहनलाल जी व नेमि सागर आरा हैं। लाला फिरोजीलाल जी भी सासनीवाले आये हैं। श्री सुमेरचन्द्र जी भी आये हैं। कल भोंदीलाल जी भी आवेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–१४]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, पढ़ कर प्रसन्नता हुई। जो कुछ आपने लिखा अक्षरशः सत्य है। ऐसा ही इस अवस्थामें उचित है। परन्तु हमारा स्वास्थ्य मलेरियाके द्वारा समाधिमरणके योग्य हो गया। ११ माससे उसकी हमारे ऊपर इतनी अनुकम्पा है जो निरन्तर परमात्माका स्मरण कराता रहता है। यही भावना हो गयी कि जब तक आत्महितके मार्गका लाभ नहीं हुआ तब तक मलेरिया नहीं, अन्य रहेगा इससे यही अच्छा है। जो मेरठासमें सहकारी और विरागभावनामें इष्ट योगके तुल्य साधनका काम देता है। इस सर्व लाभकी रक्षा अर्थ हमारा यहाँसे ग्रामगिरि जाना अच्छा है। एक स्थान पर रहनेसे ममताका सद्भाव हो जाता है तथा चित्तमें सुखियापन आ जाता है जो कि आत्माके अहितमें साधक है। भ्रमण

करनेसे स्थानमोह नहीं होता तथा विशेष व्यक्तियोंके अधीन नहीं होने पड़ता। परिग्रहकी मूर्च्छा नहीं होती। यहाँ तो हम एक अच्छे परिग्रही बन गए। ऐसा सप्ताह नहीं जाता जो बहुपरिग्रही न बनना पड़े। प्रथम तो मर्यादासे अतिरिक्त वस्तुओंका संग्रह करना पड़ता है। उसके रखनेमें आत्मघात और त्यागमें अपयशभागी बनना पड़ता है। शान्तिका मार्ग तो मूर्च्छा त्यागमें ही है। परन्तु न तो हमारा इतना भाव है और न शारीरिक सामर्थ्य है जो इसे कर सकें। तथा करना भी चाहें तो जो हमारे अन्तरंगहितैषी हैं वह हमें इस योग्य नहीं मानते, अतः निषेध कर देते हैं इत्यादि विषम परिस्थिति हमारे समक्ष है। परन्तु सबसे महान् सहायक इस समय आत्मविषयक श्रद्धा है और वही इन आपत्तियोंसे पार करेगी। श्रद्धा ही तो मुक्तिमहलकी प्रथम सोपान है। उसकी आज्ञा है यदि इस परिग्रहसे छूटना चाहते हो तो संकोच छोड़ो, निर्द्वन्द्व बनो। परके प्रभावमें आकर अपना अहित मत करो। जो गुण अन्यत्र खोजते हो वे तुम्हारे नहीं। आत्माका उनसे कोई उपकार नहीं। [उप]कार तो निजशक्तिसे होगा। उसका विकाश करो। परकी [प]राधीनता छोड़ो। नाना विकल्पोंसे दुःखी मत होओ। यह [ज]ाल है, इसमें मत फँसो। जो तुम्हें अनन्त संसारमें पटकेगा। [इ]स जालमें फँसानेवाला कौन है, जरा अन्तर्दृष्टिसे परामर्श [क]रो। जाल ही जालमें फँसाता है ऐसी भ्रान्ति छोड़ो। बहेलिया [फ]ँसाता है यह भी भ्रान्ति छोड़ो। दाना फँसाता है यह भी भ्रम [त्]यागो। जिह्वेन्द्रिय फँसाती है यह भी अज्ञानता छोड़ो। केवल [च]ुगनेकी अभिलाषा ही फँसानेमें बीजभूत है। इसके न होने पर [स]र्व व्यर्थ है। एवं इस दुःखमय संसारमें फँसानेका कारण न तो [illegible] न मन-वचन-कायका व्यापार है, न द्रव्य

कर्मसमूह है। केवल स्वीय आत्मासे उत्पन्न रागादि परपति ही सेनापतिका कार्य करती है। अतः इसीका निपात करो। अनायास संसारसे मुक्त होनेका मार्ग पाजाओगे। जो शिक्षा रिक्शामें बैठनेकी अपेक्षा डोलीमें क्या हाथ ? सो आप निश्चिन्त रहिये। हम कदापि वह कार्य न करेंगे जिससे आत्माका सुमार्गसे च्युत होना पड़े। यदि किसीने कह दिया, इस पर हमारा क्या वश है। हम १२ मास जो प्रतिज्ञा की है उसका निर्वाह करेंगे। प्रतिज्ञा कर धर्मका लाभ नहीं होता। लाभ तो आत्मपरिणामोंको निर्मल रखनेसे होगा।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[३—१५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

श्री सोहनलालजीके पास आपका पत्र आया, समाचार जाने। हमारी तो यह सम्मति है जो आप गया छोड़कर कहीं न जावें। जहाँ जाओ वही हाल घर घर मटिया चूले। मेरी तो निजी सम्मति आपको यही है जो कल्याणका मार्ग आत्माके अन्तस्तलमें है बाहरमें नहीं। किन्तु हम लोगों की ऐसी प्रवृत्ति हो गयी है जो इतस्ततः भ्रमण कर और परस्पर मिष्ट वार्ताकर अपने समयका दुरुपयोग करनेमें ही उत्तम आयुका पर्यावसान कर देते हैं। एक मुहूर्त भी आत्मीयपरणतिक पात्र नहीं होते। आपकी इच्छा हो सो करो किन्तु आपका यहाँ जो भी समाज है वह आपके अनुकूल है, उसे त्यागकर अपरिचित स्थानमें जाकर कौनसा विशेष लाभ है। हम तो अब मात्र मास पूर्ण

होते ही आश्विन मासमे ईसरी जावेंगे। पश्चात् एक स्थान पर रहनेका आजन्म निर्णय कर प्रतिज्ञा कर लेवेंगे जो कहीं न जाना। सर्वोत्तम तो गुणावा व राजगिरि हैं। विशेष क्या लिखें। आपको एक धर्मात्मा जान अपने नियमके अपवाद रूप पत्र दिया है।

श्रावण शुक्ल ४, स० २००० } आ० शु० चि०
गणेशवर्णी

[३-१६]

श्रीयुतभव्यमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। कल्याणके अर्थ सर्वत्र ही सामग्री है। यातायातकी कल्पना हमारी मोहपरिणति कराती है। मेरा यह विचार है जो इस यातायातके चक्करमें रहता है वह यातायात ही का पात्र होता है। स्थिर भावसे ही स्थिर गति मिलती है। पानी विलोननेसे मक्खनकी उपलब्धि नहीं होती। इसी तरह कषायोंके विकल्पोंसे कषायाग्निकी शान्ति नहीं होती। उपेक्षामृतसे ही कषायाग्निका आतप शमन होता है। संसर्गसे लाभ व हानि होने योग्य पदार्थ ही में हानि होती है। सुंगठीको कितने ही गर्म जलका ससर्ग मिले पाक अवस्था उसकी न होगी। गृहस्थोंके संसर्गसे उसीकी आत्मा पतित होगी जो लोभी और मोही होगा। विशेष क्या लिखें। आपकी जो इच्छा हो सो करें। उसका निवारण करनेवाला अन्य नहीं। अभी हम माघान्त यहीं पर हैं। फागुनमें अन्यत्र जानेका विकल्प करेंगे।

सत्समागमसे दर्शनविशुद्धि । सानन्द होंगे । विशेष क्या लिखें । वह तो यही है ।

आ० शु० चि
गणेश वर्णी

[३-१७]

श्रीयुत विदुषी विवेकमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार,

पत्र आया समाचार जाने । मैं अभी कुण्डलपुरसे कटनी आ रहा हूँ । सागर जाना सागरवालोंकी धूमधामसे दूर हो गया । यद्यपि मेरा स्वास्थ्य वहांकी अपेक्षा अन्यत्र अच्छा नहीं रहता फिर भी अनिच्छा पूर्वक सागरवालोंके विचारोंसे सागरसे दूर ही रहना अच्छा समझता हूँ । कल्याणका मार्ग शान्तिमें है और शान्तिका मूल कारण परमें ममत्व भावका त्याग है । जहाँ पर सम्बन्ध हुआ, ममताकी प्रचुरता हो जाती है । यद्यपि इसके उपादान कारण हम स्वयं हैं । फिर भी मोहकी वासनासे परमें दूषण देनेमें बाज नहीं आते । आप गयावालोंसे दर्शनविशुद्धि कहना और आप कुछ दिन रहकर वहाँकी समाजका हित करना । आपमें उन लोगोंकी बहुत भक्ति है । समय पाकर विशेष पत्र लिखूँगा ।

फाल्गुन वदि ४ सं २ १ } आ शु चि०
गणेश वर्णी

[३-१८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप शान्तिके स्थानमें पहुँच गई यह बड़े सौभाग्यका उदय

है। परन्तु जब बना रहे, अन्यथा हमारीसी दशा होगी। लौकिक मनुष्योंका समागम श्रेयोमार्गमें साधक नहीं। यद्यपि परमार्थ से न साधक है और न बाधक है फिर भी उपचारसे बाधककी तरफ विशेषता रखता है। वहाँ पर इन समागमोंकी विरलता है, क्योंकि विलक्षण स्थान है।

चैत्र बदि ५, स० २००१ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—१६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा स्वास्थ्य प्राय अब पके पानकी तरह है, इसकी चिन्ता नहीं। आप जहाँ तक बने, आकुलतासे बचना। पर पदार्थोंका सम्बन्ध ही इसका मुख्य कारण है। आत्मीय गुणोंके विकाशमें यही उपाधि है। जिनने इन पर पदार्थोंकी आशा छोड़ दी उनने सर्व कुछ किया। ज्ञानार्जनका फल रागादिनिवृत्ति है। ससारमें सर्व वस्तु सुलभ है, केवल आत्माका बोध दुर्लभ है। गल्पवादसे उसका लाभ नहीं। उसका लाभ तो आत्माकी भिन्नता जाननेमें है। परन्तु उस ओर हमारा लक्ष्य नहीं। ससारको खुश करनेमे हमारे दुर्लभ समय और ज्ञानका दुरुपयोग होता है। यहां पर नेमिचन्द पाटनी आये थे। सज्जन व्यक्ति हैं। आपकी स्मृति करते थे। और कहते थे जो बाई जी मारोठ रह जावें तो अच्छा है। हमारा विचार भी ईसरी आनेका है। परसाल आवेंगे, क्योंकि गर्मी पडने लगी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२०]

श्रीयुत महाशमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका चित्त शान्त है यह बड़े भाग्यकी बात है। यहाँ पर श्री नेमिचन्द्रजी आए थे, योग्य हैं। आपका समागम योग दिनोंका चाहते हैं। आपके निमित्तसे यहाँकी जनताका बहुत ही लाभ होगा। यदि आपके पवित्र विचारोंमें कुछ दिन यहाँका जाना निश्चित हो जाय तब अच्छा है। गया भी आपका ही है। कुछ दिन यहाँवालोंको शान्ति मार्ग पर स्थिर कर आराठ जानेका विचार करिए। मैं यहांसे जबलपुर जाऊँगा। आश्रमवासियोंसे मेरा इच्छाकार।

आ० शु० चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[३-२१]

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य

——हमारा स्वास्थ्य अच्छा है। संसारमें शान्ति नहीं। शान्तिका कारण मूर्च्छाका अभाव है। वह सम्यग्ज्ञान होने पर अनायास हो जाता है, विकल्पोंसे नहीं होता। चरणानुयोग तो विधि और निषेधकी प्ररूपणा करनेवाला है। हिंसादि पञ्च पापसे निवृत्त हो अहिंसादि पञ्च व्रतोंका पालन करो। अन्तरङ्गसे जहाँ मूर्च्छा जाती है वहाँ न विधि है न निषेध है। यही कल्याण का सत्य मार्ग है। धन्य है उस आत्माको जो इसका पात्र हो गया यह कहना भी मोही जीवोंकी भक्ति है। पूज्य-पूजक,

गुरु-शिष्य यह सर्व व्यवहार मोहमे होते हैं। निश्चय व्यवहार आदि जितने कार्य हैं सभी मोहके द्वारा विकल्पजन्य होते हैं। मोहके अभावमे आत्माको जो शान्ति मिलती है वह वचनातीत है। अर्थात् सर्व दुःखोसे निवृत्ति हो जाती है। यहाँ तो हम लोग अभी उस शान्तिमन्दिरके दरवाजेके सम्मुख हुए हैं। यदि ठीक सीधी चाल चलेंगे उस मन्दिरमे पहुँच जावेंगे और जो मानादि कषायके आश्रय हो जावेंगे तब सर्व करा-कराया यों ही जावेगा। अत कोई भी कार्य करो इसमे कर्तृत्वका अभिमान न हो। होना था हो गया। व्यर्थ ही क्यों परके कर्त्ता बनते हो।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[३--२२]

श्री प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया। जहाँ आपका निवास है वहाँकी समाजका कल्याण होना उचित ही है। मेरा आत्मविश्वास है, निष्कपट भावसे ज आत्मा चाहेगा होगा। यह तो पाठशाला है, मोक्ष प्राप्ति सुलभ है। मेरा स्त्रीसमाजसे यह सदेश कहना जो जैसी रुपया देनेमे उदारता दिखाई है वैसी ही उदारता चारित्र ग्रहण करनेमे दिखाओ।

१ सिनेमा देखना त्यागो।
२ ऐसा वस्त्र पहनो जो शरीरकी रक्षा करे।
३ व्यर्थ बात मत करो।
४ चटपटा भोजन मत करो।
५ अनुपसेव्य पर सदा ध्यान दो।

६ उतना वस्त्रोंका संग्रह करो जो उपयोगमें आवे। व्यर्थ सन्दूक मत भरो।

७ अभक्ष्य भोजनका त्याग करो।

मार वदि १ सं० २ २ }

आ शु चि
गणेश वर्णी

[३–२३]

श्रीयुत पताशीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मेरे पास कोई पत्र नहीं आया। मैं आपके पत्रका उत्तर न दू यह असम्भव है। संसारमें सभी स्वार्थी हैं। आपके द्वारा हमारा उपकार है, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति निवृत्तिसे मिश्रित है। गया समाजका ही उपकार नहीं हुआ। उस प्रान्तकी आपसे शोभा है। यद्यपि निश्चयसे कोई किसीका उपकारी नहीं, परन्तु निमित्त अपेक्षा यह सर्व व्यवहार है। तत्त्वदृष्टिवाले भी परोपकार करते हैं परन्तु कर्तृत्वका अभिमान नहीं करते।

जबतक संसारमें राग है उसका कार्य होगा। अन्तरङ्गसे यह नहीं चाहता परन्तु बलात्कार करना पड़ता है। मेरा तो यह विश्वास है, सोलह-कारण-भावना को भी सम्यग्दृष्टि उपादेय नहीं मानता। षोडशकारणोंमें सम्यग्दृष्टि उपादेयता मानें असम्भव है। आपने लिखा, हमारी शक्ति नहीं, सो ठीक नहीं। यह सर्व कार्य तो मोहके उदयमें होते हैं, उनमें कर्तृत्व-बुद्धि न करना उचित ही है। गया की स्त्रीसमाज तो आपके उपदेशसे द्रवीभूत हो गई है। यदि यह सुमार्ग पर चले तब इसमें क्या आश्चर्य। परन्तु हमारी तो यह सम्मति है, आप उसे सुना देना। यद्यपि

आपने उसे सर्व कुछ दिया है। यह मेरी सम्मति नवीन नहीं फिर भी सुना देना—अष्टमी, चतुर्दशी, सोलह कारण और अष्टान्हिका पर्वमें ब्रह्मचर्यसे रहें और जब गर्भमें बालक आवे तबसे लेकर जबतक बालक जन्मसे १२ मास का न हो जाय, ब्रह्मचर्यसे रहें। मनुष्योंको भी यह पत्र पढ़ा देना। इसके बिना मनुष्य स्त्रीधर्म-साधनके पात्र नहीं।

जबलपुर
माघ वदि ८, स० २०० } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–२४]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। हम क्या आपको सचेत करेंगे, आप स्वय सचेत हैं। सबसे प्रसन्नता तो हमको यह है जो आप किसी संस्थाके चक्रमें न आयीं। मेरी तो यह सम्मति है जो हीरापुर जैसा गाँव उस प्रान्तमें नहीं है। यदि विशेष सहायता करनी हो तब ५०) मासिक पण्डितको, १०) मासिक ऊपरी खर्चको इस तरह ६०) मासिकमें पाठशाला अच्छी चलेगी और विशेष सहायता हो तब जैसा आप लिखें सो करें। रुपया वृन्दावन सिंघईके नाम भेज देना या सागर सिंघई कुन्दनलालके नाम भेज देना। यहाँ पर सर सेठ इन्दौरसे आए थे, उनने २५०००) मुझे भेंट स्वरूप दिया और कहा—आपकी जो इच्छा हो सो करें। मैंने सागरसमाजसे कहा—२५०००) यदि तुम दो तब यह २५०००) तुम ले सकते हो। उन्होंने देना स्वीकार किया। इस तरह ५००००) विद्यालयको हो गया। यह

इस प्रान्तका बड़ा विद्यालय था। ६५०००) पहले था अब १ १५०००) हो गया। एक गाँव भी ४००००) का है। अब एक विद्यालय बनारस ही स्थायी होनेको रह गया।——यदि बिहार प्रान्त चाहे तब बनारसका स्थिर कर सकता है। मुझे सेठ जीने बरत [illegible] आनेका किया है और बहुत कम।

पुद्गलमें हुआ अर्थात् पुद्गलकी पर्याय है। उसका निमित्त पाकर आत्मा स्वय रागादि रूप परिणमनको प्राप्त हो जाता है। यह अपराध आत्मा ही का तो है। श्रद्धासे मलिनता जावे, तब तो यह सगति बैठे। अतः जो कल्याणके लिप्सु हैं उन्हे अपनेमें जो भाव होवें उनका विचार करना उपयोगी है। विचार ही नहीं, इन कषायोंके होने पर भी इनमें आसक्त न होना यह कोई कठिन बात नहीं, परन्तु साहस होना चाहिए। स्वाध्याय करना तप है परन्तु जो उसपर यथाशक्ति अमल किया जावे। स्वाध्याय कोई अनुयोगका किया जावे। यदि अन्तरङ्गकी स्वच्छताके अभिप्रायसे किया जावे तब तो तप है अन्यथा पण्डित तो बहुत हो जावे हैं। पूर्वधर भी शुक्लध्यानका पात्र होता है और अष्टप्रवचनमात्रका जाननेवाला भी उसका पात्र होता है। विशेष क्या लिखें, मेरी तो यह श्रद्धा है जो जिसने तत्त्वज्ञानके द्वारा रागादि निवृत्तिको लक्ष्य रखा वह वन्द्य है और केवल लोक-रञ्जनाका भाव रखा, उसने कुछ भी लाभ तत्त्वज्ञानका न पाया। परोपदेशमें सर्व कुशल है। यदि आप स्वय यथार्थ धर्मका अनुसरण करें तब किसीसे कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रहे जो आप धर्मका आचरण करें, क्योंकि निर्मल आत्माका ऐसा प्रभाव होता है जो उपदेशके बिना ही मनुष्य उनके पथका अनुसरण करते हैं। आज जो संसारमें विशेष भ्रष्टाचार हो रहा है उसका मूल कारण जो प्रवर्तक हैं उनके सदाचार विषयक विचार अतिनिकृष्ट हैं। ... ... ।

श्रावण सुदि ५, स० २००४ }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—२६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मैं अकिञ्चित्कर हूँ । यदि बुद्धिशाली होता तब ईसरी न छोड़ता । ४० वर्ष इस प्रान्तमें रहा फिर भी मोहकी महिमा देखो । उत्तम स्थानको छोड़कर यहाँ पर विशेषकर मोहके कारण हैं यहीं मानकर फँस गया । यद्यपि अन्तरङ्ग कारणकी प्रबलता में यह बाह्य कारण अकिञ्चित्कर हैं फिर भी मोही जीवोंके निमित्त कारणोंकी मुख्यतासे ही उपदेश देनेकी पद्धति है । चरणानुयोगका उपदेश बाह्य कारणोंकी अपेक्षासे ही दिया जाता है । अन्यकी कथा छोड़िए—तीर्थंकर भगवानने दीक्षा लेनेके बाद मौन ही रखा, अतः हम लोगों को अन्तरङ्ग परिणामोंकी विशुद्धताकी रक्षाके लिए निमित्त कारण अनुकूल ही बनाना चाहिए । तात्त्विकदृष्टिसे आत्मामें ही यह शक्ति है जो शुभ, अशुभ, शुद्धरूप स्वयं परिणमता है । कोई द्रव्यका अंशमात्र भी अन्य द्रव्यमें नहीं जाता यह अटल नियम है और इस नियमका कोई कालमें अपवाद नहीं । ऐसा होने पर भी मोही जीवको शुद्धोपयोगके अनुकूल कारणोंकी आवश्यकता रहती है । अस्तु, इस चर्चाको छोड़ो । आप तो विदुषी हैं तथा त्यागकी भी आपके भावना हैं । जहाँ तक हो परकी उपेक्षा ही रखना अच्छा है । जो जितनी उपेक्षा करेगा उतना ही अधिक संसारका उपकार उससे होगा । जिसके पूर्ण उपेक्षा होगी उसकी अनक्षरी वाणीसे ही सर्वका कल्याण होगा । अन्यकी कथा दूर रहे, पशुओं का भी कल्याण उसके दर्शनसे हो जाता है । अतः हमें इन बाह्य पदार्थोंकी उपेक्षा करनी चाहिए । मुझको

उदय भी उपेक्षामें होता है। सम्यग्दृष्टिके जो सुख है सो अनन्तानुबन्धी कषायके उपशमादि का है। जो वह बाह्य व्यवहार करता है उसका सुख नहीं है। देशव्रतीके जो शान्ति है वह अणुव्रतकी नहीं कषायके अभावकी है। एवं महाव्रती व यथाख्यातचरित्रवालोंके जो शान्ति है वह कषायोंके अभावकी है। तथा जो कुछ प्रवृत्ति है वह तो स्वरूपकी बाधक ही है। अन्य प्रवृत्ति को छोड़ो। योगमात्रकी प्रवृत्ति भी परम यथाख्यातचारित्रको नहीं होने देती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२७]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

जानना और बात है, तदनुकूल हो जाना और बात है। यह तो निर्विवाद है; क्योंकि ज्ञान गुण भिन्न है और चारित्र गुण भिन्न है। फिर भी यह निश्चय है, जिसका ज्ञान सम्यक् है उसके चारित्र मोहनीयकी प्रबलतासे वर्तमानमें चारित्र न भी हो परन्तु हो जावेगा यह निश्चय है। सामान्य मनुष्योंकी बात छोड़ दीजिए, महान् पुरुष भी चारित्र-मोहकी प्रबलतामें स्वात्माको रागद्वेषसे नहीं बचा सकते। अस्तु, इससे सन्तोष कर लेना उचित नहीं। यथाशक्ति रागादिकको दूर करनेकी चेष्टा करना चाहिये। किन्तु जिस पदमें हो, उसीके अनुकूल रागादिक दूर कर सकता है। देशव्रतवाला मुनियोंके सदृश न तो रागादिक ही दूर कर सकता है और न उनके सदृश दया ही पाल सकता

सकता है। 'शक्तितस्त्यागतपसी' अत: मोक्षमार्गमें जिसने पद रक्खा है उसे यही उचित है जो बुद्धिपूर्वक कार्य करे। आकुलतासे समीचीन मार्गमें बाधा ही आती है। चेष्टा अपने कल्याणकी करना श्रेष्ठ है। प्राणीवर्गका भी उससे कल्याण हो जावे यह बात अन्य है। परन्तु हमारा लक्ष्य निजकी ओर रहना चाहिये। हमारा तो अभिप्राय श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमें समाधिका है। होगा क्या, श्री वीर जानें। बड़े ही पुण्यका उदय उन जीवोंका है जो श्री पार्श्व-प्रभुके निर्वाणक्षेत्रमें आत्मकल्याणके मार्गमें लगे हैं। क्षेत्र भी कारण है। ऐसे भी हैं जो क्षेत्रमें निवास करके भी कषायोंकी प्रचुरतामें आत्महितसे वञ्चित रहते हैं। परमार्थ तो यह है कि कोई द्रव्यको द्रव्य नहीं परिणमा सकता है। मोही जीव नाना कल्पना कर लेते हैं। जो भाग्यमें न हो, भावी है। मरी तो यह भद्रा है जो मोहके द्वारा ही संसारमार्ग चल रहा है और

इसकी ही महिमासे निवृत्तिमार्गमें प्रवृत्तिका उपदेश हो रहा है। यदि गणधरदेवके धर्मानुराग न होता तो इन द्वादशांगकी रचना कौन करता? यदि भगवद्गुणानुरागरूप भक्ति न होती तब यह पञ्चस्तोत्रादि जो स्वबस देखनेमें आते हैं इनका अस्तित्व न होता। यद्यपि सम्यग्ज्ञानी जीवके भी भगवानके गुणोंमें अनुराग है परन्तु उस अनुरागमें राग नहीं। इसीसे उस रागमें उसकी उपादेय बुद्धि नहीं। भगवद्गुणोंका वह उपादेय मानता है, परन्तु भक्तिको न पकी ही माग मानता है। अतः परोपकारकी वृत्ति भी एक राग है। यह भी त्याज्य है। सम्यग्ज्ञानी जीवके भी अनुकम्पा आदि होती है परन्तु उन्हें त्यागना ही चाहता है। अतः पदके अनुकूल परोपकार करना ही साम्य है। परन्तु उसमें उपादेयता न होनी चाहिये। हमारा श्री समाजसे धर्मप्रेम कहना। परन्तु कल्याणका मार्ग तो स्त्रीसमाजका उसीके आधीन है। उचित तो

यह है जो आत्मा न तो स्त्री है और न पुरुष है और न नपुसक है। अतः पर्यायबुद्धिसे जो स्त्री समाजमे निर्बलता आ गयी है उसे दूर करो और बाह्य लज्जाकी अपेक्षा अन्तरङ्ग गुणोंकी लज्जा रक्खो। हमारी प्रवृत्ति मुख ढकनेकी हो गयी है। हम बाह्य पदार्थोंसे ग्लानि व हर्ष करते हैं। सो मेरी समझमें आत्मामे जो पाप-परिणामोंकी उत्पत्ति हो उससे ग्लानि करो और जो उत्तम गुणोका विकाश हो उसका हर्ष करो। केवल शरीरके सस्कारमें समय न गमाओ। कुछ आत्मसंस्कारमें काल लगाओ। अब मैं भाद्रपद मास तक पत्र न दूगा।

भाद्र बदि १, स० २००४ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३-२८]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

शान्ति पूवक गया पहुँचनेका समाचार देना। यद्यपि संसारमें शान्तिका लेश नहीं, क्योंकि जहाँ निरन्तर पर पदार्थोंसे रागादि पूर्वक सम्बन्ध हो रहा है वहाँ शान्ति नहीं। जिनके परिग्रहकी विपुलता है उनको सन्तोषके अभावमें सुख नहीं। जिनके है नहीं उन्हें निरन्तर प्राप्तिकी अकांक्षा सता रही है जिनके होकर अन्त हो जाता है वह उसके जानेके कारणों या कारणभूत भूलोंको स्मरण करते करते व्याकुल रहते हैं। अत सिद्धान्त तो यह कहता है जो मूर्च्छा त्यागो। दान देना मूर्च्छा त्यागका कारण है। परन्तु अज्ञानी जीव देकर अधिक भागमें मूर्च्छा उत्पन्न कर लेते हैं। यदि इसमें सन्देह हो तब अपनी आत्मासे पूछो, क्या सत्य मार्ग है। पर द्रव्यके त्यागकालमें वीतरागता आनी चाहिए। सो वह

तो हानी नहीं। या तो हर्ष होता है या मान होता है। ये दोनों भाव क्या मूर्च्छा नहीं हैं। इस विषयकी मीमांसा अंतरङ्गसे जो करेगा वही इसके मर्मको समझेगा। दानका देना परिग्रहका कर्तव्य है। परन्तु उपादेय मानना क्या आत्मतत्त्वमें रुचि नहीं। यहाँ पर रुचि अभिलाषारूप पड़ती है। अभिलाषा अनात्मधर्म है। सम्यग्ज्ञानीके कदापि नहीं होना चाहिए। इसका यह अर्थ है, अभिप्राय पूर्वक नहीं होना चाहिए। साधारणतया होना और बात है और अभिप्राय पूर्वक होना और बात है। विशेष तत्त्व प्रायः बहुज्ञानी ही निरूपण कर सकते हैं। सो तो प्रायः इस कालमें अल्प हैं। जो हैं उनका समागम मिलना दुर्लभ है। श्रीमान् लोग बहुत अंशोंमें चाहें तो इसकी पूर्ति कर सकते हैं। परन्तु उनका लक्ष्य दे जानें। विशेष क्या लिखें। इस समय तो अन्तमें क्रमशात् निर्लेप रहनेका प्रयत्न ही सराहनीय है। अब तो गयामें पिण्डदानसे ही पिण्ड छूटेगा, क्योंकि यहाँ पर लालची पण्डोंके जालसे बचना प्रबल आत्माका ही काम है। यह बात लल्लूसे पूछना। बाबू गोविन्दलाल तो स्वयं इसके फेरमें हैं। हम १५ दिनको गिरिडीह आवेंगे। कु० सु० ५ मंगलको आवेंगे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–२६]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने स्वकीय गुणको स्पर्शके अभिमानमें न आकर रक्षा करेगा। आज कल

लोग (अज्ञानी) प्रशंसामें फूले नहीं समाते। वह धर्मका बाह्य स्वरूप इसी अर्थमें पालते हैं। आभ्यन्तर कलुषताके अभावमें बाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नहीं। ऐसे मनुष्योंको उसकी गन्ध नहीं। गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योंकि गृहस्थ तो आतुर हैं। जहाँ उन्हे कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते हैं और उसकी ऊपरी वैयावृत्ति कर अपना भला समझते हैं। अथवा यों कहिए, इन लोगोंको अपने पक्षमें कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोंकी रक्षा करते हैं। सत्य स्वरूपमें उनके स्वेच्छाचारिताका घात है। हम तो एक कोणमें हैं। अतः पार्श्व-प्रभुकी चरण-सेवा ही इससे इष्ट की है। यहाँ पर उन प्रलोभनोंकी त्रुटि नहीं। यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गन्ध नहीं आयी और ऐसे आडम्बरोंमे शान्ति काहे की। घर छोड़ा, दुनियाको घर बना लिया। धिक् इस परिणति को।--- ---

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[३—३०]

प्रशममूर्ति श्री पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

धमसाधनका फल शान्ति है। यदि उसमे बाधा आवे तब व्यवहार धर्म एक तरहकी विडम्बना है। एक बात निरन्तर स्मरण रखना—किसी जीवको अपनानेकी चेष्टा न करना। स्वकीय आत्मा अनन्त कालसे हमारी विरोधनी हो रही है। उसे ही मना लो—ससारसे बेड़ा पार है। अथवा यों कहो जो हमारी प्रवृत्ति आत्माके स्वभावके प्रतिकूल हो रही है।

आत्माका स्वभाव तो ज्ञाता दृष्टा है। हम उसे हर्ष-विषादसे दूषित बना रहे हैं। इसे शुद्ध करनेकी चेष्टा करो। यदि हम आपके साथ *चिकनी चुपड़ी बातें करें अथवा व्यर्थ प्रशंसा* करें, यह सब ठगनेके मार्ग हैं अतः किसीके जालमें न आना। क्या कोई करेगा? अपना कल्याण और अकल्याण आप ही से होगा। इसमें अणुमात्र भी अन्यथा नहीं। स्थानकी *विशेषता अथवा समागमकी विशेषता ही मानकर निरन्तर चित्त-*वृत्तिमें विकल्प करना कुछ कार्यकारी नहीं। जहाँ सूरजका उदय वही पूर्व। यही कारण है जो सब क्षेत्रोंसे मेरु उत्तर पड़ता है, अतः शास्त्रवाका मूल कारण जान कर्मोंका पिण्डदान गया ही में करना अच्छा है। हमारी यही तो पोतके पंछी हैं, कहाँ जावें?

आ शु चि
गणेश वर्णी

[३–२१]

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

आप सानन्द स्वाध्याय पूर्वक समयकी दुर्लभताका उपयोगमें लाना। संसारमें वही जीव शान्ति ले सकता है जो मूर्च्छाके कारण पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़ता है। मेरी तो यह धारणा है जो अशुभ परिणामको छोड़कर शुभ परिणामोंको चाहता है वह पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़कर तत्त्वको नहीं समझता। उसकी आत्मामें वास्तविक सुखका अंश नहीं आया। अतः जहाँ तक बन, तत्त्वपूर्वक ही क्रिया करना लाभदायक है। श्री हसमुख

जैसे दर्शनविशुद्धि । आप तो अब आपको लक्ष्यमें न रखकर कार्य करनेमें प्रवृत्ति करनेका पूर्वरूप करने लगे हो, यह क्या योग्य है। उदयकी बलवत्ता ज्ञानीका घात नहीं कर सकती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३२]

श्रीयुत शान्तिमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। बड़ी प्रसन्नताकी बात है जो आपने व्रतोंको ग्रहण किया। आप तो पहले से ही निर्दोष व्रतोंका पालन कर रही हैं। सप्तमी प्रतिमा आपको कोई कठिन नहीं है। चरणानुयोगकी विधि सर्व शास्त्रोंमें लिखी है तथा आपको भी विदित है। हमारा तो इस विषयमें विशेष ज्ञान नहीं। हमारा अभिप्राय तो अन्तरंगसे यह रहता है जो रागादिककी निवृत्ति ही शान्तिका कारण है। व्रत धारण करनेका भी यही अभिप्राय है। आज तक हमारी आत्मा इसीसे वञ्चित रही जो हमने बाह्य व्रतोंकी रक्षा तो की परन्तु अन्तरङ्ग निर्मलता पर लक्ष्य नहीं दिया। लोकलिप्साने सब ओरसे हमें बन्धनमें डाल दिया। जिन जीवोंको आत्मकल्याण करनेकी इच्छा है वे इस झूठी वाहवाहीको त्यागें और शरीर एवं आत्मा दोनोंके आभूषण सदाचारकी सुरक्षाके लिये अन्तरङ्ग निर्मलताको बनाये रखनेका सदा ध्यान रखें।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—३२]

श्रीयुत स्वमार्गरत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जान। आत्मा सभी अचिन्त्य सामर्थ्यके पात्र हैं और उसका सर्वदा सद्भाव है। परन्तु इतना अन्तर है जो संसारमें उस सामर्थ्यका उपयोग संसारी पर्यायोंके सम्पादन करनेमें ही होता है और जो संसारसे भयभीत हो जाते हैं वे अपनी उस सामर्थ्यको इस तरफसे पृथक् कर केवल स्वरूपोपलब्धिमें व्याप्त कर देते हैं। अतः संसार दुःखोंके जालसे विनिर्मुक्त होकर स्वात्मोत्थ अपनन्त-गोचर अनुपम स्वाधीन सुखके पात्र होते हैं। हम निरन्तर निष्प्रयोजन विकल्पों द्वारा अपनी आत्माको कायर बनानेमें प्रयत्नशील रहते हैं और सतत परके द्वारा अपने दुःखोंका उन्मूलन करना चाहते हैं। अपना सर्वस्व जो कुछ कर्मोदयसे हुआ है, परकी सुश्रूषामें लगा देते हैं। वस्तुदृष्टिसे विचारो, सर्व से श्रेष्ठ आत्मा केवली है। उनकी उपासनासे हम चाहें कि वह हमारा हित कर देवेंगे तब तो असम्भव ही है, क्योंकि वह तो वीतराग हैं, तटस्थ हैं। उनके द्वारा न किसीका श्रेय है और न अश्रेय ही है।

रहे संसारी जीव सो यह स्वयं संसारी हैं। इनके द्वारा हित की आकांक्षा अन्धेसे मार्गप्राप्तिके तुल्य है। अतः सर्व विकल्पों की आकुलताको छोड़ एक स्वयंसिद्ध जो अपनी शक्ति है उसका विचारो करो। अनायास ही सर्व आपत्तियोंसे छूट जानेका अवसर आ जावेगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३४]

श्रीयुत महाशय त्यागी वर्ग व श्रीकृष्णाबाईजी तथा
श्री पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। बात अच्छी है, कल्याणकारक है। किन्तु मैं क्या संसारमात्र उसी कथनकी प्रशंसा करता है। जो हो, हमारा विचार जो है वह कार्यमे परिणत होने पर ही अच्छा है। परन्तु होना असम्भव है। जो वत्स हाथीका भार नहीं ले सकता। हाँ, यह अवश्य है, पर्यायानुकूल जो बने वह करना ही अच्छा है। हम चैत्र वदि २ तक यहा रहेंगे और पश्चात् बनारस जाऊँगा। वहांसे फिर सागर जानेका विचार करूँगा। क्षेत्र ईसरी उत्तम है, परन्तु हमारे दैवने हमको अनुकूलता नहीं दी। जलवायु एक वर्षसे हमारे स्वास्थ्यके विरुद्ध ही रहा। अत. लाचार हमे ईसरी-त्याग करना पड़ा। अन्य कारण नहीं। कोई कुछ कल्पना करें इसका हर्ष-विषाद हमें नहीं। अपने ही परिणामो की निर्मलताके करनेमें ही समय नहीं मिलता, वह परकी क्या समालोचना करेगा। मुझे निरन्तर अपने मलिन भावोकी ग्लानि रहती है। परन्तु वशकी बात नहीं। अस्तु, समय पाकर पत्र लिखूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३५]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार

आपका पत्र बाबू जीके पास आया, समाचार जाने। मेरी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है जो वस्तुको देखकर भय लगता है

और इतनी निर्मलता और शक्ति नहीं कि निष्परिग्रह रह सकूँ। धर्म तो वास्तवमें निर्ग्रन्थसे ही होता है और निर्ग्रन्थ वही कहलाता है जो अन्तरङ्गसे मावपूर्वक हो। वैसे तो बहुतसे जीव परिग्रह विहीन हैं परन्तु आभ्यन्तर परिग्रहके त्यागे बिना इस बाह्य परिग्रहके छोड़नेकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। अब लक्ष्य आभ्यन्तरकी ओर रखना ही श्रेयामार्ग है। धर्मके साधन सर्वत्र हैं। परन्तु आभ्यन्तरके परिणामोंकी निर्मलता आभ्यन्तर ही में है, अत उसके अब व्याकुलताकी कोई आवश्यकता नहीं। स्थानका ही महत्त्व मानना कुछ उपयोगी नहीं। सूर्यमें प्रकाशकत्व गुण है। उसके द्वारा जगत देखता है परन्तु नेत्र विहीनका उसका कोई उपयोग नहीं। यदि नेत्रवाला उद्योग करे तब अपना कार्य कर सकता है। सभी भूप नहीं होते। अत आनन्दसे स्वाध्याय करिए और वह स्वाध्याय साधक है जिसमें अपनी प्रवृत्ति रहे। स्वाध्यायको तपमें ग्रहण किया, अत स्वाध्याय केवल ज्ञान ही का उत्पादक नहीं किन्तु चारित्रका भी अंग है। विशेष क्या लिखें सभी आत्मामें सबै गुण हैं। परन्तु हमारे ही अपराधसे उनके विकाश विपरीत होकर दुःखके कारण बन रहे हैं। बीजमें फल देनेकी शक्ति है। परन्तु यदि उसे खाया न जावे तब संतति ही उसकी न रहे। इसी तरह रागद्वेषमें संसार फल देनेकी सामर्थ्य है। यदि उनमें रागादिक न किये जावें तब उनमें फिर यह संसार फल जननेकी सामर्थ्य नहीं रहती।

आज पद्मपुराणमें भरतजीका चरित्र पढ़कर कुछ उदासीनता आई और उस कालमें यही मनमें आई आ अब चाँदीके बर्तन नहीं रखना सा एक कटोराका छोड़ शेष बर्तन भेजता हूँ और इस महफिल आप खेद न करना। मैं तो आपको उपकारी समझता हूँ। एक यह अपराध करूँगा जब कभी अपना दानपत्र लिखा,

उसमें यह अवश्य लिखना, जो कुछ आय हो, मेरे बाद विद्या-दानमें जावे। आधा छात्रोंमे और आधा स्त्रीसमाजके पढ़नेमें ही इसका उपयोग हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३--३६]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पर्यायकी सफलता अन्तरङ्ग यथार्थ आचरणसे है। बहिरङ्ग वहीं तक उपयोगिनी है जो आत्मनिर्मलतामें साधक है। सन्त समागमकी महिमा यही है जो जिज्ञासुको साधुचारित्री बना देवे। पर पदार्थके समागमसे कभी भी सुख न हुआ, न होगा। यदि ऐसा होता तब इसे छोड़नेका कौन प्रयास करता? अन्तमें आपकी शरण ही संसारके दु:खका अभाव करेगी। निरन्तर अपने पुरुषार्थको सम्हालो। वही तो काम आवेगा। विचार कर देखो रोगीको वैद्य औषधि देता है परन्तु औषधि पचानेकी शक्ति रोगीमें ही है। अत: अपने रोगको दूर करनेवाला स्वयं आप ही है। इससे सब विकल्पोंको छोड़, केवल जो आत्मगुण प्राप्त है, उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि करना। वृद्धिके उपादान आप ही हैं। अत उसे ही सफल बनानेका प्रयास करना। मेरी तो यहाँ तक श्रद्धा है जो इस कालमें भी जीव संसारबन्धनकी जड़को शिथिल कर सकता है और इसके अर्थ उसे किसीकी भी आवश्यकता नहीं, केवल अपने पौरुषकी ओर ध्यान देना है।

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

[३–३७]

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

……वही जीव संसारमें सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदय में कषायकी वासना न रहे, जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी निर्मलताके अर्थ होता है। जहाँ पर बाह्य व्यवहार और उनके कार्यों पर ही लक्ष्य है वहाँ पर क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नहीं। अतः सार बिना जो मान होगा वह थोथा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३८]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मैंने एक दिया था पहुँचा होगा। मैं तो जिस दिनसे श्री परमपावन गिरिराजसे इस संसारसागरकी ओर प्रस्थान किया, निर्मलभावोंकी हानी हो गई। भाग्यकी प्रबलता के सामने अच्छे-अच्छे मनुष्योंके मन कम्पायमान हो जाते हैं। जिस प्रबल-वायुके सामने बड़े-बड़े गजराजोंके पैर उखड़ जाते हैं वहाँ शशकगणकी क्या गणना है। हम लोग अल्प-शक्तिवाले हैं। प्रत्येक मनुष्यके बहकावेमें आ जाते हैं। संसारबन्धनका उच्छेदन करना कुटिल प्रकृतिवालोंसे नहीं होता। अनादिसे जिन्हें आत्मीय समझ रहे हैं उन्हें अनात्मीय समझना सरल प्रकृतिवालोंसे नहीं हो सकता। सरल प्रकृतिके सम्पन्न मृदु-बुद्धिका है। जो मृदुबुद्धि हैं वे अनायास मोहित हो जाते हैं। शरीर पर पुद्गलका पिण्ड है। इसके साथ चेतनका अनादि

कालसे सम्बन्ध है, उसे निज मान लेता है और अहर्निश उसकी पोषण सामग्रीको एकत्रित करता रहता है। शरीरमें निजत्व होनेसे ही ये मेरे पिता हैं, ये माता हैं तथा अन्य कल्पनाएँ होती हैं। जब स्त्री-पुत्रादिका संयोग और वियोग होता है तब इसे हर्ष और विषाद होता है। इसका कारण केवल निजत्व-बुद्धि है। जब हमारे स्त्री-पुत्रादिका संयोग होता है तब हर्ष होता है और यदि अन्यके होता है तब नहीं होता। तथा हमारे स्त्री पुत्रादिका वियोग होता है उस समय हम दुःखी होते हैं। अन्यके स्त्री-पुत्रादि-वियोगमें दुःखी नहीं होते। इसका मूल कारण यही है जो हमारा निजमे ममताभाव है। उनमें 'यह हमारे हैं' यह बुद्धि होती है, सुखादिमें कारण हैं। पुत्रादिसे मेरा तात्पर्य है, जब हमे सत्समागमका लाभ होता है तब उनमे वही निजत्वकी कल्पना कर लौकिक सुख-दुःख तक ही अपना लक्ष्य बना लेते हैं। अन्य यावान् पदार्थ हैं वे सभी चाहे लौकिक हैं, चाहे लौकिकातीत हैं उनमें जो निजत्व बुद्धि है, विषका बीज वही है। अतः जहाँ तक प्रयास हो, भेदज्ञान द्वारा यथार्थ दृष्टिकी ओर लक्ष्य देना ही जीवकी प्रवृत्ति होनी चाहिए। आपका लक्ष्य आपमें ही है, अन्यत्र नहीं। यहाँ पर श्री चम्पालालजी, मोतीलालजी, नोनूलालजी आदि आए हैं। पूर्ण विचार वहाँ आनेका कर लिया है, परन्तु लोगोंका आग्रह बहुत ही बाधक है। वास्तवमें न तो कोई बाधक है और न साधक है। हम स्वयं इतने दुर्बल हैं जो परको दोष देते हैं। अभी तक तो पूर्ण विचार है, परन्तु दिवसोंका विलम्ब है। बाबू रामस्वरूपजी बहुत ही आग्रह करते हैं। उनका कहना है, फाल्गुनमें हमारे सिद्धचक्रका उत्सव कराके चले जावो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–३६]

श्रीयुत प्रशमसूर्ति चतासीवाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मैं चतुर्मास सुरारमें ही करूँगा। उदयकी बलवत्ता है। अन्तरङ्गकी भावना निरन्तर श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें समाधिमरणकी है; क्योंकि निर्मल परिणाम भी सम्मेदाचलके पादमूलमें अनायास रहते हैं। वे अन्यत्र प्रयास करने पर भी नहीं होते । परन्तु क्रिया क्या जाव ? मैं बलात्कार मोहके चक्रमें आ गया। संसारमें सर्वसे बड़ा व्यामोह कर्तृत्व बुद्धिका है। इससे मुक्त होना सामान्य मनुष्योंका परम दुर्लभ है। अज्ञानावस्थामें या तो परका कर्ता बनता है या परको अपनासा मान लेता है। जितनी भी चरणानुयोग द्वारा प्रक्रिया कही गई हैं, यह जीव उनका कर्ता बनता है। कर्ता बनना ही भ्रममें कलङ्क है। कलङ्क क्या ऐसे अभिप्रायमें श्रद्धान ही नहीं होता। जितनी शुभोपयोगसे क्रिया होती है, औदयिकी है। यह उसे आत्माकी स्वभावपरिणति मानता है और उसी क्रियाको मोक्षका कारण समझ रहा है। इसीसे इसका जो श्रद्धान है वह मिथ्या है। श्रद्धानके मिथ्या होनेसे इसके जितने प्रयास हैं वे सर्व संसारके बढ़ाने हैं। ये सर्व व्यापार सम्यग्दृष्टिके भी होते हैं। परन्तु वह इन्हें कर्तृत्व मान, उनमें मग्न नहीं होता। अतः व सर्व व्यापार होते हुये भी अनन्त संसारके बन्धनसे विमुक्त रहते हैं। व सब व्यापार अल्प बन्धके कारण होकर कालान्तरमें अपने उदयके कालमें वह फल देनेमें समर्थ नहीं होते जैसा फल मिथ्यादृष्टिका देनेमें समर्थ होते हैं। परन्तु खेद इस बातका है जो यह आत्मा आगमसे जानकर भी अन्तरङ्गकी ग्रन्थि भेद नहीं करता। बाह्य पदार्थोंका

अपना कर मिथ्यादृष्टि परिणामोके द्वारा अनन्त ससारका पात्र वन रहा है। एक स्थूल वातका लीजिए—किसीने १०००) का दान किया। वह कहता है, अमुक सस्थाका मैंने एक हजारका दान किया। रुपये भी गये और कर्त्ता भी वना तथा श्रद्धा भी गई; क्योंकि जिसको कहता है मैंने दान किया, पहिले तो उस पर वस्तुमे अपनी कल्पना किया, यही मिथ्या-श्रद्धा हुई। दान दिया ये कर्तृत्व बुद्धि हुई। इसमें लाभ क्या हुआ अनन्तससार ही तो हुआ और जा स्वभावकी परिणति है उसका स्पर्श भी नही करता। शुभ और अशुभ परिणामसे रहित जो भाव है वही भाव निर्विकल्प है। वही मोक्षका मार्ग है। न वहा योगके द्वारा चञ्चलता है और न कषायकी कलुषता है। अत. जिन्हे आत्म-कल्याण करना है वे इन उपद्रवोंसे अपनी परिणतिको रक्षित रक्खें। यह लक्ष्य रखना हमे उचित है।

श्रावण सुदि १०, स० २००५ } आं० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—४०]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपने जो व्रत किया सो प्रशस्त कार्य ही किया। ससारमे जो जीव परपरिणतिको त्यागना चाहते हैं, यही पद्धति है। परके सम्बन्धसे ही तो यह जीव अनादिसे नाना प्रकारके दु.खोंका पात्र हो रहा है। अतः परका सम्पर्क छोड़ना ही कल्याणका पथ है। वात वहुत करनेमें आती है, परन्तु उपयोगकी चेष्टा शतांश की नहीं। गिरिराजके सानिध्यमे जो रहकर आत्महित करते है व ही प्रशसनीय हैं। व्रतादि करनेका ही यह तात्पर्य

है जो परसे सम्पर्क छूटे। मैं तो यह मानता हूँ कि ज्ञानी जीवकी जो भी क्रिया है, निवृत्तिकी मुख्यतासे है। सम्यग्ज्ञानके बाद कर्तृ स्वभाव नहीं रहता। अर्थात् आत्माकी जो कर्तृत्व बुद्धि है वह नहीं रहती। चाहे शुभ क्रिया हो, चाहे अशुभ क्रिया हो, श्रद्धाके होनेपर अभिप्रायकी निर्मलता हो जाती है। इसके अनन्तर जो भी चेष्टा योगोंकी कषाय द्वारा होती है, आगामी अनन्त संसारके बन्धका कारण नहीं होती। विशेष क्या लिखें— परपदार्थको देखा जाना। इसमें राग-द्वेष न करो।

माघ वदि ४, सं २ ५ } आ शु० चि
गणेश वर्णी

[३-४१]

श्रीयुत महामहमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। शान्तिसे विचार किया। बाईजी! मैं न तो इन विकल्पोंमें पड़ता हूँ और न पड़नेकी चेष्टा करता हूँ। किन्तु अवसर आने पर कुछ वाक्य निकल जाते हैं। लोग उसमें मनमाना अभिप्राय निकालते हैं। अस्तु, मैं यह नहीं चाहता जो मेरे निमित्तसे किसीको क्षोभ हो। मैं क्या लिखूँ—७५ वर्ष आयुके व्यतीत हो गये। केवल पर विश्वास काल गया। यह किसीका दोष नहीं, आत्मीय परिणतिकी कलुषता ही इसका मुख्य हेतु है। ईसरीमें शान्तिसे काल जाता था किन्तु मोहावेशकी बलवत्तासे उस स्थानसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जो जहाँ पर निमित्तकारण विशेष रूपसे मोहमें सहायक पड़ते हैं। इसमें भी मेरी दुर्बलता है। यद्यपि यह निश्चय है, कोई बलात्कारसे कुछ भी नहीं कर सकता।

यहाँ यह निश्चय कर लिया था जो सीधा गिरिराज जाना। परन्तु श्री कृष्णाबाई आगरासे चार बार आयीं और श्री महावीर जीके लिये आग्रह कर रही हैं। ८ दिनसे दो बाई पड़ी हैं। अत. एक बार वहाँ जाना पड़ेगा। वहाँसे निश्चय गिरिराजका है। अब शारीरिकशक्ति प्रतिदिन गिर रही है। यद्यपि आत्मकल्याण ही का उपादान है, परन्तु फिर भी बाह्य द्रव्यादिकी योग्यता अपेक्षित है। निमित्त कारणका सर्वथा लोप नहीं हो सकता। स्त्रीसमाजमें मेरी दर्शनविशुद्धिः। बाईजीका समागम पाकर यदि प्रवृत्तिको निर्मल न बनाया, तब कब बनाओगी? सर्व पुरुष वर्गसे दर्शनविशुद्धि। यहाँ आनेसे लाभ नही। मैं श्री महावीरजी जाऊँगा। वहाँसे ठीक मार्ग होगा। एक प्रसन्नताकी बात यह हुई जो श्री साहू शान्तिप्रसादजीने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको और १० लाख भारतीय ज्ञानपीठको दिया है। अब श्री चम्पालालजीसे कहना—बनारसकी उतनी चिन्ता न करना। वैसे जितनी करो, उतनी अच्छी है। सर्वसे बड़ी चिन्ता यही है कि वास्तविक सयमी बनो। वहाँ पर यदि श्री चाँदमलजी ब्रह्मचारी हों, इच्छाकार तथा श्री ब्रह्मचारी छोटेलाल जीको इच्छाकार।

आषाढ सुदि ७, स० २००६ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३–४२]

श्रीयुत विदुषी शान्तिमूर्ति धर्मपरायणा इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आपका परिणाम सदा निर्मल रहा। उसका फल सर्वदा उत्तम होगा। परिणामकी निर्मलता

है जो परसे सम्पर्क छूटे। मैं तो यह मानता हूँ जो ज्ञानी जीवकी जो भी क्रिया है, निवृत्तिकी मुख्यतासे है। सम्यग्ज्ञानके बाद कर्तृ स्वभाव नहीं रहता। अर्थात् आत्माकी जो कर्तृत्व बुद्धि है वह नहीं रहती। चाहे शुभ क्रिया हो, चाहे अशुभ क्रिया हो, श्रद्धाके होनेपर अभिप्रायकी निर्मलता हो जाती है। इसके अनन्तर जो भी चेष्टा योगोंकी कषाय द्वारा होती है, आगामी अनन्त संसारके बन्धका कारण नहीं होती। विशेष क्या लिखें—परपदार्थका देखा जाना। उसमें रागद्वेष न करना।

माघ बदि ४, सं २ ५ } आ॰ शु॰ चि॰
गणेश वर्णी

[३-४१]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने। शान्तिसे विचार किया। बाईजी! मैं न तो इन विकल्पोंमें पड़ता हूँ और न पड़नेकी चेष्टा करता हूँ। किन्तु अवसर आने पर कुछ वाक्य निकल जाते हैं। लोग उसमें मनमाना अभिप्राय निकालते हैं। अस्तु मैं यह नहीं चाहता जो मेरे निमित्तसे किसीको त्रास हो। मैं क्या लिखूँ—७५ वर्ष आयुके व्यतीत हो गये। केवल पर चिन्तामें काल गया। यह किसीका दोष नहीं आत्मीय-परिणतिकी कलुषता ही इसका मुख्य हेतु है। ईसरीमें शान्तिसे काल जाता था किन्तु मोहादयकी बलवत्तावश स्थानसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जो जहाँ पर निमित्तकारण विशेष रूपसे मोहमें सहायक पड़ते हैं। इसमें भी मेरी दुर्बलता है। यद्यपि यह निश्चय है, कोई बलात्कारसे कुछ भी नहीं कर सकता।

सकता। परन्तु हम प्रथम पक्षको तो मानते हैं, किन्तु द्वितीय पक्ष के माननेमें सर्वथा नपुसक बन जाते हैं। ससार कोई भिन्न तो पदार्थ है नहीं। आत्मा ही ससारी सिद्ध उभय पर्यायका कर्त्ता होता है। अतः कहनेका तात्पर्य यह है जो शक्तिका उपयोग ससार सृजनमें हो रहा है उसे संसारध्वंसमे लगाना उचित है। आपके निमित्तसे वहाँकी जैनजनता संसार बन्धनके छेदनेमें उद्यमशील है। इतनी सूचना मेरी दे देना जो इन पर्वदिनोंमें शील व्रत पालें। एक मास ही तो मध्यमें है। भाद्र मास तो धर्मपर्व है ही। २८ दिनकी बात है।

चरणानुयोगका आचरण अध्यात्मका साधक है। हम लोग चरणानुयोगको केवल भोजनादि तक ही सीमित मानते है। सो नहीं, इसका सम्बन्ध साक्षात् आत्मासे है। मेरा तो दृढतम श्रद्धान है जो प्रथमानुयोग भी अध्यात्मरसके स्वाद करानेमें किसी अनुयोगसे पीछे नहीं। चाहे वनमे एक विहारी होकर आत्म-कल्याण करो, चाहे गृहस्थीमें रहकर भी मोक्षमार्ग साधो—तर-तम ही पावोगे। विशेष अन्तर नहीं, मार्गके सन्मुख दोनो हैं। केवल चालमे अन्तर है, अन्य कुछ भी अन्तर नहीं। यद्यपि हमारा इतना शुभोदय प्रबल नहीं जो गिरिराजके पादमूलमे आत्मशुद्धि करते। यह सुयोग नहीं। आप ही भद्र जीवोंका है फिर भी हमारी श्रद्धामें कोई अन्तर नहीं। मेरा वहाँकी जनतासे धर्मप्रेम कहना। श्री चम्पालालजी आदि सर्वसे धर्मस्नेह कहना।

आषाढ सुदि १०, स० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

—०—

संसारके बन्धनोंका उच्छेदन कर रही है। लौकिक कार्य या कोई वस्तु नहीं। श्री शिखरजीका निवास तो अल्प भव्यों का मिलता है। क्षेत्र भी एक बाह्य कारण है। यद्यपि आत्मकल्याणका अङ्कुर आत्मा ही में उदित होता है फिर भी बाह्य कारणकी अपेक्षासे ही होता है। कार्यकी उत्पत्ति उपादान-निमित्त सापेक्ष है। गया भी शिखरजीका एक अंग है। अत वहाँ आनेसे आपके परिणामोंकी विरागताका ह्रास नहीं हो सकता। प्रत्युत आपके निमित्तको पाकर समाजका परिणाम निर्मलताकी ओर ही जाता है। हमारा अभिप्राय था कुछ और है और होता कुछ अन्य ही है। किससे कहें ? अपने किये कर्मका फल हम ही भोगते हैं। किसीका दोष नहीं। परन्तु भद्रा जो थी वही है। हमारा समाजसे यह सन्देश कहना जो बन्धुगण! मनुष्य-जन्मका सार यही है आ आपको आना। इससे अधिक कुछ नहीं। यही ज्ञान संसार समुद्रसे पार करेगा।

आषाढ़ वदि १४, स २ ह } आ शु चि
गणेश वर्णी

[३–४३]

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाई जी योग्य इच्छाकार

आपका पत्र शान्तिसे होता हागा। शान्तिधर्म अन्यत्र नहीं परन्तु हम मोही जीव प्रायः निमित्त कारणोंमें उसे अन्वेषण करते हैं यह हमारी अनादि कालकी परिणति हो गई है। आपकी सामर्थ्यसे सर्वथा वञ्चित रहते हैं। आत्मामें अनन्त सामर्थ्य है ऐसा कहते हैं; परन्तु उसका उपयोग करते नहीं। जो आत्मा अनन्त संसारको कर्ता हो वह क्या उसका विध्वंस नहीं कर

सकता। परन्तु हम प्रथम पक्षको तो मानते हैं, किन्तु द्वितीय पक्ष के माननेमे सर्वथा नपुसक बन जाते हैं। ससार कोई भिन्न तो पदार्थ है नहीं। आत्मा ही संसारी सिद्ध उभय पर्यायका कर्त्ता होता है। अतः कहनेका तात्पर्य यह है जो शक्तिका उपयोग ससार सृजनमें हो रहा है उसे ससारध्वसमे लगाना उचित है। आपके निमित्तसे वहाँकी जैनजनता ससार बन्धनके छेदनेमें उद्यमशील है। इतनी सूचना मेरी दे देना जो इन पर्वदिनोंमें शील व्रत पालें। एक मास ही तो मध्यमें है। भाद्र मास तो धर्मपर्व है ही। २८ दिनकी बात है।

चरणानुयोगका आचरण अध्यात्मका साधक है। हम लोग चरणानुयोगको केवल भोजनादि तक ही सीमित मानते है। सो नहीं, इसका सम्बन्ध साक्षात् आत्मासे है। मेरा तो दृढतम श्रद्धान है जो प्रथमानुयोग भी अध्यात्मरसके स्वाद करानेमे किसी अनुयोगसे पीछे नहीं। चाहे वनमें एक विहारी होकर आत्म-कल्याण करो, चाहे गृहस्थीमें रहकर भी मोक्षमार्ग साधो—तर-तम ही पावोगे। विशेष अन्तर नहीं, मार्गके सन्मुख दोनों हैं। केवल चालमें अन्तर है, अन्य कुछ भी अन्तर नहीं। यद्यपि हमारा इतना शुभोदय प्रबल नहीं जो गिरिराजके पादमूलमे आत्मशुद्धि करते। यह सुयोग नहीं। आप ही भद्र जीवोंको है फिर भी हमारी श्रद्धामें कोई अन्तर नहीं। मेरा वहाँकी जनतासे धर्मप्रेम कहना। श्री चम्पालालजी आदि सर्वसे धर्मस्नेह कहना।

आषाढ सुदि १०,सं० २००६ }

आ० शु० चि०
गणेशप्रसाद वर्णी

—,o.—

संसारके बन्धनोंका उच्छेदन कर देती है। लौकिक कार्य वा कोई वस्तु नहीं। श्री शिखरजीका निवास वा अन्य सम्यों का मिलता है। क्षेत्र भी एक बाह्य-कारण है। यद्यपि आत्मकल्याणका अङ्कुर आत्मा ही में उदित होता है फिर भी बाह्य कारणकी अपेक्षासे ही होता है। कार्यकी उत्पत्ति उपादान-निमित्त सापेक्ष है। गया भी शिखरजीका एक अंग है। अतः वहाँ आनेसे आपके परिणामोंकी विराद्धताका ह्रास नहीं हो सकता। प्रत्युत आपके निमित्तका पाकर समाजका परिणाम निर्मलताकी ओर ही जाता है। हमारा अभिप्राय था कुछ और है और होता कुछ अन्य ही है। किससे कहें? अपने किये कर्मका फल हम ही भोगते हैं। किसीका दोष नहीं। परन्तु श्रद्धा जो थी वही है। हमारा समाजसे यह संदेश कहना जा अनुगया। मनुष्य-जन्मका सार यही है जो आपका ज्ञाना। इससे अधिक कुछ नहीं। यही ज्ञान संसार समुद्रसे पार करेगा।

आषाढ़ बदि १४, सं० २ ०९ } आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[३—४३]

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाई जी योग्य इच्छाकार

आपका पर्व शान्तिसे होता होगा। शान्तिधर्म अन्यत्र नहीं परन्तु हम मोही जीव प्रायः निमित्त कारणोंमें उस अन्वेषण करते हैं यह हमारी अनादि कालकी परिणति हो गई है। आपकी सामर्थ्यसे सर्वथा वञ्चित रहते हैं। आत्मामें अनन्त सामर्थ्य है ऐसा कहते हैं, परन्तु उसका उपयोग करते नहीं। जो आत्मा अनन्त संसारका कर्ता हो वह क्या उसका विध्वंस नहीं कर

(४–१]

युत कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारमें शान्तिका सरल मार्ग है तथा स्वाधीन है तथा क्के अन्दर यावती ससारकी आपत्तियां है स्वयमेव उदय नहीं तीं। इसका फल उसी समय मिलता है, अतः सर्व विकल्पोंको ड़ इसीके अर्थ अपना जीवन लगा दो। माता पिता भाई न्धु सर्व अपने २ परिणामोके अनुकूल परिणमते हैं। अन्य नादिककी भी कोई चिन्ता न करो, धन वस्तु ही पराई है। पर स्तुसे कभी लाभ हुआ है क्या? जो धनसे पुण्य मानते हैं वे स्तु ही नहीं जानते हैं। पुण्यका कारण आभ्यन्तर मन्द कषाय , न कि धन। अभी आपके पिताने स्वात्मधर्मकी प्राप्तिका जो ार्ग ग्रहण किया है उसके रङ्गमें यह स्वाधीन शुद्धोपयोगका मार्ग प्रपना रङ्ग नहीं जमा सकता। शान्तिका मार्ग निवृत्तिमे है। जिनेन्द्रदेवका तो यह उपदेश है, यदि कल्याण अभीष्ट है तब समें राग छोड़ दो। जहा गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्का यह उपदेश है निष्काम कार्य करो वहा पर जिनेन्द्रका यह उपदेश है सम्यग्ज्ञानी होनेके बाद कर्तृत्व भाव ही नहीं रहता है। अज्ञानावस्थामे आत्मा कर्ता बनता है विशेष क्या लिखें, यदि कभी दानकी इच्छा हो और अनुकूल धन दो तब ज्ञानदानको छोड़कर किसीके दम्भमे न आना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

ब्र० पण्डिता कृष्णाबाई जी

श्रीमती ब्र० पण्डिता कृष्णाबाईजीका जन्म फाल्गुन वदि ११ वि० सं० १९५० को पिता रामेश्वरलालजी गर्गके घर माता सीतादेवीके कूखसे फतेपुरमें हुआ था। जाति अग्रवाल है। साधारण शिक्षाके बाद इनका विवाह रामगढ़निवासी सेठ रामनिवासजी गोयनका कलकत्तावालोंके साथ हुआ था। किन्तु इनके जीवनमें वैधव्ययोग होनेके कारण वि० सं० १९६९ में इन्हें वैधव्य जीवनका सामना करना पड़ा। इन्हें अपने गार्हस्थिक जीवनमें सन्तानकी प्राप्ति भी नहीं हुई, इसलिए इनका चित्त धीरे-धीरे धर्मके सम्मुख होने लगा।

अपने इस जीवनको सफल बनानेके लिए इन्होंने धर्माराधन और अध्ययन ये दोनों कार्य एक साथ प्रारम्भ किये। माता पिता से उत्तराधिकारमें इन्हें यद्यपि वैष्णव धर्म मिला था फिर भी इनकी रुचि जैनधर्मकी ओर गई। फलस्वरूप इन्होंने पूज्य श्री वर्णीजीके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए और कालान्तरमें श्री १०८ आचार्य वीरसागर महाराजके पास सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये। धर्मशास्त्रमें इन्होंने बनारससे शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की है।

ये बड़ी उद्योगशील हैं। इन्होंने श्री महावीरजी क्षेत्र पर एक महिलाश्रमकी स्थापना तो की ही है। साथ ही उसके अन्तर्गत एक विशाल जिन मन्दिर भी बनवाया है। ये महिलाओंमें जागृति उत्पन्न करनेके लिए एक महिला पत्र भी निकालती हैं। मन्दिर-निर्माण वेदीप्रतिष्ठा और जीर्णोद्धार आदि अनेक उपयोगी कार्योंमें इन्होंने विपुल धनराशि खर्च की है।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य श्रद्धा है। फल-स्वरूप उनके द्वारा इन्हें लिखे गए कुछ पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

(४-१]

श्रीयुत कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

संसारमें शान्तिका सरल मार्ग है तथा स्वाधीन है तथा इसके अन्दर यावती ससारकी आपत्तियां है स्वयमेव उदय नही होतीं। इसका फल उसी समय मिलता है, अतः सर्व विकल्पोंको छोड़ इसीके अर्थ अपना जीवन लगा दो। माता पिता भाई बन्धु सर्व अपने २ परिणामोंके अनुकूल परिणमते हैं। अन्य दानादिककी भी कोई चिन्ता न करो, धन वस्तु ही पराई है। पर वस्तुसे कभी लाभ हुआ है क्या? जो धनसे पुण्य मानते हैं वे वस्तु ही नहीं जानते हैं। पुण्यका कारण आभ्यन्तर मन्द कषाय है, न कि धन। अभी आपके पिताने स्वात्मधर्मकी प्राप्तिका जो मार्ग ग्रहण किया है उसके रङ्गमें यह स्वाधीन शुद्धोपयोगका मार्ग अपना रङ्ग नहीं जमा सकता। शान्तिका मार्ग निवृत्तिमें है। जिनेन्द्रदेवका तो यह उपदेश है, यदि कल्याण अभीष्ट है तब हममें राग छोड़ दो। जहां गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌का यह उपदेश है निष्काम कार्य करो वहा पर जिनेन्द्रका यह उपदेश है सम्यग्ज्ञानी होनेके बाद कर्तृत्व भाव ही नही रहता है। अज्ञानावस्थामें आत्मा कर्ता बनता है विशेष क्या लिखें, यदि कभी दानकी इच्छा हो और अनुकूल धन दो तब ज्ञानदानको छोड़कर किसीके दम्भमें न आना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[४—२]

श्री कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आत्मा वही दुःखसे छूटनेका पात्र है जो पर पदार्थसे सम्बन्ध छोड़ेगा। आप लोगोंकी सहन शक्ति अब शारीरिक इतनी है जो ५ डिगरी ज्वरम सामायिक करनेका साहस रहता है तब पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़नेमें क्या कठिनता है? हम कहें संसार स्वार्थी है तब क्या इसका यह अर्थ है जो हम स्वार्थी नहीं। अब इन अप्रयोजनीभूत विकल्पोंको छोड़ केवल आत्मस्वभावकी शुद्धि करना, राग द्वेष दुःखदायी हैं ऐसा कहनेसे कुछ भी सार नहीं, कर्ता उसके हम हैं, अतः आत्मा ही आत्माका दुःख देनेवाला है, इसलिये आत्माको निर्मल करनेकी आवश्यकता है। उस निर्मलताके अर्थ किसीकी आवश्यकता नहीं; केवल स्वीय विपरीत मार्गकी गमन पद्धतिको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। हम क्या करें। जिसका प्रश्न है उसका उत्तर यह है—जिस वस्तु या परिणामको आप दुःखकर समझते हैं उसे छोड़ दें। हमारी तो यही सम्मति है जो आत्माके हितके अर्थ जो भी त्याग करना पड़े करें। यही कहा है—

> आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
> आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि॥

क्योंकि संसारमें प्रायः प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी है अतः जो मुमुक्षु हैं उनकी क्या स्वात्महितके अर्थ यदि प्रवृत्ति हो तब इसमें क्या आपत्ति है। संसारमें तो परार्थ घात करके स्वार्थ साधन करते हैं। यहाँ मोक्षमार्गी केवल स्वार्थ साधनामें ही उपयोगकी चेष्टा रखते हैं, अतः निष्कर्ष यह है जो आपका

कल्याण आपसे होगा, इतरका सम्बन्ध बाधक ही है। हम तो वस्तु ही क्या हैं। मेरी तो श्रद्धा है परमेष्ठीका संसर्ग भी साधकतम नहीं। साधकताका निषेध नहीं, तत्त्व तो सरल है पर इसकी व्याख्या इतनी कठिन है जो बहुयत्नसाध्य है, परन्तु श्रद्धालु जीवोंको इसकी प्राप्ति कठिन नहीं। पूर्वधारी भी श्रेणि माडते हैं और अष्ट प्रवचनके जाननेवाले भी वही काम करते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[४–३]

श्री पूज्य ब्रह्मचारिणी कृष्णादेवीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। जिनके इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगमें धीरता रहती है वही जीव सयमके पात्र हैं। शान्तिका कारण निमित्त कारण नहीं होता। अचेतन पदार्थमें तो निमित्त कारणके व्यापारकी आवश्यकता है परन्तु चेतन पदार्थमें ऐसा नियम नहीं, क्योंकि यहाँपर जिसमें कार्य होता है वह चेतन है। अत निमित्त कारण मिलने पर यदि वह तद्रूप न परिणमे तव नि मत्त कारण क्या कर सकता है। यही कारण है जो अनन्त वार ग्रैवेयक जाकर भी यह जीव ससारका पात्र रहा, अत. जहाँ तक बने अतरगकी त्रुटिको निरन्तर अवगत कर पृथक् करनेकी चेष्टा करना। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि निमित्त कारण कुछ नहीं, किन्तु वस्तु विचारनेपर वह अकिञ्चित्कर ही प्रतीत होता है। अत पुरुषार्थकर अन्तरङ्गकी ऐसी निर्मलता होनी चाहिये जो पर पदार्थों के आभास होनेपर इष्टानिष्ट कल्पना न होने पावे। सर्वथा पराधीन

होकर क्या करे, कोई उत्तम निमित्त नहीं यह सर्व व्यापार अज्ञानी मोही जीवोंका है। ज्ञानी वीतरागी जीव स्वामी द्वारा विहरित होनेपर भी केवलज्ञानके पात्र हुए। आजकल पञ्चम काल है तब इससे क्या हानि हुई। अब भी भद्र जीव चाहें तब वास्तविक मोक्षमार्गका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकते हैं। आप तो वैराग्यसंयमकी निराबाध सिद्धिके अर्थ प्राणपन से चेष्टा कर रही हो तब अब आकुलता करनेसे क्या लाभ? कहीं रहो परन्तु जहाँ शरीर निरोग और आत्मनिर्मलता हो इसपर अवश्य ध्यान रखना। मैंने तो पहिले ही कहा था कि तुमको सबसे अच्छा स्थान बनारस है। एक बार सानन्दसे भोजन करो और स्वाध्याय करो। ज्ञानार्जनका फल केवल अज्ञाननिवृत्ति ही नहीं किन्तु उपेक्षा है। विशेष क्या लिखें! हमारा दृढ़ निश्चय है—जिस कालमें जो होना है होगा, अधीरता करनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने आज तक आपसे नहीं कहा कि अमुक स्थानपर द्रव्य दो और न कहूँगा परन्तु सिद्धान्तके अनुकूल ज्ञानार्जनके आयतनमें द्रव्यका सदुपयोग होता है।———।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

श्री भगिनी महादेवी जी

श्रीमती भगिनी महादेवीजीका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा ५ वि० स० १६५१ को काजीपुरमें हुआ है। पिताका नाम श्री सन्तलालजी और माताका नाम श्री सजनीदेवी था। जाति अग्रवाल है। माता-पिताके घर साधारण शिक्षाके बाद इनका १२ वर्षकी अवस्थामें खतौलीनिवासी लाला अनूपसिंह जी जैन रईसके साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया था। किन्तु विधिकी विडम्बनावश २१ वर्षकी अवस्थामें ही इन्हें वैधव्य जीवनका सामना करनेके लिए विवश होना पड़ा। प्रारम्भसे ही ये धार्मिक कार्योंमें विशेष उत्साह दिखलाती रही हैं, इसलिए इस महान् संकटके उपस्थित होने पर भी ये विचलित नहीं हुईं और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर दूने उत्साहसे आत्मकार्यमें जुट गईं।

स्वाध्याय, व्रताराधन, अध्ययन, अतिथि सत्कार और साधु-सेवा यही इनके जीवनके मुख्य कार्य हैं। ये स्वभावसे दयालु और उदार हैं। अनेक लोकोपकारी कार्योंमें इन्होंने सहायता की है। इनके सम्बन्धमें संक्षेपमें इतना कहना ही पर्याप्त है कि उस प्रान्तमें ये आदर्श महिला-रत्न हैं।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमें इनकी अनन्य भक्ति है। फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हें लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं।

[५—१]

श्री प्रशममूर्ति धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

इस संसारमें अनन्त भव भ्रमण करते संज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्त्व सामान्य नहीं। इसे प्राप्त कर आत्महितमें प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है। 'बुद्धेः फलं ह्यात्महितप्रवृत्तिः' इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है कि आत्महितमें प्रवृत्ति करना। अब यहाँ विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है और इसके साधक कौनसे उपाय हैं? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जाय तब अनायास हमारी उसमें प्रवृत्ति हो जावे।

साधारण रूपसे प्राणियोंकी प्रवृत्ति प्रायः दुःख निवारणके लिये ही होती है। यावत् काम मनुष्य करता है प्रायः उनका लक्ष्य दुःख न होना ही है। उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यों न हों परन्तु लक्ष्य दुःखनिवृत्ति है। अतः इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्माका हित दुःखनिवृत्ति है। अब हमें दुःख का स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है। आत्मामें जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमें अच्छी नहीं लगती, चाहे वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो। हम उसे रखना अच्छा नहीं समझते चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनों ही इसे पृथक् करना चाहते हैं। जब इस जीवके तीव्र कषाय उदय होता है तब क्रोध करने-की उद्विग्नता होती है और जब तक उस क्रोध विषयक कार्य नहीं सम्पन्न होता व्याकुल रहता है। कार्य होते ही वह व्यग्रता

नहीं रहती तब अपनेको सुखी समझता है। इसी प्रकार जब हमारे मन्द कषायोदय होता है उस कालमें हमें धर्मादि शुभोपयोग करनेकी इच्छा होती है। जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरङ्गमें उसे करनेकी इच्छाने आकुलता उत्पन्न कर दी थी वो शांत हो जाती है। इसी प्रकार यावत् कार्य हैं उन सर्वमें मोही जीवकी यही पद्धति है। इससे यह निकर्ष निकला कि सुखी तो जीव आकुलताकी जननी इच्छाके अभावमें होता है, परन्तु जिन जीवोंके मिथ्याज्ञान है वे जीव उस कार्यके सम्पन्न होनेसे सुख मानते हैं। इसी मिथ्याभावको दूर करना ही हितका उपाय और अहितका परिहार है। ऐसा ही पद्मनन्दी महाराजने लिखा है:—

> यद्यद्यदेव मनसि स्थित भवेत्तदेव सहसा परित्यजेत्।
> इत्युपाधिपरिहारपूर्णता सा सदा भवति तत्पदं तदा॥

अर्थात् मनमें जो जो विकल्प उत्पन्न होवें वो वो सर्व सहसा ही परित्याग देवे। इस प्रकार जब सब उपाधि जीर्णताको प्राप्त हो जाती है उसी कालमें वह जो निजपद है अनायास हो जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि मोहजन्य जो जो विकल्प हैं वे संसारके वर्धक ही हैं। इसी आशयको लेकर श्रीपद्मनन्दी महाराजने कहा है—

> बाह्यशास्त्रगहने विहारिणी या मतिर्बहुविकल्पधारिणी।
> चित्स्वरूपकुलसद्मनिर्गता सा सती न सदृशी कुयोषिता॥

बुद्धि जो चैतन्यात्मक कुलमहसे निकलकर बाह्य शास्त्ररूपी वनमें बहुत विकल्पोंको धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नहीं किन्तु कुलटा स्त्रीके समान व्यभिचारिणी है।

[५—१]

श्री प्रशममूर्ति धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

इस संसारमें अनन्त भव भ्रमण करते संज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्व सामान्य नहीं। इसे प्राप्त कर आत्महितमें प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है। 'बुद्धेः फलं आत्महितप्रवृत्तिः' इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है कि आत्महितमें प्रवृत्ति करना। अब यहाँ विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है और उसके साधक कौनसे उपाय हैं? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तब अनायास हमारी उसमें प्रवृत्ति हो जावे।

साधारण रूपसे प्राणियोंकी प्रवृत्ति प्रायः दुःख निवारणके लिये ही होती है। यावत् कार्य मनुष्य करता है प्रायः उनका लक्ष्य दुःख न होना ही है। उसके उपाय चाहे विपरीत क्यों न हों परन्तु लक्ष्य दुःखनिवृत्ति है। अतः इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्माका हित दुःखनिवृत्ति है। अब इसमें दुःख का स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है। आत्मामें जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमें अच्छी नहीं लगती चाहे वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो। इस उसे रखना अच्छा नहीं समझते चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो चाहे मिथ्याज्ञानी हो दोनों ही इसे पृथक् करना चाहते हैं। जब इस जीवके तीव्र कषाय उदय होता है तब क्रोध करनेकी चेष्टा होती है और जब तक उस क्रोध विषयक कार्य नहीं सम्पन्न होता व्याकुल रहता है। कार्य होते ही वह व्यग्रता

[५—३]

श्रीयुक्ता देवांजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैंने पत्र बनारसको लिख दिया है। आशा है उत्तर आपके पतेसे पहुँचेगा। यदि २) रु० की जगह २) रु० दिये जावें तब अच्छा है। मैंने दो रुपयेके लिए लिखा है। बेटी! संसारमें सर्वत्र ही अशान्ति है। धन्य है उन महापुरुषोंको जो इस महती अशान्तिमें शान्तिके पात्र हो जाते हैं। मूल कारण शान्तिका पर पदार्थसे परणति हटावे। हटानेका उपाय उनके न्यून करनेका प्रयास है। जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा। परिग्रह ही सर्व पापोंका निदान है। इसकी कृशता ही रागादिकके अभावोंमे रामबाण औषधि है। बेटी! जहां तक बने रागादि दोषोंसे ही अपनी रक्षा करना। यह अवसर अति दुर्लभ है। मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी निरोगता उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओंको विजय कर स्वात्मलाभ करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४]

श्रीयुक्ता महादेवीजीको दर्शनविशुद्धि

हमारा तो यही कहना है, जिसमें आपको शान्ति मिले और रागादिक उपक्षीण हों वही कर्त्तव्य है। इसकी ओर दृष्टि देना ही इस जीवनका लक्ष्य है। तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है। हमारा तो ध्येय यही है, इसीसे हमने सर्व प्रकारकी सवारी छोड़ी है। आप जहां तक बने बाबाजीकी पर्याय तक वहीं रहनेकी चेष्टा करना, क्योंकि आपके द्वारा जो वैयावृत्त होगी वह अन्यत्र न होगी।

इसका भी तात्पर्य है कि बुद्धि रागादि कलंक सहित पर-पदार्थों को विषय करनेमें चतुर भी है तब भी पण्यांगना (वेश्या) सदृश वह हेया है। इसलिये बेटी! जहाँ तक बने अन्तः शत्रु जीवके रागादिक हैं उन्हींके विजयका उपाय करना। जप, तप, संयम, शीलादि जो कार्य हैं उनका एतावन्मात्र ही प्रयोजन है। यदि इस मुख्य लक्ष्य पर ध्यान न दिया तब तुस का कीपना भीकना न चांदना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी योग्य दर्शनविशुद्धि

बेटी! संसारमें शान्ति नहीं सो ठीक है, परन्तु शान्तिका मूल हम लोग ही तो हैं। क्या पुद्गल कर्म शान्तिका बाधक है? हमारी अज्ञानताने यह सर्व असत् कल्पना कर यह संसार बना रखा है। वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नहीं, औपाधिक परिणामोंने यह सब उपद्रव बना रखा है। अतः जहाँ तक बने उन औपाधिक भावोंका यथार्थ ज्ञान करना ही मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी है। औपाधिक भावोंके त्यागके बिना हम सम्यग्दर्शनके पात्र नहीं हो सकते। अतः संसारसे संवेग होना ही श्रेयस्कर है। क्या लिखूँ? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत एक सिकेण्डमें अवबोधका विषय हो सकता है परन्तु उनकी प्रचुरतासे वचसकीपाा मामा दुगम किंव पदमर्गो है।

आ० शु० चि०
गणेशवर्णी

अंगीकार करनेका जो प्रयास करते हैं उसका भी मूल तात्पर्य यही है, जो हम रागद्वेषकी कलुषतासे क्लेशित न हो। लौकिक कामोंमें देखो हम भोजन इस अर्थ करते हैं जो क्षुधाजन्य पीड़ा शान्त हो। जब हमे कषायें पीड़ा उपजाती हैं तब अपना अकल्याण करके भी उस कषायकी पूर्ति करते हैं। यद्यपि विचार से देखें तब सुखका मूल उस कषायकी हीनता है, परन्तु हमे इस प्रकारका मिथ्याज्ञान है जो हम कषायमे सुख मानते हैं, क्योंकि सुख तो कषायके अभावमें है। जैसे देवदत्तको यह कषाय उपजी जो यज्ञदत्त हमे नमस्कार करे। जबतक वह नमस्कार नहीं करता तब तक देवदत्तको अन्तरङ्गमें दुःख रहता है। एक बार यज्ञदत्तने उसे दुखी देख अपनी हठ छोड देवदत्तको नमस्कार कर लिया, इस पर देवदत्त कहता है मेरी बात रह गई। और देख, अब मैं उस कषायके होनेसे सुखी हो गया। इस पर यज्ञदत्त कहता है कि तुम भ्रममे हो तुम्हारी बात भी गई और कषाय भी गई। इसीसे तुम सुखी हो गये। जब तुम्हें इच्छा थी कि नमस्कार करे और मैं नहीं करता था तब तुम दु:खी थे। मेरी हठ थी कि मैं इसे क्यों नमू ? सो मैं भी दु खी था। अब मेरी हठ मिटी तब मैंने नमस्कार किया। उससे जो तुम्हारी इच्छा थी कि यह मुझे नमस्कार करे, दु ख दे रही थी मिट गई। अत॰ तुम इच्छाके अभावमें सुखी हुए। मैं भी हठके जानेसे सुखी हुआ। अतः ऐसा सिद्धान्त है कि अभिलाषाका जाल ही दु.खका मूल कारण है, तब निष्कर्ष यह निकला सुख चाहते हो तब इच्छाओंको न्यून करो यही सदेश आत्माका है। अब वैशाख सुदि १५ तक पत्र न दूगा।

आ॰ शु॰ चि॰

गणेश वर्णी

धर्मके मूल आशयको जाने बिना धार्मिक भाव व धर्मात्मामें अनुराग नहीं हो सकता। हमको एक शल्य थी वह भी निकल हो गई अर्थात् बाईजीकी ननद वह भी परलोक पधार गई। अब ना कुटुम्बी कहो चाहे पिता कहो बाबाजी महाराज हैं। मैंने ईसरी आनेका निश्चय कर लिया, जहाँ वा वहाँ आता। अब देखें कब बाबाजीसे मिलाप होगा? बाबाजीसे दर्शनविशुद्धि।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

[५—५]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अपनी माँ तथा भाभी व भाईसे धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि। इसके पश्चात् आत्महितप्रवृत्ति। बुद्धि पानेका यही फल है जो आत्महितमें प्रवृत्ति करना। आत्महित क्या है? वास्तव दृष्टिसे विचारा जावे तब दुःखनिवृत्ति ही है। यावत् जगत् है इसीके अर्थ चेष्टा करता है। दुःख पदार्थ क्या है? इस पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो यही निष्कर्ष अन्तमें निकलेगा, आवश्यकताओंकी माला। उनकी आवश्यकता क्यों होती है? हम अज्ञानसे नाना प्रकारकी यातनाओंके पात्र होते हैं। ज्ञान होने पर वे यातनाएं जो अज्ञान अवस्थामें हमें बाधा दे रही थीं अब नहीं देतीं। हम प्रभुभक्ति किस अर्थ करते हैं? हमारी रागादिक परणति ऐसे पदार्थोंमें न जाय जो हमें मोक्षमार्गसे च्युत कर दें तथा तीव्र रागद्वेषकी ज्वाला हमें दग्ध न कर देवे, एतज्जन्य दुःखकी निवृत्तिके अर्थ ही हमारा प्रयास है। हम जो दान देते हैं उसका तात्पर्य यही है जो हम लोभ कषायसे दुःखी न होवें। हम चारित्रका

जो दयाभाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तब तो नियमसे दर्शन मोहके चिन्ह है। सामान्य मोहके उदयमे करुणाभाव मिथ्या-दृष्टियोंके भी होता है और सम्यग्दृष्टियोंके भी होता है। सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमें लिखा है—जब उपरितन गुण-स्थानमे चढ़नेकी अशक्यकता है तब अपने उपयोगको इन कार्यों में लगा देता है। मिथ्यादृष्टि अहम् बुद्धिसे कार्य करता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणाभाव चारित्रादिके उदयसे ही होता है। किन्तु जब मिथ्यादर्शन उदय मिलित चारित्रोदय होता है तब दर्शनमोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरह से वैरभाव या मित्रभाव सब चारित्रमाहके उदयमे होते हैं। परन्तु मिथ्यात्व आदिमें सब मिथ्यादर्शनके सहचारी कह दिये जाते हैं। वैरभाव द्वेषसे होता है, अतः पञ्चाध्यायीमें कह दिया गया है जो मिथ्यात्वके बिना यह नहीं होता। किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्वका अनुभावक है वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्वका अनुभावक है। अतः दर्शनमोहके उदयमे न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनों भाव चारित्रमोहके उदयसे ही होते हैं।

आ० शु० चि०

गणेश वर्णी

[५–७]

श्रीयुक्ता प्रशममूर्ति महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आजकल हजारीबाग हूँ और दो या तीन दिनमें ईसरी जाऊँगा। बाबाजीको जहाँ तक बने वहीं रखनेकी चेष्टा करना। अब उनका शरीर प्रायः बहुत

[५–६]

श्रीयुक्त महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आयु एक कोटि पूर्वकी है। और उसे आठ वर्ष बाद केवली या श्रुतकेवलीके निकट क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई।

> पढमुवसमिये सम्मत्ते सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
> तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥

इस गाथाके अनुकूल उसने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध प्रारम्भ कर दिया। आठवें अपूर्वकरण तक बराबर बंध होता रहा। अन्तमें उपशमश्रेणी मांडकर ग्यारहवें गुणस्थानमें आयु पूर्ण होकर ३३ सागर सर्वार्थसिद्धिमें आयु पायी। वहां भी बराबर बन्ध होता रहा। वहांके बाद फिर यह कोटिपूर्वकी आयुवाला मनुष्य हुआ। यहां भी अपूर्वकरण तक यह प्रकृति बंधती रही। बादमें क्षपक मांडकर क्षीणमोह अन्तर्मुहूर्त बाद केवली हुआ। तेरहवें गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्दश गुणस्थानका समय पूर्णकर मोक्ष हुआ। अतः इस कालकी विवक्षा न की और न पूर्व अपूर्वकरणके बाद कालकी विवक्षा की। सागरोंके सामने यह कोई काल नहीं। तारतम्यसे विचारा जाय तो यह अन्तर अवश्य है। तीर्थंकर प्रकृतिवाला यदि पंच कल्याणधारी होने वाला है तब तो इस जन्मसे २ जन्म धारण कर मोक्ष जावेगा और जो २ कल्याणक व ३ कल्याणधारी होते हैं व उसी भवसे मोक्ष जाते हैं। यदि सम्यक्त्वके पहिले नरकायुका बंध कर लिया तब तीसरे नरक तक जा सकता है। तीर्थंकर प्रकृतिके बंध होनेके बाद आयुबन्ध होवे तब नियमसे देवायु ही का बंध होवे।

जो दयाभाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तव तो नियमसे दर्शन मोहके चिन्ह है। सामान्य मोहके उदयमे करुणाभाव मिथ्यादृष्टियोंके भी होता है और सम्यग्दृष्टियोंके भी होता है। सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमे लिखा है—जब उपरितन गुणस्थानमें चढ़नेकी अशक्यकता है तब अपने उपयोगको इन कार्यों में लगा देता है। मिथ्यादृष्टि अहम् बुद्धिसे कार्य करता है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणाभाव चारित्रादिके उदयसे ही होता है। किन्तु जब मिथ्यादर्शन उदय मिलित चारित्रोदय होता है तब दर्शनमोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरह से वैरभाव या मित्रभाव सब चारित्रमोहके उदयमें होते हैं। परन्तु मिथ्यात्व आदिमें सब मिथ्यादर्शनके सहचारी कह दिये जाते हैं। वैरभाव द्वेषसे होता है, अतः पञ्चाध्यायीमे कह दिया गया है जो मिथ्यात्वके बिना यह नहीं होता। किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्वका अनुभावक है वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्वका अनुभावक है। अतः दर्शनमोहके उदयमें न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनों भाव चारित्रमोहके उदयसे ही होते हैं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-७]

श्रीयुक्ता प्रशममूर्ति महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। मैं आजकल हजारीबाग हूँ और दो या तीन दिनमें ईसरी जाऊँगा। बाबाजीको जहाँ तक बने वहीं रखनेकी चेष्टा करना। अब उनका शरीर प्राय: बहुत

ही शिथिल हो गया है। शिथिलतामें वैय्यावृत्तकी बड़ी आवश्यकता है। अन्तरङ्ग निर्मलताके अर्थ बाह्य कारणोंकी महती आवश्यकता है तथा याम्य भोजनादिक भी धर्मके साधनमें निमित्त होते हैं। अन्यत्र यह सुभीता नहीं। धार्मिकभावका होना कठिन है। जिसके तत्त्वज्ञान होता है वही धर्मकी रक्षा कर सकता है। मुझे विश्वास है कि बाबाजी हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। शान्तिका अन्तरङ्ग कारण जहाँ प्रबल होता है वहाँ बाह्य कारण बाधक नहीं होते। जहाँ यह जीव स्वयं ढीला होता है वहाँ निमित्तोंपर दोषारोपण करता है। बाबाजी स्वयं विज्ञ हैं। व निमित्त कारणोंसे शान्तिकी रक्षा करेंगे। फिर भी बड़ौतीमें उत्तम निमित्त हैं जो उनके धर्म-साधनमें बाधक नहीं होंगे। मेरी निरन्तर भावना उनके सहवासकी रहती है परन्तु कारणकूट नहीं। यह भी उन्हींके सहवासका फल है जो मैं एक स्थानमें रह गया। चित्तकी भ्रान्तिमें कोई लाभ नहीं दीखता। लाभका आश्रय स्वयं है। कषायकी उपशमताका प्रयास तो करता नहीं। कठिन २ कहकर इसका इतना गहन बना दिया है जो लोग भयभीत हो जाते हैं। आभ्यन्तर कषाय को जिसने जान लिया है वह इसे चाहे तो दूर भी कर सकता है। पुरुषार्थके समक्ष कम कोई वस्तु नहीं, क्योंकि हम संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हैं। यदि इस उत्तमताको पाकर हमने कायरताका आश्रय लिया तब हमारी बुद्धिका क्या उपयोग हुआ? केवल पर वंचनाके लिये ही यह जन्म गमाया। अतः यहाँतक बने इन कषायोंसे न दबना इन्हें दबाना। इनको दबाना यही है—ज्ञाता द्रष्टा रहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—८]

श्री महादेवीजो, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वास्थ्य पूर्ववत् है। अतः विशेषकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता अब अन्तस्तलमें विचार करनेकी है। परकीय पदार्थोंसे परिणतिको पृथक्करण करना ही अन्तस्तत्वकी प्राप्ति है। अनादिकालसे अतथ्य विचारोंने ऐसा आत्माको जर्जरित कर दिया है जिससे स्वोन्मुख होनेकी सुध भी नहीं होती, केवल वचन चातुरता छल है। जिस वचनके अनुकूल आंशिक भी स्वकार्य नहीं किया उसका कोई मूल्य नहीं। ज्ञानप्राप्तिका फल ससारके विषयोंसे उपेक्षा होना है। अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा ही रहना ज्ञानका फल है। यदि यह नहीं हुआ तब लोभीकी लक्ष्मीके सदृश वह ज्ञान है। केवल मनोरथसे इष्टसिद्धि नहीं होती। मनोरथक अनुरूप सतत प्रयास करना ही उसकी सिद्धिका मुख्य हेतु है। मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं जो पुरुषार्थसे सिद्ध न हो सके। पुरुषार्थसे सन्निकट है। केवल जो परमें परिणति हो रही है उससे विरुद्ध परिणति करना ही पुरुषार्थ है। केवल उपयोगको परसे हटाकर अपने रूपमें लगा देना ही अपना कर्त्तव्य है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—९]

देवी, दर्शनविशुद्धि

महात्माका लक्षण तो श्री बाबाजीमे है। ज्ञानसे आत्मा पूज्य नहीं, पूज्यताका कारण तो उपेक्षा है। श्रीयुत बाबाजीके

प्रायः रागकी बहुत मंदता है तथा स्वाध्यायमें निमग्नता, निर्लोलुपता, जितेन्द्रियता आदि गुणोंके भण्डार हैं। यह कोई प्रशंसाकी बात नहीं आत्माका यह स्वभाव ही है। हम तो पामर जीव हैं। बाबाजीके समागमसे कुछ सम्मुख हुए हैं। निरन्तर उनके संसर्गकी इच्छा रहती है, परन्तु पुण्योदय बिना संसर्ग होना कठिन है। हाँ, अब निरन्तर स्वाध्यायमें काल यापन करता हूँ। इस कालमें ज्ञानार्जन ही आत्मगुणका पोषक है। यदि ज्ञानके सद्भावमें मोहका उपशमन नहीं हुआ तब उस ज्ञानकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। जीवन बिना शरीरके तुल्य है, हम तो उसीका उत्तम समझते हैं जो संसार दुःखसे भीरु है। यदि बहुत काय क्लेश कर शरीरको कृश किया और आहारादिको कृश न किया, सब व्यर्थ ही प्रयास किया। अतएव अपने समयको ज्ञानार्जनमें लगाकर मोह कृश करनेका ध्येय रखना ही आत्माका कर्तव्य है। श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि। जो आपकी प्रवृत्ति है वही संसारसे पार करेगी। भूलकर भी गृहसे उदास होनेकी भावनाको न भूलिये, आवना इस कालमें सुखकर नहीं। क्योंकि पंचम कालमें बाह्य निमित्त उत्तम नहीं। स्वाध्याय ही सब कल्याणमें सहायक होगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर एक बार अवश्य आऊँगा। मेरी भावना सत्समागममें निरन्तर रहती है। शेष सर्वसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१०]

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य दर्शनविशुद्धि

संसारमें जहाँ तक गम्भीर दृष्टिसे देखा गया शान्तिका

अंश भी नहीं। मैं तू कहकर जन्मका अन्त हो जाता है, परन्तु जिस शान्तिके अर्थ व्रत, अध्ययन, उपवासका परिश्रम उठाया जाता है उस मूल वस्तु पर लक्ष्य नहीं जाता। कह देना कोई कठिन वस्तु नहीं। द्रव्यश्रुत मात्र कार्यकारी नहीं, क्योंकि यह तो पराश्रित है। वही चेष्टा हम जैसे प्राणियोंको रहती है, भावश्रुतकी ओर लक्ष्य नहीं; अत: जलमन्थनसे घृतकी इच्छा रखनेवाले सदृश हमारा प्रयास विफल होता है। अत. कल्याणपथ पर चलनेवाले प्राणियोंको शुद्ध वासना बनाना ही हितकर है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--११]

श्री महादेवी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। तीथयात्रा की यह अच्छा किया, क्योंकि तीर्थक्षेत्रोंमें परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है। मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन अवनत होता जा रहा है, किन्तु नित्यकर्ममें कोई बाधा नहीं। औषधि अर्हन्नाम और स्वाध्याय है। यदि इस पर्यायको कोई सफल करना चाहता है तब निरन्तर स्वाध्याय और शुभ विचारोंमें उपयोगको लगावे। नाना प्रकारकी कल्पनाओंके जालमें न फसे। दादीजीको दशनविशुद्धि। बाईजीका धर्मस्नेह। रुपयोंके बाबत जो लिखा सो ठीक है। आप और बाबाजीकी जो इच्छा हो सो करना। मैं आपकी इच्छामे बाधक नहीं। यहा पर भी अच्छी व्यवस्था है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१२]

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। बाईजीका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत् है। सप्तम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी माँडते हैं वे दो तरहसे माँडते हैं उपशम तथा क्षयरूपसे। जो चारित्रकी प्रकृतियाँ उपशम करते हैं उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते हैं उनके क्षायिकभाव होता है। अर्थात् पञ्चम गुणस्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते हैं उन्हें क्षायोपशमिक भाव कहते हैं क्योंकि इन गुणस्थानोंमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होता है। ऊपर गुणस्थानोंमें उपशम और क्षयकी मुख्यता है। यद्यपि दशम गुणस्थानमें लोभका उदय है इससे इन भावोंको क्षयोपशमजन्य क्षायोपशमिक ही कहना चाहिये। औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमें होता है। क्षायिक भाव द्वादश गुणस्थानमें होता है, किन्तु करणानुयोगवालोंने उसकी विवक्षा नहीं की। तत्त्वार्थसार वालोंने उसकी विवक्षा की। अतः दोनों ही कथन मान्य हैं। जैसे पञ्चाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थानवालोंमें ज्ञानचेतना ही का विधान किया है पञ्चास्तिकायवालोंने तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञान चेतना स्वीकार की है परन्तु विरोध नहीं क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव के स्वामित्वपना नहीं यह तो पंचाध्यायीवालोंका मत है। स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने क्षायोपशमिक भावमें कर्म निमित्त होनेसे स्वीकार नहीं किया। वास्तवमें दोनों ही कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य हैं। स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमें अनुपम सुखका हेतु है। अतः ज्ञानकी वृद्धिका कारण शरीरकी रक्षा ज्ञानके व संयमके लिये है। यदि इनमें बाधा आवे तब त्याग ही क्या, ऐसा विचार इनके अनुकूल साधन रखना। हमने १२ मास एक स्थानमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है और यह भी पार्श्वप्रभुके निर्वाण-

क्षेत्रके अत्यन्त निकट पार्श्वनाथ स्टेशन जिसको ईसरी कहते हैं। जहांका जल-वायु अति उत्तम है। वाईजीका स्वाथ्य उत्तम होते ही प्रस्थान करूंगा। पर्यायका विश्वास नहीं। कुछ दिन तो शान्तिसे जावें। यद्यपि यह प्रान्त जहां पर श्रीवावाजीका निवास है, उत्तम है। परन्तु जनससर्ग वाधक है। अपरिचित स्थानमें बाह्य कारणोंकी न्यूनता रहती है। यद्यपि अध्यवसानभाव बन्धक है तथापि उनमे निमित्त जो बाह्य वस्तु हैं वे भी अल्पशक्तिवालों-को त्याज्य हैं। अल्पशक्तिसे तात्पर्य चारित्रमोहका जिनके सद्भाव है। तीर्थङ्कर महाराज भी बाह्य पदार्थोंको हेय जानकर तथा रागादिकके उत्पादक जानकर त्याग देते हैं। इसमे अणु मात्र भी सशय नहीं। कर्मोदयमे भी तो बाह्य वस्तु निमित्त पडती है। अभी समय नहीं था इसलिये विशेष नहीं लिख सका। शेष सर्व मण्डलीसे यथायोग्य।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-१३]

श्रीयुक्ता धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। जगतमें अनन्तानन्त जीव राशि है। उसमें मनुष्य-सख्या बहुत अल्प है। किन्तु यह अल्प होकर भी सब पर्यायोंमें मुख्य है। इसी पर्यायसे जीव निज शक्तिके विकाशका लाभ लेकर अनादि ससारके बन्धनजन्य मार्मिकभेदी दु खोंका समूल नाशकर अनन्त सुखोंके आधार परमपदकी प्राप्ति करता है। सयम गुणकी पूर्णता इसी पर्यायमें होती है जो कि उक्त परमपदका हेतु है। अतएव जहा तक बने उसी गुणकी रक्षाके अविरुद्ध कार्योंको कर अपनी जीवनयात्रा निर्वाह करते

[५–१२]

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत् है। सप्तम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी मांडते हैं वे दो तरहसे मांडते हैं उपशम तथा क्षयरूपसे। जो चारित्रकी प्रकृतियां उपशम करते हैं उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते हैं उनके क्षायिकभाव होता है। अर्थात् पञ्चम गुणस्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते हैं उन्हें क्षायोपशमिक भाव कहते हैं, क्योंकि इन गुणस्थानोंमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होता है। ऊपर गुणस्थानोंमें उपशम और क्षयकी मुख्यता है। यद्यपि दशम गुणस्थानमें लोभका उदय है इससे इन भावोंको क्षयोपशमजन्य क्षायोपशमिक ही कहना चाहिये। औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमें होता है। क्षायिक भाव द्वादश गुणस्थानमें होता है, किन्तु करणानुयोगवालोंने उसकी विवक्षा नहीं की। तत्त्वार्थसार वालोंने उसकी विवक्षा की। अतः दोनों ही कथन मान्य हैं। जैसे पञ्चाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थानवालोंमें ज्ञानचेतना ही का विधान किया है, पञ्चास्तिकायवालोंने तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञान चेतना स्वीकार की है परन्तु विरोध नहीं क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवके स्वामित्वपना नहीं यह तो पंचाध्यायीवालोंका मत है। स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने क्षायोपशमिक भावमें कर्म निमित्त होनेसे स्वीकार नहीं किया। वास्तवमें दोनों ही कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य हैं। स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमें अनुपम सुखका हेतु है। अतः ज्ञानकी वृद्धिका कारण शरीरकी रक्षा ज्ञानके व संयमके लिये है। यदि इसमें बाधा आवेगी तब त्यागना ही क्या ऐसा विचार, इसके अनुकूल साधन रखना। हमने १२ मास एक स्थानमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है और वह भी पार्श्वप्रभुके निर्वाण-

विशुद्धि कहना तथा अब तो सच्ची दृष्टिसे ही काम लो और सब जाल है। यह भी कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१५]

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैं बरुआसागरसे खजराहाकी वन्दना कर पन्ना आ गया। खजराहामें अपूर्व जिन मन्दिर और प्रतिमाएँ हैं। परन्तु भग्न बहुत हैं। इतनी सुन्दर मूर्तिएँ हैं जो देख कर वीतरागताकी स्मृति होती है। शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपूर्व है। अस्तु विशेष क्या लिखें? रागादिकोंके सद्भावमें यह सब दृष्टिपथ हो रहा है, सत्य ही है। जो कुछ ससारमे दृश्य पदार्थ हैं वे सब नश्वर हैं। किन्तु कल्याणपथवालेको यह सत्यता प्रतीत होती है। यदि हमको स्वात्मकल्याण करना है तब इन सब उपद्रवोंको पृथक् कर केवल जिस उपायसे बने बुद्धिपूर्वक इन रागादिकोंको निर्मूल करने की चेष्टा करना। स्वकीय कर्तव्यपथमे आना चाहिये। केवल बाह्य त्यागकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। ज्ञानकी भी महिमा रागादिकोंके अभावमें है। यों तो सभी ज्ञानी और त्यागी हैं किन्तु सत्यमार्गके अनुयायी, हार्दिक स्नेही बहुत ही अल्प हैं। यहाँ भी एक कषायकी प्रबलता है। क्या करें? कौन नहीं चाहता कि हम ज्ञानी हों परन्तु महिमा इस मोहकी अपरम्पार है। अस्तु इन बातोंमें क्या सार है? सब यत्न इसी रागादि मलके पृथक् करनेमें लगाना चाहिये। विशेष विकल्पोंमें कभी भी आत्माको उलझाना न चाहिये। जितना प्रयास हो सके शान्ति-पूर्वक समय बिताना ही हितमार्गका प्रथम सोपान है। जिस

हुए निराकुलता पूर्वक इस पर्यायका अवशिष्ट यापन करना चाहिये। इसीके रक्षण हेतु स्वाध्याय, पञ्जन पूजन, दानादि क्रियायें हैं। इस गुणके रक्षण बिना, एक अंक बिना शून्य मालाकी कुछ गौरवता नहीं। इसके सहित जीवनका व्यय कुछ नहीं। इसके अभावमें कोटि पूर्वकी आयुकी प्राप्ति दृष्टिके विना वदनकी शोभा के सदृश है। अतएव हे पुत्री! सतत ज्ञानाभ्यासमें काल यापन करो। इसीमें आपका कल्याण है। शेष यथायोग्य।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—२४]

श्रीयुक्त महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम श्रीजिनेश्वरके दर्शनके सम्मुख होगये हैं। आज २ दिन हैं। जिस दिन दर्शन होंगे उस दिनको धन्य समझेंगे। आत्मज्ञान शून्य सब प्रकारके व्यापार ऐसे निष्फल हैं जिस प्रकार नेत्रहीन सुन्दर मुख। यदि हम मात्र गया वास्तव तत्त्व पर दृष्टिपात करें तब अनायास ही कल्याण-पथ मिल सकता है। यहाँ तो यह मिराज्य है। यहाँ चलती है घण्टा बीता जाता है। ऐसे ही अपराधी आत्मा है। कायको दण्ड दिया जाता है। शान्ति स्वकीय आभ्यन्तरमें है। तीर्थोंमें जानेसे मिलेगी नहीं। पर पदार्थोंको निज तत्त्व मानकर यह सब जगत आपत्तिजालसे वञ्चित हो रहा है। अतः अब कर्तव्य बने इस बाह्य दृष्टिको त्यागना ही श्रेयोमार्गकी ओर जाना है। जो कार्य किया जाय उसमें हर्ष-विषादकी मात्रा न हो। यही मात्रा संसारकी जननी है। अतः इस विषयमें सदा सतर्क रहना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। बाईजीसे हमारी दर्शन-

भासता है। परन्तु उस कालमे भयका होना अनिवार्य हो जाता है। जाग्रतकी कथा तो दूर रहो, स्वाप्निक दशामे भी कल्पित पदार्थोंको हम मानकर राग-द्वेषके दशसे नहीं बच सकते हैं। कुछ नहीं। इसी तरह इस मिथ्या भावके सहकारसे जो हमारी दशा होती है वह कैसी भयानक दु:ख करनेवाली है इसका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता है। फिर भी तो चेतते नहीं। विशेष फिर।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१७]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक वने वावाजीका अन्यत्र जानेसे निषेध करना। वहाँ उनका धर्मध्यान उत्तम होता है तथा साधन भी उत्तम है। जो स्वाध्याय करो, मनन पूर्वक करना। यह एक ऐसा तप है जो स्वात्मोपलब्धिमें विशेष साधक है। इसके द्वारा ही धर्म-ध्यान शुक्लध्यान होते हैं, यह अपूर्व कारण है। दादीजी से धर्मप्रेम कहना। मैं एकवार वैसाखमे वावाजीका दर्शन करूँगा।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—१८]

श्रीयुत महाशया देवी महादेवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। ससारमे जो ज्ञानकी महत्ता है वह मोहके अभावमें है। अतएव उस ज्ञानसे भी जो वास्तविक

कायके सम्पादन करनेमें आत्मप्रसार कसरत न हो यही रामबाण औषधि संसार रोगकी है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२६]

श्रीयुक्त महादेवीजी योग्य दर्शनविशुद्धि

हम पत्र दे चुके हैं। यह पत्र हम अब देता हूँ। अब वैशाख वदि ९ को पत्र दूंगा। इस मनुष्यपर्यायकी प्राप्ति दुर्लभ जान समयका दुरुपयोग न करना, क्योंकि समयके सदुपयोगसे ही समयकी प्राप्ति होती है। आजतक इस जीवने स्वसमयकी प्राप्तिके लिये परसमयका आलम्बन लेकर ही प्रयत्न किया। प्रयत्न वह सफलीभूत होता है जो यथार्थ हो। आत्मतत्त्वकी यथार्थता इसीमें है कि जो उसमें नैमित्तिक भाव होते हैं उन्हें सर्वथा निज न मान लें। जैसे मोहज भाव रागादिक हैं वे आत्मा ही के अस्तित्वमें होते हैं परन्तु विकार्य हैं, अत त्याज्य हैं। जैसे जल अग्निका निमित्त पाकर उष्ण होता है और वर्तमानमें उष्ण ही है अत उष्णता त्याज्य ही है क्योंकि उसके स्वरूपकी विघातक है, तथा रागादिक परिणाम आत्माके चारित्र गुणका ही विकार परिणमन हैं परन्तु आत्मा जो दृष्टा ज्ञाता स्वरूप है उसके घातक हैं, अत त्याज्य हैं। जिस समय रागादिक होते हैं उस कालमें ज्ञान केवल जानन क्रिया नहीं करता साथमें इष्टानिष्टकी भी कल्पना जानन क्रियामें अनुभव करने लगता है। यद्यपि जानन क्रियामें इष्टानिष्ट कल्पना तद्रूप नहीं हो जाती है फिर भी अज्ञानसे वैसा भासने लगता है। जैसे रस्सीमें सर्पका ज्ञान होनेसे रस्सी सर्प नहीं हो जाती ज्ञान ही में सर्प

कृश करना है। ऐसी कृशता किस कामकी जो स्वाध्यायादि कार्योंमें बाधक हो। उत्सर्ग और अपवादमे मैत्रीभाव रखनेमे ज्ञानी जीवोंकी मूल चेष्टा रहती है। विशेष क्या लिखें? हम तो तुम्हें बाईजीके तुल्य समझते हैं। अपनी मां और भावीजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२०]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका ध्यान निराकुलतापूर्वक होता है। इस प्राणीको मोहोदयमें शान्ति नहीं आती और यह उपाय भी मोहके दूर होनेके नहीं करता। केवल बाह्य कारणोंमे निरन्तर शुभोपयोगके संग्रह करनेमे अपने समयका उपयोग कर अपनेको मोक्षमार्गी मान लेता है। जो पदार्थ हैं, चाहे शुद्ध हों, चाहे अशुद्ध हों, उनसे हित और अहितकी कल्पना करना सुसगत नहीं। कुम्भकार मृत्तिकाद्वारा कलश पर्यायकी उत्पत्तिमें निमित्त होता है। एतावता कलशरूप नहीं हो जाता। यहाँ पर कुम्भकारका जो दृष्टान्त है सो उसमें तो मोह और योग द्वारा आत्माकी परिणति होती है, अतः वह निमित्तकर्ता भी बन सकता है। परन्तु भगवान् अर्हन्त और सिद्ध तो इस प्रकारके भी निमित्त कर्त्ता नहीं। वे तो आकाशादिकी तरह उदासीन हेतु हैं। उचित तो यह है, जितना पुरुषार्थ बने रागादिकके पृथक् करनेमें किया जावे। शुभोपयोग सम्यग्ज्ञानीको इष्ट नहीं। जब शुभोपयोग इष्ट नहीं अशुभोपयोगकी कथा तो दूर रही।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

पदार्थको प्रतिपादित करता है—उसको अवगत कर जो मोता मोहका अभाव करनेकी चेष्टा करता है वह मोक्षमार्गका पात्र हो सकता है। पण्डितका आंशिक भी उस मार्गका लाभ नहीं हो सकता यदि वह मोहके पृथक् करनेका प्रयत्न न करे। ज्ञान समान अन्य इस आत्माका हित नहीं यह यदि मोहके बिना हो। मोही जीवका ज्ञान बन्धका ही कारण है। सर्पको दुग्धपान कराने से निर्विषता न होगी। मैं आठ दिन बाद गिरिराज पहुँच जाऊँगा। पत्र वहीं देना।

आ शु चि
गणेश वर्णी

—

[५—१९]

श्रीयुक्त देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके पत्रसे कुछ अशांतिकासा आभास हुआ। बेटी! संसारमें कभी भी शान्ति नहीं। केवल हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थोंमें सच्ची शान्ति परिणति स्वयमें है। हम इन बाह्य वस्तुओंके ग्रहणादि व्यापारमें सुख खोज रहे हैं। जो सर्वथा असम्भव है। हमारी अनादि कालसे परिणति मिथ्यादर्शनके संसर्गसे कलुषित हो रही है। जो हमें क्षणमात्र भी आत्मसुखका स्पर्श तक नहीं होने देती। वही महापुरुष और पुण्यशाली जीव है जिसने अनेक प्रकार विषय करणोंके समागम होनेपर अपने रुचि चिद्रूपका अनुचिन्तासे रक्षित रखा। आपका ज्ञान विशुद्ध है। अब सब प्रकारके विकल्प त्यागकर स्वकीय श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके उपायमें हो लगा देना। नेत्रोंकी कमजोरीका मूल कारण शारीरिक शक्तिकी न्यूनता है अतः धर्मसाधनका मौलिक शरीरको जान सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित है। अत्यधिक करनेका अभिप्राय कषाय

हमें अपने ही अन्त:स्थलमे अपनी शान्तिको देखकर परपदार्थमे निजत्वका त्याग कर श्रेयोमार्गकी प्राप्तिका मात्र होना चाहिये।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२३]

श्रीयुक्ता कल्याणमार्गरत महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। बाईजीके अन्त:करणमे आपके प्रति निरन्तर धर्मानुराग रहता है। बड़ी चाहसे आपका पत्र सुनती हैं। उनका स्वास्थ्य १२ माससे ठीक नहीं। १५ दिन बाद ज्वर आजाता है। परन्तु धर्ममे प्रति दिन दृढतम परिणाम होते जाते हैं। निरन्तर समाधिमरणका पाठ चिन्तवन करती रहती हैं। आपके प्रति उनका कहना है कि बेटी (शक्तितस्त्यागतपसी) इस वाक्यका निरन्तर उपयोग रखना। ऐसा तप व सयम न करना जिससे सवथा निर्बल शरीर हो जावे और न ऐसा पोषण ही करना जो स्वाध्याय क्रियामे बाधा पहुँच जावे। यथाशक्ति क्रिया करना श्रेयस्कर है। तत्त्व श्रद्धानके दृढतम करनेके अर्थ आध्यात्मिक दृष्टि पर निरन्तर अधिकार रखना और अपने कालको निरन्तर जैन धर्मके विचारमे लगाना। जो लड़की पढने आये उन्हें सार्थ पाठ पढाना। यदि ऐसी प्रवृत्ति हमारी बन जावेगी तब अनायास हमारा कल्याण निकट है। मेरा भी यही आपके प्रति भाव है कि आपकी आत्मा धर्ममार्गमें तत्पर रहे।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२१]

श्रीयुक्ता देवीजी दर्शनविशुद्धि

पत्र देरसे मिला। इससे समय लिखनेका नहीं मिला, क्योंकि मैं पूर्णिमाका ही विशेष ऊहापोह करके लिखता हूँ। मेरी दृष्टिमें तो यही आता है जो पराधीनताका त्याग ही स्वाधीन सुखका मूल मन्त्र है। पुस्तकसे जो ज्ञान होता है वह यदि अनुभवमें न आवे तब कार्यकारी नहीं। सब प्रमाणोंके ऊपर इसकी बलवत्ता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी यही आज्ञा है जो कुछ भी जानो उसे अनुभवसे प्रमाण करो। जब तक अनुभवमें न आवे तब तक वह पूर्ण नहीं। सबसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

विशेष बात यह है कि शान्तिका उपाय प्रायः प्रत्येक प्राणी चाहता है परन्तु मोह वशीभूत होकर विरुद्ध उपाय करता है। अत शान्तिकी शीतल छायाके विरुद्ध रागादिक तापकी उष्णता ही इसे निरन्तर आकुलित बनाए रखती है। इससे बचनेका यही मूल उपाय है जो तात्त्विक शान्तिका कारण अन्यत्र न खोजे। जितने भी पर पदार्थ हैं चाहे अशुद्ध हों जबतक हमारे उपयोगमें उनसे सुख प्राप्तिकी आशा है हमको कभी भी सुख नहीं हो सकता। मेरा तो दृढ़ विश्वास है जैसे बाह्य सुखमें रूपादिक विषय नियमरूप कारण नहीं वैसे आभ्यन्तर सुखमें शुद्ध पदार्थ भी नियमरूप हेतु नहीं। जब ऐसी वस्तुकी स्थिति है तब

उसे विराम लेना चाहिये। प्रशंसासे कुछ स्वात्मोत्कर्ष नहीं। स्वात्मोत्कर्षका मुख्य कारण रागद्वेषकी क्षीणता ही है। मुझे एकबार बावाजीके दर्शनकी बड़ी इच्छा है। समय पाकर होगा। मेरा स्वास्थ्य भी अब रेलके यातायात योग्य नहीं। केवल एक स्थान पर शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करनेके योग्य है। आजकल प्राणियोंकी स्थिर प्रकृति नहीं इसीसे विशेष आपत्ति नहीं सह सकते। फिर भी जिसके आभ्यन्तर उत्तम श्रद्धान है वह इन विपत्तियोंके द्वारा भी विचलित नहीं होता। शेष सबसे धर्मप्रेम।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२६]

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला, समाचार जाने। भाद्र मास सानन्दसे धर्मध्यानमें बीता किन्तु आभ्यन्तर शुद्धिका होना कठिन है। जिन जीवोंने आत्मशुद्धि न की उनका व्रत, तप संयम सकल निष्फल है। बाह्य क्रिया तो पुद्गलकृत विकार है। अतः बाह्य आचरणों पर उतना ही प्रेम रखना चाहिये जो आत्मशुद्धिके साधन हों, क्योंकि मतिज्ञानके साधक द्रव्येन्द्रियादिक हैं। अत. इनकी रक्षा करनी इष्ट है। जहाँतक बने आभ्यन्तर परिणामोंकी निर्मलता रखना ही अपना ध्येय समझना। आत्माका निज स्वरूप श्री चेतनारूप है। उसकी व्यक्ति ज्ञान-दर्शन रूपमें प्रगट अनुभवमें आती है। परन्तु अनादि परद्रव्य सयोगसे नाना परिणमन द्वारा विकृतावस्था उसकी हो रही है। परन्तु इससे ऐसा न समझना कि स्वरूप प्रगट होना असंभव है। असभव तो तब

[५-२४]

श्रीयुक्ता महादेवा, योग्य दर्शनविशुद्धि

पूज्यताका कारण वास्तविक गुणपरिणति है। जिसमें यह है पूज्यता व सुखका आवास है। हमारा निरन्तर यही परिणाम रहता है कि बाबाजीके समागममें काल यापन करें, किन्तु कुछ ऐसा कर्मविपाक है जो मनानीत नहीं होने देता। अस्तु, मेरी सम्मतिके अनुकूल बाबाजीको जितना उत्तम स्थान सागरमें है अन्य नहीं। इतर स्थानोंमें स्वाध्यायप्रेमी नहीं। प्राय गल्पप्रिय हैं। यदि उनको पत्र डालो तब मेरा अभिप्राय अवश्य लिख देना और जितना बने सुखापूर्वक स्वाध्याय करना। स्वाध्याय तप है और संवर निर्जराका कारण है। आत्मज्ञानके सम्मुख करनेवाला है। एकबार सकल आकांक्षा बाबाजीसे मिलनेकी है। ठण्ड जानेके बाद यदि शरीर योग्य रहा तब १५ दिनको आऊँगा।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५-२५]

श्रीयुक्ता शान्तिमूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ तो आत्मामें है किन्तु हमारी दृष्टि उस ओर न जाकर पराश्रित होकर बाह्य पदार्थोंके गुणदोष विवेचन में अपनी सर्व शक्तिका अपव्यय कर चरितार्थ हो जाती है। जहाँतक बने स्वाध्यायका उपयोग यथार्थ वस्तुके परिज्ञानमें ही पर्यवसान म हो जाना चाहिए किन्तु जिनके द्वारा हम अनन्त संसारके बन्धन में बद्ध हैं ऐसे मोह रागद्वेषका अभाव करके ही

कर्मबन्धसे जकड़े हुए हैं। निज हित नहीं सूझता। जिसने इस पराधीनताका कारण मोह बधन ढीला कर दिया उसने सब कुछ किया। इससे ससारमें यदि न रुलना हो तो इसे छोड दो। यही मोक्षमार्ग है। अब बाईजी अच्छी हैं। पुत्री! तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना, क्योंकि शरीर निरोगता ही धर्मसाधनमें मुख्य हेतु है। बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नहीं आया है। शायद भाद्रपद मासमें पत्र देना छोड़ दिया हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-२८]

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम लोगोंका कर्त्तव्य ही है कि उनकी वैयावृत्त करें। उनको दमाकी बीमारी होगई है। यदि योग्य औषधि मिल जावे तब उनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे। इतनी बीमारी होते ही उनका धैर्य प्रशसनीय है। हा शब्दका उच्चारण नहीं। धर्ममें पूर्ण दृढ़ता है। एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया है। किन्तु मुझे विश्वास है, इस रोगका प्रतीकार नहीं, फिर जो होगा सामाचार दूगा। रोगादि दु खजनक नहीं, रागादिक दु.खदायी हैं। बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोड़कर अन्यत्र न जावें। मैंने यह विचार कर लिया है कि जवाबी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना। यह नियम बावजीके वास्ते नहीं। स्वाध्याय दृढाध्यवसायसे करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

होता अब उसका लोप हो जाता, सो तो है नहीं। असली स्वभावका प्रगट होना कठिन है। विस्मृत हस्तगत रत्नके समान है। जिस तरह कोई अपनी वस्तु भूल जाता है और यत्र तत्र खोजता है। बस इस न्यायसे यह जीवात्मा अपने असली निज रूपको भूल कर परपदार्थोंमें हेरता है। अपनेको आप नहीं जानता। मोह निमित्त प्रबल हो रहा है। उसमें फंसकर सुखके कारणोंको दुःख प्रतीत करता है, दुःखके कारणोंमें सुख मान रहा है। इस विपरीत भावसे निज निधि भूल रहा है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२७]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। इस संसार महाटवीमें मोह कर्म द्वारा सम्पादित चतुर्गति भ्रमण द्वारा यह जीव कभी भी स्वास्थ्य लाभका भागी न हुआ। दुःखका मूल कारण केवल मोहकर्मका नाश है। वह सामान्यतः मोह, राग, द्वेष तीन रूपमें विभाजित है जिसमें प्रथम भेदके आधीन इतर दोकी सत्ता है। जिसको कुछ भी ज्ञान है वह शीघ्र ही इसका बह देता है, परन्तु आभ्यन्तरसे उसकी निवृत्तिका न होने देना यही परम दुर्लभ है। अतएव जहाँ तक बने स्वाध्यायमें ही अपनी प्रवृत्ति रखना। यथाशक्ति तप और त्याग करना। तथा समय पाकर अपनी पुत्री, बहन, माताओंको धर्मध्यानमें लगाना। यही सब उपाय मोहके दूर करनेके हैं।

जगतकी विचित्रता ही हमको जगतसे उपरत करानेकी जननी है। हम जन्मान्तरोंके प्रबल विरुद्ध अभिप्रायोंसे नाना प्रकारके

कर्मबन्धसे जकड़े हुए हैं। निज हित नहीं सूझता। जिसने इस पराधीनताका कारण मोह बधन ढीला कर दिया उसने सब कुछ किया। इससे ससारमें यदि न रुलना हो तो इसे छोड दो। यही मोक्षमार्ग है। अब बाईजी अच्छी हैं। पुत्री! तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना, क्योंकि शरीर निरोगता ही धर्मसाधनमें मुख्य हेतु है। बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नहीं आया है। शायद भाद्रपद मासमें पत्र देना छोड़ दिया हो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—२८]

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हम लोगोंका कर्त्तव्य ही है कि उनकी वैयावृत्त करें। उनको दमाकी बीमारी होगई है। यदि योग्य औषधि मिल जावे तब उनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे। इतनी बीमारी होते ही उनका धैर्य प्रशसनीय है। हा शब्दका उच्चारण नहीं। धर्ममें पूर्ण दृढ़ता है। एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया है। किन्तु मुझे विश्वास है, इस रोगका प्रतीकार नहीं, फिर जो होगा सामाचार दूगा। रोगादि दु.खजनक नहीं, रागादिक दु खदायी हैं। बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोड़कर अन्यत्र न जावें। मैंने यह विचार कर लिया है कि जवाबी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना। यह नियम बावजीके वास्ते नहीं। स्वाध्याय दृढाध्यवसायसे करना।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–२९]

श्रीयुक्त महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्री जिनेन्द्रके आगमका अहर्निश अभ्यास करना। यही संसार महार्णवसे पार करनेको नौका सदृश है, कषाय अटवी दग्ध करनेको दावानल है, स्वानुभव समुद्रकी वृद्धिके अर्थ पौर्णमासीका चन्द्र है, भव्य कमल विकासनेको भानु है पाप पङ्क छिपानेको भी यही है। यथाशक्ति बने यथायोग्य शरीरकी रक्षा करते हुए धर्मकी रक्षा करना। बाईजीका धर्मस्नेह। बाबाजी महाराजका पता देना। व कहाँ चातुर्मास्य करेंगे नहीं मैं पहुँगा।

[८ —]　　　　आ शु चि
गणेश वर्णी

[५–३०]

श्रीदेवीको दर्शनविशुद्धि

बाह्य निमित्त कोई भी ऐसे प्रबल नहीं जो बलात्कार परिणाम को अन्यथा कर देवें। अभी अन्तरङ्गमें कषायकी उपशमता नहीं हुई। इसीसे यह सर्व विपत्ति है। आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। अपना स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है। यही निरन्तर भावना और तद्रूप रहनेकी चेष्टा रखना। यदि कर्मोदय प्रबल आया तब शान्ति भावसे सहना। यही कर्मोंका नाश करनेका प्रबल शस्त्र है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—३१]

श्रीयुक्ता माहादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्रीयुत महाराजसे प्रणाम कहना। जगतका मूल स्नेह है। परन्तु धार्मिक पुरुषोंका स्नेह जगतके उच्छेदका कारण है। यदि राग बुरा है तो रागमे राग न करो। रागका उदय दशम गुणस्थान पर्यन्त होता है। अर्हद्भक्ति भी ससार उच्छित्तिका हेतु इसीसे मानी गई है, क्योंकि गुणोंमें अनुराग ही भक्ति है। मेरा तो यह विचार है—परकी भक्ति औपचारिक है। परमार्थसे आत्माका शुद्ध रूप ही ससारका घातक है। देवीजी, मेरा बावाजीसे आबाल कालसे स्नेह है और यदि इनसे स्नेह छूट गया, तब दैगम्बर-पद होना दुर्लभ नहीं। परन्तु यह होना अशक्य है। आप जो स्वाध्याय करें, अध्यात्म मुख्यताके हेतु ही करें। यदि अवकाश पुण्योदयसे मिला, तब बावाजीका एकबार दर्शन अवश्य करूँगा। शेप सबसे दर्शनविशुद्धि।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३२]

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बावाजी महाराज हों तब हमारी धर्म स्नेहपूर्वक इच्छाकार कहना और वहा न होवें तो उनका पता देना। बूढी दादीसे हमारी धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि। और आप पढ़नेमें काल लगाना तथा थोडा अभ्यास यानी कण्ठ करनेमे समय लगाना। शेष स्वाध्यायमें समय लगाना। यह मनुष्य आयु महान् पुण्यका

फल है। संयमका साधन इसी पर्यायमें होता है। संयम निवृत्ति-रूप है। निवृत्तिका मुख्य साधन यही शरीर है।

आ शु चि०
गणेश वर्णी

[५—३३]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। निरन्तर जैनधर्मके ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेसे चित्तमें अपूर्व शान्ति होती है। शरीरकी रक्षा धर्मसाधनके लिये पापप्रद नहीं। विषयसे निवृत्ति होने पर तत्त्वज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमें संसार-लतिकाका छेदन कर देती है। केवल वेष शोभना मोक्षमार्ग नहीं। अन्तरङ्ग वासना की विशुद्धिसे ही कर्म निर्जीर्ण होते हैं। किसी पदार्थमें भीतरसे आसक्त नहीं होना चाहिये। अपनी भावना ही आपकी आत्माका सुधार करनेवाली है। जहाँतक बने यही कार्य करनेमें समय बिताना। बाईजीका मस्तिष्क बैस्लिमेन्ट्र। ऐसा उपाय करना जिससे यह पराधीन पर्याय न पाना पड़े। वैसे तो सर्व पर्याय पराधीन है। पर लौकिक दृष्ट्या यह महती परतन्त्रताकी जननी है। शेष कुशल है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—३४]

श्रीयुक्ता महादेवी सरल परिणामिनीका दर्शनविशुद्धि

इस पर्यायसे जहाँतक बने संयम और स्वाध्यायकी पूर्ण रक्षा

करना। ससार-संततिका नाश इसी पद्धतिसे होता है। बाईजीका आशीर्वाद। बेटी फूलदेवी! तुम सन्तोषपूर्वक स्वाध्याय करो और अपनी विस्मृत निधिको प्राप्त करो। संतोष ही परम सुख है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३५]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

संसार में सभी पराधीन हैं। अतएव उसके नाशका उद्यम जिसने कर लिया वही स्वाधीन और सुखी है। यह जीव जैसे पराधीन है वैसे स्वाधीन भी हो सकता है। यह सब अपनी कर्तव्यताका फल है। जो आत्मा कर्माजनकी प्रचुरतासे नरकादि निवासोंका अधिपति होता है वही उनका निराकरण कर शिव-नगरीका भूपति भी हो सकता है। इससे कभी भी अपनी आत्माको तुच्छ न समझना। अपना धर्मध्यान साधो। इसीमें कल्याण है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—३६]

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

तात्त्विक बुद्धिसे कार्य करना। जो भी औदयिक भाव होते हैं वह यदि सम्यग्ज्ञान पूर्वक उनके स्वरूपपर दृष्टि देकर आचरण

किये जावे तब क्षायिक भावके तुल्य कार्यकारी हो जावे हैं। सब तरफ से चित्तवृत्तिको पृथक् करना समुचित है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३७]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। जहाँतक बन परपदार्थसे ममत्व बुद्धि हटाना यही सार है। यद्यपि धार्मिक पुरुषोंका स्नेह धर्म-साधक है तथापि अन्तमें हेय ही है। अणुमात्र राग भी बाधक है। बहुत रागकी क्या कथा? स्वाध्याय ही परम तप है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–३८]

श्री महादेवीजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। महराजसे मेरा प्रणाम कहना और वे यदि अन्यत्र गमन कर गये हों तब वहां पर पत्र द्वारा लिख देना। मैं श्री नैना-गिरि और द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रोंकी वन्दना करता हुआ श्री अतिशय क्षेत्र पपौराकी वन्दनाको आया हूँ। यहाँ पर अगहन बदि २ तक रहूँगा। फिर श्री अतिशय क्षेत्र अहारकी वन्दना कर अगहन बदि १ तक बरुआसागर पहुँचूँगा। अभी स्वास्थ्य अच्छा है। किन्तु जिन परिणामोंसे स्वात्महित होता है उसका स्पर्श भी

अभी तक अन्तस्तलमें नहीं हुआ है। हम लोग केवल निमित्त कारणोंकी मुख्यतासे वास्तविक धर्मसे दूर जारहे हैं। जहां पर मन, वचन, कायके व्यापारका गम्य नहीं वह पद-प्राप्ति आत्म-बोधके बिना हो जावे, बुद्धिमें नहीं आता। यह क्रिया जो उभय-द्रव्यके संयोगसे उत्पन्न हुई है, कदापि स्वकीय कल्याणमें सहायक नहीं हो सकती। अतएव औदयिकभाव तो बन्धका कारण है ही। किन्तु क्षयोपशम और उपशमभाव भी कथंचित् परद्रव्यके निमित्तसे माने गये हैं। अत. जहांतक परपदार्थकी संपर्कता आत्माके साथ रहेगी वहां साक्षात् मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभा ही नहीं किन्तु असम्भव है। अत· अन्तरङ्गसे अपने ही अन्तरङ्गमें अपने ही द्वारा अपने ही अर्थ अपनेको गंभीर दृष्टिसे परामर्श करना चाहिये, क्योंकि मोक्षमार्ग एक ही है, नाना नहीं।

"एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकः
तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति॥"

मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक ही है, उसीमें स्थिति करो और निरन्तर उसका ध्यान करो, उसीका निरन्तर चिन्तवन करो, उसीमें निरन्तर विहार करो तथा द्रव्यान्तरको स्पर्श न करो। ऐसा जो करता है वही मोक्षमार्ग पाता है। उसका यह अर्थ नहीं कि स्वच्छन्द होकर आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट हो जावो। किन्तु अन्तरङ्ग तत्त्वकी यथार्थ प्रतीति करना ही हमारा कर्त्तव्य है। व्यवहारक्रियामें मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५-३६]

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। बाबाजी महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है और वह यहाँसे बनारस जायेंगे। संसारमें प्राणीमात्र मोहके वशीभूत होकर चिन्तातुर रहते हैं और मोहमें ऐसा होना स्वाभाविक है। परन्तु महापुरुष वही है जो इस मोहका कृश करने में सतर्क रहे। इस मोहने नारायण लक्ष्मणको 'हा राम' भी पूर्ण न कहने दिया और प्राणपंखेरू उड़ाकर ही संताप न किया किन्तु आगामी भी जबतक इसका सत्त्व है पिण्ड न छोड़ेगा। अतः जीवन, मरण, लाभ, अलाभमें समता रखना ज्ञानीका कार्य है।

> सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय
> कर्मोदयान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
> अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
> कुर्यात्पुमान्मरण जीवित-दुःख-सौख्यम्॥

अन्यथा कोई भी मनुष्य संसारमें ऐसा नहीं है जो स्वयंगत कर्मकी वेदनाको पृथक् कर सके। असाताके उदयमें श्रीआदि देवकी सहायता करनेमें भरतादिसे महाप्रभु समर्थ न हो सके और जब साताेदय आया तब श्री श्रेयांसको स्वयमेव दान देनेकी क्रियाका स्वप्नमें प्रतिबोध हुआ। अतः यदि बच्चेकी आयु है तब आप चिन्ता करें या न करें, अनायास बालकको आराम हो जायगा। विशुद्धि परिणाम ही निरोगतामें सहायक होता है, संक्लेश परिणाम तो बाधक कारण ही है। फिर इस संसारमें और क्या रखा है? कदलीस्तम्भके समान असार है अतः सब विकल्प छोड़ स्वात्माकी ओर आनेकी चेष्टा करना ही श्रेयोमार्गकी भूमिकामें पदार्पण करना है। आप अब अपनी माताराम और

भाई लक्ष्मणजी और उनकी धर्मपत्नी आदिसे मेरी धर्मवृद्धि कहना और कहना कि बुद्धिका फल आत्महितमें लगाना ही है। यों तो ससारमें अनेक जन्म मरण किये और करने पड़ेगे। यदि आत्महितमें एकबार भी प्रयत्न कर लिया तब फिर इन अनन्त यातनाओंसे अपनेको रक्षित कर सकोगे। अत. उपाय करते जाओ परन्तु चिन्ता न करो, जो भविष्य है वह अनिवार्य है। हाँ जिन महापुरुषोंने इस मोहमल्ल को विजय कर लिया उनका भविष्य प्राञ्जल प्रभात है। शेष कुशल है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५--४०]

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बेटी। ससार-बन्धन बहुत ही विकट समस्या है। इससे सुलझना अल्प पुण्यसे नहीं होता। यह जीव यदि अन्तःकरण स्थिर कर विचार करे और रागादि विभाव परिणामोंकी परपरा पर एकबार परामर्श कर उनके पृथक् होनेपर यत्नशील हो तब ऐसी कोई अलौकिक शक्तिका उदय होगा जिससे आगामी उनकी सन्तति इतनी उपक्षीण रूपसे चलेगी जो अल्प कालमें उसका सवस्व ही नहीं रहेगा। मोक्षमार्गमें वास्तविक मूल कारण सवर है। इसके बिना निर्जराकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। अत॰ सिद्धान्तवेत्ताओंको उचित है जो स्वात्मतत्त्वकी इस सवर तत्त्वसे रक्षा करे। लौकिक प्रयत्न बन्धन ही में सहायक होते हैं और यदि यही जीव सम्यक् अभिप्रायसे आशिक भी रागादिकों-में हानि करनेका प्रयत्न करे तब मोक्षमार्ग के पथपर आरूढ़ हो सकता है। आत्माकी कथनीसे आत्माकी प्राप्ति नहीं हो

सकती। किन्तु उसके अनुकूल प्रवर्तनसे उसका लाभ हो सकता है। इसका मर्म यह है कि आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है। उसमें जो रागादि की कलुषता है वही उसके स्वरूपकी नाशक है। उसे न होने दें यही हमारा पुरुषार्थ है, शेष तो विडम्बना है। जब तक यह न होगा तब तक शुभाशुभ क्रियाओंसे इसी दुःखमय संसारकी वृद्धि होगी और निरन्तर पराधीनताके बन्धनमें पर्यायकी पूर्णता करनी होगी। आप अपने सरल परिणामोंका फल प्राप्त करनेमें व्यग्र न होंगे। एक समय वह आवेगा जो अनायास ही वह होगा। मेरी तो सम्मति है जो व्यग्रतामें सिवाय आकुलताके और कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग तो शान्तिमें है। रागादिककी कलुषता कितनी दुःखदायी है? अन्य दुःख ही नहीं, आत्मकल्याणकी प्राप्ति तो आपमें है, पर तो निमित्तमात्र है, अतः अपने ही बाधक, साधक कारणोंको देखो। जो बाधक हों उन्हें हटाओ। साधक कारणोंको संग्रह करो।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४१]

श्रीयुक्त महादेवी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। संसारमें लाभ होता है, हो इसको औदयिक भाव जानो। इसमें विकल्प न होओ। विकल्पताकी उत्पत्ति यदि हुई तब सम्यग्ज्ञानी और अनात्मज्ञानीमें क्या अन्तर हुआ? आप अपनेमें कदापि व्यग्र न होने दें। यह बाह्य-संयोग जिन भावोंसे होता है वह परनिमित्तक होनेसे अनात्मीय है। तब जो जो परवस्तु है उसके अनात्मीय होनेमें कौन-सी शंका

है। अतः आपत्ति और अनुपपत्ति अनात्मीक जान कदापि व्यग्र न होना। अज्ञ मनुष्योंके सम्बोधनार्थ नारकादिक दुःखोंका निरूपण कर आचार्य महाराजने उनके पापसे रक्षित होनेकी चेष्टा की है। तथा स्वर्गसुखका लोभ दिखाकर उन्हें शुभोपयोगमें लगाया है। सम्यग्ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनोंको अनात्मीय जानता है। अतः उसको मोहके सद्भावमें भी केवल पूर्ण स्वरूप-प्राप्तिके अर्थ ही अभिप्राय रहता है, अत. वह संसारके सभी कार्यों मे मध्यस्थ रहता है। माध्यस्थता ही मोक्षमार्गकी प्रथम यात्रा है। इसके बलसे सम्यग्ज्ञानी नाना प्रकारके आरम्भादि अन्य बाह्य अपराध होने पर भी नियतकी निर्मलताके अनन्त ससारके दण्डसे रक्षित रहता है। अपनी आत्माको कदापि तुच्छ न मानना। जब आशिक निर्मल ज्ञान हो गया तब कदापि ससार-की यातनाका पात्र यह आत्मा नहीं हो सकता। अत अपने निर्मल परिणामोंके अनुकूल बाह्य परिस्थिति पर स्वामित्वकी कल्पनाका त्याग करना ही ज्ञानीका काम है। चारित्रमोहकी उद्वेगता आत्मगुणकी घातक नहीं, घातका अर्थ यहां विपर्ययता है, न्यूना-धिक नहीं। न्यून होना अन्य बात है, विपर्ययता अन्य वस्तु है। दर्शनमोहके अभावमें आत्मा निरोग हो जाता है, जैसे रोगी मनुष्य लंघनसे शुद्ध होनेके बाद निरोग तो हो जाता है, परन्तु अशक्त रहता है। क्रमसे पथ्यादि सेवन कर जैसे अपनी पूर्ण बलिष्ठताका पात्र हो जाता है तद्वत् सम्यग्दृष्टि निरोग होकर क्रमसे श्रद्धाका विषय लाभ करते हुए एक दिन अपने अनन्त सुखादिकका भोक्ता हो जाता है। इसमे अणुमात्र सन्देह नहीं। अतः जब आपने वास्तविक आत्मदृष्टिका लाभ प्राप्त कर लिया तब इन क्षुद्र उपद्रवोंसे भयकी आवश्यकता नहीं।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४२]

श्रीयुक्ता कल्याणमागरता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जितने अंश रागादिक न्यून हो वही धर्म है। बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिक कृशतामें हेतु है। जितना बाह्य परिग्रह घटे उतनी ही आत्मामें मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुमापक है, अतः जहाँ तक बने यही पुरुषार्थ कीजिये। सबसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिए, क्योंकि तत्त्व निवृत्तिरूप है। यथा—"निवृत्ति रूपं यतस्तत्त्वं"। स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरङ्ग तपमें गिना है। और भी कुन्दकुन्द स्वामीने आगमज्ञान ही त्यागियोंके लिए मुख्य बताया है। और आगमज्ञानका मुख्य फल भेद ज्ञान है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५–४३]

श्रीयुक्ता देवीजी दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने स्वाध्यायमें काल बिताओ। कोई किसीका हितकर्ता नहीं। आत्मपरिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है। वह वस्तु किसीके द्वारा नहीं मिलती। उसका कारण आप ही हैं। तुम्हारी निर्मलता ही संसारसे पार कर देगी।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—४४]

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य, दर्शनविशुद्धि

... आपने दशधा धर्मका पालन सम्यक्रीतिसे किया होगा। हमने भी यथाशक्ति साधन कर पर्व निमित्तक अपने जन्मको सफल बनानेका प्रयत्न किया। यह पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है। जैसे छोटी लड़कियोंमें गुड़िया खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है। प्रवृत्ति द्वारा तो उसका यथायोग्य कहीं आंशिक और कहीं पूर्णरूपसे घात ही है। यदि ऐसा न होता तो महाव्रती महर्षि जो कि सांगोपांग-महाव्रत पालन करते हैं उनके चारित्रको 'प्रमत्तचारित्र' शब्दसे न कहा जाता। प्रथम चारित्र करणानुयोगमें कहा है। अथ च, दैवात् प्रवृत्ति-मार्गकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे तब चारित्रका घातक तो निर्विवाद ही है। सम्यग्दर्शनका घात भी दुर्निवार है।

आजकलका वातावरण ऐसा प्रबल है कि निश्चय-धर्मके विवेचकोंको 'धर्मद्रोही' शब्दसे अलकृत करता है और जो बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् भाषाकार हो गये हैं उन्हें मनमाने शब्दों द्वारा यद्वा तद्वा कहकर अपनेको धन्य समझता है। ऐसे वातावरणमें रहकर कुशलमार्ग अति दुलभ है। आजकल तो यह सिद्धान्त-सा हो गया है कि शुभात्मक प्रवृत्ति ही गृहस्थोंके लिए कल्याणका मार्ग है। उन्हें निश्चय-धर्म मनन करनेका कोई अधिकार नहीं। इन जीवोंके शुद्धोपयोग तो दूर रहो इनकी अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलंकित कर रखा है। अतः जहा तक बने इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवालोंकी संगति छोड़ना ही श्रेयस्कर है। इनका समागम छोड़ना तो उचित है ही किन्तु जो एकान्तसे निश्चय-धर्मकी मुख्यता कर

[५–४२]

श्रीयुक्त कल्याणमार्गरता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जितने अंश रागादिक न्यून हो वही धर्म है। बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिक कृशतामें हेतु है। जितना बाह्य परिग्रह घटे उतनी ही आत्मामें मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुमापक है, अतः जहाँ तक बने यही पुरुषार्थ कीजिये। सबसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिए क्योंकि तत्त्व निवृत्तिरूप है। यथा— 'निवृत्ति रूपं यतस्तत्त्वं'। स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरङ्ग तपमें गिना है। और भी कुन्दकुन्द स्वामीने आगमज्ञान ही त्यागियोंके लिए मुख्य बताया है। और आगमज्ञानका मुख्य फल भेद ज्ञान है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४३]

श्रीयुक्त देवीजी दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने स्वाध्यायमें काल बिताना। कोई किसीका हितकर्ता नहीं। आत्मपरिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है। वह वस्तु किसीके द्वारा नहीं मिलती। उसका कारण आप ही हैं। तुम्हारी निर्मलता ही संसारसे पार कर देगी।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

वार्तिक से जानना और इतना अनुभवसे जाना जा सकता है जो जिस समय हमारा क्रोध स्वकीय कार्य करके खिर जाता है उस समय हमें जो शान्ति मिलती है वही क्षमा है और वही उसके अभावकी सिद्धि है। परन्तु जो क्रोधक कार्य द्वारा सुख मान रहे हैं उनके लिए इस गूढतत्त्वका रहस्य समझना कठिन है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५—४५]

श्रीयुक्ता मदादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आत्मा एक ऐसा पदार्थ है जो परके सम्बन्धसे 'संसारी' और परके सम्बन्धसे रहित 'मुक्त' ऐसे दो प्रकारके भावको प्राप्त हो जाता है। परका सम्बन्ध करनेवाले और न करनेवाले हम ही हैं। अनादिकालसे विभाव-शक्तिके विचित्र परिणमनसे हम नाना पर्यायोंमें भ्रमण करते हुए स्वयं नाना प्रकारके दुःखके पात्र हो रहे हैं। जिस समय हम ज्ञायकभावमें होनेवाले विकृत भावकी कर्तव्यताको जानकर उसे पृथक् करनेका भाव करेंगे उसी क्षण शान्ति-मार्गके पथपर पहुँच जावेंगे। अतः इस पर्यायमें हम इतना ही कर सकते हैं कि विकारभावको जानकर उससे तटस्थ हो जावें या चरणानुयोगकी पद्धतिसे उसके जो बाह्य कारण हैं उन्हे यथाशक्ति एकदेश (आंशिक) त्याग और सर्वदेश (सर्वथा या पूर्णतः) त्याग करनेका प्रयत्न करें। अन्तरङ्गसे बुद्धि-पूर्वक त्याग करें। करणानुयोगके अनुसार त्यागकी विधि नहीं है। बुद्धिपूर्वक पर-पदार्थोंसे ममताका त्याग ही हो सकता है, क्योंकि वही अपनी परणतिकी मलिनताका मूल है। पर-पदार्थोंको मलिनताका कारण मानना औपचारिक

अपनेको मोक्षमार्गका पथिक मान स्वेच्छाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनेसे निर्भय हैं उनका भी सम्पर्क त्यागना आत्महितका साधक है। शुभोपयोगके त्यागनेसे शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोगमें जो मोक्षमार्गकी कल्पना कर रखी है उसके त्याग और राग-द्वेषकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है और यही परिणाम मोक्षमार्गका साधक है। इसके विपरीत कषायसे हम संसार ही के पात्र होंगे। अतः इस पवित्र पर्वमें अविरुद्ध निवृत्ति-मार्गकी चर्चा करनेका हमारा ध्येय ही हमें श्रेयोमार्गका पथिक बनायगा। पर्व तो बहुत हैं, परन्तु यह पर्व भगवान्‌के पञ्चकल्याणकोंमें तपकल्याणककी तरह कुछ विशेषता रखता है। जैसे अष्टाह्निकापर्वमें पूजनकी विशेषता है और षोडशकारणव्रतमें उपवासोंकी मुख्यता है। परन्तु इस पर्वमें क्रोधादि कषायोंपर, जो कि परमार्थ-पथके घातक तथा आत्माके शत्रु हैं विजय पानेकी विशेषता है। इसकी मुख्यताका स्वाद तप कल्याणकके स्वरूपका आनन्द तपस्वी सौभाग्यशाली महर्षियोंकी तरह विरलोंको ही आता है। इसी पर्वके अन्तर्गत आकिञ्चन-धर्मके विमल रत्नत्रयका उदय होता है जो रत्नत्रय साक्षात् मोक्षमार्ग है। इस पर्वमें यदि शान्ति न आई तो अन्यत्र आना कठिन ही है। अतः जिन्होंने अपने क्रोधादि कषायोंको इन दिवसोंमें दूर किया वे ही धन्य हैं। अन्यथा—

कहाँ गये थे ? दिल्ली।
कितने दिन रहे ? बारह वर्ष।
क्या किया ? भाड़ झोंका।
क्या लाया ? चने।

यही हाल रहा। अतः इस पर्वकी महिमा तो वही कह सकता है जिसके हृदयमें उदय हुआ हो। इस पर्वका अन्त आज

होनेसे द्वैविध्यको धारण करता है। इस अपने निज-
परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उपादाता (ग्रहणकर्ता) है और
त्यागकर्ता भी है। यही शुद्ध (केवल) द्रव्यको निरूपण
करनेवाला निश्चयनय है। 'शुद्ध' पदका अर्थ यहाँ केवल आत्मा
लेना। और जो पुद्गल-परिणाम आत्माका कर्म है वह भी
पुण्य-पापरूपसे दो तरहका है। इस पुद्गल-परिणामका आत्मा
कर्ता है उपादाता (ग्रहणकर्ता) और त्यागकर्ता है यह
अशुद्ध द्रव्य निरूपणात्मक व्यवहारनय है। ये दोनों कथन बन
सकते हैं, क्योंकि द्रव्य शुद्ध और अशुद्धपनेकर प्रतीतिका विषय
है। किन्तु यहाँपर निश्चयनय ही साधकतम होनेसे उपादेय
है। जब हम निश्चयसे अपने आत्मामें रागादिकको जानेंगे, तभी
तो उस दोपको दूरकर निर्मल होनेका प्रयत्न करेंगे। पुद्गलके
ज्ञानावरणादि पुद्गलकी पर्याय हैं। इनका परिणमन पुद्गलमें
हो रहा है। उसके न तो हम कर्ता हैं, न गृहीता हैं और न त्यागने-
वाले हैं। ऐसी वस्तुस्थिति जानकर भी जो देह-द्रविण आदिमें
(देह और धन-सम्पत्ति आदिमें) ममत्वको नहीं त्यागते, वे जीव
उन्मार्गगामी बाह्य त्याग करके भी सुखी नहीं। दूर करनेका मार्ग
दिखानेवाला और कोई नहीं अपनी पवित्रता ही है अन्य तो
निमित्त हैं। पदसे अधिक मूर्च्छाका त्याग होना असम्भव है।
श्रद्धामें सम्यग्दृष्टि आत्मासे अतिरिक्त पदार्थोंसे विरक्त है, परन्तु
प्रवृत्ति तो पर्यायके अनुकूल ही होगी। अविरत और सयतकी
श्रद्धामें अन्तर न होनेपर भी प्रवृत्तिमें महान् अन्तर है। इसका
यह तात्पर्य नहीं कि अपने दोषोंको दूर न करना चाहिये। दूर
करनेमें ही कल्याण-मार्गकी निर्मलता है।

× × ×

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

है। यही बात भी 'प्रवचनसार' (ज्ञेय तत्त्वाधिकार गाथा ९६) में स्वामी कुन्दकुन्दने बहुत स्पष्ट रूपसे दर्शाई है--

सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं।
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधो त्ति परूविदो समये ॥"

अर्थात्—संसारी जीव लोकमात्र असंख्यात प्रदेशवाला होनेसे जब मोह राग और द्वेषसे कषायवाला होता है। उसी कालमें कर्म-धूलिरूप ज्ञानावरणादि कर्मोंसे श्लिष्ट (सम्बन्धित) होता है। इसीका नाम बन्ध है। अब यहाँ पर देखना है कि परमार्थिक बन्ध तो आत्मामें ही हुआ और यही जीव-बन्ध है और यही आकुलताका जनक है। कर्मवर्गणारूप बन्ध तो व्यवहार-बन्ध है। इससे हमारी कौनसी क्षति हुई। वस्तुस्थिति भी ऐसी है कि जिस समय आत्माके अन्तरङ्गसे मोह-रूप पिशाच निकल जाता है उस कालमें यह ज्ञानावरणादि द्रव्य-बन्ध रहते हुए भी आत्मामें न तो आकुलताका जनक है और न बन्धका कारण है। इनके उदयसे जो भाव होता है वह भी आत्माकी क्षतिका कारण नहीं, यह तो सम्पूर्ण मोहके नाशपर निर्भर है; किन्तु एक दर्शनमोहके नाश होनेपर भी चारित्रमोहकी दशा स्वामी-हीन कुत्तेकी तरह है—भौंकता है परन्तु काटनेमें समर्थ नहीं। अतः भाव-बन्ध ही निश्चयसे आत्मामें आपत्तिका कारण है। उसीका निपात करनेकी चेष्टा करो। इसपर—श्रीस्वामीजीकी गाथा है—

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयेण णिद्दिट्ठो।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो ॥

अर्थात्—अरहन्त भगवानके द्वारा मुनीश्वरों और जीवोंको निश्चयनयके द्वारा बन्धका संक्षेप बताया है। इस निश्चयनयसे भिन्न एक क्षेत्रावगाहरूप जो द्रव्य-बन्ध है वह व्यवहार है। आत्माका जो राग-परिणाम है वही कर्म है और इस परिणामका आत्मा कर्ता है और यही परिणाम पुण्य और पापका जनक

परके सम्बन्धसे अपना जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, मोक्षमार्ग-संसारमार्ग आदि मान रहा है। वास्तवमें द्रव्योंके परिणमन स्वाधीन हैं।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह त परिणामए दव्वं॥

(समयसार, गाथा १०३)

अर्थात् जो जिस अपने द्रव्य या गुणमें रहता है वह अन्य द्रव्य या गुणमे सक्रमण नहीं होता। जब अन्यमे सक्रमण नहीं करता, तब कैसे अन्यको परिणमन करा सकता है? परन्तु हमारी दृष्टि ऐसी हो गई है कि निरन्तर अन्य निमित्त ही पर अपना भला बुरा समझ रही है। अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'क्या निमित्त कोई वस्तु नहीं?' सो नहीं। निमित्त तो निमित्त ही है। परन्तु कई निमित्त तो ऐसे हैं जिनके बिना कार्य नहीं होता। जैसे कुम्भकारके बिना घट नहीं बन सकता। संहनन और चतुर्थ काल आदि ऐसे निमित्त हैं कि उन के बिना मोक्षके साधनकी पूर्ति नहीं होती। किन्तु अन्तरङ्ग कारणके बिना सर्व ही निमित्त अनुपयोगी हैं। अतः हमें अपनी आभ्तन्तर निर्मलताकी आवश्यकता है। उसमें हमारी ही पुरुषार्थता उपयोगिनी है। निरन्तर यह अभ्यास कार्यकारी है। जो हमारे आत्मामे विकृत भाव होते हैं उनका ही फल हमारी यह संसार-यातना है। वह विकृति दो विभागोमें परिणत हो जाती है—एक तो शुभ और दूसरी अशुभ। यही ससारका सार है। केवल शुभ-अशुभ भाव ही नहीं, किन्तु उसके आभ्यन्तरमें जो अहकारकी मात्रा है वही विष है। यदि वह विष दूर कर दिया जावे तब अनायास संसारकी जड़का विध्वस हो सकता है। उसको जिस महापुरुषने जीत लिया वह इस संसारसे पार हो गया। यदि अह-बुद्धि मिट

[५–४६]

श्रीयुक्त महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वाध्यायका मुख्य फल तत्त्वज्ञान-पूर्वक निर्जरा है क्योंकि यह तप है और इसीसे इसका अन्तरङ्ग तपमें समावेश है। परन्तु आज कलके लोग जितना महत्त्व उपवासादि तपोंको देते हैं उतना इस नहीं देते। इसका मूल कारण लोगोंकी बहिर्दृष्टि है। लोगोंकी जाने दो, हम स्वयं उसे महत्त्व नहीं देते। उपवासके दिन समझते हैं कि आज हमसे अनुचित प्रवृत्ति न हो जावे। ऐसा ध्यान बहुत लोगोंका रहता है। परन्तु स्वाध्याय-तपके अवसरमें या प्रति दिनका कार्य है, यह नहीं रहता कि यह कार्य बहुत उत्तम है। इस दिन जितनी निर्मलता हो सके करना चाहिये। ध्यानको छोड़कर इससे उत्तम अन्य तप नहीं। परन्तु हमारी दृष्टि केवल स्वाध्यायसे ज्ञानार्जनकी रहती है, तपकी नहीं। हमारी तो यह श्रद्धा है कि यह तप उन्हींके हो सकता है जिनके कषायोंका क्षयोपशम है क्योंकि बन्धका कारण कषाय है, अतः जबतक उसका क्षयोपशम न हो उस जीवके स्वाध्याय नहीं हो सकता; ज्ञानार्जन हो सकता है और आज तो उसकी रुचि पन्ना पलटनेमें ही रह गई है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–४७]

श्री देवीजी महादेवीजी इच्छाकार

संसारमें प्राणीमात्रकी अनादिसे यह प्रकृति हो गई है कि

तत्र अन्यत् भेद प्रतीत हो रहा है। एक तो साक्षात् मोक्ष लिङ्ग को धारण किये हुए है और एक रणक्षेत्रमे कटिबद्ध हो रहा है। फिर भी एक मोक्षमार्गके सम्मुख है और एक मोक्षमार्ग को जानता ही नहीं। सम्मुख होना तो दूर रहो, यहाँपर केवल भेद-ज्ञानकी ही महिमा है। अत: जहाँ तक बने बाह्य क्रियाको आचरण करते हुए आभ्यन्तर दृष्टिकी ओर लक्ष्य रखना ही इस पर्यायका पुरुषार्थ है। निरन्तर लक्ष्य अपनी परिणतिके ऊपर रहना चाहिये, तब बाह्य-पदार्थोंसे विमुखता आवेगी, स्वयमेव अन्तरदृष्टि हृदयमें आवेगी, क्योंकि विभाव पर्यायके सद्भावमें स्वभाव परिणमन नहीं हो सकता। पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक होता है। और बुद्धि क्या है? हमारा अभिप्राय ही तो है। सम्यग्दृष्टिके जो भी शुभ अशुभ व्यापार हैं उन्हें वह अभिप्रायसे नहीं करना चाहता, करने पड़ते हैं। द्रव्यलिङ्गी शुभ-परिणामोंका अभिप्रायसे कर्ता बनके कर्ता है, क्योंकि आत्म द्रव्यका वास्तव स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा है। उसके साथ अनादिकालीन कर्मोंका सम्बन्ध है जिससे उसकी योग शक्ति और विभाव-शक्ति उसे विकृतरूप परिणमन करा रही है। इसमें विभावशक्ति द्वारा आत्मामें रागादि विभाव भाव होते हैं जो कि संसारके मूल कारण हैं। योगशक्ति उतनी घातक नहीं, वह केवल परिस्पन्द करती है। यदि रागादि कलुषता चली जाय तब वह स्वच्छतामें उपद्रव नहीं कर सकती और उस बन्धको, जिसमें स्थिति और अनुभाग होता है नहीं कर सकती। अतः पुरुषार्थी वही है जिसने रागादिकके अभावके लिये विवेक उत्पन्न कर लिया है। यह भेद-ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और इसीके बलसे ही आत्माके वह निर्मल परिणाम होते हैं जो सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं। उन भावोंकी महिमा करणानुयोगसे जानो। जो भाव सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं, उनके सदृश अनन्त संसारके घातक अन्य भाव नहीं

जाते सब ममत्व-बुद्धि हटनेमें क्या विलम्ब है? लोकमें यही व्यवहार हो रहा है कि 'मैंने यह किया।' ऐसे कर्तृत्वमें अहं बुद्धिका ही तो माप है। अथवा 'मैंने पराया भला या बुरा किया?' इसके गर्भमें भी वही अहं-बुद्धिका प्रसार है। यह सब अनादि मोहका विलास है। इसके अन्दर ही सम्पूर्ण विश्वका बाज है इसके पृथक् करनेके लिए ही और इसी स्वरूपमें यह द्वादशांगकी रचना हुई। इसके अभाव होनेपर न तो संसार है और न संसारके उद्धारकी कामना। हे आत्मन्! एक बार तो अपनी असलियतपर दृष्टि दो। इसे ही यह सब नकली स्वांग ऐसे विलय हो जायेंगे जैसे सूर्योदयमें अन्धकार। 'मैं' 'मैं' करती हुई बेचारी बकरी वधावस्थाको प्राप्त होती है और मैना राजाओंके करोंसे पाली जाती है। अतः यह परम अन्ध भाव आत्म-घातक है। वास्तवमें अनन्त संसारके बीजभूत अहं भावका त्यागकर इसके विरुद्ध भावनाका आश्रय लेकर इसके हटानेका प्रयास ही मोक्षका बीज है। बाबाजीसे यह कह देना कि अब तो आपके धार्मिक परिणामोंकी निर्मलताके अब एक स्थान ही उपयुक्त होगा। भ्रमण करनेमें लाभ नहीं। परन्तु वे महापुरुष हैं, कौन कहे?

आ शु चि०
गणेश वर्णी

[५–४८]

श्रीमहादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

कल्याणका पात्र वही होता है जो विवेकसे काम लेता है। देखो, अविरत-गुणस्थानवाला असंयमी और मिथ्या-गुणस्थानवाला संयमी इन दोनोंमें यदि बाह्य दृष्टिसे विचार किया जाय

तत्र अन्यत् भेद प्रतीत हो रहा है। एक तो साक्षात् मोक्ष लिङ्ग को धारण किये हुए है और एक रणक्षेत्रमे कटिबद्ध हो रहा है। फिर भी एक मोक्षमार्गके सम्मुख है और एक मोक्षमार्ग को जानता ही नहीं। सम्मुख होना तो दूर रहो, यहाँपर केवल भेद-ज्ञानकी ही महिमा है। अत जहाँ तक बने बाह्य क्रियाको आचरण करते हुए आभ्यन्तर दृष्टिकी ओर लक्ष्य रखना ही इस पर्यायका पुरुषार्थ है। निरन्तर लक्ष्य अपनी परिणतिके ऊपर रहना चाहिये, तब बाह्य-पदार्थोंसे विमुखता आवेगी, स्वयमेव अन्तरदृष्टि उदयमें आवेगी, क्योंकि विभाव पर्यायके सद्भावमें स्वभाव परिणमन नहीं हो सकता। पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक होता है। और बुद्धि क्या है? हमारा अभिप्राय ही तो है। सम्यग्दृष्टिके जो भी शुभ अशुभ व्यापार हैं उन्हें वह अभिप्रायसे नहीं करना चाहता, करने पड़ते हैं। द्रव्यलिङ्गी शुभ-परिणामोंका अभिप्रायसे कर्ता बनके कर्ता है, क्योंकि आत्म द्रव्यका वास्तव स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा है। उसके साथ अनादिकालीन कर्मोंका सम्बन्ध है जिससे उसकी योग शक्ति और विभाव-शक्ति उसे विकृतरूप परिणमन करा रही है। इसमे विभावशक्ति द्वारा आत्मामें रागादि विभाव भाव होते हैं जा कि ससारके मूल कारण हैं। योगशक्ति उतनी घातक नहीं, वह केवल परिस्पन्द करती है। यदि रागादि कलुषता चली जाय तब वह स्वच्छतामें उपद्रव नहीं कर सकती और उस बन्धको, जिसमें स्थिति और अनुभाग होता है नहीं कर सकती। अतः पुरुषार्थी वही है जिसने रागादिकके अभावके लिये विवेक उत्पन्न कर लिया है। यह भेद-ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और इसीके बलसे ही आत्माके वह निर्मल परिणाम होते हैं जो सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं। उन भावोंकी महिमा करणानुयोगसे जानो। जो भाव सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं, उनके सदृश अनन्त संसारके घातक अन्य भाव नहीं

हैं। यदि एक बार ही यह हो जावे तब अधिक संसार नहीं रहता।

आ शु चि
गणेश वर्णी

[५—४६]

श्री क्षुल्लिका महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

माता-पिताने हमारा महान् उपकार किया जो अनेक विघ्न बाधाओंसे सुरक्षित कर इस योग्य बना दिया कि हम चाहें तो अब आत्मिक मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं। बाबाजी महाराज का आपके ऊपर उससे भी अधिक उपकार है जो उस उपकार से आपके पवित्र हृदयमें जैनधर्मकी मुद्रा अंकित हो गई। यदि आप उनके उपकारका स्मरण करती हैं तो यह उचित ही है। क्योंकि "न हि कृतं उपकारं साधवो विस्मरन्ति।" परन्तु तात्त्विक बात तो यह है कि कल्याणका उदय परमार्थसे आत्मा ही में होता है और आत्मा ही उसमें उपादान कारण है इतमें तो निमित्त हो है। नौकापर बैठे रहकर कोई पार नहीं होता, किन्तु पार होने के समय (उस पारके तटपर पैर रखते समय) नौका त्यागनी ही पड़ती है। मोक्ष-मार्गके उपदेष्टा श्रीपरमगुरु महान् हैं। उनके द्वारा ही इसका प्रकाश हुआ है। अतः हर उचित है कि अपने मार्गदर्शकको निरन्तर स्मरण करें। परन्तु उन्हीं प्रभुका आदेश है कि यदि मार्गद्रष्टा होनेकी भावना है तब हमारी स्मृति भी भूल जाओ और जिस मार्गको हमने अंगीकार किया उसीका अवलम्बन करो। अर्थात् पदार्थ मात्रमें रागादि परणतिका त्याग करो क्योंकि यह परणति उच्च पदकी प्राप्तिमें बाधक है। प्रवचनसार में कहा है —

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं॥

जिसका मोह दूर हो गया है ऐसा जीव सम्यक् स्वरूपको, प्राप्त करता हुआ यदि राग-द्वेषको त्याग देता है तब वह जीव शुद्ध आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है। और कोई उपाय या उपायान्तर आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें साधक नहीं। यही एक उपाय मुख्य है। प्रथम तो मोहका अभाव करके सम्यग्दर्शनका लाभ करो। ज्ञानमें यथाथताका लाभ उसी समय होता है। केवल राग-द्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्रकी उपयोगिता है। चारित्रका फल रागद्वेष-निवृत्ति है। यहाँ चारित्रसे तात्पर्य चरणानुयोग प्रतिपाद्य देशचारित्र और सकलचारित्रसे है। और जो कषायकी निवृत्तिरूप चारित्र है वह प्रवृत्तिरूप नहीं। उसका लाभ तो जिस कालमें कषायकी कृशता है उसी कालमें है। उसकी शान्ति वचनातीत है। अत. प्रवृत्तिसे उसका सद्भाव नहीं। वह (प्रवृत्ति) तो उसकी घातक ही है। किन्तु उसके सद्भावसे वह हो सकता है, अत. उपचारसे उसे भी चारित्र कह देते हैं और पच महाव्रतकी भी इसीसे चारित्रमें गणना की है। वास्तवमे तो महाव्रत आस्रवका ही जनक है परन्तु महाव्रतके होनेपर वह होता है इसलिए उसे भी चारित्र कह दिया। वास्तवदृष्टिसे तो वह न प्रवृत्तिरूप है और न निवृत्तिरूप है। वह तो विधि निषेधसे परे अपरिमित शान्तिका दाता अनुपम आत्माका परिणाम है, जिसका वर्णन शब्दोंसे बाह्य है। फिर भी उसके विषयमें आचार्योंने बहुत कुछ कहा है। प्रवचनसार (अ० १ गाथा ७) में कहा है—

चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥७॥

आत्माके स्वरूपमें जो चर्या है उसीका नाम चारित्र है। वही वस्तुका स्वभावपनेसे धर्म है। अर्थात् शुद्ध चैतन्यका प्रकाश ही धर्मका अर्थ है। वही वस्तु यथावस्थित आत्म-स्वभावपनेसे साम्य भाव है। और जहाँपर दर्शनमोह और चारित्रमोहके अभावसे मोह और क्षोभका अभाव होनेपर आत्माकी अत्यन्त निर्विकार परिणति उद्भूत होती है उसी निर्मल भावका नाम साम्यभाव है। यह इस जीवका ही परिणाम है। उसीका श्री पद्मनन्दि महाराजने इन शब्दोंमें कहा है—

> मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागङ्गसङ्गोज्झिता।
> शुद्धानन्दमयात्मनः परिणतिर्धर्माख्यया गीयते॥

अतः इन निमित्तोंकी उपयोगिता वहीं तक है जहाँ तक हम मोही हैं। मोहके अभावमें इनका कोई उपयोग नहीं। स्वामीने कहा है—

> रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
> एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥

कम करना और बात है तथा कर्मका होना और बात है। बड़े-बड़े महर्षियोंने भी उत्तम उत्तम ग्रन्थ रचकर जगतका कल्याण किया, फिर भी कर्ता नहीं बने। यदि उनके आशयमें कर्तृत्व होता, कदापि मोक्षके पात्र न होते। अतः अपने पवित्र भावोंके द्वारा अर्थ निरन्तर जैसा पदार्थ है उसी रूपमें प्रतीति रहना चाहिये। यथाशक्ति श्रद्धाका जो विषय है उसमें रमण करनेकी स्थिरता होनी चाहिये। अतः जो निःश्रेयसके अभिलाषी हैं वे बाह्य व्यवहारमें आसक्त रहते हैं। जिन नहिं चाखी मीसरी उनको कपरा मिष्ट।" जिन्होंने परमार्थ-रसामृतका आस्वाद ले लिया व इस व्यवहारके आस्वादको नहीं चाहते। विशेष क्या लिखूँ? यह पत्र श्री त्रिलोकचन्दको भी सुना देना। उनके

पत्रका उत्तर फिर दूगा। उन्होंने पूछा है कि मरने पर ऋजुगतिवाला एक समयमे जन्म लेता है उसके कौन योग है? वहाँ उसके मिश्र योग है। क्योंकि वह जहा जन्म लेगा, तदनुकूल वर्गणा ग्रहण करने लगता है, इसीसे उसके आनुपूर्वी भी अपना कार्य करने मे समर्थ नहीं। आपकी भद्रता ही भद्र परिणाम की साधक है, और ता निमित्तमात्र है।

तुम्हारा चिद्रूप ही आत्मकल्याणका हेतु है। उसमे जो वर्तमानमें अशक्तिसे रागादिककी उत्पत्ति है वह समय पाकर जायेगी। देशव्रतमे महाव्रतकी शान्ति व्यक्त नहीं हो सकती।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

[५–५०]

श्रीयुक्त प्रशममूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शारीरिक व्याधि असातोदयमे होती है। किन्तु यदि उसके साथमें अरति-प्रकृतिका उदय बलवान् हो तब वह व्याधि विशेष दुख जनक होती है। यदि विशेष बलवान् न हो तब विशेष बाधक नहीं होती। विशेषसे तात्पर्य—मिथ्यादर्शनके साथ अरति विशेष बलशाली है। वास्तवमें शरीरमें जो रोग है वह दुःखदायी है ही नहीं। हमारा शरीरके साथ जो ममत्वभाव है वही तो मूल जड़ वेदनाकी है। इसके दूर करनेके अनेक उपाय हैं पर दो उपाय अति उत्तम हैं—एकत्व भावना और अन्यत्व भावना। इनमें एक तो विधिरूप है और एक निषेधरूप। वास्तवमें विधि और निषेधरूपका यथार्थ परिचय हो जाना ही तो सम्यग् बोध है। परसे भिन्न और निजसे अभिन्न ही तो शुद्ध

वस्तु है। इसीको समयसारमें स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कितने सुन्दर पद्यमें निरूपण किया है—

> अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी।
> ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥३८॥

निश्चय कर मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शनात्मक हूँ, सदा अरूपी हूँ। इस संसारमें अन्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, परन्तु हे मोह! तेरी महिमा अचिन्त्य और अपार है जो संसार मात्रको अपनेमें ग्रास करना चाहता है। नारकीकी तरह मिलनका कारण नहीं, इच्छा संसारभरका नाज खानेकी है, यही मोहकी विलक्षणता है। जो बापसे ऐसे प्रलाप निरन्तर करता रहता है। हाथ कुछ आता नहीं अतएव स्वामीने मोहक भावके दूर करनेके अर्थ कैसा सुन्दर और हृदयग्राही पद्य कहा है—

> णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
> तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बिंति ॥३६॥

मोह मेरा कुछ भी सम्बन्धी नहीं। एक उपयोग ही मैं हूँ। समयके ज्ञाता उसे निर्मोही जानते हैं। जिसके मोह चला जाता है उसके ज्ञेय-ज्ञायकभावका विवेक अनायास हो जाता है। इसीको समझाने अर्थ स्वामीजीने निम्न पद्य कहा है—

> णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
> तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बिंति ॥३७॥

इत्यादि अनेक पद्योंसे इस मोही जीवके सम्यग् बोधके अर्थ प्रयास किया। परमार्थसे स्वामीने, जो मंगलाचरण अनन्तर दो गाथा हैं उनमें समयसारका सम्पूर्ण रहस्य कह दिया है—

> जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
> पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ॥२॥

जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें स्थित हो रहा है उसीको तुम स्वसमय जानो और इसके विपरीत जो पुद्गल कर्मप्रदेशों-में स्थित है उसे पर समय जानो। जिसकी ये दो अवस्थाएँ हैं, उसे अनादि अनन्त सामान्य जीव समझो। इसी भावको लेकर स्वामीजीने 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा है और इसी भावको लेकर स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा है—

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः।

इस गाथाके आभ्यन्तर द्वादशांगका सार है। इसकी महिमा अनिर्वचनीय है। लिखनेकी सामर्थ्य नहीं, अतः यहीं पूर्ण करता हूँ। बाबाजी महाराजसे क्या कहूँ, उनका स्मरण ही हमें कल्याणपथका पथिक बना रहा है। महाराजका मौनका अभ्यास अच्छा है। आपको क्या लिखूँ, परन्तु हमारा मौन तो वचन योगके अभावको मौन समझ रहा है, किन्तु जब तक कषायोंकी वासनाका निरोध न हो तब तक वचनयोग और मनोयोगका निरोध होना असम्भव है। अन्तर्जल्य होता ही रहता है। इसपर कभी आपकी कृपा होगी तो मैं कुछ लिखूँगा। मेरे गूमड़ा हुआ तो अच्छा ही हुआ। जो आपके अभिप्राय से निर्गत उपदेश तो आपके हस्ताक्षरोंसे अंकित मिल गया। गूमड़ा अच्छा हो गया, परन्तु अन्तरङ्ग गूमड़ा दूर हो तब कुछ वास्तविक शान्तिका लाभ हो। आनेका विचार चातुर्मासके बाद करूँगा। मोक्ष-लिप्सा मोक्षका कारण नहीं, परन्तु लिप्साकी निवृत्ति मोक्षका साधक है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

श्री भगिनी शान्तिबाईजी

आदर्श महिला भगिनी शान्तिबाईका जन्म वि. सं. १९६६ को टीकमगढ़ रियासतान्तर्गत बरुआ ग्राममें हुआ था। पिताका नाम श्री सिंघई पचौरीलालजी और माताका नाम रामरानी था। जाति गोलालारे है। इनकी शादी ८ वर्ष की उमरमें सिमरा निवासी सिंघई पैयालालजी के साथ हो गई थी। परन्तु विवाह के एक वर्ष बाद ही इन्हें वैधव्यके दुर्दिन देखने पड़े।

पूज्य वर्णीजी महाराजकी धर्ममाता श्री चिरौंजाबाईजीको देवरानी होनेसे ये उनके पास रहने लगीं। यहींसे इनके वास्तविक जीवनका प्रारम्भ होता है। माताजीने लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकारकी शिक्षा दिलाकर इन्हें अपने पैरों खड़ी होने लायक बना दिया। फलस्वरूप ये कटरा बजार सागरकी कन्याशालामें अध्यापिकाका कार्य करने लगीं। वहाँसे इन्हें जो कुछ मिलता है उसीमें अपना निर्वाह करती हैं और कमकसरकर जो बचा पाती हैं उसका यथासम्भव परोपकारमें विनियोग करती रहती हैं। इन्होंने अपने जीवनमें बहुत बड़े व्रत स्वीकार नहीं किये हैं फिर भी वे अपनी निर्लोभता सादगी सरलता और दृढ़ता आदि गुणोंके कारण सबके लिए आदर्श हैं। इन्हें देखते ही माताकी ममता जाग उठती है।

मालूम पड़ता है कि पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हें लगभग तीन पंक्तिका एक ही पत्र लिखा है जो यहाँ दिया जा रहा है।

[६—१]

श्री शान्तिबाई जी।

धर्मध्यानमे अपना समय बिताना, स्वध्याय करना और जहां तक बने कुछ पाठ कण्ठस्थ करना। ससारमे कोई सरण नहीं, केवल पञ्च-परमेष्ठी ही शरण हैं। जो आप शान्त होगा वही सुखी होगा।